तारासिंह नरोत्तम – व्यक्तित्व और कृतित्व

(१८ वीं शताब्दी में उपलब्ध पंजाब की हिन्दी
कृतियों के विशिष्ट सन्दर्भ में)

पंजाब विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० उपाधि के लिए
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध
१९७३

निर्देशक
डा० गोबिन्द नाथ राजगुरु
रीडर
हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़ ।

प्रस्तुत कर्त्री
हरजीत कौर मदान

भूमिका

पंजाब में जन्म लेकर गुरु नानक और उनकी बाणी से अपरिचित रहना शायद एक विडम्बना ही कही जाएगी। गुरु नानक के प्रदेश में रहना और गुरु नानक द्वारा निर्मित सांस्कृतिक वातावरण में सांस लेना संभवत: तभी सार्थक है जब जीवन को किसी न किसी रूप में गुरु नानक का कोई संदर्भ दिया जा सके।

यह एक सुखद संयोग है कि शोध कर्ता के रूप में मुझे गुरुवाणी के एक अत्यंत प्रतिभा शाली व्याख्याता से परिचित होने का अवसर मिला। अभी तक पूर्णत: अज्ञात इस व्याख्याता का नाम है तारा सिंह नरोत्तम।

नरोत्तम की रचनाएं गुरुमुखी अक्षरों में प्रकाशित हो चुकी हैं। परन्तु पंजाबी भाषा और साहित्य के इतिहासकारों के लिए यह नाम आज भी प्राय: अपरिचित ही है। इस अपरिचय के मूल में अज्ञान है या उपेक्षा या फिर कोई दुर्भावना इसका निर्णय तो कोई भावी इतिहास लेखक ही कर सकेगा।

खड़ी बोली गद्य की एक समृद्ध परम्परा १९वीं शती से ही पंजाब में मिलने लगती है। निश्चय ही इस परम्परा के बीज गुरु नानक के युग (१८वीं शती) या इससे भी पूर्वकालीन साहित्य में होने चाहिए।

गगन मैं थाल रविचंद्र दीपक बने
तारिका मंडल जनक मोती
धूपु मल आन लो पवणु चवरो करे
सगल बनराइ फूलंत जोती। --- नानक

तथा

सोच विचार करे मत मन में, जिसने ढूंढा उसने पाया
ना नर मक्तन दे पद पर से, निस दिन रामचरन चित लाया`

जैसी साफ सुथरी खड़ीबोलीके प्रयोक्ता गुरु नानक निश्चय ही खड़ी बोली के लेखकों में मूर्धन्य है।

गुरु नानक के बाद भी `आदिग्रंथ` (संकलन काल १६०५ ई) में संकलित गुरु-कवियों ने खड़ी बोली का बहुत साफ सुथरा रूप प्रस्तुत किया।

गुरु घर से सम्बन्धित तथा कुछ अन्य व्यक्तियों ने भी खड़ी बोलीमें अपने विचार और भाव प्रस्तुत किए। इनमें से कुछ उल्लेखनीय नाम ये हैं:-

मिहरिवानु (सोढ़ी मेहरबान: मनोहरदास १५८१-१६४० ई)
गुरु घर से संबधित व्यक्तियों में मिहरिवानु की रचनाएं खड़ी बोली के गद्य की उत्कृष्ट कृतियां कही जा सकती हैं। मिहरिवानु ने `पोथी सचुखंड` में गुरुवाणी की व्याख्या खड़ी बोली के प्रशस्त गद्य में की है। इनकी भाषा का कलेवर खड़ी बोली का है परन्तु आत्मा पंजाबी की है। डा० गोविन्दनाथ राजगुरु ने इन्हें खड़ी बोली गद्य का पिता कहा है।[१]

योगवासिष्ठ (१६७४ ई०)
पंजाब में खड़ी बोली (गद्य) की एक और सशक्त कृति `योगवासिष्ठ भाषा` लिखी गई। योग वासिष्ठ भाषा का साहित्यिक महत्व आज हिन्दी

१- विस्तृत विवेचन के लिए `गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य` के पृष्ठ २४ पर देखें।

साहित्य के सभी इतिहास लेखकों ने मुक्त कंठ से स्वीकार कर लिया है।

दयाल अनेमी (१६७५-१७२१ ई०)

खड़ी बोली के एक अन्य सशक्त गद्य लेखक तथा एकाधिक कृतियों के यशस्वी लेखक दयाल अनेमी का नाम इस क्षेत्र में अविस्मरणीय है। इस क्षेत्र में इनकी प्रसिद्ध कृतियां 'अवगत उल्लास' असटावक्र भाषा', हसता मल' तथा गीता भाष्य है। इन कृतियों में इन्होंने खड़ी बोलीका तत्सम प्रधान रुप प्रयुक्त किया।

आनन्दघन (रचना काल १७५० ई०)

१८वीं शती में खड़ी बोली गद्य के एक उद्भट लेखक थे आनन्दघन। गुरुवाणी व्याख्याताओं में उनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में इनकी प्रमुख कृतियां 'आरती टीका', 'जपुटीका' आनंद टीका' सिधगोसट' है।

खड़ी बोली के इन सशक्त लेखकों ने पंजाब के साहित्य को अत्यन्त सम्पन्न बनाया है।

खड़ी बोली गद्य के क्षेत्र में डा० गोविन्द नाथ राजगुरु ने 'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य' पर शोध कर हिन्दी गद्य के कितने ही अज्ञात लेखकों का परिचय हिन्दी जगत को दिया।

पंजाब के खड़ी बोली लेखकों की परम्परा में तारा सिंह नरोत्तम का नाम विशेष उल्लेखनीय है। तारा सिंह नरोत्तम तथा उनके सम्पूर्ण साहित्य का आज तक उचित मूल्यांकन नहीं हुआ। लगभग चार हजार पृष्ठों के इस यशस्वी लेखक के कृतित्व का मूल्यांकन एवं विवेचन आज आवश्यक जान पड़ता है।

नरोत्तम ने वाणी व्याख्या तथा कोश के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण काम किया, उसका मूल्य और महत्व हिंदी के इतिहास में अकल्पनीय है। नरोत्तम को पंजाब के अन्य लेखकों के लेखन का विशिष्ट सन्दर्भ देने का प्रयास इस प्रबन्ध में किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध छै अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय पंजाब में साहित्य सर्जन, स्वरूप दिशा और विकास से संबंधित है। इस अध्याय के तीन खण्ड किए गए हैं। जिसमें पंजाब की साहित्यिक परम्पराएं, मानसहेरा, शहबाजगढ़ी के शिलालेख, अद्दहमाण, गोरखनाथ, फरीद, गुरुघर सम्बन्धी साहित्य से लेकर १६वीं शती तक की साहित्यिक परम्पराओं का उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'निर्मल' वर्ग के उद्भव और विकास से सम्बन्धित है। निर्मल वर्ग के सिद्धान्त, धार्मिक संगठन, मुख्य-मुख्य केन्द्र, पठन-पाठन की परम्परा तथा इस वर्ग द्वारा साहित्य सर्जन की परम्परा को लिया गया है।

तृतीय अध्याय में पंडित तारा सिंह नरोत्तम की गुरु परम्परा पर विचार किया गया है। इनके गुरु गुलाब सिंह तथा उनके साहित्य सर्जन पर प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। पंडित तारा सिंघ नरोत्तम के गुरु भाई साधु सिंघ तथा अन्य उत्तरवर्ती लेखकों की रचनाओं का भी परिचय दिया गया है।

चतुर्थ तथा पंचम अध्याय में तारा सिंघ नरोत्तम की कृतियों का विशेष अध्ययन किया गया है। चतुर्थ अध्याय को आगे तीन खण्डों में विभक्त किया गया है। जिसमें मुख्यत: यह सिद्ध किया गया है कि नरोत्तम

हिन्दी में आधुनिक शैली के आदि कोशकार है। इस दृष्टि से इनकी कोश कारिता पर विचार किया गया है।

अन्तिम अध्याय में नरोत्तम की भाषा पर विचार किया गया है। नरोत्तम की भाषा के दो स्तर दिखाई देते हैं। एक तो उनकी अपनी भाषा तथा दूसरी मुद्रकों या प्रकाशकों की भाषा। इस स्तर भेद के कारण उनकी भाषा में वर्तनी भेद आदि वैषम्य स्थान-स्थान पर मिलता है।

उपसंहार में नरोत्तम के साहित्य का मूल्यांकन किया गया है।

नरोत्तम का ज्ञान संभार 'विश्वकोश' के स्वर का है। विविध विषयों पर उनका अधिकार सामान्य विद्यार्थी की पकड़ से बाहर है। दर्शन से लेकर रस शास्त्र तक उनकी अबाध गति के साथ कदम से कदम मिलाते चलना कठिन परंतु अत्यंत रोचक अनुभव है।

इस अध्ययन के प्रारंभ में लिपि सम्बन्धी समस्या मेरी सबसे विकट समस्या है। लिपि के स्तर पर खड़ी बोली का लेखन गुरुमुखी लिपि में कई बार अपाठ्य या दुष्पाठ्य हो जाता है।

सारल्य और गांभीर्य प्रतिभा सम्पन्न श्रद्धेय गुरुदेव डा० गोविन्दनाथ राजगुरु के निर्देशन में यह कार्य सम्पन्न किया है। उनके अनन्त उपकार एवं अनुग्रह से उऋण होना असम्भव है।

डा० इन्द्रनाथ मदान, हिन्दी विभागाध्यक्ष के प्रति श्रद्धायुक्त हूं जिन्होंने मनोनुकूल विषय चयन की अनुमति प्रदान की।

डा० हरिभजन सिंह, अध्यक्ष, पंजाबी विभाग, देहली विश्वविद्यालय, ने पर्याप्त समय को देकर मुझे समुचित दिशा निर्देश दिए। उनके प्रति

मैं आभारी हूं।

डा० सुरिन्द्र सिंह कोहली, अध्यक्ष, पंजाबी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय ने मेरे इस शोध कार्य के लिए अपने हृदय तथा अपने पुस्तकालय के कपाट बड़ी ही उदारता से खोल दिए। उनके प्रति मैं आभार स्वीकार करती हूं।

सिक्ख रैफरैन्स लाइब्रेरी अमृतसर, सिक्ख हिस्ट्री रिसर्च डिपार्टमेंट लाइब्रेरी (खालसा कालेज) अमृतसर, सैंट्रल पब्लिक लाइब्रेरी पटियाला, नैशनल आर्काइव्स लाइब्रेरी, पटियाला, पंजाब विश्वविद्यालय लाइब्रेरी चण्डीगढ़ आदि पुस्तकालयों के तथा विभिन्न कर्मचारियों के प्रति आभार प्रदर्शित करना मेरा पवित्र कर्तव्य है।

लिपिन्तर करते समय तथा गुरुवाणी को उद्धृत करने तथा टंकन कार्य में अशुद्धियों को दूर करने का भरसक प्रयास किया है फिर भी अशुद्धियों का रह जाना अनिवार्य ही है। इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूं।

अन्तत: शोध में त्रुटियों एवं न्यूनताओं का रहना स्वाभाविक ही है। उसके लिए मैं विद्वानों से क्षमा चाहती हूं। इस विश्वास के साथ यह शोध प्रबन्ध विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

हरजीत गरेवाल

विषय सूची

अध्याय- प्रथम

खण्ड एक

पंजाब की साहित्यिक परम्पराएं (६वीं शती ई पूर्व से १६ वीं शती तक) मानसहेरा, शहबाजगढ़ी के शिलालेख (प्रियदर्शी अशोक), अद्दहमाण: सनेहरासउ, नाथ सम्प्रदाय का साहित्य, फरीद सलोक, गुरुघर: साहित्य, भाई गुरुदास, मीणा शाखा: मिहिरवानु 1-20

खण्ड- दो

पंजाब में साहित्य सृजन के केन्द्र (सूफी, वैष्णव, सेवापंथी डेरे) शिक्षा और अध्ययन की लोकप्रियता, पाठ्य क्रम और पुस्तकें, हस्तलिखित ग्रंथों की विशाल परम्परा, साहित्य: विविध विषय- धार्मिक, लौकिक साहित्य, काव्य शास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद तथा ज्योतिष। प्रतिपाद्य: भाषा। 21-41

खण्ड - तीन

पंजाब में प्रचलित लिपियां, ब्राह्मी शारदा, टाकरी, लंडे, गुरुमुखी, नागरी, फारसी, लिपि सम्बन्धी समस्या समाधान। ४२-५५

अध्याय- द्वितीय

निर्मल सम्प्रदाय का उद्भव और विकास ५६-८४

(क)- आदि गुरु नानक: शिष्य परम्परा

(ख)- श्री चन्द और उदासी सम्प्रदाय

(ग)- निरंजनी सम्प्रदाय

(घ)- सुथरेशाही सम्प्रदाय

(ङ)- रामराई सम्प्रदाय

(च)- सेवापंथी सम्प्रदाय

(छ)- निरंकारी सम्प्रदाय

(ज)- नामधारी सम्प्रदाय

(झ)- निहंग

( )- निर्मल सम्प्रदाय

अध्याय- तृतीय

तारा सिंह नरोत्तम व्यक्तित्व और कृतित्व ८५-११८

(गुरु परंपरा के विशिष्ट सन्दर्भ में)

१- गुरु परम्परा- मान सिंह, गुलाब सिंह, नरोत्तम

२- गुलाब सिंह: उनका साहित्य

३- तारा सिंह नरोत्तम: व्यक्तित्व और कृतित्व

४- तारा सिंह नरोत्तम- उत्तरवर्ती साहित्यकार

५- निष्कर्ष

अध्याय- ~~चौथा~~ चतुर्थ

पंडित तारा सिंह नरोत्तम: कृतित्व ११९-३८६

(क)- गुरुमत निर्णय सागर

- पुस्तक परिचय

ख - भक्ति: पीठिका -

- भक्ति परिभाषा, भक्ति प्रकार, नवधा भक्ति

ग - भक्ति: ज्ञान - सामंजस्य

घ - भक्ति कर्म

ङ - भक्ति योग, कैवल्य प्राप्ति, भक्ति वैराग्य

च - भक्ति दर्शन

छ - भक्ति रस

ब - गुरू नानक : गुरू :अवतारवाद - विष्णु :

झ - चार क्रोड़ पत्र

खण्ड - दो

गुरू तीर्थ संग्रह १६०-२०४

क - तीर्थ स्थान

ख - तीर्थ स्वरूप

ग - नई व्याख्या

घ - विशद विवरण

ङ - यथार्थ परक दृष्टि-निक निष्कर्ष

खण्ड - तीन

गुरू गिरारथ कोश

- कोश परिभाषा, कोश महत्व, कोश कार, कोश का प्राचीनतम रूप, कोश रचना, तीन : प्राचीन, मध्य कालीन तथा आधुनिक : । २०५-२४६

- तारा सिंह नरोत्तम कोशकार, कृति परिचय नरोत्तम कोश : दृष्टिकोण, कोश रीति, शब्दार्थ विवेचन, कोशकारिता की कसौटी पर

अध्याय - पंचम २४७-३५६

क - बाणी व्याख्या की परम्परा, जन्म साखी, परमारथ तथा टीका कारों की परम्परा ।

ख - तारा सिंह टीका लक्ष्य, टीका प्रकार, टीका शैली,
टीका महत्व ।
ग - गुरू भाव दीपिका - कृति परिचय
घ - टीका सिरी राग - कृति परिचय
ङ - भक्तों की बाणी - कृति परिचय
च - निष्कर्ष

अध्याय - षष्ठ ३६०-३८६

भाषा विवेचन

१- पंजाब में खड़ी बोली
२- पंजाब में खड़ी बोली के लेखक
३- पंजाब के साहित्य में उपलब्ध खड़ी बोली की प्रमुख विशेषताएं
४- तारा सिंघ नरोत्तम और उनकी भाषा

सहायक पुस्तक सूची

अध्याय - प्रथम

खण्ड- एक

पंजाब की साहित्यिक परम्पराएं (६वीं शती ई० पूर्व से १९वीं शती तक) मानसहैरा, शहबाजगढ़ी के शिलालेख (प्रियदर्शी अशोक), अद्दहमाण, सनेहरासइ, नाथ सम्प्रदाय का साहित्य, फरीद सलोक, गुरुघर: साहित्य, भाई गुरुदास, मीणाशाखा, मिहिरवानु

पंजाब में साहित्यिक परम्पराएँ

(क)- मानसहेरा और शहबाज़गढ़ी के शिलालेख

पंजाब मात्र पाँच नदियों का देश ही नहीं है। बल्कि पंजाब की भूमि अनेक संस्कृतियों, जातियों तथा धर्मों की भी लीला भूमि रही है। पंजाब के अरक्षित खुले द्वार से विदेशी आततायी अपनी चमचमाती तलवारें लिए, अपने घोड़ों की टापों से भारत की सभ्यता और संस्कृति को कुचलने और रौंदने की दानवी आकांक्षा लिए हुए पंजाब को अपना 'केन्द्र' बनाकर ही आगे बढ़े थे। इस खूनी नाटक की पृष्ठभूमि में ग्रीक-शक-सीथियन-हूण और न जाने कितनी जातियों तथा 'नृवंशों' ने पंजाब की भूमि को आचार और विचार की दृष्टि से कितना सम्पन्न बनाया, इसका लेखा-जोखा करना इतिहास के सामान्य विद्यार्थी के वश में नहीं है।

पंजाब के इस विविधता पूर्ण सांस्कृतिक जीवन की एक विश्वसनीय सूचना इस प्रान्त की पुरानी सीमाओं के आस-पास मिले शिलालेखों, बुद्ध की अनेक मूर्तियों तथा 'धम्मपद'[1] (खरोष्ठी लिपि) जैसी पुस्तकों से मिलती है। किसी देश की संस्कृति का इतिहास उस देश की भूमि पर उपलब्ध खण्डहर, पुस्तकों, शिलालेखों के माध्यम से ही पुनर्निर्मित किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति की प्रामाणिक रूपरेखा इन्हीं प्रशस्तियों तथा लेखों की सहायता से सामने आई।

भारतीय शिलालेखों की परम्परा अशोक के शिलालेखों से जुड़ती है। अशोक के दो शिलालेखों का सम्बन्ध पंजाब के साहित्य और संस्कृति से भी है। अशोक के शिलालेख पश्चिम में, ज़िला पेशावर और हज़ारा के मानसहेरा और शहबाज़गढ़ी में मिले हैं। इन अभिलेखों के साथ ही पंजाब के साहित्य का सूत्रपात होता है।

१- देखिए गांधारी 'धम्मपद'- संपादक- Brough -खरोष्ठी लिपि में उपलब्ध धम्मपद की यह प्रति सबसे प्राचीन प्रति बताई जाती है।

ये शिलालेख जहाँ अशोक की धार्मिक सहिष्णुता, दान-दया, आचरण की पवित्रता के अमर चिन्ह है, और वहाँ ये अभिलेख उस समय पश्चिमोत्तर में प्रचलित वर्णमाला या लेखन पद्धति तथा पंजाब की तत्कालीन भाषा पर बहुत प्रकाश डालते हैं अर्थात् तीसरी शताब्दी ई० पूर्व में उत्तरी भारत की भाषा और लिपि के अध्ययन के दृष्टिकोण से इनका बड़ा महत्व है।

मानसहेरा और शहबाज़गढ़ी के अभिलेखों के अतिरिक्त अशोक के सभी अभिलेखों की लिपि ब्राह्मी है। ब्राह्मी लिपि को देवनागरी लिपि का मूल कहा जाता है जो बाईं ओर से ले दाहिनी ओर को जाती है। मानसहेरा और शहबाज़गढ़ी के १४ लेखों की लिपि खरोष्ठी है। यह दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाती है। अर्थात् ईरानी लिपि के समान है। ब्राह्मी के स्थान पर खरोष्ठी लिपि का अशोक कालीन यह प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि पंजाब विशेषत: इसकी उत्तरी पश्चिमी सीमाओं पर विदेशी प्रभाव बहुत गहरा था। पाली को खरोष्ठी लिपि में लिखने का और कोई कारण नहीं हो सकता।

इन अभिलेखों से भाषा विषयक यह सामग्री मिलती है:-

ध्वनि अंकन:- पंजाब में आज दीर्घ स्वरों का उच्चारण लघु और लघुतर रुप में होता है। इस प्रवृत्ति का प्राचीनतम निर्देशन अशोक कालीन अभिलेख 'मानसहेरा' और शहबाज़गढ़ी में मिलता है। जैसे:-

१- प्राण > प्रण[१]
२- राजा > रज
३- समाज > समज
४- मूलानि > मूलनि
५- सहास्रानि > सह्स्रनि
६- पाखण्ड > पांड

१- तृतीय अभिलेख- अशोक के अभिलेख- पृ० ६३, डा० राजबली-पाण्डेय

७- आकारेण > अकरेन
८- लिखापित > लिखपित [१]

इस रुप में मिलते हैं।

पंजाबी में 'बाज़ार' को 'बज़ार', 'जापान' को 'जपान', 'आनंद' को 'अनंद', 'पाताल' को 'पताल' आदि रुप उपलब्ध हैं।

औ: औ:- ध्वनि अंकन का यह रुप भी शाहबाज़गढ़ी के अभिलेखों में मिलता है:-

एहैलौकिकी > इअलौकिक, पारलौकिकी > पारलौकिक

ई: इ:- पंजाबी भाषा का यह ध्वनि प्रवृत्ति रुप भी इन अभिलेखों में विद्यमान है, जैसे-- तीव्र > तिव्रे।

र:- शाहबाज़गढ़ी के अभिलेख में 'र' का रुप इस प्रकार प्रयुक्त है:-

सर्वत्र > सव्रत्र, सव्रत ; 'अर्थाय > अथ्रये; 'अर्थ > अथ्र'
'कर्म > क्रम ; सर्व > स्रव ; 'धर्म > ध्रम'; 'सर्वेषु > सव्रेषु, ;
'दर्शन > द्रशने [२]। रेफ का इस प्रकार का प्रयोग पंजाब की उत्तरकालीन पांडुलिपियों में मिलता है। 'मिहरिवानु की 'सिंघासन बतीसी' के गद्य में रेफ का यह रुप मिलता है। 'उप्र, सुंद्र, प्र (पर) अ्र (अर) रेफ प्रयोग बहुलता से मिलते हैं।

'पुण्यं > पुण' (पुन्न); 'अष्ट > अठ'। प्रभृति शब्दों में ध्वनि-गुच्छ पंजाबी की प्रकृति के अनुकूल है और पंजाबी भाषा 'दा', 'श', का, रुप भी [३] शाहबाज़गढ़ी में उसी प्रकार है जैसे 'क्षुद्रकेन > खुद्रकेन।'

न: ण :- इन अभिलेखों में 'न' तथा 'ण' दोनों ही ध्वनियां मिलती हैं। जैसे प्रण', 'अकरेन' आदि। यह प्रवृत्ति आज भी पंजाबी भाषा में पाई जाती है।

१- विशेष विवरण के लिए देखें- अशोक के अभिलेख- डा० राजबली पाण्डेय, प्रथम अभिलेख, पृ० ६१-७४
२- वही, पंचम अभिलेख
३- वही, पृ० ७१- तुलना 'खुददक' पाली। खुदं: फारसी पूर्वी ~~बोलियों~~ बोलियों में 'दा' का 'क' रुप मिलता है।

निष्कर्ष यह है कि ये शिलालेख पंजाब के साहित्य की परंपरा को समझाने में बड़े सहायक हैं। आज पंजाबी के इतिहासकारों ने पंजाबी साहित्य की जो रुपरेखा हमारे सामने प्रस्तुत की है, ये शिलालेख उस रुपरेखा को झुठला देते हैं। पंजाब के इतिहास-कारों को इन शिलालेखों को देखकर अपनी धारणा बदलनी पड़ेगी और पंजाबी साहित्य का आरम्भ शेख फरीद (१२वीं शती) से न मानकर तीसरी शताब्दी ई० पूर्व से मानना पड़ेगा। सम्राट् अशोक के ये अभिलेख पंजाबी भाषा विशेषत: पंजाबी ध्वनियों के इतिहासिक विकास को समझने में पर्याप्त सहायक सिद्ध होते हैं।

(ख)- अद्दहमाण

इन शिलालेखों के बाद पंजाब के एक सरस कवि 'अद्दहमाण' का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। अब्दुल रहमान का अपभ्रंश रुप अद्दहमाण है। उत्तरकालीन सरस कृति 'सन्देश रासक' के रचियता अद्दहमाण[१] है। सन्देश रासक के प्रथम प्रक्रम में ही कवि ने अपना परिचय दिया है।

कवि का स्थान म्लेच्छ देश है जो पश्चिम और पूर्व दोनों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसी प्रदेश में 'मीरसेण' आरद्द का पुत्र 'अद्दहमाण' उत्पन्न हुआ,[२] जो प्राकृत काव्य रचना में अत्यन्त निपुण था। जिसने संदेश रासक की रचना की। अपना स्थान उसने स्तंभ तीर्थ दिया है। स्तंभ तीर्थ मुलतान का पुराना नाम है।

मुनि जिन विजय के अनुसार[३] इस रचना का समय १२वीं शती के उत्तरार्ध से लेकर १३वीं शती के पूर्वार्ध तक है। आचार्य हजारी प्रसाद[४] द्विवेदी ने भी 'हिन्दी साहित्य के आदिकाल' में इसी बात का समर्थन किया है। प्राय: सभी विद्वानों

१- पच्चाएसि पूहवो पुव्व पसिद्धो य मिच्छदेसोत्थि
तह विसए संभूओ आरद्दो मीरसेणस्स। ३ ।
तह तणओ कुलकमलो पाइय कव्वेसु गीय विसयेसु
अद्दहमाण पसिद्धो सनेह रासयं रइयं। ४ । सन्देश रासक, पृ० ३

२- अपभ्रंश साहित्य- हरिवंश कोछड़- पृ० २४७

३- सन्देश रासक- हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ० ख

४- हिन्दी साहित्य का आदिकाल- हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ४०

ने 'सनेह रासउ' की रचना १२वीं शती के आसपास की मान ली है। कवि इसे 'सनेह रासउ' कहता है। यही नाम अपभ्रंश की प्रकृति के अनुरुप है। पूरी रचना तीन 'प्रक्रमों' में विभक्त है। लेखक ने 'मेघदूत' जैसे संदेश काव्यों से प्रेरणा लेकर इस काव्य की भूमिका बांधी है। काव्य का विषय विप्रलंभ शृंगार है। विरहिणी नायिका का चित्र पारंपरिक शैली में प्रस्तुत किया गया है तथा सभी ऋतुओं में नायिका को विरहाग्नि में जलते हुए दिखाया है।

पंजाब की साहित्यिक परम्परा में 'सनेह रासउ' अपना विशेष स्थान रखती है। स्पष्ट है पंजाब में विक्रम की १२वीं शती से ही साहित्य-सृजन आरम्भ हो चुका था जैसे:-

'पाणी[१] तणइ विओइ कादमि ही फाटइ[२] हियउ
जइ[३] इम माणसु होइ नेहु त सांचउ जाणियइ।'[४-५]

अथवा-

'तुह विरह पहरु संचूरि आइ विहडंति तं न अंगाइ
तं अज्ज- कल्ल[६] संघडण ओसहे (आसहे?) णाह तग्गंति।'[७]

और पंजाब प्रदेश में अपभ्रंश रचनाओं का सूत्रपात हो चुका था।

दुर्भाग्य से अशोक के शिलालेखों से लेकर 'सनेह रासउ' तक अन्य कोई साहित्यिक रचना पंजाब में आज तक उपलब्ध नहीं हुई। दूसरा कारण पंजाब की राजनीति का

१- पानीय > पाणी (पंजाबी)

२- पाड़ > फाटइ, 'पाटना' पंजाबी

३- यदि > जइ > जे 'जे' पंजाबी; इम > इवें (पं.)

४- जाणना > जाणियइ

५- सन्देश रासक- पृ० १८

६- अज्ज > अद्य, कल्ल > कल्य

७- सन्देश रासक- पृ० १६

निरंतर विक्षुब्ध रहता था। पंजाब की अमूल्य साहित्यिक कृतियां इन शतियों में नष्ट हो गईं या जानबूझ कर नष्ट कर दी गईं। पंजाब की सांस्कृतिक और साहित्यिक अपार निधि विनाशमयी रासलीला के कारण भस्म हो गई और 'सनेह रासउ' जैसी कृतियां भी पंजाब से बाहर जैन भंडारों में ही सुरक्षित रह सकीं।

(ग)- नाथ सम्प्रदाय का साहित्य

'नाथ सम्प्रदाय' की साधना पद्धति तथा उसके साहित्य ने हमारे युग के अनेक विद्वानों को आकृष्ट किया। इस युग के कितने ही विद्वानों ने अंग्रेज़ी, हिन्दी, संस्कृत, बंगला और मराठी आदि भाषाओं में नव नाथ संप्रदाय सम्बन्धी शोध साहित्य प्रस्तुत किया है।[१]

नाथ सम्प्रदाय के उन्नायक गोरखनाथ का प्रभाव भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण है। पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल 'गोरखबानी' की भूमिका में लिखते हैं 'गोरखनाथ विक्रम की गयारहवीं शती में हुए।'[२]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'विक्रम संवत की दसवीं शताब्दी में भारतवर्ष के महान गुरु गोरखनाथ का आविर्भाव हुआ।'[३] रांगेय राघव ने प्रस्तुत सामग्री को आधार मानकर गोरखनाथ का समय ६०० ई० और ११०० ई० के मध्यकाल में माना है।[४]

१- अंग्रेज़ी में-

१- डा० मोहन सिंह दीवाना ने 'गोरखनाथ एण्ड हिज मिस्टीसिज़म।'

२- ब्रिग्स हस्बैंड ने – 'गोरखनाथ एण्ड कनफटा योगीज़।'

हिन्दी में-

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'नाथ संप्रदाय।'

२- डा० रांगेय राघव ने 'गोरखनाथ और उनका युग।'

~~हम~~ इसी प्रकार ~~हमारी~~ अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी उच्चकोटि की सामग्री नाथ सम्प्रदाय के बारे में मिलती है।

२- गोरखबानी- पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल- पृ० २०

३- नाथ सम्प्रदाय- हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ०९६

४- गोरखनाथ और उनका युग- डा० रांगेय राघव, पृ० २६

गोरखनाथ ने योग मार्ग को एक व्यवस्थित रुप देकर नाथ सम्प्रदाय का प्रचार देश के पश्चिम भागों में राजपूताने और पंजाब में किया। इन्होंने योग मार्ग में अन्य वामाचारों का बहिष्कार कर अद्वैत और योग का समन्वय किया।

पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के अनुसार नाथ-योगियों की बानियां[1] हमारे साहित्यिक और सांस्कृतिक विकास की लड़ी में एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

इन्होंने गोरखनाथ की ४० रचनाओं का संग्रह 'गोरख बानी' में किया है। इन पदों का विषय योग, ज्ञान, वैराग्य, आत्म ज्ञान, सन्तोष, रस सिद्धि, आत्मतत्व आदि पर है। गोरख बानी में विशिष्ट शब्दावली देखने को मिलती है। गुरुमुख,[2] सतगुरु,[3] अनहद,[4] हठयोग,[5] सबद ज्ञान[6] आदि। गोरख की इस विचार धारा का प्रभाव सन्त मत की भावनाओं, भाषा, विषय वस्तु पर पड़ा।

नाथ सम्प्रदाय द्वारा भारतीय भाषाओं का साहित्य किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ। प्राय ११वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी तक नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव हमारी भाषाओं के साहित्य पर पड़ा। तथा उत्तरवर्ती साहित्य में भाषा

१- गोरख बानी - पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल - भूमिका

२- अठसठि तीरथ संमदि सभावै यूं जोगी कौं गुरुमुषि जरना।पृ० ५-१६।गोरखबानी

३- 'सतगुरु सबद कह्या'-- वही

४- 'गगन मंडल में अनहद बाजे टपद पड़े तो सतगुर लाजे।३२- पृ० १२, वही।

५- 'गगन मंडल में सुनि द्वार। बिजली चमकै घोर अंधार।
ता महि न्यंद्रा आवै बाइ। पंच तत में रहै समाइ।। ७६ वही, पृ० ६०

६- 'अह निसि मन लै उनमन रहै, गम की छांड़ि अगम की कहै।
छाड़ै आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हू ताका दास।' १६- वही, पृ० ६७

के क्षेत्र में नाथ सम्प्रदाय की महत्वपूर्ण देने हैं। इनकी भाषा में पंजाबी रुप, फारसी, राजस्थानी, मराठी, खड़ी बोली आदि रुप देखने को मिलते हैं जैसे पंजाबी रुप देखें:-

सबूद हमारा षश्तर षांडा (जि॰ च)
रह्णी हमारी सांची
लैषै लिषी न कागद माड़ी[१]
सो पत्री हम बांची। २६४

तथा-

केता[२] आवै केता जाइ केता मागै केता खाइ
केता रुष विश्व तलि रहे, गोरष अनमैं कासौं कहैं-- ५८।[३]

शुक्ल जी के अनुसार ब्रजभाषा गद्य में गोरखपंथी साहित्य की सर्वप्रथम रचना के चिन्ह प्राप्त होते हैं।[४] गोरख पंथ का साहित्य पद्य और गद्य दोनों रुप में उपलब्ध है।

संभवत: पंजाब नाथ सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र था। यहीं से यह सम्प्रदाय अफगानिस्तान तक पहुंचा।[५] राजस्थान गुजरात से महाराष्ट्र तक नाथ संप्रदाय का विस्तार हुआ।[६] पूर्व में उत्तरप्रदेश (गोरखपुर) बिहार से बंगाल तथा 'गोरख' का प्रभाव पाया[७] जा सकता है तथा बंगाल आसाम में नाथ सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव रहा है।

१- गोरखबानी- डा॰ पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल- पृ॰ ८१
२- कियत् > केता। तुलना केत्तिआ- प्राकृत।
३- गोरख बानी- पृ॰ २१
४- हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल- पृ॰ ४०३
५- हाजी पीर 'रतननाथ' की पूजा पेशावर से लेकर काबुल तक की जाती है।
६- राजस्थान में 'गोरख' एक देवता के रुप में माने जाते हैं। राजपूताने की कितनी ही लोक कथाओं में 'गोरखनाथ' मिलते हैं। 'गूंगा पीर' की लोक कथा इसका उदाहरण है। मराठी में 'ज्ञानेश्वरी' के लेखक नामदेव अपने को गोरखनाथ का शिष्य कहते हैं।
७- 'गोपीचंद मैनामती' की कथा बंगाल की एक लोकप्रिय कथा है। गोरख नाथ इसके प्रमुख पात्र हैं।

(घ)- फरीद

पंजाब के सूफी सन्तों और कवियों में फरीद का नाम इतिहास की दृष्टि से तो सर्वोपरि है ही। फरीद के व्यक्तित्व उनकी साधना-तपस्या तथा सबसे बढ़कर उनकी मार्मिक कविता के कारण पंजाब का सूफी साहित्य अत्यन्त महिमामय बन पड़ा है।

फरीद के जीवन वृत्त के बारे में विद्वानों में मतभेद है। वस्तुत: फरीद के नाम के दो सूफी संतों का उल्लेख पंजाब में मिलता है। एक प्रथम फरीद यानि फरीद शकरगंज (१२वीं शती) दूसरे द्वितीय फरीद यानि फरीक सानी(शेख इब्राहीम-गुरुनानक समकालीन) हुए। आदि ग्रंथ में जो 'सलोक फरीद के नाम से संकलित है क्या वे 'सलोक' फरीद शकरगंज के हैं या फरीद सानी के? इस बारे में बड़ा वाद-विवाद आज भी चल रहा है।

प्रो० मैकालिफ[१] भाई काह्न सिंह[२], भाई वीर सिंह, प्रोफेसर तेजा सिंह[३] आदि विद्वानों की यह विचारधारा है कि गुरु ग्रंथ साहिब में संग्रहित फरीद 'सलोक फरीद द्वितीय अर्थात् शेख इब्राहीम के हैं। परन्तु डा० मोहन सिंह, प्रीतम सिंह के अनुसार यह 'सलोक' फरीद शकरगंज के हैं। इनके विचारानुसार फरीद ने दूसरे सूफी सन्तों के समान पंजाबी भाषा को अपने प्रचार का साधन बनाया तथा आदिग्रंथ में दर्ज होने से पहले संभवत: अन्य श्रद्धालुओं के रचित सलोक मिल गए हों।[४]

परन्तु डा० गोपाल सिंह दर्दी इस मत से सहमत नहीं हैं, उनके अनुसार गुरु ग्रंथ साहिब में शेख फरीद के 'सलोक' शेख इब्राहीम के हैं। तथा भाषा का रुप १२वीं शताब्दी में इतना नहीं बांधा जा सकता जितना फरीद की भाषा १६वीं शताब्दी की भाषा से मिलती है। इसकी तुलना जन्मसाखी और गुरुग्रंथ साहिब

१- Sikh Religion - vol. 1 (Macalife) Page 357
२- गुरु शबद रत्नाकर महान कोश- भाई कान्ह सिंह, पृ० २४-२६
३- चोणवीं पंजाबी कविता- तेजा सिंह, पृ० २०
४- पंजाबी कविधारा- प्रीतम सिंह- पृ० २

की भाषा से की जा सकती है।[१]

निष्कर्ष यह निकलता है कि आदि ग्रंथ में संकलित 'सलोक' शेख फरीद सानी के हैं जो गुरु नानक देव के समकालीन हुए। इनकी बोली का रुप १२वीं शती का न होकर १६वीं शती के आस-पास का है। सबद-सलोकों में इतनी ठेठ बोलीका प्रयोग तभी सम्भव है। अत: इन 'सलोकों' की भाषा १२वीं शती की नहीं जान पड़ती।

पंजाब में मुसलमानों के आने के साथ-साथ मुलतान, कसूर तथा पाकपटन में सूफी फकीरों ने अपने डेरे बनाए।

फरीद के 'सलोक' काव्य माधुर्य से भरपूर हैं। इन 'सलोकों' में संसार का नाशवान होना, जीवन की अस्थिरता, अत्याचार की व्यापकता, मौत की भयानकता तथा सामान्य जीवन सम्बन्धी घटनाओं को बड़े स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है।

दाम्पत्य भाव की बहुत सुन्दर योजना फरीद के 'सलोकु' में मिलती हैं जैसे--

जिंद बहुटी मरन वर लै जासी परणाइ
आपण हथी जोल कै, कै गल लगै धाइ। फरीद सलोक।

यहां पर मृत्यु-'वर', 'जीवन- वधू' जैसा सुन्दर रुपक बांध कर दाम्पत्य भाव के माध्यम से 'मरण' को 'वरण' करने की बात सूफी अंदाज़ में कही है।

फरीद का विशेष स्थान न केवल पंजाब के प्रथम सूफी कवि होने के कारण है अपितु पंजाबी साहित्यक तथा जीवन को भी उन्होंने बड़ी गम्भीरता से प्रभावित किया। उनकी वाणी को 'आदिग्रंथ' में संकलित कर पंचम गुरु ने मानो उन्हें एक भाव भीनी श्रद्धांजलि दी है।

१- पंजाबी सहित दे मुढले सोमें- गोपाल सिंह, पृ० ३६

(ङ)- गुरुघर

सतिगुरु नानक प्रगटिआ
मिटी धुंध जग चानण होया।' --- गुरुदास

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के अनुसार 'मध्य युग के जिन महात्माओं ने भारतीय धर्म साधना और समाज व्यवस्था को गम्भीर रुप से प्रभावित किया है, उनमें गुरु नानक देव का स्थान प्रमुख है। सिक्ख परम्परा में गुरु नानक देव के बाद ६ गुरु हुए। इन दसों गुरुओं ने न केवल स्वयं भक्ति भाव के भजन लिखे हैं बल्कि सम्प्रदाय के अन्य भक्तों को भी इस प्रकार की साहित्य सेवा के लिए प्रोत्साहित किया है। इस प्रकार आत्मबल और चारित्र्य शुद्धि की प्रेरणा[१] देने वाले साहित्य की सर्जना करके गुरुओं ने हिन्दी को अमूल्य निधि दी है।

गुरु नानक से पूर्व पंजाब का पूरा जीवन दिशाहीन था। मुसलमानों के प्रभाव के कारण लोगों के धार्मिक विश्वास डगमगा रहे थे। नैतिकता के आदर्श धूलिसात् हो रहे थे। धर्म-परिवर्तन की हृदय-हीनता के कारण स्थिति विकट बन चुकी थी। आलोच्य युग में एक ओर भारत की आत्मा गहन आशंका से अभिभूत थी दूसरी ओर वह किसी ऐसे धार्मिक नेता की तलाश में थी जो उनको खुल कर सांस लेने के लिए प्रेरित करता। ऐसे समय में समत १५२६ में समाज में प्रचलित बाह्याडम्बरों पाखण्डों की तीव्र भर्त्सना करने के लिए गुरु नानक का जन्म हुआ।

गुरु नानक ने अपने सम्पूर्ण दार्शनिक चिन्तन को अपनी वाणी में सूत्र के रुप में रख दिया 'एक ओंकार सतिनामु करता पुरख निरभउ निरवैर अकाल मूरति अजूनी सै भं गुरु प्रसादि- जपुजी। गुरु नानक ने इसमें निर्गुण रुप परमात्मा की प्रस्थापना 'अकाल पुरुष' के नाम से की है।

गुरु नानक की प्रमुख रचनाएं ये हैं:-

१- हिन्दी साहित्य उसका उद्भव और विकास- हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ६६

(१)- जपुजी साहिब; (२)- सोहिला; (३)- वार; (४)- बारामाह
(५)- गोसठि; (६)- पट्टी; (७)- अष्टपदी; (८)- पदे ;
(९)- छंद; (१०)-थिती; (११)-अलाहणीआं
(१२)-सलोक आदि।

गुरु नानक देव जी ने गुरु ग्रंथ साहिब के ३१ रागों में से १९ रागों में अपनी बाणी की रचा।

गुरु नानक ने नाम, स्मरण, दान, स्नान का महत्व साधना के क्षेत्र में सर्वोपरि स्थापित किया। गुरु नानक वाणी का उद्धरण देखें:-

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु,
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु,
जिव तिसु भावै तिवै चलाई जिव होवै फुरमाणु,
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु,
आदेसु तिसै आदेसु। आदि अनीलु अनादि अनाहति।
जुगु जुगु एको वेसु। ३० - जपुजी।

अथवा-

मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जडाउ
कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ।।१।।
हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ।
मैं आपणा गुरु पूछि देखिआ अवर नाही थाउ।। रहाउ।। आदिग्रंथ-पृ० १४

गुरु नानक का महान् व्यक्तित्व उनके भक्त और सन्त रुप में मिलता है। इनकी सम्पूर्ण वाणी में भक्ति ही एक मात्र साधन बताई गई है। भक्ति ही इनका चरम प्रतिपाद्य था। इनकी वाणी में भक्ति, ज्ञान तथा कर्म का सामंजस्य अद्वैत परक दृष्टिकोण से हुआ है। एक परमात्मा की स्तुति कर भक्ति को सर्वोपरि स्थान दिया है।

गुरु नानक वाणी में साहित्य संगीत तथा कला के विभिन्न गुणों का अद्भुत सामंजस्य हुआ है।

अन्त में हम इतना ही कह सकते हैं कि गुरु नानक देव जी ने जहां पंजाबी को साहित्य के पद पर प्रतिष्ठित किया, वहां खड़ी बोली को भी अपनी कविता का माध्यम बनाया। तथा दार्शनिक विचारों से भरी हुई इनकी वाणी अनुभवी रहस्य को प्रकट करती है।

गुरु अर्जुन देव (१५८१-१६०६ ई०):- गुरु नानक के पश्चात् गुरु नानक छाप के साथ वाणी के रचयिता गुरुओं ने भी गुरु नानक विचारधारा को अपनाए रखा। आदि ग्रंथ में संकलित गुरुओं की रचना में से पंचम गुरु अर्जुन देव की रचना संख्या तथा गुण दोनों ही दृष्टियों से सर्वोपरि है। इनके साहित्य को गुरु साहिब के साहित्य का शिखर कहा जा सकता है।

'आदि- ग्रंथ' का संकलन तथा आंतरिक विभाजन, गुरु अर्जुन देव का इतिहासिक कार्य था। इससे गुरुओं की वाणी सुरक्षित हो गई तथा अपने आप में अद्वितीय ग्रंथ बन गया।

गुरु अर्जुन देव की प्रमुख रचनाएं ये हैं:-

(१)- सुखमनी साहिब; (२)- जैतसरी की वार; (३)- गाथा;
(४)- सहसकृति; (५)- **राम** माफ का बारामाह;
(६)- वारें (७)- ६२०४ बन्द आदि।

यह रचनाएं आदि ग्रंथ में संकलित हैं और महल्ला ५ का नाम से पहचानी जाती हैं। इनकी वाणी का उद्धरण काव्यात्मकता से भरपूर अनुपम सौन्दर्य को लिए हुए है:-

प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै। प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै।
प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै। प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै।
प्रभ कै सिमरत कछु बिघनु न लागै। प्रभ कै सिमरन अनदिनु जागै।
प्रभ कै सिमरनि भउ न बिआपै। प्रभ कै सिमरनि दुखु न संतापै।
प्रभ का सिमरनु साध कै संगि। सरब निधान नानक हरि रंगि।।२।।सुखमनी साहिब

अथवा-

'इक घड़ी बिनसु मो कउ बहुत दिहारै।
मनु न रहै कैसे मिलउ पिआरै।
इकु पलु बिनस मो कउ कबहु न बिहावै।
दरसन की मति आस घनेरी कोई ऐसा संतु मो कउ पिरहि मिलावै।रहाउ।
चारि पहर चहु जुगह समाने। रैणि भई तब अंतु न जाने।
पंच दूत मिलि पिरहु विछोड़ी। भ्रमि-भ्रमि रोवै हाथ पछोड़ी।
जन नानक कउ हरि दरसु दिखाइआ। आतमु चीन्हि परम सुखु पाइआ।
आसा महला ५ इक तुके चउपदे।

गुरु अर्जुन देव की सबसे अधिक वाणी आदि ग्रंथ में संकलित है। इनकी वाणी दार्शनिक भावों से भरपूर गुरु परम्परा से प्राप्त विचारधारा को अपनाए हुए है।

गुरु तेग बहादुर (समत् १६७८- समत १७३२):- योग्य नेता, प्रतिभाशाली कवि और भावुक भक्त के रूप में गुरु तेग-बहादुर का व्यक्तित्व बहुत मोहक है। आत्म-मेघ ने उनके पूरे व्यक्तित्व को एक दिव्य-आत्मा से मंडित किया है। इनकी रचना प्रेम और वैराग्य से युक्त है। उदाहरणत:

साधो मन का मानु तिआगउ।
काम क्रोधु संगति दुरजन की ताते अहिनिस भागउ।
सुखु दुखु दोनों सम करि जाने अउरु मानु अपमाना।
हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना।
अस्तति निंदा दोऊ तिआगै खोजै पदु निरबाना।
जन नानक इहु खेलु कठिन है किनहू गुरमुखि जान। महला-१ आदिग्रंथ,पृ० २१६

अथवा-

साधो गोबिंद के गुन गावउ
मानस जनमु अमोलकु पाइओ बिरथा काहि गवावउ।
पतित पुनीत दीन बंधु हरि सरनि ताहि तुम आवउ।
गज को त्रासु मिटिओ जिह सिमरत तुम काहे बिसरावउ- महला ९

एक अन्य उदाहरण और देखें:-

काहे रे बन खोजन जाई
सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई। रहाउ।
पुहप मधि जिउ बासु बसत है मुकर माहि जैसे छाई।
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई।
बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुरि गिआनु बताई।
जन नानक बिनु आपा चीनहि है मिटै न भ्रम की काई।१।
आदि ग्रंथ, पृ० ६८४

दशम गुरु के शब्दों में--

'ठीकर फोर दिलीस सिर प्रभु पुर किया पयान
तेग बहादुर सी क्रिया करी न किनहू आन।' बचित्र नाटक

धर्म की रक्षा हेतु तेग बहादुर ने आत्म बलिदान देकर एक उदाहरण कायम किया।

दशमगुरु:- दशम गुरु का चरित्र और व्यक्तित्व भारतीय इतिहास में अद्वितीय कहा जा सकता है। 'संत और सिपाही जैसी दो विरोधी वृत्तियों का सामंजस्य आपके व्यक्तित्व में हुआ था। 'खालसा' की स्थापना कर उन्होंने भारतीय सन्तों की परम्परा में एक क्रांतिकारी विचारधारा का सूत्रपात किया। योग्य नेता सूझ बूझ वाले सेनापति तथा भावुक भक्त जैसे कितने ही तत्वों से इस महापुरुष के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था।

'दशम ग्रंथ' आपकी रचना बताई जाती है। परन्तु दशम ग्रन्थ के कर्तृत्व को लेकर विद्वानों में बहुत मत भेद है। दशम ग्रंथ में संकलित:-

१- अकाल उसतुत
२- विचित्र नाटक
३- जफरनामा जैसी इतिहासिक कृतियां संभवता दशम गुरु जी की ही रचनाएं हैं।

इसमें जापु, चंडी चरित्र, वार श्री भगौती जीकी, ज्ञान प्रबोध, चौबीस अवतार, शब्द हजारे आदि का उल्लेख भी दशम ग्रंथ में है। परन्तु इनकी प्रामाणिकता तथा अप्रामाणिकता के बारे में आज भी वाद-विवाद चल रहा है।

गुरु गोबिन्द सिंह के काव्य के सौंदर्य को देखें:-

'नमो सूरज सूरजे नमो चन्द्र चन्द्रे।
नमो राज राजे नमो इन्द्र इन्द्रे।
नमो अंधकारे नमो तेज तेजे।
नमो बृन्द बृन्दे नमो बीज बीजे। १८५।

नमो राजसं तामसं सांत रुपे।
नमो परम तत्त अतत्त सरुपे।
नमो जोग जोगे नमो गिआन गिआने।
नमो मन्त्र मन्त्रे नमो धिआन धिआने। १८६- जापु साहिब

काव्यत्व की दृष्टि से दशम ग्रंथ बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। प्रमुख रुप से इनकी समस्त वाणी 'अकालत्व' की विशिष्टता को लिए हुए है। दशमग्रंथ गुरुमत साहित्य की अमर निधि है और गुरुमत साहित्य की सम्पूर्णता को लिए हुए है।

स्पष्ट है कि गुरुघर में गुरु नानक के युग से ही प्राणवान साहित्य की रचना होती आ रही थी। भक्ति-ज्ञान-कर्म का एक विचित्र सामंजस्य गुरु घर के कवियों ने प्रस्तुत किया। गुरु अर्जुन और गुरु तेग बहादुर ने धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों की भी आहुति दे डाली। जीवन और विचार के स्तर पर इतनी ईमानदारी प्राय: नहीं मिलती।

(च)- **भाई गुरु दास** (१५५८ वि०):- गुरुदास गुरुघर के विशेषत: गुरु रामदास, पांचवें गुरु अर्जुन देव के निकट सम्बन्धी थे। आप गुरुवाणी के मर्मज्ञ तथा भावुक भक्त थे। गुरु घर की तन-मन से सेवा की।

आपने गुरु अर्जुन देव के समय में सबसे पहले आदि ग्रंथ को लिपिबद्ध किया। गुरु मत का सही रुप इनकी कविता में देखने को मिलता है। गुरु सिक्ख जीवन के लिए गुरुमत को समझना अति आवश्यक है। भाई गुरुदास की कविता के अध्ययन के बिना इसे समझ पाना कठिन है।

साहित्यकार के रुप में भी आपने पर्याप्त ख्याति अर्जित की। आप की प्रमुख रचनाएं ४० वारें और ५५६ कबित्त तथा सवैये हैं। कहा जाता है कि भाई गुरुदास ने अपनी रचनाओं में गुरुवाणी का मर्म प्रस्तुत किया है। उदाहरणत: गुरु सिक्खी मार्ग को कैसे अभिव्यक्त किया है। देखें:-

गुर सिषी बारीक है षंडे धार गली अति भीड़ी।
उथै टिकै न भुणमुणाहणा चल न सकै उपर कीड़ी।
वालहुं निकी आषीऐ तैल तिलहुं लै कोल्हू पीड़ी।
गुरमुष वंसी परमहंस षीर नीर निरनउ चुंजि बीड़ी।
सिला अलूणी चटणी माणक मोती चोग निवीड़ी।
गुरमुष मारग चलणा आस निरासी झीड़ उझीड़ी।
सहज सरोवर सच षंड साध संगति सच तषत हरीड़ी।
चह इकीह तप पउड़ीआं निरंकार गुर सबद सहीड़ी।
गूंगे दी मठिआईऐ अकथ कथा विसमाद बचीड़ी।
गुरमुष सुष फल सहज अलीड़ी-- ग्यारहवीं वार-

भाई गुरदास का कहना है कि सत्य-असत्य का विचार करने से भक्ति प्राप्त होती और भक्ति करने से ज्ञान मिलता है। एक अन्य उदाहरण देखें जिसमें गुरमुख के कर्तव्य का उल्लेख है:-

गुरमुष सचा षेल गुर उपदेशिआ।
साध संगत दा मेल सबद अवेसिआ।
गुर सिष नक नकेल मिटे अंदेसिआ।
नावण अंम्रित वेले वसन सुदेसिआ।
गुर जप रिदे सुहेल गुर परवेसिआ।
भाउ भगत भउ मेल साध सरेसिआ।

नित नित नवल नवेल गुरमुष मैसिआ।
पार दलाल दलैल सैव सहैसिआ। ६।

गुरदास अनुसार गुरु उपदेशों को धारण कर सिक्ख की दशा उच्च अवस्था को पहुंचती है।

गुरु घर की मर्यादाओं तथा 'रहत' से पूर्ण परिचित होने के कारण गुर दास की रचनाओं का महत्व गुर वाणी के समकक्ष है। गुरदास का जीवन और उनका साहित्य पूर्णत: गुरु वाणी को समर्पित है तथा इनकी रचना गुरु वाणी की प्रौढ़ता को लिए हुए है।

(छ)- मीणा शाखा:-

सिक्ख पंथ के स्थापित हो जाने पर धर्म-समाज और साहित्य में ताल-मेल बैठ गया। दूसरी ओर 'गुरु कुल' में कई सम्प्रदायों ने अपना अलग पंथ स्थापित कर लिया। इनका मुख्य कारण गुरु गद्दी से वंचित होना था। क्योंकि गुरुओं ने 'गुरु पद' को रक्त सम्बन्ध के आधार पर अपने पुत्रों को न देकर गुरु घर से बाहर के व्यक्तियों को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सिक्ख धर्म में विभिन्न सम्प्रदायों का आरम्भ गुरु-नानक पुत्र श्री चन्द से होता है।

गुरु घर: विद्रोही व्यक्तियों के बारे में भाई गुरुदास ने इस प्रकार लिखा है-

" गुरु बंसावली दी हउमै "
" बाल जती है सिरीचंद बाबाणा देहुरा बणाया।
लषमी दासहुं धरम चंद पोता होइ आप गणाया।
मंजी दास बहालिआ दातू सिधासण सिष आया।
मोहन कमला होइआ चउबारा मोहरी मनाया।
मीणा होआ पिरथीआ कर कर तीढ़क बरल चलाया।
महादेउ अहंमेउ कर कर बेमुष पुता भउकाया।
चंदन बास न वासं बेह बोहाया।' ३३ - वार २६

भाई गुरदास के अनुसार इन व्यक्तियों ने गुरु नानक की परम्परा को मिटाकर अपनी परम्परा स्थापित करने की चेष्टा की।

इस विद्रोह की भावना का तीव्र विकास गुरु राम दास के समय हुआ जब इन्होंने अपने पुत्र पृथीचंद को गद्दी न देकर गुरु अर्जुन को गुरु-पद के योग्य चुना। गुरु-पद से वंचित होने पर विरोधियों में पृथीचंद सबसे अधिक विख्यात हुए। इतिहास लेखक इन्हें 'मीणा-शाखा' से जानते हैं।

पृथीचंद से इस 'मीणा-शाखा' का जन्म हुआ। और यह शाखा अधिक देर तक अपना प्रभाव न रख सकी। इस शाखा की गुरु प्रणाली इस प्रकार है:-

'गुरु नानक, गुरु अंगद, गुरु अमर दास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन, गुरु पृथीचंद, गुरु मिहरिवानु हरिजी, बाबा गुरदित्ता, हरिगोपाल, कंवलनैन, जीवनमल, हरि सहाए, अजीत सिंह आदि।[1]

'इस मीणा-शाखा' में मिहरिवानु तथा हरि जी साहित्यिक रुप में बहुत प्रसिद्ध हुए। मिहरिवानु का जन्म संमत १६३८ में हुआ।

मिहरिवानु अपना समय उठते-बैठते हरिगुण-गान में व्यतीत किया करते थे। तथा गुरुवाणी के प्रथम व्याख्याता के रुप में प्रसिद्ध हुए हैं। गुरुवाणी की व्याख्या वेदों-पुराणों के व्यापक सन्दर्भ में की है।

भाई कान्ह सिंह के अनुसार मिहरिवानु पाखण्डी और गुरुमत विरोधी हुए।[2] परन्तु हमें इनकी रचनाओं में इस प्रकार की विरोध भावना कहीं देखने को नहीं मिली। इनका कसूर इतना था कि वे उसी मीणा-शाखा' से सम्बन्धित थे और पृथीचन्द के पुत्र थे।

१- सोढी मिहरबान जीवन और साहित्य- शमशेर सिंह अशोक, पृ० ७३

२- गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश- भाई कान्ह सिंह, पृ० ७२६

शमशेर सिंह अशोक ने मिहरिवानु की रचनाओं को दो भागों में रखा है।[1] एक बाणी कविता या पद्य रूप ग्रंथ तथा दूसरा गोसट के रूप में अर्थात् गद्य ग्रंथ। डा० गोविन्दनाथ राजगुरु ने मिहरिवानु की उपलब्ध तीन रचनाओं का उल्लेख किया है।[2] वस्तुत: 'पोथी सचुखंडु,' 'सुखमनी सहसरनाम,' तथा गोसट भगत कबीर।

मिहरिवानु का मुख्य प्रतिपाद्य गुरुवाणी की व्याख्या करना था। मिहरिवानु प्रत्येक वाणी के आरम्भ में प्रसंग देकर फिर उसका 'परमारथ' तथा अन्त में अपना श्लोक रखा है। परमारथ में शब्दार्थ देने की अपेक्षा वाणी का विस्तृत रूप दिया है।

मिहरिवानु के व्यक्तित्व के बारे में डा० राजगुरु इस प्रकार लिखते हैं, 'वस्तुत: उनका जीवन और दृष्टिकोण एक व्यापक और दूरगामी समन्वयमयी भावना से ओत-प्रोत है। यही कारण है कि उनका साहित्य सम-सामयिक सभी धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों और जीवन चर्याओं के प्रति पूर्ण रूप से सहिष्णु है।'[3]

सार ?

१- सोढी मिहरबान जीवन और साहित्य- शमशेर सिंह अशोक पृ० ७३
२- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य- डा० गोविन्दनाथ राजगुरु, पृ० २१
३- वही, पृ० ३०

खण्ड- दो

पंजाब में साहित्य सृजन के केन्द्र (सूफी, वैष्णव, सेवापंथी डेरे) शिक्षा और अध्ययन की लोकप्रियता, पाठ्य क्रम और पुस्तकें, हस्तलिखित ग्रंथों की विशाल परम्परा, साहित्य: विविध विषय- धार्मिक, लौकिक साहित्य, काव्य शास्त्र, व्याकरण, आयुर्वेद तथा ज्योतिष। प्रतिपाद्य: भाषा।

खण्ड दो

पंजाब में साहित्य सृजन के केन्द्र

१- सूफी:- भारतवर्ष में सूफी सम्प्रदाय का प्रवेश ईसा की बारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में हुआ।[१] वैसे तो सूफी साधक बहुत पहले से ही इस देश में आने लगे थे लेकिन सम्प्रदाय के रुप में सूफीमत का प्रवेश बाद में हुआ। मुसलमानों के भारत में आने के साथ ही सूफी मत का प्रचार हमारे देश में होने लगा।

परिभाषा:- रामपूजन तिवारी के अनुसार 'सूफी शब्द का व्यवहार इस्लाम धर्म के रहस्यवादियों के लिए किया जाता है। - - - सूफी मत या 'तसव्वुफ' की कई प्रकार की परिभाषाएं उपलब्ध हैं। उनमें मारुफ-अल-करखी की परिभाषा सबसे प्राचीन मानी जाती है। इस परिभाषा के अनुसार परम सत्य का ज्ञान प्राप्त करना ही तसव्वुफ है।[२]

सूफी शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में मतभेद है। सूफी शब्द पर विचार करते हुए बतलाया गया है कि सूफी शब्द अरबी के 'सूफ' शब्द से निकला है जिसका अर्थ ऊन है- कुछ व्यक्ति 'सफा', 'सुफ्फाह' आदि शब्दों से 'बेनू सफा', ग्रीक शब्द 'सोफिस्ता' से, 'थियोसोफिया' से तसव्वुफ की व्युत्पत्ति मानते हैं। सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'सूफ' से अधिकांश लोगों ने मानी है।

सूफियों की धारणा के मूल में 'प्रेम' तत्व है। सूफी परमात्मा को एक 'माशूका' के रुप में लेते हैं। सांसारिक प्रेम को वे उस परम प्रियतम तक पहुंचने का साधन मानते हैं। परमात्मा के साथ एक होना ही ~~सूफियों~~ सूफियों का चरम लक्ष्य है।

१- सूफीमत- साधना और साहित्य - रामपूजन तिवारी- पृ० ४३४

२- वही, विषय प्रवेश।

इसके लिए लौकिक पात्रों के मध्य लौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करते हुए अलौकिक की स्थापना करते हैं। वास्तव में सूफियों के अनुसार जीव और परमात्मा में पारमार्थिक अन्तर नहीं है। अतः सूफियों का चरम लक्ष्य परमात्मा के साथ एकमेक होना है। तथा यह मिलन प्रेम के द्वारा ही सम्भव है।

सूफी: पंजाब:- भारतवर्ष में सूफी साधकों ने सर्वप्रथम सिन्धु पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश में अपने डेरे बनाए। सिन्ध और पंजाब से सूफी साधक धीरे धीरे सम्पूर्ण भारत में फैलते गए।

पंजाब में गुरु नानक से पूर्व और नाथपंथियों के बाद सूफी कवियों का साहित्य मिलता है। पंजाब में बहाअल-हक्क पाकपटन के बाबा फरीदुद्दीन और अहमद कबीर जैसे प्रमुख सूफी साधक हुए हैं।

डा० मोहन सिंह दीवाना के अनुसार पंजाबी जीवन पर सबसे पहला प्रभाव फरीद (सूफीमत) का माना जाता है। परन्तु फरीद से २ सदी पूर्व 'शेख अली मखदूम हुजवीरी' पंजाब में 'दातागंज बख्श' के नाम से एक प्रसिद्ध सूफी साधक हो चुके थे।[१]

फरीद इब्राहीम जहां एक महान् सूफी साधक के रूप में पंजाब के हृदय में प्रतिष्ठित हुए, वहां एक भावुक और अत्यंत संवेदनशील कवि के रूप में भी उन्होंने अक्षय कीर्ति अर्जित की।

इनके पश्चात् इस नवीन दिशा की ओर कई सूफी कवियों का आग्रह हुआ। जिसमें शाह हुसैन ई०(१५३६-१५९४); सुल्तान बाहू (१६३१-९१ ई०); बुल्लेशाह (१६८६-१७५८ ई०) वारिस शाह, अली हैदर; (१६९०-१७८५ ई०); हाशिम (१७५३-१८२३ ई०) जैसे प्रभृति सूफी साधक और कवि पंजाब में सूफी मत के प्रमुख प्रचारक रहे। इनके अतिरिक्त मुहम्मद अफजल, अबुल फजल, दारा शिकोह के प्रयत्नों ने भी सूफी विचारधारा को फैलाने में बड़ा सहयोग दिया।

१- पंजाबी साहित दा इतिहास- सूफीवाद, डा०मोहन सिंह दीवाना, पृ० २१-२२

शाह हुसैन की रचना में सूफी प्रेमकाव्य के सूक्ष्म तत्व भरे पड़े हैं। इसी प्रकार बुल्लेशाह का काव्य 'बारामासा,' 'काफियां,' 'अठवीर,' 'सीहरफियां', आदि कई काव्य रुप प्रस्तुत करती है। इनके प्रेम गीत बहुत प्रसिद्ध हैं। तीसरे प्रसिद्ध सूफी कवि पंजाब में सुल्तान बाहू हुए जिन्होंने जीव और ब्रह्मा का अभेद बताने के लिए 'काफियां' (प्रेमगीत) लिखीं। वारिस शाह की हीर बड़ी प्रसिद्ध हुई। हाशिम के किस्से शीरी-फरिआद, सोहनी-महिवाल, शशी-पुन्नु आदि पंजाबी साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं। ये सूफी मत के प्रतिभाशाली कवि हुए।

पंजाब के इस सूफी काव्य पर वेदान्त तथा वैष्णव आदि कई भारतीय सिद्धान्तों का भी प्रभाव पड़ा। पंजाब के सूफी कवियों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति कहीं ठेठ पंजाबी में, कहीं खड़ी बोली मिश्रित पंजाबी में की है।

स्पष्ट है कि पंजाब के साहित्य को सूफी कवियों के अनुपम भेंट दी है। सूफियों के प्रमुख केन्द्र पंजाब में ये रहे हैं--

१- पाकपटन
२- मुलतान

इन केन्द्रों में जहां सूफी साधक अपनी साधना में लीन रहते थे, वहां अपने विचारों और विशेषत: अपनी रहस्यात्मक अनुभूतियों को भी साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से भी प्रकट करते थे।

वैष्णव:- सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि में भागवत पुराण ही वैष्णवों का प्रेरणा-स्रोत रहा है। वैष्णव धर्म अत्यंत प्राचीन है। इसका प्राचीन नाम भागवत धर्म है। इस धर्म की प्रमुख मान्यता विष्णु का अवतार धारणा है। दुष्टों के नाश के लिए विष्णु बार बार अवतार के रुप में अवतरित होते हैं। इस मूल भूत धारणा के साथ वैष्णव सम्प्रदाय का प्रारम्भ हुआ।

दक्षिण के 'आलवार' भक्त वैष्णव- धर्म के आधार-स्तम्भ माने जाते हैं। दक्षिण से वैष्णव भक्ति उत्तरी भारत में आई।

बलदेव उपाध्याय के अनुसार, 'वैष्णवों के अनुसार भगवत् तत्व सगुण तथा साकार है। जिसकी पृष्ठभूमि में निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म सर्वदैव विद्यमान रहता है। - - - भगवान निर्गुण होकर भी सगुण होता है। अप्राकृत गुणों से हीन होने के कारण वह निर्गुण कहलाता है। - - - भगवान् केवल भक्ति के द्वारा ही प्राप्य है। ज्ञान तथा कर्मका आश्रय भी वैष्णव मत मेंमान्य है परन्तु अंगत्वेन मुख्यत्वेन नहीं अर्थात् कर्म के अवलंबन से भक्त का चित्त शुद्ध होता है तथा ज्ञान के द्वारा आत्मा का बोध होता है परन्तु परमात्मा की उपलब्धि में भक्ति ही एकमात्र साधन है। भक्ति साधन रुपा भी है तथा साध्य रुपा भी। साधन भक्ति नवधा मानी जाती है जिसमें आत्मनिवेदन ही सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। सब वैष्णव संप्रदाय शरणागति की श्रेष्ठता तथा उपादेयता पर एक मत है।[१]'

वैष्णव सम्प्रदाय भक्ति को ही प्रधानता देता है। भक्ति को साधन तथा साध्य दोनों रुपों में माना है। कर्म-ज्ञान को भक्ति कीअपेक्षा कम महत्व भागवत सम्प्रदाय में है।

वैष्णव आचार्य:- दक्षिण में रामानुज, निम्बार्क, विष्णु स्वामी तथा मध्वाचार्य ये चार प्रमुख आचार्य हुए। इन्हीं के नाम से श्री रामानुज सम्प्रदाय, निम्बार्क-सम्प्रदाय विष्णु स्वामी सम्प्रदाय तथा माध्व सम्प्रदाय की स्थापना हुई।

' ११वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने सगुण वैष्णवी भक्ति का निरुपण कर विशिष्टाद्वैत वाद की स्थापना की। इनकी शिष्य परम्परा में रामानन्द हुए जिन्हों ने विष्णु के रुप राम की प्रतिष्ठा की। जात-पात आदि के भेद-भाव को भक्ति के क्षेत्र से हटाकर प्रत्येक व्यक्ति को भक्ति में दीक्षित करने की उदारता दिखाई।

१२वीं शताब्दीमें दक्षिण में निम्बार्काचार्यने राधाकृष्ण कीउपासना कर

१- भागवत सम्प्रदाय- बलदेव उपाध्याय, पृ० ६१

द्वैताद्वैतवादी सिद्धान्त की स्थापना की। तीसरे प्रसिद्ध आचार्य मध्वाचार्य ने द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय चलाया। चौथे आचार्य विष्णुस्वामी ने अद्वैत को माया से रहित मानकर शुद्धाद्वैतवाद की नींव डाली।

इन सभी सम्प्रदायों के सामान्य तत्व ये हैं -- (१)- विष्णु के विविध रुपों की उपासना; (२)- अवतारवाद के सिद्धान्त पर पूरी आस्था; (३)- तात्विक दृष्टि से माया का विरोध; (४)- जीवन में सदाचार तथा अहिंसा आदि सद्गुणों की प्रतिष्ठा आदि तत्व सभी सम्प्रदायों में सामान्य रुप में देखने को मिलते हैं।

पंजाब में वैष्णव सम्प्रदाय:- मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का पंजाब पर भी प्रभाव पड़ा। पंजाब में भी अन्य धर्मों की भांति वैष्णव धर्म का प्रचार बहुत हुआ। विष्णु के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरुप को पंजाब की जनता ने अपना लिया। वैष्णव संप्रदाय का पंजाब में मुख्य केन्द्र पिजौरी है, पंजाब में श्री मद्भागवत की काफी मान्यता रही। तथा भागवत के अनेक अनुवाद और रुपांतर पंजाब में मिलते हैं।

वैष्णव: साहित्य सर्जन:- पंजाब में वैष्णव धर्म की आधार-भूत भागवत, विष्णु पुराण आदि कृतियां अनूदित की गईं। इनके अतिरिक्त कितनी ही पौराणिक कृतियों के अनुवाद तथा रुपांतर पंजाब में मिलते हैं।

ऐसा लगता है कि वैष्णव धर्म की भक्ति तथा अहिंसा आदि सद् भावनाओं का पंजाब के साहित्य और जीवन पर गंभीर प्रभाव पड़ा।

सेवा पंथी:- डा० हरिभजन सिंह के अनुसार 'सेवा पंथ के आदि संचालक भाई कन्हैया जी है। भाई[१] कन्हैया जी गुरु तेग बहादुर और गुरु गोबिन्द सिंह के प्रमुख सेवकों में से एक थे।'

१- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य- डा० हरिभजन सिंह, पृ० १५१

सेवापंथी सम्प्रदाय का तात्पर्य सांसारिक बन्धनों से ऊपर उठकर संसार से पलायन करना नहीं अपितु श्रम, अपरिग्रह, अहिंसा आदि द्वारा संसार की सेवा करना है।

सेवा पंथी सम्प्रदाय या इसके साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन अभी तक नहीं किया जा सका। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयास सरदार प्रीतम सिंह ने किया। सन् १६५२ में इन्होंने सेवापंथी महात्मा अड्डणशाह द्वारा अनूदित ग्रंथ 'पारस भाग' का सम्पादन कर इसकी भूमिका में सेवापंथी साहित्य का परिचय दिया है।

सेवापंथी सम्प्रदाय के लोग गुरुवाणी के सैद्धान्तिक नियमों में दृढ़ आस्था रखते हैं। इनकी वेश-भूषा सीधी सादी थी। सफेद टोपी, पगड़ी धोती आदि इनकी वेश-भूषा है।

सेवापंथी सम्प्रदाय में सेवाराम और अड्डणशाह के नाम प्रसिद्ध हैं। इन्हीं के नाम से आगे चलकर इस सम्प्रदाय का नाम 'सेवापंथी' या 'अड्डणशाही' प्रसिद्ध हुआ।

अड्डणशाह के संबंध में कहा गया है कि 'भाई अड्डणशाह के व्यक्तित्व का जो चित्र हमारे सामने उभरता है, वह है एक वीतराग, शम-दम अपरिग्रह आदि विभूतियों से समन्वित, सर्व भूतानुकम्पी एवं मूंज कूटकर, रस्सियां बट्ट कर, अपनी लोकयात्रा साधन करने वाले अप्रतिम तपस्वी और उद्भट विचारक का।'[1]

सेवापंथी साहित्य:- सेवापंथी साधुओं पर वेदान्त तथा सूफीमत का प्रभाव पड़ा। इनका ध्यान साहित्य सर्जन में लगा रहता था और इन्होंने न केवल मौलिक साहित्य ही लिखा अपितु फारसी और संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद भी किए।

इनके साहित्य की संक्षिप्त सी रुप रेखा इस प्रकार दी जा सकती है:-[2]

१- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य- डा० गोविन्द नाथ राजगुरु, पृ० ११४

२- वही, पृ० ११७-११८

(क)- **दर्शन:-**

१- विवेकसार (भाई अड्डणशाह और दइआराम के प्रश्नोत्तर)

(ख)- **जीवनी साहित्य:-**

२- परचीआं भाई कन्हईआ।

३- परचीआं भाई सेवाराम।

४- आसावरीआ भाई सेवाराम।

५- परची भाई अड्डण जी कृत भाई सेवाराम।

६- साषीआं अड्डण जी कीआं।

(ग)- **अनुवाद:-**

७- पारस भाग।

८- योग वसिसट भाषा।

(घ)- **साधु सदानन्द कृत साहित्य:-**

१- सिद्धान्त रहस्य

२- विगिआन अश्क टीका

३- ३५ उपनिषदों का अनुवाद

४- टीका विचारमाला

५- गिआन कसौटी

६- बसिसट (चौपाईयों में)

७- टीका विवेकसार

८- विदिआ निध।

(ङ)- **साहित्य:-**

१- संत रतनमाल कृत संत लालचन्द।

२- प्रेम प्रकाश कृत संत शामसिंह।

इस सम्प्रदाय के मुख्य केन्द्र स्थल- स्वतन्त्र भारत में पटियाला, जगाधरी बन गए हैं।

सैवापंथ साहित्य गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध पंजाब का मूल्यवान साहित्य है। इसमें धर्मोपदेश सम्बन्धी, जीवनी सम्बन्धी, दर्शन-वैदान्त सम्बन्धी अनेक रचनाएं मिलती हैं।

निष्कर्ष यह है कि सैवापंथ के प्रवर्तकों ने नि:स्वार्थ सैवा, कर्मठ जीवन, घोर परिश्रम द्वारा जीविकोपार्जन करने पर बहुत बल दिया है। यही सैवापंथ की सबसे बड़ी विशेषता है।

(२)- शिक्षा और अध्ययन की लोकप्रियता

वैदिक युग में शिक्षा के केन्द्र संघ, परिषद, चरणमठ, गुरुकुल एवं आश्रम के रुप में स्थापित थे। यहां गुरु वैयक्तिक रुप से स्वयमेव शिष्यों को शिक्षा दिया करते थे।

पंजाब में भी शिक्षा के अन्तर्गत ईश्वर भक्ति और धर्म धार्मिकता की भावना प्रतिष्ठित थी। लाइटनर के अनुसार उस समय पुरोहित ही[१] प्राय: शिक्षक होते थे और शिक्षा-धार्मिक, सामाजिक या व्यासायिक कर्तव्य थी। पंजाब में शिक्षा, प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली के समान खुले स्थानों में, गांव में, वृक्षों के नीचे, तीर्थ स्थानों में, हिन्दु-मन्दिर-मठ अखाड़े आदि के केन्द्र थे।

पंजाब में मुसलमानों के आने के पश्चात् मुस्लिम शिक्षा प्रणाली ज़ोर पकड़ती जा रहीथी। मुस्लिम शासन काल में शिक्षा संस्थाएं २ प्रकार की थीं। (१)- मकतब और (२)- मदरसे। मकतबों में प्रारम्भिक शिक्षा दीजाती थी। उसमें लिखना पढ़ना गणित कुरान प्रसिद्ध धर्मोपदेश एवं सन्तों की जीवन गाथाएं पढाई जाती थी। मदरसे उच्च शिक्षा संस्थाएं थीं। जिनमें व्याकरण साहित्य, फारसी, अरबी, रेखागणित, अर्थशास्त्र, इतिहास एवं मुस्लिम धर्म की शिक्षा दी जाती थी।

१- The Priest was a Professor and poet, and in several tribes, castes and classes, as will be shown further on education was a religious social or professional duty."- Preface.

- A History of Indigenous system of Education in the Panjab since annexation and in Calcutta-1882- G.W.Leitner.

दूसरी तरफ हिन्दू-देव मन्दिर शिक्षा का कार्य किया करते थे। वहां रामायण, महाभारत आदि पढ़ाया जाता। शैवमत वालों ने पाठशालाएं और प्राथमिक स्कूल गावों और शहरों में खोले जो मंदिरों के आगनों में बने हुए थे।

गुरुमुखी स्कूलों में भी प्राथमिक शिक्षा ज्ञानी एवं ग्रंथी द्वारा दीजाती थी। ऊंची शिक्षा गुरुमुखी लिपि में भाषा के माध्यम से दी जाती थी। धरमसाल में रहकर विद्यार्थी विद्याध्ययन किया करते।

गुरुघर के प्रभाव से भारतीय पद्धति की शिक्षा का प्रचार व्यापक रुप से हुआ। अनेक योग्य विद्वानों के निर्देशन में योग्य शिष्य तैयार होने लगे। इस प्रकार मध्ययुग के पंजाब में शिक्षा की व्यवस्था भिन्न वर्गों ने बड़े प्रभावशाली ढंग से की हुई थी।

लाइटनर के अनुसार सिक्खों के तीन प्रकार के गुरु शैक्षिक, धार्मिक और आध्यात्मिक हुए।[१] (१)- सर्वप्रथम शिष्यों को गुरुमुखी वर्णमाला पढ़ा लेने के पश्चात् उन्हें हनुमान नाटक, तुलसी रामायण, गुरुमुखी में भागवत का एक अध्ययन, जन्म साखी, गुरु बिलास, गुरु पातशाही छठी का इतिहास और दशम ग्रंथ को पढ़ाया जाता था। ज्योतिष की शिक्षा हिन्दुओं की अपेक्षा सिक्खों में कम होती थी।

रणजीत सिंह के समय से पूर्व पाठशालाएं नाम मात्र को हुआ करती थीं। पंजाब में महाजनी और लंडे स्कूल अपना प्रभाव डाले हुए थे। रणजीत सिंह के समय में अमृतसर शिक्षा का महान् केन्द्र था। रणजीत सिंह ने अमृतसर में गुरुमुखी के बड़े स्कूल खोले। उस समय साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने के लिए जागीरें इनाम के रुप में रणजीत सिंह से मिला करती थी।

१- Among Sikhs there are three kinds of Gurus educational, religious and spiritual, Gurmukhi has a history and literature and that it cannot be called Barbarous."- History of Indigenous system of education in the Punjab since annexation and in Calcutta in 1882-G.W. Leitner.p.35.

लाइटनर के मतानुसार उस समय वेद पंजाब में पढाए जाते थे। व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। पंजाबी पंडित न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, वेदान्त, सांख्य आदि में अग्रगण्य होते गए। अमृतसर और कुरुक्षेत्र में संस्कृत के स्कूल थे और विद्यार्थियों को संस्कृत व्याकरण, कविता, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, नक्षत्र, वेदान्त न्याय दर्शन, तर्कशास्त्र, मंत्र-तंत्र, पूजा पाठ आदि की पुस्तकें पढाई जाती थीं।

लाइटनर ने कहा है कि रणजीत सिंह के समय अमृतसर में ४० कुरान, अरबी, फारसी और उर्दू के स्कूल थे। १३ ऊंचे कुरान अरबी-फारसी स्कूल, २० गुरुमुखी स्कूल, १२ महाजनी स्कूल और ५० पाठशालाएं थी।

आर० एल० अहूजा के अनुसार 'उन दिनों महाराज रणजीत सिंह की लाइब्रेरी सबसे बड़ी थी। उसमें ४२३ भाग थे- - - और संस्कृत, फारसी गुरुमुखी की पांच पुस्तकें-- यह पुस्तकें पांच भाषाओं में थी जो विशाल विषयों की भिन्नता लिए अरबी फारसी-हिन्दी-संस्कृत और गुरुमुखी में थी।'[१]

डेरे या आश्रम:- उदासी और निर्मल सम्प्रदाय वालों ने स्थान स्थान पर डेरे और आश्रम बनाए। इन डेरों का निर्माण अध्ययन अध्यापन और ग्रंथ सृजन के अभिप्राय से हुआ। प्राथमिक शिक्षा और ऊंची शिक्षा भी यहां दी जाती है। मुख्यत: ये मठ संस्कृत विद्या के अध्ययन एवं अध्यापन के केन्द्र थे।

निर्मल साधुओं ने यहां रह कर मौलिक और अनूदित ग्रंथ लिखे। अनूदित संस्कृत ग्रंथों में (१)- पंडित करि सिंह की 'गुरु कौमुदी'; (२)- पंडित हरा सिंह की 'गुरु सिद्धान्त परिजात' तथा (३)- पं० निहाल सिंह की 'जपुजी टीका संस्कृत' में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

१- The library of the Maharaja was probably the biggest in the Punjab of these days. It contained four hundred and twenty three volumes, three bundles of papers, a marble inscription and a box of Muslim relics. Of the three bundles, one contained papers in Sanskrit, another in Persian, while the third, five books in Gurmukhi. These books gave volumes in five languages cover a large variety of subjects in Arabian and Persian, Hindi, Sanskrit and Gurmukhi- page 284.
- Indigenous education in the Punjab until annexation with special reference to the time of Sikhs- Ahuja R.L.

मौलिक ग्रंथों की भी रचना हुई। मौलिक लेखकों में गुलाब सिंह ज्ञानी ज्ञान सिंह के नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने (१)- भावरसामृत' और (२)- पंथ प्रकाश जैसी मूल्यवान कृतियां हमें दीं। महन्त दयाल सिंह भाई सन्तोखसिंह की रचनाएं भी प्रसिद्ध हैं।

उदासी पंथ में सन्तरेण बड़े प्रसिद्ध हुए। इन्होंने (१)- मनप्रबोध; (२)-'नानक विजय', (३)- वचन संग्रह- उदासी बोध, उत्कृष्ठ रचनाएं कीं। 'मनमें प्रबोध' में वेदान्त का सूक्ष्म निरूपण किया है। इस प्रकार यह अध्यापन कार्य करते हुए साहित्यिक रचनाएं भी करते थे।

इनके अतिरिक्त नामधारी निरंकारी और सेवापंथी साधुओं ने भी अपनी मूल्यवान कृतियों द्वारा पंजाब के साहित्य को सम्पन्न बनाया। पढ़ना-पढाना ग्रन्थ लिखना एवं कथा-वार्ता प्रवचन आदि कार्य क्रम इन डेरों में शताब्दियों से चला आ रहा था। धर्म प्रचार के अतिरिक्त इन डेरों में साहित्य का निर्माण भी हुआ।

पाठ्य पुस्तकें:- उस समय गुरुमुखी स्कूलों में ये पाठ्य पुस्तकें पढाई जाती थीं:-

१- बालोपदेश
२- पंजग्रंथी
३- जन्मसाखी
४- हनुमान नाटक
५- भाई गुरदास की वारें
६- वेदान्त-एकादश भागवत
७- तुलसी रामायण
८- विष्णु पुराण
९- पिंगल अश्वमेध
१०- अध्यात्म रामायण
११- विचार सागर
१२- मोक्ष-पंथ

१३- सूर्य प्रकाश

१४- गुरु विलास

१५- विशिष्ट पुराण- आदि।

डा० लाइटनर ने संस्कृत की इन पाठ्य पुस्तकों की सूचना दी है:-

१- बाल बोध

२- अक्षर दीपिका

३- व्याकरण-सारस्वत चंद्रिका

४- लघु कौमुदी

५- शेखर कौमुदी

६- मनोरमा भाषा

७- पाणिनि व्याकरण

८- सिद्धान्त कौमुदी

९- प्राकृत प्रकाश

१०- कोश-कला

११- अमर कोश

१२- हलायुध

१३- मेदिनी कोश

काव्य नाटक और धार्मिक इतिहास:-

१४- रघुवंश

१५- मेघदूत

१६- रामायण

१७- श्रीमद्भागवत और दूसरे पुराण

१८- महाभारत

१९- वेणी संहार

२०- शाकुन्तला

२१- मृच्छकटिक कुमार सम्भव।

साहित्य शास्त्र:-

१- काव्य दीपिका
२- साहित्य दर्पण
३- काव्यानन्द
४- काव्य प्रकाश
५- दशरुपक
६- गणित शास्त्र
७- ज्योतिष
८- नक्षत्र विद्या
९- सिद्धान्त शिरोमणि
१०- श्रृंगार बोध
११- नील कण्ठी
१२- बृहत जातक
१३- पराशर ।

विज्ञान:-

१- शामराज
२- माहक्ष निधान
३- निघन्टु
४- शारंगधर
५- भाषा परिषद

तर्क शास्त्र:-

१- न्याय सूत्र कृति
२- व्युत्पत्ति बध
३- तर्क संग्रह
४- तर्कालंकार
५- वेदान्त
६- आत्म बोध
७- पंचदशी शारीरिक भाष्य।

नियम: -

१- मनुस्मृति

२- यज्ञवाक

३- मिताक्षरा

४- पराशर स्मृति

दर्शन: -

१- सांख्य

२- तत्व कौमुदी

३- संख्या प्रवचन भाषा

४- योग सूत्रा

५- वैशेषिक

६- सिद्धान्त मुक्तावली

७- पंतजलि

८- सूत्रवृत्ति

९- सूत्रभाष्य

१०- वेदान्त सार

११- मीमांसा

१२- सूत्र भाषा

१३- अर्थसंग्रह

छन्द शास्त्र: -

१- सूरत बोध

२- वृत्त रत्नाकर

गद्य साहित्य: -

१- हितोपदेश

२- दशकुमार चरित्र

३- वासवदत्त

धर्म:-

ऋग्वेदा साहित्य- यजुर्वेद, शुक्ला यजुर वैजस्नयी, सामवेद।[१]

(४)- हस्तलिखित ग्रंथों की विशाल परम्परा

शमशेर सिंह अशोक के अनुसार पंजाब की हस्तलिखित पुस्तकोंकी एक विशाल परम्परा विद्यमान है। इस परम्परा के ५ हज़ार से भीअधिक ग्रंथोंकी सूची तैयार हो चुकी है।[२] पाकिस्तान में छूट गई पुस्तकों की गिनती इससे अलग है।

हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची तैयार हो जाने पर हमारे लिए पंजाब में उपलब्ध साहित्य की पूरी जानकारी पाना सरल हो गया है। और इसके साथ इस साहित्य की पूर्ण रुप रेखा भी अब स्पष्ट हो चुकी है।

हस्तलिखित ग्रंथों की विशाल परम्परा को देखकर हम कह सकते हैं कि साहित्य के अन्तर्गत आने वाले प्राय: सभी विषयों पर मूल्यवान कृतियां पंजाब के साहित्य में उपलब्ध है।

पंजाब में उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य को २८ वर्गोंमें विभाजित किया गया है:-

१- श्रुति स्मृति ग्रंथ
२- पुराण व्रत कथा
३- राम साहित्य
४- कृष्ण साहित्य
५- महाभारत और उसके पर्व
६- भारतीय दर्शन
७- नाथ साहित्य
८- इस्लामी अदब
९- सन्तवाणी
१०- सिक्ख साहित्य

१- विशेष विवरण के लिए G. W. Leitner की A History of Indigenous System of education in Panjab- Page 85. पर देखें।

२- पंजाबी दुनिया- जुलाई १९६५- (पंजाबी हस्तलिखित साहित्य-शमशेर सिंह, अशोक)

११- भूगोल

१२- इतिहास

१३- कविता

१४- रीतिग्रंथ

(क)- पिंगल अथवा छन्दशास्त्र

(ख)- अलंकार

(ग)- साहित्य

१५- दर्शन

१६- नाटक

१७- संगीत

१८- कोश

१९- व्याकरण

२०- नीतिशास्त्र

२१- ज्योतिष

२२- वैधक

२३- कामशास्त्र

२४- शालि होत्र

२५- बाल साहित्य

२६- फोटोग्राफी

२७- शिकार और खेलतमाशे

२८- खेती बाड़ी[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बल बदलते युग के साथ-साथ पंजाब के साहित्य का आयाम विस्तृत होता गया। और इसमें विविधता भी आती गई।

१- विस्तृत विवरण के लिए देखिए- पंजाबी हस्तलिखतां दी सूची- भाषा विभाग भाग १-२।

अन्त में हम इतना कह सकते हैं कि इन हस्तलिखित ग्रन्थों की विशाल परम्परा को देखने पर पंजाब के साहित्य की गम्भीरता, उत्कृष्टता, काव्य सौन्दर्य तथा ग्रहणशीलता की शक्ति का परिचय मिलता है।

(५)- साहित्य: विविध विषय

मध्ययुग से ही पंजाब का साहित्य विविधता को लिए हुए है। प्रमुख रुप से मध्यकाल में धर्म सम्बन्धी साहित्य का काफी विस्तार हुआ। धर्म सम्बन्धी उपदेशों कीमान्यता रही। तथा पंजाब में धार्मिक साहित्य ही देखने को अधिकतर मिलता है। गुरु नानक काल और इनके परवर्ती साहित्यकारों ने धर्म पर जितना ज़ोर दिया उतना किसी और साहित्य पर नहीं।

लौकिक साहित्य में प्रेम प्रबन्धों का प्राधान्य रहा है। प्राय: सभी सूफी कवियोंने प्रेम को सामने रखकर रचनाएं कीं। लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की चर्चा किया करते। इस क्षेत्र में इनकी रचनाएं बड़ी उत्कृष्ट कोटि की हैं।

काव्यशास्त्र:- धार्मिक ग्रंथों और उनकी विविध टीकाओं के अतिरिक्त काव्यशास्त्र सम्बन्धी कितनी ही रचनाएं पंजाब में मिलती हैं।

रीतिकालीन लक्षण ग्रंथों के व्यापक प्रभाव के कारण पंजाब में काव्यशास्त्र सम्बन्धी अनेक रचनाएं लिखी गईं। इनमें से कुछ ग्रंथ तो प्रसिद्ध रीतिग्रंथों की गुरुमुखी में केवल नकल है। हां अमीरदास आदि एक दो विद्वानों ने इस विषय पर अधिकार के साथ चर्चा की है। काव्य शास्त्र सम्बन्धी प्रमुख रचनाएं ये हैं:-

१- श्री निहाल सिंघ प्रमोदेंद्र चंद्रिका- कवि हरिराम (संमत १८६५ वि०)
२- पिंगल सार - कवि गिरिधर लाल (समत १७४५ वि०)
३- पिंगल छंद सार- कवि सूरत मिश्र - (संमत १८वीं सदी वि०)
४- पिंगल दरपन भाषा- कवि गंग - (संमत १६१६ वि०)
५- पिंगल भाषा- कवि चिंतामणी (संमत १६०१ वि०)
६- पिंगल रुप दीपभाषा- कवि जयकृष्ण- (संमत १७७६ वि०)

७- बदन कला निधि- कवि बदन सिंह- (१७वीं सदी वि०)

८- वित चँद्रिका- कवि लाल- (निश्चित नहीं)

९- अलंकार कला निधि- कवि कृष्णा भट- (संमत १८८४ वि०)

१०- ललित ललाम- कवि मतिराम- (समृत् ~~१६क्व~~ १६वीं सदी वि०)

११- उज बिलास- दास कवि - (समत् १९१० वि०)

१२- अष्ट नाइका-

१३- सभा मंडन साधू ~~अमरी~~ अमीर दास (संमत १८८४ वि०)

१४- सरस रस ग्रंथ- कवि सूरत मिस्र- (संमत १७९४ वि०)

१५- साहित्य सिरोमणी- कवि निहाल- (संमत १९०८ वि०)

१६- साहित्य बोध- कवि हरि नाम- (१९वीं सदी वि०)

१७- सिष नष सटीक- कवि बलभद्र- (संमत १८७४ वि०)

१८- सिंगार रस माधुरी- कवि कृष्णा भट्ट- (संमत १७७९ वि०)

१९- सुन्दर सिंगार- कवि राज सुंदर- (संमत १८५५ वि०)

२०- सुधा सर ग्रंथ- कवि गोपाल सिंघ नवीन- (संमत १८९५ वि०)

२१- सोमा सिंगारते मान मंजरी- कवि गंगा राम- (संमत १८९२ वि०)

२२- हास प्रकाश- मिरजा अबदुर रहिमान, प्रेमी

२३- कबित रतन मालिका- कवि राम नारायण रस रासि-(संमत १८२७ वि०)

२४- कवि प्रिया- कवि केशवदास- (संमत १६५८ वि०)

२५- काव्य कौतूहल- कवि उमादास- (संमत १९०० वि०)

२६- कुसुम बाल्का- कवि साहिब सिंघ म्रिगिंद- (संमत १९१६ वि०)

२७- चित्र विलास- कवि अम्रित राइ- (संमत १७३६ वि०)

२८- जगत विनोद- कवि पदमाकर- (संमत १९२४ वि०)

२९- व्यंगारथ बतीसी- कवि हरनाम राइ- (संमत १८९५ वि०)

३०- भाषा भूषाणा- कवि हरि चरन दास- (संमत १८३४ वि०)

३१- भाव पंचाशिका- कवि ब्रिंद- (संमत १८७७ और संमत १८८५ वि०)

३२- रस समूह ग्रंथ- कवि मोहर सिंघ- (संमत १९०४ वि०)

३३- रस शिरोमणी - मुकंद दास- (संमत १८४९ वि०)

३४- रस तरंगिणी भाषाथ- कवि हरिनाम-(संमत १९०३ वि०)

३५- रस पीयूषा- कवि सोमनाथ- (संमत १७६४ वि०)

३६- रस प्रदीपका- कवि बुध सिंघ- (संमत १८६२ वि०)

३७- रस प्रबोध- गुलाब नबी रसलीन- (संमत १७६८ वि०)

३८- रस मंजरी- कवि संभू नाथ- (समंत १६८६ वि०)

व्याकरण: आयुर्वेद:- पंजाब में संस्कृत व्याकरण सम्बन्धी बहुत कम रचनाएं मिलती हैं।

१- शब्द कुमुद कलानिधि (लद्ध लघु सिद्धान्त कौमुदी का अनुवाद)

इसके अनुवादक कवि साहिब सिंह`मृगिंद` हैं। रचना काल संमत १६१८ वि० है।

आयुर्वेद सम्बन्धी मुख्य रचनाएं:-

१-	अजीरण मंजरी-	संमत १६१५ ई०
२-	अद्भुत बिलास-	संमत १६६५ वि०
३-	सारंगधर टीका-	—
४-	चिकित्सा सार-	संमत १६०० वि०
५-	वैद मनोरथ	—
६-	भाषा निधान-	संमत १७७८ वि०
७-	वैद सागर ग्रंथ	—
८-	यूनानी वैदक ग्रंथ	—
९-	रोग अंतक सार	—
१०-	वैद्य कल्पतरु भाषा पंजाबी	—
११-	वैद्य मनोतसव	—
१२-	नैनसुख-	संमत १६४६ वि० आदि रचनाएं

प्रमुख हैं।

ज्योतिष:- ज्योतिष सम्बन्धी भी कुछ रचनाएं मिलती हैं। जैसे:-

१- कवि निहाल का`जोतिश प्रकाश`

२- — `शीघ्र बोध`

३- — `पोथी जोतक`

४- कवि निहाल का 'फलतेदु शेखर'

५- —— महूरत प्रकरण

आदि प्रसिद्ध प रचनाएं हैं।

अध्ययन, अध्यापन तथा साहित्य सृजन की इस विशाल परम्परा को देखने से पता चलता है कि पंजाब में शिक्षा की व्यवस्था उच्च कोटि की थी। जनता के सभी वर्गों राजा महाराजाओं, साधु सन्तों और सामान्य व्यक्तियों ने इस परम्परा को सम्पन्न बनाने में महान सहयोग दिया है।

इसी परम्परा को १६वीं तथा २० वीं शती में निर्मित साहित्य का श्रेय दिया जाना चाहिए।

(६)- **प्रतिपाद्य**

प्रतिपाद्य की दृष्टि से पंजाब के साहित्य को इन वर्गों में विभाजित किया जाता है:-

(१)- **आदिग्रंथ सम्बन्धी साहित्य:-** पंजाब की आदि कृतियां आदि ग्रंथ में संकलित हैं। आदिग्रंथ में धर्म-दर्शन तथा भक्ति का एक अपूर्व समन्वय मिलता है। आदिग्रंथ का आधार लेकर पंजाब में विपुल साहित्य निर्मित हुआ। अत: अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि इस पूरे साहित्य का सम्बन्ध ७५ प्रतिशत आदिग्रंथ से सम्बन्धित है।

(२)- **प्रेम कथानक सम्बन्धी:-** इस में लौकिक तथा अलौकिक प्रेम को लेकर बड़े सुन्दर विचार प्रकट किए गए। इन के प्रेम प्रतिष्ठान में गुरु का विशेष स्थान है। इनका गुरु लौकिक प्रेम पात्र भी है और ईश्वर का प्रतीक भी। इसमें ससी-पुन्नु, सोहनी-महिवाल, मिर्जा-साहिबा, आदि प्रेम काव्य किस्सा कहानी लिखी गई।

(३)- **इस्लामी साहित्य:-** जिसमें शाह हुसैन आदि कवियों कीमुस्लिम धर्म को सर्वजन सुलभ बनाने के हेतु पंजाब में कई पुस्तकें मिलती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंजाब का साहित्य मूलत: ईश्वर भक्ति और धम धम धार्मिकता कीभावना को लिए हुए था। इनका साहित्य निर्माण धर्म से सम्बन्धित था। धर्म भावना से अनुप्राणित यह पूरा साहित्य अपने में मध्ययुग की पूरी चेतना संजोए हुए है।

भाषा:- पंजाब में उपलब्ध साहित्य में दो प्रकार की भाषाएं प्रमुख हुई हैं:-

१- पंजाबी
२- खड़ी बोली

इस विषय पर विस्तार से विचार करने का प्रयत्न आगे किया गया है।

इस पूरे साहित्य की भाषा के रुप पर यह टिप्पणी कदाचित सही है--

'सच तो यह है कि हमारे आलोच्य काल की भाषा पर अपभ्रंशों का व्यापक प्रभाव है। वर्तनी से लेकर शब्द रुपों, कारक चिह्नों और क्रिया पदों तक यह प्रभाव देखा जा सकता है। तद्भव शब्दों का अनुपात बहुत अधिक है। पंजाबी भाषा का प्रभाव इस पर बहुत स्पष्ट है, और यह प्रभाव शब्दों के विशिष्ट उच्चारण के कारण वर्तनी में ध्वन्यात्मक रुप से यथावत सुरक्षित है। इसप्रकार यह भाषा आधुनिक हिन्दी और प्राचीन अपभ्रंश गद्य के बीच वह श्रृंखला है जो अधिकतर अपेक्षित है और जिसके सम्बन्ध में यही कहा जाता है कि वह श्रृंखला लुप्त हो चुकी है।'[१]

१- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य- डा० गोविन्द नाथ राजगुरु, पृ० १२२।

अध्याय- प्रथम

खण्ड - तीन

पंजाब में प्रचलित लिपियां, ब्राह्मी, शारदा,
टाकरी, लंडे, गुरुमुखी, नागरी, फारसी,
लिपि सम्बन्धी समस्या समाधान।

(१)- पंजाब में प्रचलित लिपियाँ

भाषा का प्रतीकी कृत रूप लिपि है। भाषा तक पहुंचते पहुंचते भाव मूल[1] हो जाते हैं और लिपि तक पहुंचते पहुंचते भाषा ध्वनियाँ मूक हो जाती हैं। अत: भाषा का प्रामाणिक रूप किसी लिपि द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

प्रारम्भ में भावों की अभिव्यक्ति चित्रों, संकेतों, रेखाओं, आदि के माध्यम से करते थे। परन्तु इनमें भावों का सूक्ष्म रूप न आकर स्थूल रूप ही आ पाता था। इसके उपरान्त 'सूत्रों' का प्रयोग किया जाने लगा। भाव-अभिव्यक्ति के लिए 'सूत्र' में गांठें डाल दीजाती थीं।

इस बात का समर्थन भोला नाथ तिवारी ने इस प्रकार किया है; लिपि के विकास क्रम में आने वाली विभिन्न लिपियाँ, चित्र सूत्र प्रतीकात्मक, भावमूलक, भाव-ध्वनिमूलक और ध्वनिमूलक लिपि है। - - - - चित्र लिपि का ही विकसित रूप भावमूलक लिपि है। आगे जाकर भाव मूलक लिपि विकसित होकर भाव-ध्वनि-मूलक और फिर ध्वनि मूलक हुई। ध्वनि मूलक में भी अक्षरात्मक ध्वनि-मूलक लिपि प्रारम्भिक है और वर्णात्मक ध्वनिमूलक लिपि उससे विकसित तथा बाद की है।'[2] इस प्रकार हम देखते है कि लिपि का विकास भी भाषा के समान धीरे धीरे उत्कृष्ट रूप में होता चला गया।

वर्तमान यूरोप की लिपियों का मूल स्रोत ग्रीकलिपि है, और भारत की लिपियों का मूल स्रोत ब्राह्मी लिपि है। अशोक के समय के तीसरी शताब्दी ई०पू० में पाए गए शिलालेखों से पता चलता है कि भारत वर्ष में लेखन कार्य प्राचीन काल से चला आ रहा है। इन शिलालेखों में दो प्रकार की लिपियां ब्राह्मणी और खरोष्ठी देखने को मिली है। पंजाब की सबसे प्राचीन लिपि अशोक के शिलालेखों में उपलब्ध है। ये शिलालेख (मानसहेरा और शहबाज़गढ़ी के) उस समय में प्रचलित

१- भाषा- सितम्बर, १९६८-६९, पृ० ९१_

२- भाषा विज्ञान- भोलानाथ तिवारी, पृ० ४७३

पंजाब में प्रचलित लिपियों
का तुलनात्मक अध्ययन

वर्णमाला या लेखनपद्धति तथा पंजाब की तत्कालीन भाषा पर बहुत प्रकाश डालते हैं। अर्थात् तीसरी शताब्दी ई० पूर्व में उत्तरी भारत की भाषा और लिपि के अध्ययन के दृष्टिकोण से इनका बड़ा महत्व है।

मध्य तथा आधुनिक काल की समस्त भारतीय लिपियों का उद्गम प्राचीन ब्राह्मी लिपि से हुआ। यह लिपि बायीं ओर से दाहिनी ओर लिखी जाती थी। इस लिपि का सम्बन्ध आर्य लोगों से है। ब्राह्मी लिपि से 'गुप्त लिपि', 'कुटिल लिपि', 'प्राचीन नागरी,' 'शारदा-बंगला' आदि लिपियों का विकास उत्तरी शैली से हुआ। और दक्षिणी शैली से पश्चिमी, मध्य-प्रदेशी,[१] तैलगु-कन्नड़ी, ग्रन्थ लिपि, तमिल लिपि, कलिंग लिपि का विकास हुआ। यह स्पष्ट है कि भारत की आधुनिक लिपियों का मूलाधार ब्राह्मी ही है।

हमें यहां पर सभी आधुनिक लिपियों को न लेकर पंजाब में प्रचलित लिपियों के माध्यम से गुरुमुखी लिपि का उद्गम और विकास देखना है क्योंकि पंजाब में गुरुमुखी लिपि सम्बन्धी विभिन्न मत देखने को मिलते हैं।

शारदा:- शारदा लिपि कुटिल लिपि से निकली है। प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों सिक्कों, हस्तलिखित पुस्तकों में मिलती है। पंजाब में गुरुमुखी लिपि से पूर्व इसका **प्रचार** था। कश्मीर की 'शारदा देवी' के नाम से इसका नाम शारदा लिपि है। वास्तव में यह कश्मीर की लिपि है। इसका प्रचार पंजाब के अधिकतर हिस्से तथा कश्मीर में रहा है। अब इसका प्रचार कम हो रहा है क्योंकि इसका स्थान नागरी, गुरुमुखी आदि लिपियां ले रही हैं। शारदा लिपि गुरुमुखी की अपेक्षा टक टाकरी लिपि से अधिक मिलती है। और टाकरी लिपि गुरुमुखी लिपि से बहुत मिलती है।

१- विशेष विवरण के लिये गौरीशंकर हीराचंद ओझा की प्राचीन लिपिमाला के पृष्ठ ४२ पर देखें।

टाकरी लिपि:- शारदा लिपि का घसीट रुप टाकरी है। टाकरी का प्रचार पंजाब के उत्तर पहाड़ी प्रदेश में रहा है। गौरी शंकर हीराचन्द औझा के अनुसार, 'टाकरी नाम की उत्पत्ति का ठीक पता नहीं चलता परन्तु संभव है कि 'ठाकुरी' शब्द से इसकी उत्पत्ति हो अर्थात् राजपूत ठाकरों की लिपि अथवा 'टांक' जाति के व्यापारियों की लिपि होने के कारण इसका नाम टाकरी है।'[१]

टाकरी लिपि भी कुटिल लिपि से निकली है। गुरुमुखी और टाकरी आपस में काफी मात्रा में एक दूसरे से मिलते हैं। इनके २७ अक्षर ऐसे हैं जो एक दूसरे के साथ मिलते हैं। गुरुमुखी के केवल ८ अक्षर नहीं मिलते। और अ, इ, उ, ञ, ण, न, घ, म, और ड़ उसमें अधिक हैं। गुरुमुखी शारदा लिपि की अपेक्षा टाकरी लिपि से अधिक मिलती है।

लंडे:- गुरु नानक से पूर्व पंजाब में 'लंडे' लिपि प्रचलित थी। 'लंडे' का नवनिर्मित रुप ही गुरुमुखी कहलाया। ग्रियर्सन के अनुसार, 'पंजाब में 'लंडे' लिपि का सम्बन्ध 'टाकरी लिपि से है।' 'लंडा' का सुथरा हुआ रुप गुरुमुखी[२] और लंडे टाकरी का व्यवस्थित रुप है और देवनागरी लिपि के समान पूर्ण है।'

---

1. प्राचीन लिपिमाला - गौरीशंकर हीराचंद ओझा - १४६ -

2. Closely resembling landa is Takri, or Takri, the character employed in the Himalayas north of the Punjab, a refined variety of which is Dogri, the official character of Jammu, Takri leads us further north into Kashmiri. Here just as Gurmukhi is a polished form of Landa, we find the Sarda character employed in Kashmir by Hindus for all purposes. It is a polished variety of Takri, and is as complete as Devnagri.

- Linguistic Survey of India- Vol. IX, part I

G.A. Grierson. p.624.

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुटिल लिपि से ही 10वीं सदी में शारदा लिपि का विकास हुआ। आधुनिक काल की शारदा, टाकरी, लंडा, गुरुमुखी, डोग्री, चमैआली आदि लिपियाँ इसी से निकली हैं। गुरु मुखी लिपि शारदा, टाकरी तथा लंडे लिपियों से प्रभावित हुए बिना न रह सकी। इस लिपि का आदिकाल अन्य लिपियों के समान अशोक के समय में प्रचलित लिपियों में था।

गुरुमुखी लिपि:- बहुत से विद्वानों का कहना है कि गुरुमुखी गुरु के मुख से उच्चरित है। अर्थात् गुरुमुखी को गुरु अंगद देव ने बनाया। कुछ विद्वान इस विचार का विरोध करते हैं। अब हमें इन विद्वानों की विचारधारा को देखना पड़ेगा।

गुरुमुखी लिपि के बारे में ग्रियर्सन, लाइटनर तथा न्यूटन आदि विद्वानों ने विचार किया है। ग्रियर्सन के अनुसार गुरु अंगद के समय पंजाब में केवल 'लंडे' (मुड़िया, महाजनी) अक्षर ही लिखने के लिए प्रयोग में लाए जाते थे। गुरुवाणी के शब्दों को 'लंडे' में ~~मूमल~~ गलत पढ़े जाने की आशंका[1] रहती है और गुरु अंगद देव ने इस कारण अक्षरों को उन्नत करके उसे संवारा।

---

1. The Panjabi language is usually said to be written in the Gurmukhi alphabet indeed the name 'Gurmukhi is often applied most incormukhi language than there is a Devnagri one. As a matter of fact several languages have been written in Gurmukhi xxx the true alphabet of the Panjab is known as the landi or clipped xxxx It is said that in the time of Angad, the second sikh Guru this 'Landa' was the only alphabet employed in the Punjab for writing the vernacular. Angad found that Sikhs hymns written in Lande were liable to be misread and he accordingly improved it by borrowing signs from the Deva-nagri alphabet, and by polishing up the forms of the letter, soas to make them fit for recording the scriptures of the Sikh religion. Having been invented by him this characted became known as the Gurmukhi, or the alphabet proceeding from the mouth of the Guru. Ever since, this alphabet has been employed for writing the ~~Sick~~ Sikh scriptures and its use has widely spread mainly among members of that sect.

-Linguistic Survey of India- Vol.IX,part I, G.A. Grierson- p.624.

लाइटनर के मतानुसार गुरुमुखी गुरु नानक के मुख से निकली।[१] और डा० मोहन सिंह के अनुसार गुरु नानक देव की 'पट्टी' नामक वाणी में गुरुमुखी लिपि का मूल रुप विद्यमान था।[२]

गुरुमुखी लिपि के सम्बन्ध में गौरी शंकर हीराचंद ओझा का कहना है कि,'गुरु अंगद से पहले पंजाब में बहुधा 'महाजनी' लिपि ही व्यवहार में प्रचलित थी और संस्कृत पुस्तकें नागरी से मिलती हुई एक पुरानी लिपि में लिखे जाते थे। 'महाजनी' लिपि अपूर्ण होने से उसमें लिखा गया शुद्ध नहीं पढ़ा जा सकता, इस लिए गुरु अंगद ने धर्म पुस्तकों के लिए संस्कृत पुस्तकों की लिपि से वर्तमान पंजाबी लिपि बनाई। इस लिए उसको गुरुमुखी कहते हैं।'[३]

---

1. 'Gurmukhi, however, it is not a name for a mere character, as is supposed both by natives, including now even the Sikhs themselves and by Europeans. Etymologically and historically, it is the name of the language which ~~fo~~ flowed from the mouth of Guru Nanak and although his savings were committed subsequently to writing by Arjan, the character though not the name existed before Nanak."

   -A History of Indigenous system of education in Panjab- G.W. Leitner- p. 29.

2. Guru Nanak Deva left his alphabet poem 'Patti', so has Guru Amardas he also calls it 'Patti', Guru Angad Deva has left no such poem. A comparative study of the language structure, music and idiology of the two poems, leaves absolutely no doubt that all the poetry of Guru Nanak Deva indicted by himself in Gurmukhi script, passed on as the most precious legacy and heirloom to Guru Angad Deva then to Guru Amardas."

   -A History of Panjabi Literature-Dr.Mohan Singh Dewana p.115.

3. प्राचीन लिपिमाला- गौरी शंकर, हीराचन्द ओझा, पृ० १३०

इस बात को गुरुबख्श सिंह स्वीकार नहीं करते कि गुरु अंगद देव ने या गुरु नानक देव ने गुरुमुखी अक्षरों का निर्माण किया। उनके अनुसार गुरु नानक देव से पहले का साहित्य उपस्थित था और यह भी नहीं कहा जा सकता कि गुरुमुखी अक्षरों का क्रम गुरु अंगद देव के नाम से जोड़ने से पहले यह अक्षर नहीं थे। इस बात का खण्डन गुरुवाणी स्वयं करती है। 'कोई ३५ अक्षरों की वर्णमाला गुरु नानक साहब के बचपन के समय से ही मौजूद थी। इसको सामने रखकर गुरु नानक देव जी ने 'पट्टी' की रचना की।[१]

गुरुबख्श सिंह के अनुसार गुरु नानक देव से पहले पंजाब में 'सिद्धमात्रिका', 'अर्द्धनागरी' आदि लिपियां प्रचलित थीं। जिसे गौरी शंकर हीराचन्द ओझा ने पुरानी पंजाबी का नाम दे दिया। और यही गुरुमुखी नाम से सिक्खों द्वारा कहलाई गई।[२]

१- कोई ३५ अक्षरों की वर्णमाला गुरु नानक साहिब के बचपन के समय मौजूद थी और उस वर्णमाला में यह पैंतीस अक्षर उसी रूप में थे जिस रूप में आज गुरुमुखी वर्णमाला में है। पैंतीस अक्षरों की यह वर्णमाला पाधे से गुरु नानक जी ने सीखी थी और इसको सामने रख कर 'पट्टी' की रचना की।

-- गुरुमुखी लिपि का जन्म और विकास
डी० बी० सिंह- पृ० १४८

२- 'एक पुरानी पंजाबी लिपि पंजाब में प्रचलित थी जिसमें संस्कृत की पुस्तकें लिखी जाती थीं। ११वीं सदी ई० में बेरुनी, इसको और कई तरह के अक्षरों के साथ जो भाटीय तथा सिन्ध के उत्तरी भागों में लिखे जाते थे, अर्द्धनागरी के संयुक्त नाम के नीचे सम्मिलित करता है और इसको कश्मीर की 'सिध मात्रिका' और मालवे जो उज्जैन की उस समय की नागरी लिपियों के बीच बताता है। जो लिपि राय फिरोज के मकबरे की रचनाओं में प्रयुक्त हुई है। यह वही है जिसको आज हम गुरुमुखी कहते हैं। --- हम कह सकते हैं कि जिस संस्कृत पुस्तकों कीलिपि को ओझा जी ने पुरानी पंजाबी का नाम दिया है। ११वीं सदी में उसका नाम, 'अर्द्धनागरी' था, १३वीं सदी में उसे भाटीय देश के लोग

भाई कान्ह सिंह भी इसी बात का समर्थन[1] करते हैं कि पंजाबी बोली की वर्णमाला शारदा और टाकरी लिपि से निकली।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरुमुखी लिपि का जन्म गुरु अंगद देव से न होकर धीरे-धीरे अन्य लिपियों के समान हुआ क्योंकि गुरु नानक की रचना 'पट्टी' (आसाराग) से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुरु नानक से पूर्व पंजाब में गुरुमुखी अक्षर प्रचलित थे।

सिधोङाइआ:- गुरुमुखी वर्णमाला का[2] प्राचीन नाम 'सिधोङाइआ' है। इसका दूसरा नाम 'नमसते की पट्टी' भी था। इस वर्णमाला में अकारादि क्रम से भिन्न क्रम प्रचलित था। स, ध, ङ से यह वर्णमाला शुरु होती है। उच्चारण की सुविधा के लिए यह लयात्मक (सिध्धोङाइआ) नाम इस के लिए प्रचलित हो गया।

(पिछले पृष्ट से)

उसे 'भटाक्षर' कहते थे। सिक्खों ने इस लिपि का नाम गुरुमुखी अक्षर रख दिया।--- हिन्दी रुप।-'गुरु मुखी लिपि का जन्म और विकास
जी० बी० सिंह पृ० १५१-१५२

१- पंजाबी बोली की वर्णमाला जो शारदा और टाकरी लिपि से निकली है। इसमें सतिगुरों की वाणी को गुरुमुख स ने लिखे जिसका नाम गुरुमुखी प्रसिद्ध हुआ। - - - कई लेखकों ने लिखा है कि गुरुमुखी अक्षर गुरु अंगद देव ने रचे हैं, परन्तु यह ठीक नहीं। श्री गुरु नानक देव की रचित 'पट्टी' जो आसा राग में है उसके पाठ से शंका का निवारण हो जाता है कि ३५ अक्षरों की वर्णमाला उस समय मौजूद थी।
-- हिन्दी रुप- महान कोश- भाई कान्ह सिंह- पृ० ३१३

आदि ग्रंथ में 'सिंघडाइआ' का उल्लेख इस प्रकार हुआ है:-

'सिंघ डाइआ सिमरहिं --

(आसाराग महला ३ पट्टी) आदिग्रंथ, पृ० ४३४

इस सिघडाइआ' में वर्णक्रम इस प्रकार रखा है:-

अ· अं, क, ष, घ, ङ·
री, री, ल, ली, न क्ष,
ब, ज, स, क, त -- आदि।

'सिधीङाइआ' को 'बाराखड़ी' भी कहा है।[१] 'क' 'का' से लेकर 'कं', 'क:', तक बारहमात्राओं के लिए प्रयुक्त होता रहा है।

गुरु नानक ने अपनी 'पट्टी' में वर्णों को सकारादि क्रम में रखा है। परन्तु आज गुरुमुखी वर्णमाला में 'स',-- उ, अ, इ, स, ह-- चौथे स्थान पर आता है। गुरुनानक की पट्टी में इस 'स' को प्रारम्भ में ही रखा गया है।

'ससै सोइ स्रिसटि जिनि साजी' -- गुरुनानक ~~पट्टि~~ 'पट्टी' आदिग्रंथ पृ० ४३२
समना साहिबु एकु भइआ

(पिछले पृष्ठ से)

१- हरि जी ने 'दषणी उअंकार' की प्रस्तावना में राजा शिवनाथ के बच्चों को 'ओंनमस्ते' की पट्टी पढ़ाने का उल्लेख किया है:-
' अजहू ओं नमसते लिषि दीआ है। उही पढ़ावता हाँ। -- नानक जी कहिआ ए पंडिता तूं पढ देषाऊ नमसते की पट्टी। तब उह पंडित ले उठिआ ओं नमसते की पट्टी। लागा पढ़णै----। पोथी- पृ० १।

१- मिहरिवानु पोथी- पृ० १२

गुरु नानक 'पट्टी' में क्रम इस प्रकार रखा है:-

स इ उ ङं, क ख ग घ,
च छ ज ञ, ट ठ ड ढ ण
त थ द ध, न,प फ ब भ म[१]
य र ल व ड़, (ड़) ह अ। आदि ग्रंथ। पृ० ४३२-४३४

गुरु अर्जन देव ने 'बावन-अक्षरी' को सोदाहरण प्रस्तुत किया है। इसका प्रारम्भ वे ओअं (ओम्) से करते हैं। 'स' तथा 'घ' इसमें भी आदि में ही है। परन्तु कबीर की 'बावन-अक्षरी' (आदि ग्रंथ में) में वर्णक्रम नागरी के अधिक निकट है।

~~नन्न~~ अत: हम देखते हैं कि गुरु नानक देव की 'पट्टी' तथा गुरु अमरदास जी की 'पट्टी' और 'बावन-अक्षरी' जैसी उत्कृष्ट काव्य कृतियों का मूल्य वर्णमाला के क्रम को ध्यान में रखते हुए इतिहासिक है।

यह वर्णमाला पैंतीस अक्षरी के नाम से प्रसिद्ध है। इसी का प्रसिद्ध नाम गुरुमुखी लिपि है। गुरुमुखी का एक विशेष चिन्ह तथा पंजाबी की एक विशेष ध्वनि (ड्+ ह- ड़्) गुरु नानक की 'पट्टी' में है। यहां तक कि वह (ड़) तीसरे एक अमरदास की रचना 'पट्टी' में भी नहीं है। कबीर बावन-अक्षरी में भी यह ड+ ह - ड़ नहीं है।

आज गुरुमुखी लिपि का यह (ड़) पैंतीसवीं ध्वनि मानी जाती है।[१]

गुरुमुखी वर्णमाला-

उ अ इ स ह
क ख(ष) ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न

इसका उच्चारण स्थान मूर्धा है।

इसी प्रकार 'श तथा 'ष' के स्थान पर गुरुमुखी वर्णमाला में 'स' को ही भिन्न-भिन्न रूप से चिन्हित किया गया है क्योंकि 'ष,' 'ज्ञ,' 'क्ष' के लिए कोई विशेष चिन्ह पंजाबी में देखने को नहीं मिलते। इनके लिए ज्ञ- गि,ग्य, तथा 'क्ष' के लिए ष: इसी प्रकार 'त्र' के लिए 'त' के नीचे लकीर डालकर 'त्र' से काम लेते हैं। और यह स्थिति आज भी विद्यमान है।

एक अन्य विद्वान लेखक पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने 'बावन अखरी' [१] के सन्दर्भ में 'गुरु गिरारथ कोश' में इस प्रकार के शब्दों के चिन्ह दिए हैं।

संयुक्त ध्वनियां इस प्रकार चिन्हित की गई हैं:-

क्ष - (क + ष + अ) - ख (ख्व)
ज्ञ - (ज + ञ) ज्ञ
ष - - ष़

(पिछले पृष्ठ से)

प फ ब भ म
य र ल व ड़ - ३५ अक्षर।

१- बावन अखर:- दे पृ० दी ऊपर पचास अखर य बावन अखर लोकड़े। एते अखर संसकृत के हैं जिनकी सोलां का नाम 'अच' और 'स्वर' हैं। छत्तीस का नाम 'हल' और 'व्यंजन' है। गुरुमुखी से चार अखर स्वरों में अधिक है। स्वरूप स्वरों के ये हैं-- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। गुरमुखी की सांभी सतर भों बारां है। सासत्री (देवनागरी) की सांभी सतर भो सोला है। ऋ, ॠ, ऌ, ॡ ये चार अधिक है जो ग्रंथ साहब जी मो री, री, ली, ली पाप कमाणे (बावन अखरी) मो लिखे हैं।

ससे (स) ले वावे (व) तक इकतीस है। सासत्री मो छत्तीस है।

ष जैसे चिन्ह आधुनिक ध्वनि शास्त्र की दृष्टि से सही है। मूर्धन्य ध्वनियों के लिए ध्वनियों के नीचे बिंदी लगाने की व्यवस्था आज अन्तर्राष्ट्रीय है।

ट - Ṭikka   ड Ḍand   ठ Ṭha

नरोत्तम के उत्तरवर्ती लेखकों भाई कान्ह सिंह आदि ने 'ष', 'ण', के लिए 'ष' तथा 'ञ' चिन्ह दिए हैं अर्थात्--

ष- ष:
ण - ञ

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरोत्तम से पूर्व 'ण', 'ञ' तथा 'श' ष आदि ध्वनियों के लिए ध्वनि संकेत नहीं थे और पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने इनके लिए स्वतन्त्र ध्वनि संकेत अपनी तरफ से घड़े हैं। स्पष्ट है कि प्राचीन ध्वनियों को गुरुमुखी लिपि में प्रस्तुत करने का यह प्रयास प्रशंसनीय है।

देवनागरी:- देवनागरी लिपि का विकास भी प्राचीन काल की ब्राह्मी लिपि से धीरे-धीरे हुआ और यह ब्राह्मी की प्रतिनिधि लिपि कही जा सकती है। नागरी लिपि का प्रयोग उत्तर भारत में १०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से मिलने लगता है। १२वीं शताब्दी तक यह पूर्णत: विकसित हो गई। यह लिपि भारत की अन्य लिपियों के समान बायीं ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती है। इसकी वर्णमाला में ४५ मूल लिपि चिन्ह हैं जोकि अक्षर प्रधान है ध्वनि प्रधान नहीं।

(पिछले पृष्ठ से)

तालू मो बोलने वाला ष, मूरधमो बोलने वाला (ख) कंठ मूरध मो बोलने वाला बड़ा ण तालू नासा मो बोलने वाला ञ ये चार गुरुमुखी के हलों से अधिक हैं। ड़ाड़ा (ड़) अषर (लंड़े) लंडिड में अर गुरमुषी अषरों में है। सासत्री अषरों में नहीं। सासत्री वाले घड़ा धोड़ा आदि कार तले बिंदी लगाकर डडे (ड) अषर से लेते हैं। गुरमुषी मो सांझी सतर के मैल के। सभी अषर चुताली (४४) हैं। सासत्री से आठ कम है। इस लीये सासत्री बोली के पाठ गुरमुषी मो सुध नहीं लिषे जाते। चार सांझी सतर मो

गुरुबख्श सिंह के अनुसार गुरुमुखी लिपि देवनागरी लिपि से बहुत पुरानी है।[१] गुरुमुखी का ड, ङ (ड़) देवनागरी में नहीं है। तालवी 'श' के लिए 'स' और मूर्धन्य 'ष' के लिए भी यही 'स' रखा गया है। ग्रियर्सन के अनुसार गुरुमुखी लिपि का 'स' देवनागरी लिपि के 'स' का अक्षम वर्ण है और यह 'श', 'ष' के लिए कुछ नहीं करता।[२]

(पिछले पृष्ट से)

चार हर्फों भी बढ़ाए जावे तब सुध पाठ लिखा जावें। ग्रंथ साहब जी वासते नेम से पैंती का संकेत रहे। संसकृत फारसी पाठ लिखने हेत अवश्य बढ़ाए चाहीए। जैसे उड़दू पाठ लिखने हेत फारसी यों पे, छे, घे, ते, ठ, आदि अक्षर बढाए गए हैं। अरबी के अैन काफ आदि कह रफ लिखने हेत। सासुद्री में अकार ककार आदि को तलैबिंदु दीए गए हैं।

- गुरु गिरारथ कोश उत्तरार्द्ध - पंडित तारा सिंह नरोत्तम-पृ० ३७५

१- गुरुमुखी के अक्षर न केवल पुराने अक्षरों से ही बने हैं अपितु वर्तमान देवनागरी के चिन्हों से भी पुराने हैं। अब दरअसल पंजाब की तीनों लिपि देवनागरी से पुरानी प्रतीत होती हैं। शारदा के "अक्षर घ, ड़, छ, ठ, ण, त, थ, ढ, र, ल और ह नागरी के वही अक्षरों से अधिक पुराने हैं। इसी प्रकार टाकरी के १३ अक्षर घ, च, छ, ज, भ, ठ, ण, त, थ, न, फ, र और ल प्राचीन अक्षरों से अधिक मिलते हैं। परिणाम यह निकला कि पंजाब की सभी लिपियां अब वर्तमान देवनागरी से आरम्भिक रुप से अधिक नज़दीक है और गुरुमुखी तथा टाकरी और भी अधिक नज़दीक। तब तो यह स्पष्ट है कि गुरुमुखी एक पुरानी वर्णमाला है।

पंजाबी लिपि का जन्म और विकास- गुरुबख्श सिंह, पृ० १०४
परन्तु गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा जैसे विद्वान 'नागरी' अक्षरों को ही प्राचीन मानने के पक्ष में हैं।

२- Gurmukhi has only one sibilant स 'sa' corresponding to the Devnagri स . It has nothing to correspond to the

नागरी लिपि पंजाब में अधिक प्रचलित नहीं रही। नागरी की हस्तलिखित प्रतियां पंजाब में अधिक नहीं है।

फारसी लिपि:- Perso- पर्शो अरेबिक (Arabic) लिपि को सामान्यत: उर्दू कहा जाता है। पंजाब में इस लिपि का प्रयोग किसी न किसी रुप में मुसलमानों के साथ शुरु हुआ। रणजीत के समय फारसी राजदरबार की भाषा हो गई। कालान्तर में उर्दू पंजाब की बहुप्रचलित लिपि या भाषा बन गई।

शेख फरीद आदि सूफी कवि निश्चय ही इसी प्रकार की लिपि का प्रयोग करतेरहे होंगे। यहां तक कि पंजाबी के कितने ही कवियों ने अपनी कविता के लिए इसी लिपिका प्रयोग किया।

इस के साथ ही यह बात भी उल्लेखनीय है कि बहुत से विद्वानों ने उर्दू (भाषा) का विकास भी पंजाब में ही स्वीकार किया है। पंजाब के पूरे साहित्यिक और सांस्कृतिक वातावरण पर उर्दू बहुत छाया हुआ था।

पंजाब में लिपि समस्या

Script?

पंजाब में मुख्यत: तीन लिपियां प्रचलित थीं। गुरुमुखी, देवनागरी तथा उर्दू। १९वीं शती के अन्तिम दो दशकों में नागरी लिपि को लोक प्रिय बनाने का एक अभियान आर्य समाज के नेताओं ने पंजाब में चलाया। मुस्लिम जनता तथा कुछ उर्दू प्रेमियों ने उर्दू का नारा बुलंद किया और इस प्रकार उर्दू- हिन्दी-पंजाबी को लेकर

(contd from previous page)

Devnagri श sa or ष sha - these letters not being required for the Panjabi language when it is desired to represent the sound of sha as it appears in words borrowed from Arabic or Persian, a dot is put under स thus स़ sha:- Lingustic Survey of India Vol.IX, part I page.626.

१- पंजाब विच उरदू- प्रो० हाफिज़ महिमूद शीरानी

विभिन्न लिपियों का एक दु:खद संघर्ष पंजाब में हुआ। वस्तुत: इस संघर्ष के मूल में सन्तों की राजनीति थी। यही कारण है कि इस संघर्ष से तीनों लिपियों का प्रश्न तो पृष्ठभूमि में चला गया और तीन विभिन्न संप्रदायिक तत्व उभर कर सामने आ गए।

अंतत: भारत के विभाजन से उर्दू का प्रभुत्व कम हुआ। फलत: संघर्ष नागरी तथा गुरुमुखी लिपि में शुरु हुआ। परन्तु इस संघर्ष को एक आत्मघाती संघर्ष के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। पंजाब के पुनर्गठन और हरियाणा के पृथक हो जाने से नागरी (हिन्दी) का पक्ष भी कमज़ोर पड़ा है। तथा पंजाब में गुरुमुखी और पंजाबी की प्रभुता बढ़ी है।

अध्याय- द्वितीय

निर्मल सम्प्रदाय का उद्भव और विकास

(क)- आदि गुरु नानक : शिष्य परम्परा

(ख)- श्री चन्द और उदासी सम्प्रदाय

(ग)- निरंजनी सम्प्रदाय

(घ)- सुथरैशाही सम्प्रदाय

(ङ)- रामराई सम्प्रदाय

(च)- सैवापंथी सम्प्रदाय

(छ)- निरंकारी सम्प्रदाय

(ज)- नामधारी सम्प्रदाय

(झ)- निहंग

(ञ)- निर्मल सम्प्रदाय

निर्मल सम्प्रदाय का उद्भव और विकास

गुरु नानक: शिष्य परम्परा

सतिगुरु नानक प्रगटिआ
मिटी धुंध जग चानण होआ। `--- गुरुदास

गुरु नानक से पूर्व पंजाब का पूरा जीवन दिशाहीन था। लोगों के धार्मिक विश्वास डगमगा रहे थे। नैतिकता के आदर्श धूलिसात् हो रहे थे। पंजाब की जनता घोर निराशा और राजनैतिक दासता के चंगुल में बुरी तरह जकड़ी हुई थी। एक प्रकार से पंजाब की स्थिति अत्याचार और घोर उत्पीड़न की स्थिति है। इन सब के फलस्वरुप भारत में कई छोटे छोटे सम्प्रदाय बनते गए और धर्म के ठेकेदार अपने को ही सब कुछ समझने लगे।

ऐसे समय में गुरु नानक देव जी के व्यक्तित्व ने सामूहिक जनता पर काफी प्रभाव डाला। इन्होंने `न हिन्दू न मुसलमान` की प्रवृत्ति को अपना कर मानवी आचरण के सांचे में लोगों को ढाला। गुरु नानक की सबसे बड़ी शिक्षा यही थी कि ईश्वर एक, और सर्वव्यापी है। इनकी प्रतिमा तथा व्यक्तित्व से लोग इतने प्रभावित हुए कि बहुत भारी संख्या में इनके `शिष्य` बने।

उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन अपने पूरे यौवन पर थी। गुरु नानक आत्म चिन्तन में निमग्न रहकर नाम स्मरण, द्वारा प्रेमाभक्ति का उपदेश दिया करते। भक्ति ही इनकी दृष्टि थी। जिसमें इन्होंने ज्ञान, कर्म का अपूर्व सामंजस्य किया। गुरु नानक के पश्चात् सभी गुरुओं ने गुरु नानक सिद्धान्तों को अपनाए रखा।

गुरु नानक देव जी ने अपने अनुयायियों का संगठन कर उन्होंने करतारपुर में 'धरमसाल' बांधी। परन्तु इनकी मृत्यु के पश्चात् कई गुरु घर के विरोधी व्यक्तियों ने भिन्न-भिन्न नामों से अपने अपने सम्प्रदाय चलाए। प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपना सम्बन्ध गुरु नानक के पंथ से रखा। यह सम्प्रदाय किसी सैद्धान्तिक भिन्नता के कारण नहीं बने।

एच० एच० विलसन के अनुसार सिक्खों में भी ७ सम्प्रदाय ऐसे हैं जो गुरु नानक का प्रतिनिधित्व करते हैं। जो उनके सिद्धान्त पर चलते हैं। परन्तु थोड़ा बहुत अन्तर है। उनमें सबसे पहले उदासी सम्प्रदाय है।[१]

उदासी सम्प्रदाय

सिक्ख धर्म में सर्वप्रथम गुरु नानक देव के बेटे श्रीचन्द ने अपना अलग सम्प्रदाय बनाया। इनके मूल में यही कारण था कि गुरु नानक देव ने अपनी मृत्यु के समय इन्हें अपना उत्तराधिकारी न बनाकर गुरु घर से बाहर के व्यक्ति को बनाया। जिसके कारण निराश होकर ये घर से चले गए।

कुछ विद्वानों का कहना है कि उदासी सम्प्रदाय श्री चन्द द्वारा निर्मित न होकर बहुत समय पूर्व से चला आ रहा है। जैसे इतिहास बाबा श्रीचन्द में ज्ञानी ईश्वर सिंह ने कहा है, 'कि यह सम्प्रदाय कोई नवीन नहीं अपितु शिव, सुनकादि देवताओं के समय से और त्रेता युग श्री रामचन्द्र के समय से चला आ रहा है।[२]

१- "The Sikhs or Nanak shahis are classed under seven dictinctions all recognising Nanak as their primitive instructor and all professing to follow his doctrines, but separated from each by variations of practice or by a distinct and peculiar teacher. Of these the first is the sect of the Udasis-

The Religion Sects of the Hindus- H.H.Wilson,p.149.

२- इतिहास बाबा श्रीचन्द जी साहब अते उदासी सम्प्रदाय- गिआनी ईशर सिंह नारा- पृ० ३५१

कुछ विद्वान निम्नलिखित पंक्तियों से यही आशय लेते हैं कि श्रीचन्द का उदासी सम्प्रदाय गुरु नानक जी का ही है परन्तु यह धारणा गलत है।

बाबे भेष बणाइआ उदासी की रीत चलाई
चढ़िआ सो धनु धरति लुकाई--- भाई गुरदास

इसके अतिरिक्त गुरु नानक वाणी में भी गुरु नानक ने अपना परिचय 'उदासी' शब्द से दिया है:-

किस कारणि गृहु तजिओ उदासी। किसु कारणि इहु भेष निवासी
- - - - -
गुरमुखि खोजत भए उदासी। दरसन कै ताई भेषु निवासी।[१]

'उदासी' शब्द का मूल अर्थ वैराग्य भावना से भरपूर है। उदासी शब्द का अर्थ संसार में रहते हुए भी संसार की ओर से विरक्त रहने वाला व्यक्ति से हो सकता है। आदि ग्रंथ में उदासी शब्द का प्रयोग इसी सन्दर्भ में किया गया है। इसके अतिरिक्त 'जन्मसाखियों' में भी 'उदासी' शब्द का प्रयोग गुरु नानक की यात्राओं के सन्दर्भ में भी किया हुआ मिलता है। अर्थात् गुरु नानक की चार यात्राओं को उदासियों की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार यहां 'उदासी' शब्द का अर्थ उदासी सम्प्रदाय के साथ नहीं मिला सकते।

कनिंघम के अनुसार 'गुरु नानक के पुत्र ने वही किया जिसका उसके पिता को भय था। श्रीचन्द ने हिन्दुओं के उदासी सम्प्रदाय की स्थापना की। जिसके सदस्य सांसारिक कार्य व्यवहार के प्रति उदास रहते हैं।'[२]

१- आदि ग्रंथ- पृ० ६३६

२- "Shree Chand the son of Nanak, justified his father's fears and became the founder of the Hindu-sects of 'Udasis', a community indifferent to the concern of this world."

-- History of the Sikhs- Cunningham-p.473.

माई सन्तोख सिंह ने भी पंथ प्रकाश में उदासी सम्प्रदाय का संस्थापक श्रीचन्द को माना है।[1]

हम कह सकते हैं कि गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित मूल सिद्धान्तों को अपनाकर उदासी सम्प्रदाय की स्थापना गुरु नानक के बड़े पुत्र श्रीचन्द ने की। श्रीचन्द मोक्ष के लिए संसार का त्याग आवश्यक मानते थे।

सिक्ख इतिहास के अनुसार गुरु हरगोबिन्द सिंह ने अपने पुत्र गुरुदित्ता को श्रीचन्द को सौंप दिया जो इनके सर्वप्रथम चेले बने और इन्हें एक सेली टोपी तथा गले में एक माला पहना कर अपना शिष्य बनाया।[2]

१- 'गुरु नानक निज भेष जब गदी सहित उदार
श्री अंगद जी को दयो रिकी सिघ युतसार।
गुर नानक के सुत उभे श्री ससि लषमीदास।
गादी क्लेन श्री चंद रसु गयो रिस षास
षाक पाक पासी सपे ताक सरत प्रभेस।
बाहिर गाम ते तरु तरे बैठे रहे हमेस।
बरस द्वादस तहां ही साधिउ तप जप जोग।
फिर बारठ पिंड जा रहे उमर तहां बहु भोग।
सैली टोपी बषस निज चेला आपना थाप।
कह्यो तुमारा टिका जयो तयो हम कीउ आप।
या बिधि श्री चंद सुर्शि थीउ
- श्री गुरुदिते को शिश कीउ।'---

पंथ प्रकाश पृ० १२६६-१२७०

२- विशेष विवरण के लिए पंथ प्रकाश के पृ० १२७० पर तथा गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ रास- १-२ जिल्द ५ पृ० १३३१ पर देखें।

महानकोश के अनुसार[1] श्री चन्द की मृत्यु संवत् १६६६ को हो जाती है। गुरुदित्ता का जन्म १६७० को हुआ।

यह कैसे हो सकता है कि श्रीचन्द ने अपनी मृत्यु के उपरान्त जन्म प्राप्त करने वाले गुरदित्ता को दीक्षा दी होगी। ऐसी स्थिति में श्रीचन्द भाई गुरदित्ता को अपना शिष्य नहीं बना सके। परन्तु इस अनुश्रुति से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बाबा गुरदित्ता उदासी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। बाबा गुरदित्ता के[2] चार शिष्य 'बालू हसना', 'अलमस्त,' 'फूलशाह' और 'गोंयद' जी बहुत प्रसिद्ध हुए।

इन चार शिष्यों के अतिरिक्त इस सम्प्रदाय में ६ और महानुभावों द्वारा १० नामी उदासी ~~कह~~ कहलाए तथा 'चार धूनिया' एवं ६ 'बखशीश' जैसे संगठन उदासी सम्प्रदाय के बने।[3]

१- गुरदित्ता गुरु हरगोबिंद साहिब के बड़े सुपुत्र जो कातक सुदी १५ समत १६७० को माता दामोदरी के उदर से ठेठ डरोली-ज़िला फिरोज़पुर में जन्म लिया। गुरदित्ता ने धार्मिक और शस्त्र विद्या पिता की निगरानी में सीखी। - - - बाबा गुरदित्ता श्रीचन्द के चेले हुए और सर्वगुण सम्पन्न चार चेले बनाकर उदासी सम्प्रदाय को ~~सिक्खी~~ सिक्खी प्रचार के लिए हिन्दुस्तान में फैलाया।---- हिन्दी रुप। महानकोश- पृ० ३१२

२- बालू हसना फूल पुनि गोंदा अरु अलमसत
मुख उदासी इह भए बहुरो साध सम सत।-- गुरु प्रताप सूरज, ग्रंथ रासा-२,
जिल्द ५, पृ० १३३१

३- 'चार धूनि तथा ६ बखशीश मिलाकर दसनामी उदासी साधु ~~कहे जाते हैं~~ थे।
६ बखशीश यह हैं:-

१- सुथरे शाही- बखशीश गुरु हरिराय साहब
२- संगत साहिब - बखशीश गुरु हरिराय साहिब और गुरु गोबिद सिंह साहिब
३- जीत मलीए- बखशीश गुरु गोबिंद सिंघ साहिब
४- बखत मलीए- बखशीश गुरु हरिराय साहिब
५- मीहां शाहीए- बखशीश गुरु बहादुर साहिब
६- भगत भगवानीए- बखशीश गुरु हरिराय साहब।

कालांतर में उदासी सम्प्रदाय पर सन्यासियों का गहरा प्रभाव पड़ा। उन्हीं की वेश-भूषा तथा उन्हीं का अद्वैतवाद इन्होंने ग्रहण किया।

उदासी सम्प्रदाय का प्रसिद्ध डेरा प्रयाग में है परन्तु कनखल तथा काशी आदि स्थानों में भी इनके डेरे हैं। उदासी साधुओं के मूल सिद्धान्त पांच बातों पर आधारित हैं, ब्रह्म, माया, सत्य, ज्ञान तथा सदाचरण। गुरु नानक देव जी के समान अद्वैतवादी दृष्टिकोण रखा है।

प्राचीन उदासी साधु 'आदिग्रंथ' को ही अपनी धार्मिक पुस्तक मानते थे। परन्तु कालान्तर में 'आदिग्रंथ' के साथ-साथ अन्य वेदशास्त्र को भी 'प्रमाण कोटि' में रख लिया गया। इस सम्प्रदाय में 'सन्त रेण' का साहित्य बहुत उत्कृष्ट कोटि का है।

आज उदासी सम्प्रदाय सिक्ख पंथ से पृथक हो चुका है। 'सिंघ सभा आन्दोलन' के बाद उदासी साधुओं ने 'सिक्ख' पंथ के सभी चिन्ह हटा दिए। आदिग्रंथ का पाठ भी उदासी डेरों में इसके बाद बंद करवा दिया गया। वस्तुत: राजनीति और निजी स्वार्थों ने उदासी सम्प्रदाय को न केवल गुरु नानक मत से दूर किया। अपितु कई बार कई स्थानों पर सिक्खों के साथ उदासियों के सशस्त्र संघर्ष भी हुए। 'ननकाणा साहब' के उदासी महंत ने सन् १९२१ में सिक्खों को गोलियों से भुनवा दिया। इसी हत्याकाण्ड के कारण 'शिरोमणि गुरुद्वारा गुरु प्रबन्धक कमेटी' की स्थापना हुई और 'गुरुद्वारा कानून' पास हुआ।

इस प्रकार उदासी सम्प्रदाय गुरु नानक की विचारधारा को लेकर चला परन्तु धीरे-धीरे इसका स्वरुप गुरू नानक तथा पंथ विरोधी बनता चला गया।

(पृ पिछले पृष्ठ से)

उदासियों की वेश-भूषा मंजीठी चोला, सेली टोपी, हाथ में तुम्बा रखते हैं। पहले इस सम्प्रदाय के लोग केस, दाड़ी नहीं ~~कटवाते लिये~~ कटवाते थे। परन्तु अब बहुत से जटाधारी मुंडित, भस्म लाए, गेरुए वस्त्र पहने दिखाई देते हैं। धर्म ग्रंथ गुरु ग्रंथ साहब है। --- हिन्दी रुप।

महानकोश- पृ० ७

(३)- निरंजनी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के संचालक 'जंडियाला' निवासी 'हंदाल' जाट का जन्म संमत १६३० में हुआ।[1] तीसरे गुरु अमरदास के समय यह एक अनन्य सेवक हुआ। गुरु-घर के 'लंगर' की सेवा बड़े प्रेम से किया करता था। इसकी अटूट सेवा देखकर गुरु अमरदास जी ने प्रसन्न होकर 'मंजी'[2] बख्शी।[3] पंचम गुरु अर्जुन देव के समय तक भी यह गुरु-घर की सेवा करता रहा।

हंदाल प्राय: निरंजन- निरंजन शब्द का जाप किया करते। जिससे इस सम्प्रदाय का नाम निरंजन पड़ा। जंडियाला में सिद्धान्त और आचरण की दृष्टि से निरंजनी सम्प्रदाय गुरु नानक विचारधारा को अपनाए ~~हुआ~~ हुए था।

हंदाल की मृत्यु के पश्चात् इनका बेटा बिधि चंद गद्दी पर बैठा।[4] बिधिचंद ने प्राचीन मर्यादाओं के स्थान पर 'मनमतीआ' मार्ग अपनाया। इसने गुरु नानक साहिब

१- गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश- भाई कान्ह सिंह- पृ० ५३५

२- 'मंजी' शब्द धर्म प्रचार के केन्द्र के लिए प्रयुक्त होता रहा। मंची > मंजी।

३- 'दोऊ कर पीछे को हटाइ कर निजघर
सीस धरहु गुरु के चरन पर आन है।
हेर गुरु खुशी होइ ताके सिर कर धर
कीउ सो निहाल मंजी बखशी पछान है।' -- पंथ प्रकाश पृ० १२६०

४- 'और सब करम धरम छोड़े हिंदुअ के।
गुरु को भी छोड़ के सुतंत्र सदाए हैं।
पौत्रे हिंदाल के महंत होइ बिधी चन्द।
डूमणी मुसलमानी राखि घर ल्याए हैं।-- पंथ प्रकाश- पृ० १२६१

25407

की जन्मसाखी को भ्रष्ट करने का प्रयास किया अर्थात् जन्म साखी में मनमानी बातें लिखकर गुरु नानक को अपमानित करने की चेष्टा की तथा जन्म तिथि भी बदलने की कोशिश की। इन का डेरा आज अमृतसर के पास है। जनसाधारण में इस मत का प्रचार अधिक नहीं हुआ।

(४)- सुथरेशाही सम्प्रदाय

सुथरेशाही सम्प्रदाय की स्थापना 'सुथरा' नाम के व्यक्ति ने की। भाई कान्ह सिंह के[1] अनुसार 'सुथरा' का जन्म संमत १६७२ में 'बारा मूले' के पास बरामपुर गांव में हुआ। जन्म के समय ज्योतिषों के कहने पर इनके मां-बाप ने बाहर फेंक दिया। जिस[2] समय गुरु हरिगोबिन्द सिंह वहां से गुजरे तो लोगों ने इसे 'कुथरा' (गंदा) कहा। परन्तु हरिगोबिन्द ने इन्हें सुथरा व स्वच्छ कहकर बड़े लाड़-प्यार से परवरिश की और इसका नाम सुथरा रखा। जिसके नाम पर इस सम्प्रदाय की स्थापना हुई।

ट्रम्प के अनुसार इस सम्प्रदाय का[3] संस्थापक ~~सुचना~~ सुचा नाम का ब्राह्मण था जो गुरु हरिराय का समकालीन था[4]। दूसरे विद्वान इस पंथ की स्थापना का श्रेय गुरु तेग़ बहादुर को देना चाहते हैं। परन्तु पंथ प्रकाश के कर्ता तथा भाई कान्ह सिंह के अनुसार इस पंथ के संस्थापक सुथरा नाम का व्यक्ति था। सुथरा शाह गुरुघर का बड़ा प्रेमी हुआ तथा गुरु-हरिगोबिन्द की बड़ी सेवा की।

१- गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश- पृ० १५६

२- 'सिषा ने कह्यो उतारो उन भाषायो कुथरा है
बोले गुरु कुथरा नहीं है एह सुथरा। ३२- पंथ प्रकाश, पृ० १२८३

३- There founder ~~he~~ is said to have been a Brahman, named Suca. They took their origin under Guru Har Rai. This body which is still to be found in nearly every town to the Panjab has greatly degenerated."

-Sketch of the Religion on the Sikhs-
Ernest Tremmp.p.117

4. The Religion sects of the Hindus- H.H.Wilson-p.52.

इस सम्प्रदाय की प्रवृत्ति के बारे में कहा जाता है कि ये लोग भ्रमणशील भीखमांगना, गाना गाना, रहस्यमय प्रवृत्ति रखना, द्वन्द्वात्मक जीवन व्यतीत किया करते थे। ट्रम्प के अनुसार यह सार्वजनिक उपद्रवी तथा मतवालेपन और व्यभिचार के कारण ~~करबस्थत~~ कुख्यात थे।

इस सम्प्रदाय के लोग डंडे बजा कर भीख मांगा करते है। कई बार दुर्वचन भी बोला करते हैं। इस सम्प्रदाय में लोग अपने नाम के साथ 'शाह' शब्द का प्रयोग किया करते। सुथराशाही का प्रधान केन्द्र पठानकोट के निकट बुरहानपुर में है। आज कल इस सम्प्रदाय का अधिक महत्व नहीं है।

(५)- रामराई सम्प्रदाय

अन्य सम्प्रदायों की तरह रामराय के अनुयायियों का 'रामैया पंथ' भी उसी प्रकार चल पड़ा। इस सम्प्रदाय के संस्थापक गुरु हरराय के बड़े बेटे रामराय हुए इनका-जन्म संमत १७०३ में कीरतपुर में हुआ।

कहा जाता है कि औरंगजेब ने इस 'तुक' का अर्थ गुरु हरराय के बड़े बेटे से पूछा कि आदि ग्रंथ में यह जो बाणी है:-

'मिटी मुसलमान की पेडै पई कुम्हिआर।
घड़ि भांडे इटा कीआ जलदी करे पुकार।
जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआर।
नानक जिनि करते कारणु कीआ सो जाणै करतारु- आदिग्रंथ पृ० ४६६

'मिट्टी मुसलमान की' क्या यह ठीक है। परन्तु रामराय ने यह उत्तर दिया कि शुद्ध पाठ 'मिट्टी मुसलमान की न होकर' मिट्टी बेईमान की' है। जिससे औरंगजेब प्रसन्न हो गया। परन्तु जब गुरु हरराय को पता चला कि रामराय ने औरंगजेब की खुशामद के लिए गुरु नानक साहब की वाणी को गलत कहा है तो वे इस बात को सह न सके और उन्हें हमेशा के लिए निकाल दिया।

बाबा राम राय घर छोड़कर, औरंगजेब से ज़मीन लेकर देहरादून में रहकर अपना अलग सम्प्रदाय बनाया। परन्तु आज अन्य सम्प्रदायों की तरह इस सम्प्रदाय का अधिक महत्व नहीं।

(६)- सेवापंथ सम्प्रदाय

सिक्ख धर्म के अन्य सम्प्रदायों में सेवापंथ का अधिक महत्व है। सेवापंथ के नाम से ही ज्ञात होता है कि इस सम्प्रदाय का उद्देश्य सांसारिक बन्धनों से ऊपर उठकर संसार से पलायन करना नहीं अपितु श्रम अपरिग्रह, अहिंसा आदि द्वारा संसार की सेवा करना है। इस सम्प्रदाय की स्थापना कन्हैया नामक एक व्यक्ति ने की। भाई कन्हैया गुरु तेग बहादुर और गुरु गोबिन्द सिंह के प्रमुख सेवकों में से थे। इनके शिष्य सेवाराम हुए। सेवाराम के नाम से ही सेवापंथ की स्थापना हुई।

सेवापंथ में आदि ग्रंथ ही प्रामाणिक माना जाता है। इसी का पाठ तथा प्रवचन सेवापंथी डेरों में होता है। गुरु वाणी के सैद्धान्तिक नियमों में ही दृढ़ आस्था रखते हैं।

भाई कन्हैया की शिष्य परम्परा में सेवाराम और अड्डण शाह के नाम प्रसिद्ध है।[१] भाई कान्ह सिंह के अनुसार इनका मशहूर डेरा 'थल' (सिंध सागर दोआबा) में है।

इस सम्प्रदाय के कई विद्वानों ने पर्याप्त साहित्य भी रचा। इन के साहित्य की देन गद्य-पद्य के क्षेत्र में है। हरिभजन सिंह के अनुसार इसमें मौलिक, अनुदित, मुक्तक, प्रबन्धात्मक गद्य-पद्य एवं मिश्रित सभी प्रकार की रचनाएं पाई जाती हैं।

१- गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश- पृ० ३८

यह साहित्य इतना विशाल तो नहीं किंतु सेवापंथ के सम्पूर्ण स्वरुप का दिग्दर्शन कराने के लिए अपर्याप्त नहीं है।[1] इनकी साहित्यिक रचनाएं `पारसभाग' और `योग वासिष्ट भाषा' बहुत प्रसिद्ध हैं। इन पर वेदान्त और सूफी मत का प्रभाव देखने को मिलता है।

निष्कर्ष यह है कि इस सम्प्रदाय के लोग आज भी नि:स्वार्थ सेवा, कर्मठजीवन, घोर परिश्रम द्वारा जीविकोपार्जन करने पर बहुत बल देते हैं। तथा ये लोग सफेद टोपी, सफेद पगड़ी, सफेद कच्छ वा धोती पहनते हैं।

(७)- निरंकारी सम्प्रदाय

१९वीं सदी के आरम्भिक वर्षों में नामधारी सम्प्रदाय के समान निरंकारी सम्प्रदाय भी अपना विशेष स्थान रखता है। इस समय सिक्ख पंथ की मूलभूत मान्यताओं के स्थान पर प्राचीन `जड़वाद' प्रचलित हो चुका था। अज्ञान रुपी अंधेरे में भटकने वाले सिक्खों के उद्धार के लिए सर्वप्रथम भाई दयालदास ने निरंकारी सम्प्रदाय को प्रवर्तित किया और गुरुमत का प्रचार करना आरम्भ किया।

बाबा दयाल जी का जन्म १५ वैसाख संमत १८४० को पेशावर में हुआ। छोटी अवस्था से ही इनकी वृत्ति भक्तिमयी थी और धर्म प्रचार करने की प्रेरणा इन्हें अपने मामा मिलखा सिंह से प्राप्त हुई। हर समय `निरंकार' शब्द का जाप करते। `धन निरंकार,' `धन-निरंकार' और निराकार की भक्ति को दृढ़ करते रहने के कारण इनकी संज्ञा निरंकारी हुई।[2] गंडा सिंह के अनुसार भी बाबा दयाल सिंह प्रचार करते

१- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य- डा० हरिभजन सिंह, पृ० १५२

२- गुरु नानक ने पारब्रह्म को कईबार निरंकार नाम से याद किया है।
`निरभउ निरंकार दइअलीआ। जीअ जंत सगले प्रतिपलीआ।आदि ग्रंथ पृ० १००४
`निरभउ निरंकारु सचु नामु।जाका कीआ सगल जहानु। - आदि ग्रंथ पृ० ४६५
`दिआल जी हर वेले निरंकार शबद दा जाप करदे अते मूरतीपूजा आदि दे विरुध निराकार दी भगती द्रिड़ाउंदे सन, इस लई निरंकारी संग्या होई,

समय 'पिआरिउ जपो धन-निरंकार' कहा करते।[१]

उस निरंकार का ही जाप करो, उसी को ही मानो, एक निरंकार की ही पूजा करो, देहधारी और पत्थरों की पूजा छोड़ दो। यद्यपि धर्म के ठेकेदारों ने इनका विरोध किया परन्तु फिर भी शुद्ध निरंकार की आराधना करते रहे। इनकी विशेष श्रद्धा गुरु नानक देव के ही पदों के गायन की तरह रही।

इनका प्रधान केन्द्र रावलपिंडी में था। इन्होंने समाज सम्बन्धी सुधार भी किए। प्राचीन विवाह के रीति के बदले 'आनंदकारज' की मर्यादा की स्थापना की। विधवा-विवाह तथा अन्य कर्मकांड सम्बन्धी सुधार किए।

बाबा दयाल दास की मृत्यु १६११ विक्रमी को हुई और इनके पश्चात् इनके सुपुत्र बाबा दरबारा सिंह निरंकारी सम्प्रदाय की गद्दी पर विराजमान हुए। इनके पश्चात् इनके छोटे भाई रत्नचंद प्रसिद्ध निरंकारी हुए। इन्होंने भी गुरुमत का प्रचार किया।

निरंकारियों की एक शाखा बाबा अवतार सिंह द्वारा संचालित हुई जिनका प्रधान केन्द्र देहली में बना। यद्यपि इनके प्रचार का आधार बहुतायत से गुरुवाणी पर ही होता है परन्तु इन्होंने गुरुवाणी मर्यादा अनुसार न चल कर एक पुरुष को अवतार रुप मानकर उनकी पूजा किया करते। प्रत्येक शिष्य एक दूसरे के चरणों का स्पर्श करता है।

बहुत से विद्वानों का विचार है कि 'निरंकारियों' को नास्तिक कहा जाना चाहिए।[२] 'निरंकारियों' को गुरु नानक के पंथ से पतित मानने वालों की संख्या काफी है। खुशवन्त सिंह तथा कई विद्वानों ने इस बात का समर्थन किया है।[३] वस्तुत: इनमें ग्रंथ पूजा के स्थान पर व्यक्ति की पूजा गुरु नानक के मत के अनुकूल नहीं है।

(पिछले पृष्ठ से)

होई, अते इन्हां दी संप्रदाय दी निरंकारीए अलपई।'- महान कोश-पृ० ५३५

१- पंजाब- गंडा सिंघ, पृ० ६२

१- शमशेर सिंह अशोक ने इन्हें नास्तिक कहा है।

२- विशेष विवरण के लिए देखें- सिक्ख इतिहास वल्ल- गंडा सिंह

(८)- नामधारी या कूका लहर

नामधारी सम्प्रदाय एक धार्मिक आन्दोलन था। उस समय सिक्खों का झुकाव हिन्दू धर्म की ओर बढ़ता जा रहा था। तथा विचारधारा में कई परिवर्तन आए जिससे यह ब्राह्मण धर्म-ग्रंथ, मूर्ति पूजा, पाठ में विश्वास करने लगे। ऐसे समय सिक्ख धर्मको सुरक्षित रखने का श्रेय नामधारी सम्प्रदाय को ही है। जिन्होंने सिक्खों में उत्पन्न कुरीतियों को दूर कर नाम महिमा अर्थात् 'नाम' को अपनाने का धर्मोपदेश दिया। अपने जीवन का आधार नाम ही बनाया। नामधारण करना, नाम का जाप करना, नाम-स्मरण ही इनका उद्देश्य है।

डा० गंडा सिंह के अनुसार इस सम्प्रदाय का आरम्भ अभ्यासी भक्त जवाहर मल जी से हुआ। जो काफी प्रसिद्ध महापुरुष हुए। ये लोग नामस्मरण में हमेशा मस्त रहने के कारण लोगों में साईं के नाम से प्रसिद्ध हैं।[1]

बहुत से महानुभाव नामधारी सम्प्रदाय के संचालक भाई बालक को मानते हैं क्योंकि इस सम्प्रदाय का विकास इन्हीं से हुआ। भाई बालक सारा समय भगवान की याद, गुरु ग्रंथ साहब के पाठ और कथा कीर्तन में बताया करते थे। पंथ प्रकाश के अनुसार इनकी भक्ति का मुख्य स्थान 'हजरो' था परन्तु धीरे धीरे यह माझे और मालवे तक फैलगई। भाई बालक ने अन्त समय में कुछ खास बातें अपने सम्प्रदाय के लोगों को अपनाने के लिए कही। उठते-बैठते, सोते जागते वाहिगुरु का भजन करें, आठ पहर में तीन बार स्नान करें, चमड़े के डोल में से पानी न पीएं, अपने गुरु भाइयों के बिना फिर किसी और के हाथ से प्रसाद न ले, विवाह शादी आनंद रीति से करें और खर्च न करें, प्रत्येक मास एक रुपये चार आने का कड़ाह प्रसादि वाहिगुरु के नाम दें, लड़की को दाज में कुछ न दें, मास न खाए, शराब न पीए, भिक्षा न मांगे, 'किरत कमाई करके गुजारा करें। सिर की पगड़ी में एक कृपाण रखे, झूठ न बोले, व्यभिचार न करें।[2]

१- पंजाब- गंडा सिंह- पृ० ६६

२- वही, पृ० ६७

इन नियमों को देखकर कहा जा सकता है कि नामधारी सम्प्रदाय ने न केवल धर्म के क्षेत्र में ही अपितु समाज के क्षेत्र में भी सुधार करने का प्रयत्न किया यद्यपि इन्हें इसमें इतनी सफलता नहीं मिल पाई परन्तु उनका ध्यान इसी ओर ही लगा रहा।

तेजा सिंह के अनुसार 'सिक्खों में पुराने भक्ति पूर्ण भाव को पुनर्जीवित करने की सरसराहट और उस समय में प्रचलित आचरण की शिथिलता के विरुद्ध यह प्यूरिटन आन्दोलन प्रतिवाद करता था। गुरुद्वारों के उत्तरदायित्व में पुरोहितों का अन्ध विश्वासी और अनैतिक व्यवहार के विरुद्ध यह प्रभावशाली आन्दोलन था।'[१]

भाई बालक सिंह के तीन प्रसिद्ध चेले हुए। एक इनके भाई मानसिंह के पुत्र कान्ह सिंह दूसरे भाई लाल सिंह अमृतसर में तथा तीसरे भाई रामसिंह भैणी जिले में प्रसिद्ध हुए।

राम सिंह:- भाई रामसिंह इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध पुरुष थे। छोटी अवस्था में ही राम सिंह की रुचि धर्म की तरफ थी। प्रारम्भ में इन्होंने सिक्ख सेना में काम किया। परन्तु मन की शान्ति के लिए भिन्न-भिन्न संप्रदायों के शिष्य बने। कभी उदासी सम्प्रदाय के, कभी निर्मल सम्प्रदाय के परन्तु इन्हें मन की शान्ति नामधारी सम्प्रदाय में ही मिली।

नामधारी आन्दोलन को 'कूका लहर' से भी पुकारा जाता है। इनके लिए कहा जाता है कि ये लोग मस्ती में आकर आराधना के समय सिर हिला-हिलाकर नाचते, गाते और चिल्लाते हैं। सत्-श्री-अकाल कहते-कहते भावावेश में आजाने से इनके सिर से पगड़ी गिर जाती है और बाल बिखर जाते हैं। जिससे इनका नाम

१- This Puritan movement was a protest against the prevailing laxity of morals and sought to revive the old devotional spirit among the Sikhs. It was a vigorous campaign against the immoral and superstitious practices of the priests in charge of Gurdwaras."

-- Essays in Sikhism- Teja Singh- p.120-121.

कूका' पड़ा।[१]

खुशवन्त सिंह के अनुसार 'राम सिंह निरामिष और अतिसंयमी जीवन व्यतीत किया करता था और उसके अनुयायी सफेद वस्त्र और माथे पर चपटी पगड़ी बांधा करते थे। नामधारी गुरुमंत्र पर बहुत बल दिया करते और घंटों राग अलापते हुए चीखें मारने लग पड़ते।[२]

इन सब के अतिरिक्त राजनैतिक क्षेत्र में भी कूका आंदोलन अपना महत्व रखती है। कूका आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य सिक्खों में धार्मिक जागृति पैदा करना था। नामधारी सिक्ख किसी भी तरह से राजनैतिक दृ शक्ति के साथ सम्बन्ध नहीं रखना चाहती थी अर्थात् न अदालत में जाना, न विदेशी कपड़ा पहनना अपितु विदेशी राज्य के विरुद्ध उनका पहला प्रतिकर्म था। कुछ कूके सरकारीराज्य विरुद्ध बातें किया करते थे। जिससे सरकारीअवसर जो १८५७ के गदर से डरे हुए थे, का यह विचार था कि ये लोग हमारे विरुद्ध है, इन्होंने इस सम्प्रदाय के साथ बड़ी हिंसा की और इस राजनैतिक और बागी आन्दोलन कह कर तोड़ा। जिसकेपरिणामस्वरूप में कई

१- पंथ खालसे मै साष कूके सिघं धारी पैष
नाम की खुमारी पाष राषत महान हैं।
कूक मारने ते कूके माषत अचूके लोग
रषै हूं रहित साधु बिपन तै जात है।

- पंथ प्रकाश- पृ० १२६६

अथवा

शुरु शुरु विच भाई राम सिंघ दे शरधालू भी साई जवाहरमल देस में तो चलीआ रही परपाटी अनुसार जगिआसी जो नाम अभिआसी करके ही परसिध सन पर चूंकि कई वारी इह हाल विच मसत होके चीकां (कूकां) मार उठदे सन अर दसतार उतार के नचणा टपणा लग जांदे सन, इस लई इहनां इन्हां दा नांउ कूके पै गिआ।

- पंजाब - गंडा सिंह, पृ० १०२

२- "Ram Singh enjoined strict vegetarian and austere living. His

कूकों को तोप से उड़ा दिया गया और कुछ को देश-निकाला दिया गया। उनमें से भाई राम सिंह को रगून भेजा गया। परन्तु नजरबन्दी के दिनों में बाबा राम सिंह और नामधारी सिक्खों कोमान प्रतिष्ठा और बढ़ती गई।

गंडा सिंह के अनुसार कूके सम्प्रदाय से सम्बन्धित लोग[१] गुरु की वाणी को ही पवित्र समझते थे। केवल गुरु गोबिन्द सिंह ही गुरु है।

निष्कर्ष यह है कि नामधारी आन्दोलन का उद्देश्य धार्मिक सुधार का था। परन्तु धर्म के साथ साथ समाज, राजनैतिक सुधार पर भी इन्होंने बल दिया। धर्म के क्षेत्र में यह नाम, बाणी, कीर्तन की प्रेरणा दिया करते थे। समाज में 'आनंद' मर्यादा के अनुसार विवाह शादी पर बल देते थे। शराब, तम्बाकू और व्यभिचार से बचने का उपदेश देते थे।

नामधारी संप्रदाय के संगठन में जहां धर्म-चर्चा है वहां धार्मिक क्षेत्रों में क्रांतिकारी सुधारों की आवाज़ भी उठाई गई है। इसी प्रकार समाज तथा राजनीति कीदृष्टि से भी यह सम्प्रदाय प्रगतिशील कहा जा सकता है।

(ङ)- निहंग:-

सिक्ख धर्म की रक्षा हेतु इस सशस्त्र सम्प्रदाय को संगठित किया गया। 'निहंग' शब्द फारसी का है और इसका मूल अर्थ भयंकर आदि है। 'निहंग' का शब्दार्थ निशंक, निर्भीक समझा जाता है।

(पिछले पृष्ठ से)

followers begain to dress in pure white and wrapped their turbans flat across the forehead.The Namdhari placed great emphasis on the incantation of prayer. Hours of chanting of-them produced a state of frenzy which made them shriek--The Sikh today-Khushwant Singh, p.52

१- विशेष विवरण के लिए 'कूकिआं दी विथिआ- गंडा सिंह पृ० ३६ पर देखें।

नील वस्त्रधारी तथा माला, खड्ग आदि शास्त्रों से सुसज्जित निहंग सिक्ख सम्प्रदाय के प्रमुख प्रहरी हैं। निहंग लोग 'अकाले' के उपासक हैं। तथा निरंतर भ्रमण करते हैं। अपनी विचित्र जीवन पद्धति तथा अपनी युद्ध या कलह प्रियता के कारण निहंग काफी प्रसिद्ध हैं।

निहंग सम्प्रदाय के सम्बन्ध में भाई कान्ह सिंह का कथन है कि 'साहबजादा' 'फतेहसिंह' सिर पर 'दमाला' लपेट कर विनोद करते हुए अपने पिता गुरु गोबिन्द सिंह जी के पास आए। जिससे देख कर[1] गुरु गोबिन्द सिंह जी ने कहा कि इस रुप का भी सिक्खों में एक पंथ होगा।

भाई सन्तोखसिंह 'गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ' में लिखते हैं कि गुरु[2] गोबिन्द सिंह ने भाई मनी सिंह को वर दिया कि तेरा पंथ निहंग पंथ चलेगा।

निहंग सम्प्रदाय सिक्ख धर्म[3] में कट्टर पंथी है। निहंगों का खाना पीना बोलचाल सब सिक्खों से निराला है। यद्यपि धर्म-संगठन की दृष्टि से 'निहंगों' का महत्व सिक्ख इतिहास में बहुत है। परन्तु इनका साहित्यिक महत्व कदाचित् नहीं है।

१- महान कोश- पृ० ५२७

२- हुवै प्रसंन बर देवत जीवै
पंथ षालसे में तब होवै
तुम सम वेष सुभाउ बिसाली
नाम निहंग अनेक अकाली।'-

गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ।

३- 'पंथ जयी निहंगन का थीउ, कहि दीउ तैसे
बषशश गुरु की दिषा दई बिसाली है
सम्न षान पहिरानि बोल चाल रीति इनहूं की
और सब सिंघन औ जगते निराली है-- पंथ प्रकाश पृ० १२६५

(१०)- निर्मल सम्प्रदाय: विकास: इतिहास

निर्मल सम्प्रदाय की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुत मत भेद हैं। निर्मल पंथ का कब निर्माण हुआ? इसके संस्थापक कौन हुए? इसके नियम उपनियम क्या हैं? निर्मल सम्प्रदाय सम्बन्धी इन सब प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देना सरल नहीं है।

कुछ निर्मल लेखकों ने इस सम्प्रदाय का इतिहास लिखने का प्रयास अवश्य किया है। मुख्यत: ये चार रचनाएं ही इस सम्प्रदाय के इतिहास सम्बन्धी देखने को मिली हैं:-

१- ज्ञानी ज्ञान सिंह कृत- 'निर्मल पंथ प्रदीपिका'।
२- स्वामी अर्जुन सिंह मुनि कृत- 'श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा।'
३- महन्त गणेशा सिंह कृत- 'निर्मल भूषण अथवा इतिहास निर्मल भेष'।
४- महन्त दयाल सिंह कृत- 'निर्मल पंथ दर्शन'

उपलब्ध सामग्री के आधार पर हमारे सामने 'निर्मल' वर्ग की उत्पत्ति सम्बन्धी दो मत आते हैं।

(१)- कुछ विद्वान 'निर्मल' वर्ग का आरम्भ गुरु नानक देव से मानते हैं।
(२)- दूसरे गुरु गोबिन्द सिंह से निर्मल वर्ग की स्थापना मानते हैं।

गुरु नानक:निर्मल वर्ग:- 'निर्मल' वर्ग के विद्वान मुनि अर्जुन सिंह, गणेशासिंह महन्त दयाल सिंह तथा ज्ञानी ज्ञान सिंह 'निर्मल' वर्ग का आरम्भ गुरु नानक देव जी से मानते हैं।[१]

१- निर्मल पंचायती अखाड़ा- मुनि अर्जुन सिंह- पृ० १५

महन्त दयाल सिंह के अनुसार 'गुरु नानक देव ने प्राणिमात्र को संसार समुद्र से पार उतारने के लिए एक ईश्वर की भक्ति, नाम स्मरण रूप 'निर्मल' वर्ग स्थापित किया। यद्यपि गुरु नानक ने अपने पंथ का स्वयं नाम नहीं रखा परन्तु उनके अनुयायी शिष्य सेवकों द्वारा इस वर्ग का नाम निर्मल पंथ प्रसिद्ध हुआ।[१] परन्तु भक्ति और नामस्मरण गुरु नानक ने जन सामान्य के लिए विहित बताया है। केवल निर्मल वर्ग से ही इसका सम्बन्ध नहीं है।

ज्ञानी ज्ञान सिंह के अनुसार:-

'निरमल भेष अपार तिस बिन अवर न कोई।'

तथा 'नानक सन्त निर्मल भयो जिन मन बसिया सोय।'

ज्ञानी जी के अनुसार 'यह पंथ खास परमेश्वर का है। इस लिए इसका नाम खालसा पंथ है।[२] इस दृष्टि की अवैज्ञानिकता स्वयं स्पष्ट है।

गणेशा सिंह के अनुसार भी गुरु नानक जी ने 'निर्मल' वर्ग प्रचलित किया।[३]

परन्तु यह बात 'निर्मल' लेखकों की ठीक नहीं है क्योंकि गुरु नानक का धर्म पूर्ण मानव जाति के लिए था। किसी विशेष वर्ग के लिए नहीं। किसी ~~विशर्ष~~ विशिष्ट धर्म सम्प्रदाय के लिए उनका उपदेश था ही नहीं।

१- देखिए 'निर्मल पंथ दर्शन -- महन्त दयाल सिंह- पृ० ११४

२- 'निर्मल पंथ प्रदीपिका'--- ज्ञानी ज्ञान सिंह- पृ० १२-१३

३- 'विचार करके देख लिआ जावे तो गुरु चेले दा सांगो-पांग रीति, रसम रिवाज, निरमलिआं विच अज तक उहो चलिआ आ रिहा है जेहा कि गुरुघर विच प्रचलित सी, इस रीती दा प्रचार सथिर रखण वासते ही निरमल मत प्रसिध कीता, जोकि जन्मसाखी नानक प्रकाश, नानक चंद्रोदय, पंथ प्रकाश, इतिहास गुरु खालसा अते तवारीख गुरु खालसा, सूरय प्रकाश आदि पड़न तो संपूरण पता लग सकता है इनां ग्रंथा विच श्री गुरु जी दा सन्त भेष लिख्या है, सो संत भेष निरमला नहीं तो इस नालों भिंन होर कौन मत है।'- निर्मल भूषण-गणेशा सिंह, पृ० १०-११

कुछ विद्वान गुरुवाणी में 'निर्मल' शब्द का प्रयोग देखकर 'निर्मल' वर्ग को गुरु नानक से सम्बन्धित करना चाहते हैं। उनका कहना है कि निर्मल सम्प्रदाय के लिए ही 'निर्मल' शब्द का प्रयोग हुआ है।[१] परन्तु यह मत बिल्कुल भ्रान्त है। गुरु नानक ने 'निर्मल' शब्द साधारण अर्थ में प्रयुक्त किया है। किसी सम्प्रदाय विशेष से इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

वस्तुत: आदि ग्रंथ तथा नानक के साथ 'निर्मल' वर्ग को संबंधित करने का प्रयास न केवल इतिहास विरुद्ध ही है, बल्कि यह प्रयास सत्य को छिपाने का असत् प्रयास भी कहा जा सकता है।

खालसा: निर्मल:- डा० हरिभजन सिंह के अनुसार 'निर्मल' फारसी शब्द 'खालिस' का संस्कृत पर्याय है। इस दृष्टि से निर्मल पंथ खालसा पंथ से भिन्न नहीं है। सभी निर्मल पंथी लेखक अपने आपको खालसा पंथ का अभिन्न अंग मानते रहे हैं। जिस प्रकार सिक्ख विद्वान गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा प्रवर्तित खालसा पंथ को सिक्ख मत से अभिन्न मानते हैं।[२]

कंवर मृगेन्द्र सिंह के अनुसार गुरु गोबिन्द सिंह ने अपनी नई दृष्टि की सूचना देने के लिए दो शब्द प्रयुक्त किए। एक 'निर्मल' (संस्कृत) तथा दूसरा इसका

१- 'निरमल भेष अपार तास बिन अवर न कोऊ'
'कलियुग नानक निरमला पंथ चलायो आए
वेद कतेबों बाहरा जपदे एके खुदाए।'
'नानक नाम रते से निरमले साचे रहे समाए
'नानक हरिजन निरमले
'सतसंग होइ निरमला चु के जन की जोह'
'सबद सलोहे से जन निरमल।' आदि
विशेष विवरण के लिए निर्मल पंथ प्रदीपिका पृ० १७, निर्मल पंथ दर्शन, पृ० १०६ भाग एक देखें।

२- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य- डा० हरिभजन सिंह- पृ० १६१

पर्यायवाची फारसी शब्द 'खालसा'।[1] ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। दोनों का पर्याय 'शुद्ध' है।

भाई कान्ह सिंह के अनुसार 'निर्मल' पंथ का नाम[2] गुरु गोबिन्द सिंह जी ने 'अमृत' पान कराने के बाद 'खालसा' शब्द में बदला है।

अधिकतर लोग इन दोनों शब्दों (सम्प्रदायों) को पर्यायवाची मान लेने के पक्ष में हैं। परन्तु वस्तु स्थिति इस मत का समर्थन नहीं करती। पर्यायवाची शब्द के अन्तरमात्र से दो विभिन्न सम्प्रदायों की स्थापना सम्भव नहीं जान पड़ती।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'खालसा' जहां एक कर्तव्य-परायण सिपाही, एक सद् गृहस्थ के रुप में प्रचलित हुआ, वहां 'निर्मल' शाखा केवल विरक्त साधु सन्यासियों के लिए तैयार की गई।

दशम गुरु निर्मल वर्ग: - निर्मल वर्ग की कुछ घटनाएं गुरु गोबिन्द सिंह के समय में घटित हुईं। ये घटनाएं 'निर्मल' वर्ग की उत्पत्ति के बारे में कुछ प्रकाश डालती हैं। कहा जाता है कि गुरु गोबिन्द सिंह अपने शिष्यों को न केवल शस्त्र विद्या में निपुण देखना चाहते थे अपितु साहित्य के क्षेत्र में भी निपुण देखना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने पंडित रघुनाथ को संस्कृत पढाने के लिए कहा। पंडित ने सिक्खों की जाति में आशंका करते हुए कहा स्त्री और शूद्र को संस्कृत या वेद-विद्या पढ़ने-पढाने का अधिकार नहीं और आप के बहुत से सिक्ख शूद्र हैं और वे वेद-विद्या के अधिकारी नहीं हैं।

१- Tradition goes that Guru Gobind Singh used the two words Nirmal from Sanskrit and Khalsa from Arabic to show their original. Oneness in the Nirmal Panth, of Guru Nanak both being synonymous in meaning pure." Sikh Review- Nirmal Sikh- Raja Mrigindra Singh, p.30.

२- खालसा पद दा अरथ है शुध, निरमल और बिना मिलावट, ऐसे अरथ नूं लैके दशमेश स्वामी ने पाहुलधारी सिखां दा नाउ खालसा रखिआ है जो निरमल पद दा अनुवाद है। - गुरुमत प्रभाकर-भाई कान्ह सिंह, पृ० २९८

गुरु गोबिन्द सिंह ने पौराणिक सन्दर्भों द्वारा यह बताना चाहा कि 'सूत', 'व्यास' वशिष्ट, मांडव जैसे कितने ही शूद्र व्यक्ति संस्कृत के विद्वान हो चुके हैं। गार्गी, चुडाला, मदालसा, कात्यायनी जैसी नारियां वेद-विद्या में पारंगत हुईं। फलत: हमारे सिक्ख भी वेद-विद्या के अधिकारी हो सकते हैं। जिन्हें आज तू शूद्र कहता है। इन्हीं मेरे सिक्खों से लोग ब्रह्म वेद-विद्या का पाठ पठन किया करेंगे।

गुरु जी ने सिक्खों को हुक्म दिया कि ब्रह्मचारी के वेश में 'काषाय' वस्त्र धारण कर काशी में संस्कृत विद्याध्ययन करो। तुम्हारी सम्प्रदाय के निर्मल पंडित बहुत प्रसिद्ध होंगे। यह आज्ञा मानकर राम सिंह, वीर सिंह, गंडा सिंह, कर्म सिंह, और सैना सिंह पांच सिक्ख काशी में पंडित सदानन्द जी से वेद-विद्या का अध्ययन किया और थोड़े ही समय में गुरु कृपा से निर्मल सन्त बड़े प्रसिद्ध विद्वान हुए।[१]

उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री के आधार पर ऐसा लगता है कि निर्मल सम्प्रदाय की स्थापना संभवत: दशम गुरु से पूर्व नहीं हुई होगी।

इस प्रकार 'निर्मल वर्ग' का प्रारंभिक इतिहास अंधकार ग्रस्त है।

यद्यपि इसके संस्थापक का नाम आदि विवरण अज्ञात है।[२] फिर भी ऐसा मान लेना कदाचित् युक्ति संगत है कि निर्मल सम्प्रदाय की स्थापना दशम गुरु के समय में की हुई।

१- विशेष विवरण के लिए, निर्मल पंथ प्रदीपिका, निर्मल पंचायती अखाड़ा, निर्मल भूषण तथा निर्मल पंथ दर्शन देखें।

२- Nirmal Sadhus or pure saints are a Sikh order which was bitterly opposed to that of Akalis. They are said not to undergo any rite of purification but merely to receive the amrit like other Sikhs when they become Singhs. They originated like the Akalis in the time of Guru Gobind Singh but the history of their foundation is obscure.
-Encyclopaedia of Religion and ethics- Vol.9,p.375.

वैसे भी दशम गुरु प्रयत्न पूर्वक संगठित 'खालसा' को टुकड़े-टुकड़े करना नहीं चाहते होंगे। 'गुरु मानिओ ग्रंथ' कहकर अपने तथा अपने वंशजों के लिए भी गुरु-पद का त्याग करने वाला व्यक्ति सम्प्रदाय या वर्ग के आधार पर 'खालसा' को विभाजित करने को सोच भी नहीं सकता।

पूरी वस्तु स्थिति का अध्ययन करने से पता चलता है कि 'खालसा' की स्थापना दशमगुरु से अवश्य की थी परन्तु 'खालसा' गुरु नानक के मत के विरोध में खड़ा नहीं हुआ था। अपितु गुरु नानक की ही दृष्टि को युगानुरुप तथा सन्दर्भ दशम गुरु ने दिया था। इस बात को स्वीकार करना इतिहास की सच्चाई को कबूल करना है।

परन्तु 'निर्मल' वर्ग ने कालांतर में गुरु नानक की दृष्टि से थोड़ा अलग होकर 'वैदान्त' अपने ऊपर ओढ़ लिया। धीरे धीरे गुरु नानक की विचारधारा अथवा सिक्ख पंथ की प्रमुख मान्यताओं से भी निर्मल सम्प्रदाय का सम्बन्ध विच्छेद हो गया।

आज निर्मल सम्प्रदाय के साधु विरक्त रुप में सामान्य संन्यासी साधुओं की भांति जीवन यापन करते हैं। यहां तक कि सिक्ख मात्र के लिए आवश्यक 'अमृत-पान' भी वे अपने लिए आवश्यक नहीं मानते।

यद्यपि डा० हरभजन सिंह ने लिखा है, 'निर्मल साधु अन्य खालसा मतावलंबियों के समान अमृतपान भी करते हैं और सनातन धर्म की वेद-पुराण सम्मत रीति नीति का त्याग भी नहीं करते।'[१]

१- गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य- डा० हरभजन सिंह- पृ० १६४
'वस्तुत: 'अमृत' पान और पुरानी रीति नीति का परस्पर कोई सामंजस्य नहीं है।

'अमृतपान' निर्मल सन्तों के लिए गणेश सिंह ने भी किया है। इनके अनुसार गुरु गोबिन्द सिंह ने जब 'अमृत' का प्रचार किया तो पहले[1] निर्मल सन्तों ने ही अमृत का पान किया क्योंकि पांच प्यारे विरक्त निर्मल हुए। परन्तु 'पाहुल' देने की बात केवल पांच सिक्खों के लिए प्रचलित है। निर्मल सन्तों का इस सन्दर्भ में उल्लेख इतिहास विरुद्ध है। निर्मल लेखकों ने निर्मल सम्प्रदाय को विशुद्ध साम्प्रदायिक भावना से लिखा है। उसमें इतिहास के प्रति आग्रह कम है।

इसी प्रकार का उल्लेख गुरु सूरय प्रताप ग्रंथ में भाई सन्तोख सिंह ने लिखा।[2] भाई संतोष सिंह की इतिहास दृष्टि बहुत साफ नहीं है। उनके द्वारा प्रतिपादित कितनी ही बातें तथ्यहीन जान पड़ती हैं। अन्तत: उपलब्ध सामग्री के आधार पर 'निर्मल वर्ग के अमृतपान की व्यवस्था सिद्ध नहीं होती।

निर्मल वर्ग: आधुनिक संगठन

निर्मल लेखकों के अनुसार प्राचीन समय में निर्मल भेष का कोई ऐसा स्थान था डेरा नहीं जहां साधु महात्मा बैठकर स्वतन्त्र रूप से धर्मोपदेश दे सकते। इसे ध्यान में रखते हुए निर्मल सन्तों ने समत १६०६ में हरिद्वार के कुम्भ पर्व के समय अपना निर्मल 'अखाड़ा' बनाने का फैसला किया।

मुनि अर्जुन सिंह तथा गणेश सिंह के अनुसार 'संमत १६१८ भाद्र सुदी द्वादशी' को गुरु ग्रंथ साहिब[3] के सम्मुख विधिवत् समारोह पूर्वक 'श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा की स्थापना की गई।

१- निर्मल भूषण- गणेश सिंह- पृ० २६

२- इह बिधि पाचों सिंघ को छांडे पाहलदीन,
पंच कोश उर ग्यान दे 'निरमल पंथ' सुकीन।-गुर प्रताप सूरय ग्रंथ-रुत-अंश १६, कु० ४५

३- विशेष विवरण के लिए-
१- मुनि अर्जुन सिंह कृत 'निर्मल पंचायती अखाड़ा' - पृ० ४६
२- गणेश सिंह कृत - निर्मल भूषण, पृ० ११२ पर देखें।

भाई कान्ह सिंह के अनुसार अखाड़े की स्थापना कर एक 'दस्तूर-उल-अमल' कायम किया गया। इसमें ३१ नियम दिए गए हैं।[1]

निर्मल पंचायती अखाड़ा के सर्वप्रथम महन्त श्री महताब सिंह हुए। महन्त दयाल सिंह के अनुसार इन महन्त की सहायता के लिए चार मुख्य महन्त चुने गए।[2] इसके साथ निर्मल अखाड़ा में एक मन्त्री, कोषाध्यक्ष (कुठारी) एक स्थानीय महन्त तथा कारबारी भी बनाए गए जो अखाड़ा सम्बन्धी सारे कार्यों को देखा करते। इस अखाड़ा का प्रधान कार्यालय 'कनखल' (हरिद्वार) में है जो धर्मार्थ सम्बन्धी कार्यों का संचालन कर रही है। इस प्रकार निर्मल अखाड़े का संगठन सन्यासियों के 'दसनामी' अखाड़े की पद्धति पर हुआ।

इस अखाड़े से सम्बन्धित कुछ व्यक्तियों ने सामान्य जनता की सेवा के लिए कुछ विशिष्ट संस्थाएं भी स्थापित कीं।

१- पंजाब सिन्ध क्षेत्र ऋषि केश- पंडित हरि सिंह जी
२- गुरु तेग बहादुर खालसा मिडिल स्कूल- ज्ञानी सुन्दर सिंह
३- गुरु नानक पाठशाला- प्रीतम सिंह
४- अकाल कालेज मस्तू आणा- श्रीमान अतर सिंह।[3]

इन उल्लेखों से सिद्ध हो जाता है कि बीसवीं शती से पूर्व निर्मल वर्ग का कोई पृथक् संगठन नहीं था। इस नए संगठन का गुरुमत के साथ सामंजस्य करना कठिन है।

मान्यताएं- निर्मल' वर्ग की मुख्य मान्यताएं ये हैं:-

यद्यपि निर्मल वर्ग गुरुमत से सम्बन्धित था परन्तु वेदान्त आदि ग्रन्थों का अध्ययन करने के उपरान्त इनके चिन्तन में कुछ विशिष्टता आ गई और अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो गई।

१- गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोश- भाई कान्हसिंह, पृ०
२- निर्मल पंचायती अखाड़ा- मुनि अर्जुन सिंह- पृ० ५३
३- निर्मल पंथ दर्शन- महन्त दयाल सिंह- पृ० २६६

इनकी विचारधारा पर वेदान्त का प्रभाव बहुतायत से देखने को मिलता है। जिससे प्राय: सभी निर्मल सन्त अवतारवाद में विश्वास रखते हैं। दूसरा प्रात: और संध्या समय धूप-दीप आदि से गुरु की पूजा और आरती करते हैं। गुरुद्वारे-देहुरे तथा सन्त महात्माओं की समाधि पर धूप-दीप करना और फूल चढाना उचित समझते हैं।[१]

सभी निर्मल विद्वानों ने गुरुवाणी की व्याख्या वेदान्त के अनुसार की है। गुरु ग्रंथ साहिब को सर्वोत्तम मानते हुए भी अपने मत के स्पष्टीकरण के लिए पौराणिक सन्दर्भ को ले आते हैं।

अपने पंथ की स्थापना तथा प्रचार के लिए 'गुरुमत' के मूल सिद्धान्तों की अवहेलना की गई है। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता।

साहित्य:- 'निर्मल' वर्ग की स्थापना के साथ-साथ विद्या-अध्ययन तथा पुस्तक लेखन की परम्पराएं जुड़ती चली गईं। सौभाग्य से निर्मल वर्ग के विद्वानों ने पंजाब की पिछली दो शतियों में पर्याप्त साहित्य दिया है।

साहित्य के क्षेत्र में निर्मल विद्वानों का योगदान -

१- मौलिक; तथा
२- अनूदित-

दोनों प्रकार की रचनाओं के क्षेत्र में दिया है।

मौलिक रचनाएं लिखने वाले साहित्यकार -

१- गुलाब सिंह
२- तारा सिंह नरोत्तम
३- ज्ञानी ज्ञान सिंह
४- गंडा सिंह
५- सन्तोख सिंह

आदि प्रमुख हुए। इनमें से प्रमुख साहित्यकार पंडित गुलाब सिंह हुए।

१- निर्मल पंथ दर्शन- महन्त दयाल सिंह, पृ० २६६

(१)- **गुलाब सिंह:-** प्राप्त ग्रंथों के आधार पर निर्मल साहित्य का आरम्भ गुलाब सिंह से माना जा सकता है। क्योंकि इन से पूर्ववर्ती रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। उनकी प्रमुख रचनाएं ये हैं जिनकी चर्चा विस्तार से आगे की जाएगी।

१- भाव रसामृत
२- मोक्ष पंथ
३- अध्यात्म रामायण
४- प्रबोध चन्द्रोदय नाटक

गुलाब सिंह का साहित्य के क्षेत्र में मूल्यवान कृतियों के कारण विशेष स्थान है। यद्यपि इनकी बहुत सी कृतियों को नष्ट किया जा चुका है, परन्तु जो उपलब्ध हैं वह उच्चकोटि की हैं।

(२)- **तारा सिंह नरोत्तम:-** गुलाब सिंह की परम्परा में तारा सिंह नरोत्तम ने गुरुवाणी की व्याख्या तथा गुरुवाणी के सबंध में विशेष चर्चा पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की।

(३)- **साधु सिंह:-** इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए साधु सिंह ने गुरुवाणी की स्वतन्त्र रुप से व्याख्या की। इनकी प्रमुख कृतियां ये हैं जिनका विवरण आगे जा कर दिया जाएगा।

१- गुरु सिष्या प्रभाकर
२- गुरु वाक्य सिद्धान्तज्योति।

(४)- कुछ विद्वानों ने गुरुघर सम्बन्धी इतिहास ग्रंथ लिखे:-
ज्ञानी ज्ञान सिंह ने--

(क)- तवारीख गुरु खालसा
(ख)- पंथ प्रकाश

सन्तोख सिंह ने--

(क)- गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ (अर्ध इतिहासिक)

(ख)- गुरु नानक प्रकाश

गंडा सिंह (गोविन्द सिंह) ने--

इतिहास गुरु खालसा आदि कृतियां प्रस्तुत की।

(५)- निर्मल सन्तों ने संस्कृत में भी कुछ रचनाएं प्रस्तुत की। इन में --

१- कौर सिंह की 'गुरु कौमुदी'; तथा
२- हरा सिंह का 'गुरु सिद्धान्त पारिजात'-

प्रमुख रचनाएं हैं।

(६)- इन संस्कृत रचनाओं में अनूदित ग्रंथ भी दिखाई पड़ते हैं। निर्मल लेखकों ने भविष्यपुराण, मार्कण्डेय पुराण, देवी भागवत पुराण, शुक्र नीति, चाणक्य नीति, महाभारत आदि का भाषानुवाद भी किया।

गंडा सिंह ने भी अनेक दार्शनिक पुस्तकों का अनुवाद किया। इनकी प्रमुख रचनाएं ये हैं:-

१- वेदान्त परिभाषा
२- उद्योग तथा प्रारब्ध
३- न्याय मुक्तावलि

इस प्रकार सन्तोष सिंह की ये रचनाएं:-

१- अमर कोश
२- आत्म पुराण
३- बाल्मीकी रामायण,

आदि प्रसिद्ध हैं।

ये रचनाएं प्राय: उपलब्ध नहीं। केवल आत्मपुराण एक पृष्ठ ही मिला बताया जाता है।

(७)- **टीका ग्रंथ:-** इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने संस्कृत की पुस्तकों पर संस्कृत में टीकाएं की। इनमें से कुछ ये हैं:-

सदासिंह ने 'अद्वैतसिद्धि' पर 'सुगमसार चन्द्रिका' नाम की टीका की।
बुध सिंह ने 'तर्क संग्रह' पर टीका लिखी।
लाल सिंह ने 'मुहूर्त चिन्तामणि' का हिन्दी पद्यात्मक अनुवाद किया।
संगत सिंह ने पिंगल प्रस्तार संग्रह छन्दो ग्रंथ लिखा।

निर्मल लेखकों द्वारा लिखी गई पुस्तकों की यह संक्षिप्त सी सूची इन लेखकों के ज्ञान अनुभव तथा लेखन कला का प्रमाण प्रस्तुत करती है। इनका साहित्य विविधता को लिए हुए है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्मल वर्ग में विद्या-अध्ययन तथा ग्रंथ लेखन की परम्पराएं निश्चय ही महान रही हैं। इस वर्ग के पण्डित साधुओं ने अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा एक ओर गुरुवाणी प्रचार को प्रोत्साहन दिया दूसरी ओर उच्चकोटि का साहित्य लिखकर पंजाब के साहित्य को समृद्ध बनाने में प्रशंसनीय कार्य किया।

निष्कर्ष

गुरु नानक द्वारा प्रवर्तित विचारधारा को आधार बना कर पंजाब में कितने ही मत सम्प्रदाय बने। इनमें से कितने ही मत सम्प्रदाय गुरु[१] नानक के मत को समाप्त कर अपनी प्रतिष्ठा करने के ही उद्देश्य से स्थापित किए गए।

इन सभी में से उदासी तथा निर्मल वर्ग के लेखकों ने साहित्य के क्षेत्र में विशेषत: गुरुवाणी के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया।

१- गुरु नानक के बाद कम से कम भिन्न भिन्न १० व्यक्तियों ने गुरु नानक के मत को मिटा कर अपना मत स्थापित करने की चेष्टा की- विशेष विवरण के लिए गंडा सिंह की 'सिख इतिहास वल्ल' रचना देखें।

अध्याय - तृतीय

तारा सिंह नरोत्तम व्यक्तित्व और कृतित्व

(गुरु परम्परा के विशिष्ट सन्दर्भ में)

१- गुरु परम्परा- मानसिंह- गुलाब सिंह- नरोत्तम

२- गुलाब सिंह- उनका साहित्य

३- तारा सिंह नरोत्तम व्यक्तित्व और कृतित्व

४- तारा सिंह नरोत्तम- उत्तरवर्ती साहित्यकार

५- निष्कर्ष

तारा सिंह नरोत्तम व्यक्तित्व और कृतित्व
(गुरु परंपरा के विशिष्ट सन्दर्भ में)

गुरु परम्परा

मानसिंह: -तारा सिंह नरोत्तम की गुरु परम्परा में मान सिंह का नाम आता है। यद्यपि उनकी अपनी रचनाओं अथवा मान्यताओं के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चला। फिर भी गुलाब सिंह और तारा सिंह नरोत्तम आदि विद्वानों के गुरुपद होने का श्रेय उन्हें इतिहास ने नहीं दिया।

गुलाब सिंह निर्मला: - निर्मल वर्ग के विद्वान साधुओं में संस्कृत के प्रकांड पंडित और ब्रज भाषा के सफल कवि गुलाब सिंह हुए। निर्मल वर्ग के साहित्यिकों में इनका नाम अग्रगण्य है। इनसे पूर्व निर्मलों द्वारा रचित साहित्य उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध सामग्री को देखते हुए पंडित गुलाब सिंह निर्मला से ही निर्मल साहित्य का आरम्भ मान सकते हैं।

जन्म: - पंडित गुलाब सिंह का जन्म संमत १७८६ विक्रमी[1] में लाहौर ज़िला की चूनियां तहसील के अन्तर्गत 'सैखव' नाम के गांव में हुआ था। गुलाब[2] सिंह ने स्वयं अपनी कृतियों के अन्त में अपने माता पिता और गांव का नाम लिखा है। इनके पिता का नाम

१- जो संसकृत हिंदी अते पंजाबी दे पंडित सन। इन्हां दा जनम समत १७८६ विच चबे जिमीदारां दी कुल विच माता गौरी दे उदरों पिता राया दे घर पिंड सैषव ~~वि~~ जिस नूं सैषम भी आषदे हन विच होइआ।'

- गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश- पृ० ३१७

२- गौरी राइआ माता पिता सैषव नगर उदार
गुलाब सिंघ कुल दीप सुत कर्यो ग्रंथ निरधार।२५।-भावरसामृत,पृ० १५८

'राइआ' और माता का नाम 'गौरी' तथा गाँव 'सैखव' था। प्राय: प्रत्येक ग्रंथ में इसका उल्लेख किया गया है।

गुरु:- पंडित गुलाब सिंह मान सिंह के शिष्य हुए।[1] इन्होंने अपनी रचनाओं में अपने गुरु मान सिंह का उल्लेख किया है। ग्रंथ के आरंभ और अन्त में गुरु मान सिंह के चरण कमलों का स्मरण किया है। डा० सरन दास भनोत के अनुसार 'काशी से लौटने पर उनके (मान सिंह)[2] के चरणों में बैठ कर कवि ने काव्य तथा अध्यात्म ज्ञान की साधना की थी।' पंडित गुलाब सिंह ने अपनी कृतियों में गुरु स्तुति और वन्दना की है।[3]

प्रतिभाशाली होने के कारण काशी में बड़ी तन्मयता से वेद- शास्त्रों, वेदान्त, व्याकरण, न्याय-मीमांसा, सांख्य योग आदि समस्त शास्त्रोंका विधिवत् अध्ययन कर उच्चकोटि के शास्त्रज्ञ हुए।

(पिछले पृष्ठ से)

अथवा-

गौरी जननी लोक मैं राइआ जनक महान
गुलाब सिंह सुत ताहि के नाटक कीन बखान।२२।

प्रबोध चन्द्रोदय, पृ० ५४६

१- भावरसामृत के प्रारम्भ में:-

'विद्या सांति सुग्यान सुख दाइक फल सुभचार,
मान सिंह गुरु के सदा, बदौं याद उदार।'

मोक्ष पंथ की पुष्पिका में:-

इति श्री मत मान सिंघ चरण सिष्यति गुलाब सिंघेन गौरी रायात्मेनन विरचते मोक्ष पंथ प्रकाशे विदेह मुक्त निर्णयों नाम पंचमो निवास: समाप्त:।

प्रबोध चन्द्रोदय के आदि में:-

'भारत भूमि पुनीत पद, नमो ग्यान अवतार,
मानसिंघ गुरु को नमो, तारण करुणा सार।'

व्यक्तित्व:- डा० हरिभजन सिंह ने गुलाब सिंह के व्यक्तित्व के बारे में कहा है कि गुलाब सिंह त्यागी हैं किन्तु मानवीय संवेदना से रहित नहीं। उनका काव्य न कोरा उपदेश है न हृदयहीन सिद्धान्त निरूपण। उनके छन्दों को विशुद्ध प्रगीत संज्ञा तो नहीं दी सकती किन्तु प्रगीतात्मकता का एक प्रमुख तत्त्वगुण आत्माभिव्यक्ति, इनमें स्पष्ट रूप से विद्यमान है। इसी गुण के कारण उनका काव्य हमारे मर्म को छूने अथवा हमारे स्थायी भावों विशेषत: रति और निर्वेद को उद्बुद्ध करने की शक्ति रखता है।[१]

यद्यपि कवि के प्रिय श्री राम रहे हैं परन्तु उनके बौद्धिक जगत् पर 'गुरुकुल' का प्रभाव रहा है। गुलाब सिंह की सिक्ख मर्यादा के प्रति पूर्ण आस्था थी। गुरु नानक आदि दस गुरुओं की स्तुति उन्होंने कई स्थानों पर की है।

(पिछले पृष्ठ से)

२- रेखा - त्रैमासिक पत्रिका- 10 जनवरी, १९५८, पृ० ५

३- उतम गुरु मागते पायो। जिन मेरी अग्यान मिटायो।
पूरब पुनय सुध जिह होई। उतम गुरु लहै भव सोई।।

मोष पंथ- पृ० २०७

१- गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य- डा० हरभजन सिंह, पृ० १७८

भाषा के प्रति अनुराग :- पंडित गुलाब सिंह महान संस्कृतज्ञ होने के साथ साथ लोक भाषा के प्रति पूर्णत: समर्पित थे। कुरुक्षेत्र में रहकर पंडित गुलाब सिंह ने बहुत ग्रन्थों का निर्माण किया। विलक्षण बुद्धि के कारण संस्कृत के कठिन ग्रन्थों का अनुवाद सरल सरस कविता में किया। इनका अनुवाद अनुवाद न रहकर मौलिक कृति के समान बन पड़ा है। कहा जाता है कि इनकी अलौकिक प्रतिभा को देखकर विद्वत मण्डली जहां आपकी कुशाग्र बुद्धि की प्रशंसा करती थी। वहां इनकी प्रतिष्ठा को देखकर कई पंडित ईर्ष्या भी करते थे। कहा जाता है[१] कि अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए उन्होंने इनके ४० ग्रन्थ नष्ट कर दिए।

पंडित गुलाब सिंह की ये रचनाएं आज उपलब्ध हैं:-

(१)- भावरसामृत (संमत १८३४)[२]
(२)- मोक्ष पंथ (संमत १८३५)[३]
(३)- अध्यात्मरामायण (संमत १८३६)[४]

१- निर्मल भूषण- गणेशा सिंह, पृ० ७६

२- भावरसामृत की हस्त लिखित प्रतियां पंजाब में मिलती हैं--
देखें पंजाबी हथ लिखतां दी सूची- पृ० १८५-८६

३- गुलाब सिंह के अनुसार इस कृति का पूरा नाम 'मोक्ष पंथ प्रकाश' है परन्तु सामान्यता इसे मोक्ष पंथ कहा जाता है। पंजाब में इस रचना की अनेक हस्तलिखित प्रतियां मिलती हैं।

बैठ सु ठाहर ताहि ग्रंथ संपूरण करियो
मोक्ष पंथ प्रकाश नाम विचार सुधारियो-
पंजाबी हथ लिखतां दी सूची, पृ० १८७

४- यह रचना कई बार गुरुमुखी अक्षरों में प्रकाशित हो चुकी है।

(४)- प्रबोधचन्द्रोदय नाटक (संमत १८४६)[१]

डा० मोहन सिंह ने इनकी एक अन्य कृति 'कर्म विपाक' का भी उल्लेख किया है। इन्होंने लिखा है कि इनकी कृतियों में पंजाबी स्वर ध्वनि के सिवाय पंजाबी भाषा का अंश कहीं भी नहीं है।[२] गणेश सिंह तथा महन्त दयाल सिंह के अनुसार इनकी एक और कृति 'स्वप्नाध्यायी' भी मिलती है।[३] परन्तु हमें यह दोनों कृतियां देखने को नहीं मिली।

१- नाटक के अन्त में समय का उल्लेख किया है:-

'रस वेद औ वसु चंद समंत लोक भीरत जान
नाम मास म्रिग पुन वासरै दसमी वदी पहिचान
गुरु मानसिंघ पदार प बिंद अलबंना उर ठान
कुरषेत्र प्राची कूल तट यहि कीन बखान। २२५।

इति श्री मत मान सिंघ चरण सिष्यत गुलाब सिंधेन गौरी राइ आतमजेन विरचते प्रबोध चंद्र नाटके जीवन मुकति प्रापति नाम षशटो अंकः
(प्रबोध चन्द्रोदय नाटक- षष्ठ अंक- अन्तिम पृष्ठ)

२- "He has left us Adyatma Ramayana, Bhavarasamrita, Mokh Panth, Karam Vipak, Prabodh Chandra Natak. Except for Panjabi, phonetics there is nothing Panjabi about these works'.
- A History of Panjabi Literature. Dr.Mohan Singh,p.60.

३- करम विपाक, प्रबोधचन्द्र नाटक, मोष पंथ, प्रकाश, अध्यात्म रामायण, भावरसाम्रित तथा सुपनाध्यायी:-
१- निर्मल भूषण- गणेश सिंह, पृ० ७६
२- निर्मल पंथ दर्शन- महन्त सिंह पृ० २७८

भाव रसामृत:- गुलाब सिंह ने अपनी भक्ति भावना को अभिव्यक्ति देने के लिए 'भावरसामृत' की रचना की है। चन्द्रकान्त बाली ने भावरसामृत को 'वैराग्यशतक' का अनुवाद बताया है।[१] परन्तु भावरसामृत अनुवाद नहीं है। कम से कम 'वैराग्यशतक' से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। संभवत: मूल पुस्तक को देखे बिना ही श्री बाली ने यह बात कह दी है। भावरसामृत गुलाब सिंह की मौलिक कृति है।

गुलाब सिंह ने प्रत्येक ग्रंथ के आरम्भ में गुरु नानक और राम की स्तुति की है।[२] इससे ज्ञात होता है कि पंडित गुलाब सिंह सिक्ख मर्यादा के प्रति पूर्ण आस्था रखते थे। अर्थात् गुरुओं के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है।

गुलाब सिंह के इष्टदेव श्री राम चन्द्र हैं। आपने मंगलाचरण में सर्वप्रथम

१- पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास- चन्द्रकान्त बाली, पृ० ३१३

२- सेतु करे जिन सागर पै सब देवन के दुष दूर मिटाये।
रावण के दशशीश कटे सु विभीषण के शिर छत्र फिराये।
गौतम नारि उधार करी मिथिलापति के जिन भवन सुहाये।
सीय समेत नमो तिनका इक आसन महा हर्षाये- भावरसामृत- पृ० ६
कलि के सब दोष निवारण को भवतारण को जग भीतर आए
जग जीर्ण साधन दूर करे दृढ़ साधन रामहि नाम बताये
जग भोग रमे हरिमांह भले सब सेवक के दुष दूर मिटाये।
करुणा निधि नानक के पद मंजुल वंदित हो मननीत सुहाये।
भावरसामृत- पृ० ८६
इन पंक्तियों में अवतारवादी भावना स्पष्ट है।
भाव रसामृत सटीक क्रित भाई गुलाब सिंह जिसदा टीका भाई जोध सिंघ जी ग्यानी करता क्रित श्री कलगीधर हुलास ने कीता जिसको हाजी चरागदीन सराजदीन ताजरानि कुतब लाहौर बाजार कशमीरी ने मुनशी लालदीन मालिक मतब से अैलबीयन प्रैस शहिर लाहौर दरवाजहा मसती विषे छपवाया।

तथा- गण नायक सारस्वती रघुवीर सु नानक जी गुरु आदि उदारे
गुरु गोबिन्द सिंघ उदार बड़े पुनजागुर मै भवसागर तारे
तिन कोन उपाइन पाइ धरों कछु लाइक नांहि पिषों जगसारे।
कर जोरा भली बिध दंड सम पद मै बहु बंद हमारे।- मोषपंथा पृ० २२३

सिय समेत एक आसन पर विराजमान राम की स्तुति की है। राम की जयजयकार[1] करते समय उनके जीवन की कतिपय घटनाओं की और संकेत भी किया है।

भावरसामृत काव्य के स्तर पर एक उत्तम तथा भक्ति के स्तर पर एक मूल्यवान कृति जान पड़ती है।

(पिछले पृष्ठ से)

तथा-

गुरु गोबिंद सिंघ को नमो सुहाय जोर कै कुसत्र तेज तो रजाहि लियो
हिंदान को
क्रिपाल सीस राय दै सुकटि ते करै म्रिगिंद इद्र चापलाप पैषनाथ की
कमान को
अपार दुष टार के निवार के कलेस दास बास तो बिकुंठ तेज
पूरिउ जनान को
भुजा भुजंग राजसी बिराज सीस केस चंद साभ्र तान होइ तो भुषार
बिदै सान को।

--अध्यात्म रामायण, पृ० २-३

तथा-

गुरु नानक गोविन्द गुरु जी सम और न कोइ
अभि बंदन पद कमल तिन जोर सदा कर दोई १३-

प्रबोध चन्द्रोदय, पृ० १

१- तात की आयास मान चले जिनके पद पंकज पूजत लोई
राज विभूति तजी छिन मैं बन को निकसे जननी बहु रोई।
तो न फिरे पुरको हरि जू जब भ्रात गहे कर मैं पद दोई।
धरम बराबर राज नहीं इह सूचक राम सनातन जोई। --भावरसामृत

मोषपंथ

चन्द्रकान्त बाली ने इसे 'स्वराज्य सिद्धि' का अनुवाद बतलाया है।[१] परन्तु किसी प्रमाण या उदाहरण देने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी। अन्तरंग साक्ष्य के आधार पर[२] सिद्ध होता है कि मोष पंथ की रचना गुलाब सिंह ने मौलिक रुप में की है।

निवास:- यह रचना पांच 'निवासों' में विभक्त है। मोष पंथ प्रकाश का आंतरिक विभाजन 'निवास' को आधार बना कर किया गया है। 'पंथ' के साथ 'निवास' का यह काव्यमय विधान गुलाब सिंह की प्रतिभा का सूचक है।

पता चला है कि नागरी अक्षरों में भी यह कृति साधु गोबिंद सिंह की टीका सहित बम्बई से प्रकाशित हो चुकी है।

प्रतिपाद्य:- इस कृति का मुख्य प्रतिपाद्य अद्वैत वेदान्त है। द्वैत का निराकरण कर अद्वैत की स्थापना की गई है:-

'माया जुगत सुब्रम महान। ताही ते सब होइयो मान।
यो वेदांती प्रगट बषाने। रजु सरप ज्यों द्वैत पछाने।'[१]
-- मोष पंथ, पृ० ७५

तथा-

सकल दुष को कारण देह। ताको धर्म अधर्म विधेय।
विहित निषिद्ध धर्म तिह मूल। राग द्वेष कर्म न को मूल।
भलो बुरो अभ्यास हि जोई राग द्वेष को कारण सोई।

१- पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ चन्द्रकान्त बाली, पृ० ३१३

२- तित पद पंकज नीर लहि पायो मोहि विचार
तित अनुयाई बाल ने कीनों ग्रंथ उचार- मोषपंथ- पृ० २२२
जिसको हाजी चरागदीन सराजदीन ताजराति कुतब लाहौर बजार ~~कश्म~~ कशमीरी ने मुनशी लालदीन मालिक मतबा से कैक्सटन प्रैस अनारकली लाहौर में छपवाया। संमत १९६८। हमारी आधार प्रति के मुख पृष्ठ पर छपा है।

सोयहि भलो बुरो अह्यास। निषिल द्वैत ते भयो प्रकाश।
सो सब द्वैत ब्रह्म मै ऐसे। सीप बिषै रुपो जग जैसे।
तां को कारण है अग्यान। सो उर कल्पित सत पछान।
सो अग्यान अहै उर जलों। सर्व अनरथ लहै नर तोलो।
तां को नाशक आत्म ग्यान सो वेदान्त तेनी को मान। - मोषपंथ

प्रमुख तत्व

मोष पंथ में जीवन मुक्ति[1] और तत्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए सात प्रकार की भूमि का उल्लेख किया है। तत्व ज्ञान द्वारा वासना और मन के नाश होने पर प्रकाश के जन्म होने से मुक्ति होती है।

(२)- गुलाब सिंह विभिन्न तत्वों या पदार्थों[2] का विभाजन उपविभाजन बड़ी सूक्ष्मता से करते हैं। जैसे परमहंस के दो प्रकार बताए हैं।

सन्यासियों के चार भेदों में से दो भेदों कुटीचक तथा बहूदक[3] का उल्लेख किया है।

इसी प्रकार वैराग्य के तीन भेद- तीव्र-तीव्रतर, मंद बताए हैं।

मलिनवासना तीन प्रकार की बताई है। लोकवासना[4], शास्त्रवासना, तथा देहवासना। शास्त्रवासना के आगे तीन प्रकार बताए हैं। (१)- पाठ व्यसन, बहुशास्त्र अध्ययन तथा अनुष्ठान व्यसन। इसी प्रकार देहवासना के तीन उपवर्ग किए हैं।

१- सपत भूमि रुप है जोई। भाषों प्रगट सुनो अब सोई।
प्रिथम सुभेछा भूमि पछाने। विचारणा नाम दूसरी जाने। १७६।
तन मनसा तीसरे ह्यै। चौथी सत्वापत सो पथे
असंसकत नाम पंचमी जानो। पदारथा भावनी छठी पैछानो। १८०।
तुरपग नाम सपतमी ह्यै। या बिध सपत भूमि इह पाये।
मोष पंथ पृ० २०३-२०४

निजदेह में आत्मज्ञान, गुणधाम तथा दोष निरसन।

अध्यात्मरामायण

गुलाब सिंह की यह मौलिक कृति न होकर अनूदित रचना है।[1] इसका प्रकाशन समय १८६३ ई है। यह रचना कई बार गुरुमुखी अक्षरों में प्रकाशित हो चुकी है।

अध्यत्मरामायण में मूल के आधार पर महादेव पार्वती का संवाद प्रारम्भ में रखा गया है।[2] यह कृति परम्परा प्राप्त सात कांडों में विभक्त है। काण्ड

(पिछले पृष्ठ से)

२-
ब्रहम लोक में तत्वग्यान जामे होइ सुहंस पछान।
परम हंस पुन द्वै परकार विविदिषा औ विद्वत निरधार।१०।
ऐहिक ग्यान अरथ है जोई। विविदिषा मत भाष्यौ सोई।
तत्वग्यान अंतर जोई। जीवन मुकति हतु है सोई।१०१- मोषपंथ, पृ० १६५

३- सो सन्यास है दो परकार। कुटीचक और बहूदक धार
यात्रा माहि सक तनहि जबही। करै कुटीचक जोगी तब ही
यात्रा सकत देह नर जोइ सन्यास बहूदक धारै सोई
यह दोनों सन्यास सुजेई। हाम त्रिजे भाषा तोई।

मोषपंथ- पृ० १६५

४- अध्यात्म रामायण संस्करण मीआं चरागुद्दीन व सिराजदीन कुतुब फरोस। प्रेस मुसतफाई छापा। लाहौर- १८६३ ई०।

१- पारबती यह राम रिदै अति गोप भयातुम पास उचारै।
आहि सुपावन औ रिदं आंमा पाप सुनै षिन महि निवारै।
आप सुराम कहै मथि कै सम बंदन मैजु अहै कछु सोर।
जो कर प्रेम पड़ै नित हीन रसौं भव बंधन मूल उषारै।

अध्यात्म रामायण पृ० १५

आगे कई अध्यायों में विभाजित हैं।

संस्कृत अध्यात्म रामायण का यह अनुवाद बहुत सुन्दर बन पड़ा है। इसके अनुवाद की शुद्धता तथा मूल पाठ के प्रति इसकी पूरी आस्था स्वीकार की गई है।

राम कीमहिमा गुलाब सिंह के शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है:-

पिता महांसु जो रहा बराम को बखानियो
परमातमा परेस राम एक तूं पछानियों
सदा अनंद बिसन तूं सपूरणो बषानियो
लेषा सुत तु आपनो अजो कतूं सुजानियो। -- ३१ [१]

अनुवाद को देखने से ज्ञात होता है कि यह मूल के अधिक निकट है। राम को परब्रह्म के रुप में चित्रित किया है और यही रुप गुलाब सिंह के अनुवाद में मिलता है जैसे:-

सूरज बंस विषे तनु मानुष जाहि लह्यो हरि जी अबिनासी
अवनी बहु भार निवारण को सुरबिंद सभै बिनवै सुष रासी
सभ राक्स मंडल को हन के जिह पावन कीरत भूम प्रकासी
वै जनकात भजायत को उरमाहि भजों पार ब्रह्म बिलासी।[२]

इस सवैये का मूल रुप यह है:-

'य: पृथ्वी भर वारणाय दिविजै: सम्प्रदार्थिक: चिन्मय:,
संजात प्रथिवी तले, रविकुले, माया मनुष्यो व्यय:।
निश्चक्रं हतराक्षस: पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्य स्थिराम्,[३]
कीर्तिं पापहंश विधाय जगतां तं जानकीशं भजे।'

१- अध्यात्मरामायण, पृ० ४६६-४६७

२- वही, पृ० ६

३- देखिए 'पंजाब के रामकाव्य पर तुलसी का प्रभाव' -
डा० गोविन्द नाथ राजगुरु- शोध पत्र, १९७३

राम काव्य की परम्परा में पंजाब का योगदान अध्यात्म रामायण के रूप में सचमुच प्रशंसनीय है।

छन्दो छन्द योजना :- इस कृति को गुलाब सिंह ने ब्रजभाषा में छन्दोबद्ध अनुवाद किया है। इन्होंने कवित्त, सवैयों के अतिरिक्त मालती, नाराच दोहा, तोमर, तथा त्रियामालती आदि विविध छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों की इस विविधता के कारण इस कृति का मूल्य बढ़ गया है।

प्रबोधचन्द्रोदय

गुलाब सिंह की दूसरी महत्वपूर्ण अनूदित कृति 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक है। इसके कितने ही संस्करण गुरुमुखी अक्षरों में प्रकाशित हो चुके हैं। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां भी पंजाब में उपलब्ध हैं। इसके[2] अतिरिक्त नागरी अक्षरों में भी इस कृति का टीका सहित बम्बई से छप चुका है।

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक (मूल) परिचय

संस्कृत प्रबोध चन्द्रोदय का ~~रच~~ रचना काल ईसा की ११वीं शती बताईगई है।

१- हमारे इस अध्ययन की आधार प्रति 'प्रबोधचंद्र नाटक भाषा' जिसकी मनोरंजनी टीका श्रीमान पंडित योगी शिवनाथ विशारद जी ने बनाई। टीका रचनाकाल १९६० विक्रमी संवत। प्रकाशन १९०५ ई०। प्रथम संस्करण। प्रकाशक लाला मेहरचंद लक्ष्मनदास। श्री गुरु नानक प्रेस, लाहौर।

२- प्रकाशित पुस्तक का मुख पृष्ठ

श्री

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक

कवि गुलाब सिंह कृत

जिसको

पं० गुरुप्रसाद उदासीन ने गुरुमुखी अक्षरों से

देवनागरी में टिप्पणी सहित बनाया

इसके रचियता कृष्ण मिश्र हैं। समाज में फैले हुए धार्मिक पाखण्ड को दूरकर मनुष्य के सद्गुणों की ओर ले जाना ही नाटक का मुख्य प्रतिपाद्य है। यह प्रतीकात्मक नाटक है।

डा० देवेन्द्र कुमार के अनुसार, 'यह नाटक एक दृष्टि से निराला नाटक है। इसमें गुण, प्रवृत्ति और भाव को मूर्त करके पात्र बनाया गया है। विवेक, श्रद्धा, महामोह, विष्णु भक्ति आदि इसके कुछ पात्र हैं। कापालिक, दिगम्बर आदि कुछ पात्र अपने वर्ग का स्वरुप प्रकट करने वाले 'टाइप' - पात्र हैं। नाटक की इस विशेषता के कारण अंग्रेजी के लेखकों ने इसे 'एलेगोरिकल' नाटक कहा है।[१] हिन्दी में इसे 'रुपक शैली' या प्रतीकात्मक शैली का नाटक कहा गया है।'

अनुवाद परम्परा

यह नाटक अनेक भाषाओं में अनुदित हो चुका है। जितने हिन्दी अनुवाद इस नाटक के हुए हैं, उतने किसी संस्कृत नाटक के नहीं हुए। श्रीमती सरोज अग्रवाल ने 'प्रबोधचन्द्रोदय'[२] के उपलब्ध एवं अनुपलब्ध हिन्दी अनुवादों की संख्या लगभग २० बताई है। इसके सर्वप्रथम अनुवादक मल्हकवि (१५४४ ई०) बताए गए हैं। इसी परम्परा में गुलाब सिंह का स्थान आठवां है। जिन्होंने मूल प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवाद गुरुमुखी लिपि में किया।

(पिछले पृष्ठ से)

तथा
मुमुक्षजनों के हितार्थ
श्री मान १०८ स्वामी परमानन्द जी ने
सेठ खेमराज श्री कृष्णदास के
बम्बई
श्री वेंकटेश्वर (स्टीम) यन्त्रालय में
(प्रथमा वृत्ति)
छपाकर प्रसिद्ध किया
संवत १९६२ शक १८२७

उद्धृत- प्रबोधचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा-श्रीमती सरोज अग्रवाल,[१] २२६

पंडित गुलाब सिंह: अनुवाद

प्रबोध चन्द्रोदय के उत्तरवर्ती अनुवादकों ने गुलाब सिंह का नाम आदर से लिया है। गुलाब सिंह द्वारा अनूदित प्रबोध चन्द्रोदय नाटक पद्यात्मक रूपान्तर है। इसमें गद्यांश बिल्कुल ही नहीं है। इस अनुवाद में 6 अंक है और यह अंक योजना मूल के क्रम के अनुसार ही है।

गुलाब सिंह ने संस्कृत नाटकों की परम्परा के अनुसार नाटक का प्रारम्भ मंगलाचरण से किया है।[1] तथा प्रत्येक अंक के आरम्भ में मंगलाचरण की पद्धति को निभाया है।

कवि ने अनुवाद का उद्देश्य बताते हुए कहा है कि[2] इसके सुनने और पढ़ने वालों के मोह बंधन दूर होकर अपार मोक्ष की प्राप्ति होगी।

(पिछले पृष्ट से)

१- संस्कृत नाटकों में हिन्दी अनुवाद- डा० देवेन्द्र कुमार, पृ० ११७

२- प्रबोध चन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा- श्रीमती सरोज अग्रवाल, पृ० २०२

१- जाके नाम प्रताप ते जल पर सैल तराहि
वह रघु नाइक दास के सदा बसै मन माहि-
प्रबोधचन्द नाटक- मंगलाचरण।

२- प्रबोध चन्द नाटक सुबोध ग्रन्थ मैं करों।
अलंब साध संग के विचार चित मै धरों।
सुनै पठै सु जे जना निवार मोह बंधना।
लहै अपार मोष को टूटै समसत फन्दना।५।
प्रबोधचन्द्रोदय नाटक पृ० २

गुलाब सिंह के अनुवाद में नवीनता यही है कि प्रत्येक अंक के अन्त में आगे की कथा को संक्षिप्त रुप से पूर्ववत् प्रस्तुत किया गया है जैसे--

सारसुती मन माषायो तजी रंग परविरत
कीरत वरमा दैव तब गही चीत निरविरत
जन है पूत प्रबोध उपनिषाद संग सु बिबैक मिल
साधन बडो निरोध जीवन मुकति सु होइगी। १०३।

इति स्री मत मान सिंघ चरण सिष्येन गुलाब सिंधेन विरचितै प्रबोधचन्द्र नाटकै वैराग उतपति नाम पंचमो अंक।

गुलाब सिंह ने प्रबोधचन्द्र नाटक को नाटकीयता की दृष्टि से बिल्कुल नहीं लिखना चाहता था। अर्थात् इस रचना को 'नाटक' रुप देने की योजना गुलाब सिंह ~~नरसिंह~~ की थी ही नहीं।

'नाटक' नाम से कुछ काव्यमयी रचनाएं पंजाब के लेखकों ने हमें दी। 1. 'विचित्र नाटक' 'गुरु गोबिंद सिंह' ~~कृत~~ (२)- हनुमान नाटक कृत 'हृदय राम भल्ला' तथा 3. प्रबोधचन्द्रनाटक 'गुलाब सिंह' कृत । इन्होंने कहीं भी नाटक के नाटकत्व को सामने रख कर रचना नहीं की।

गुलाब सिंह का अनुवाद काव्य सौष्ठव से भरपूर है। मौलिक न भी होते हुए मौलिक बन पड़ा है। अर्थात् स्वतन्त्र प्रतिमा लक्षित होती है। संस्कृत के श्लोकों का बड़ा सुन्दर अनुवाद ब्रज भाषा में बन पड़ा है और इसमें भावों की सुरक्षा की गई है।

निष्कर्ष

पंडित गुलाब सिंह अपने समय में प्रकाण्ड पंडित और विद्वान हुए। गुलाब सिंह एक सफल मौलिक कवि के रुप में पर्याप्त प्रभावित करते हैं। इनकी अनूदित कृतियों में भी मूल जैसा आनंद मिलता है।

गुलाब सिंह के इस महान् कृतित्व से उत्तरवर्ती अनेक लेखकोंने अमित प्रेरणा प्राप्त की। धर्म प्रचार के साथ साथ शास्त्रीय दृष्टि का जैसा सामंजस्य गुलाब सिंह के व्यक्तित्व और कृतित्व में मिलता है, वैसा सर्वत्र सुलभ नहीं है।

२- पंडित तारा सिंह नरोत्तम

निर्मल इतिहास लेखक महन्त दयाल सिंह, मुनि अर्जुन सिंह स्वामी, महन्त गणेशा सिंह तथा महान् कोश के कर्ता भाई कान्ह सिंह इन सब के अनुसार पंडित तारा सिंह नरोत्तम का जन्म संमत १८७६ विक्रमी को ज़िला गुरदासपुर के एक गांव में हुआ।[१]

बचपन से ही साधु संगति का प्रभाव इन पर पड़ा। साधु महापुरुषों के संसर्ग में रहने के कारण सांसारिक बन्धनों को उतार कर पंजाब के प्रसिद्ध सन्त गुलाब सिंह निर्मला के चरणों में जा पहुंचे। कुछ समय तक सेवा कर गुरुदीक्षा ग्रहण की। पंडित गुलाब सिंह से आशीर्वाद लेकर संस्कृत विद्याध्ययन के लिए काशी गए। अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण भाषा वेदान्त आदि दर्शन, व्याकरण, पुराण आदि विषयों के मर्मज्ञ विद्वान बन गए।

बचपन से आपकी रुचि गुरुवाणी की ओर थी। आप गुरुवाणी का अध्ययन बड़ी गंभीरता से करना चाहते थे। इन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य गुरुवाणी की मर्मोद्घाटिनी व्याख्या करना बनाया। इनका विचार क्षेत्र गुरुवाणी और

१- निर्मल भूषण- गणेशा सिंह- पृष्ठ १२२
निर्मल पंचायती अखाडा- मुनि स्वामी अर्जुन सिंह- पृ० ६०
निर्मल मत दर्शन- महन्त दयाल सिंह, पृ० ४२१

सिक्ख इतिहास रहा है। इसी बात का समर्थन महन्त दयाल सिंह ने भी किया है।[१]

नरोत्तम ने महाराजा पटियाला के सम्मुख कुछ ग्रंथों की टीका-टिप्पणी करने और गुरु इतिहास की खोज करने का प्रस्ताव रखा। महाराजा नरेन्द्र सिंह ने हर तरह की सहायता देने का वचन दिया क्योंकि वे स्वयं पंथ के बड़े हितैषी और गुरुघर के सच्चे सेवक थे तथा विद्वानों के शुभ चिन्तक थे। फलत: नरोत्तम पटियाला जाकर साहित्य सेवा में जुट गए।

अपनी अद्भुत प्रतिभा तथा अपने विशाल अध्ययन के कारण वे पंजाब के विद्वानों में अगुणी समझे गए। मुनि अर्जुन सिंह ने नरोत्तम को 'मान्यवर विद्यारत्न साहित्य वाचस्पति विद्यालंकार राजगुरु पंडित तारा सिंह नरोत्तम की पदवी से सुशोभित किया।'[२]

आपके प्रतिभाशाली व्यक्तित्व को देखते हुए निर्मल भेष ने संमत १९३२ में आपको 'निर्मल पंचायती अखाड़ा' का श्री महंत बना दिया। श्री महन्त होते हुए भी अपने लिखने पढ़ने के कार्य को नहीं छोड़ा। अन्त समय तक अखाड़े की पूरी तरह सेवा करते रहे। संमत १९४८ में आपका देहांत हो गया।

रचनाएं

नरोत्तम के साहित्य की प्रमुख दिशाएं ये हैं:-

१- कोशकारिता

२- व्याख्याकारिता

३- कर्मकाण्ड सम्बन्धी रचनाएं

१- 'मेरे ख्याल विच तां निरमले भेष विच इस इक अदुती पंडित होए हन, जो छिआं शास्त्रों दे पूरण गिआतां होन दे बावजूद गुरुघर दे ग्रंथा देवी चंगी जाणू सन। केवल जाणू ही नहीं बलकि धरम शास्त्र ते गुरु इतिहास दे पूरे पूरे खोजी सन।'-- निर्मल मत दर्शन- महन्त दयाल सिंघ-४२

२- मुनि अर्जुन सिंह स्वामी- निर्मल पंचायती अखाड़ा- पृ० ९०

तारा सिंह नरोत्तम के जीवन का एक मात्र उद्देश्य गुरुवाणी की मर्मोद्घाटिनी व्याख्या करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नरोत्तम ने कभी गुरुवाणी कोश लिखे तो कभी गुरुवाणी की अत्यन्त मार्मिक व्याख्या की, तो कभी गुरुधामों के जीवन यात्रा विवरण प्रस्तुत किए। इनके इस विपुल साहित्य को देखते हुए कहा जा सकता है कि इनका जीवन गुरुवाणी के प्रति अनन्य रुप से समर्पित जीवन था।

नरोत्तम: गद्य

नरोत्तम के साहित्यकार की सबसे बड़ी उपलब्धि उनका गद्य है। शास्त्रीय परिभाषाओं को अपनाते हुए आपने जो महत्वपूर्ण गद्य लिखा है उसका मूल्य और महत्व अकल्पनीय है। हिन्दी खड़ी बोली के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय कार्य किया।

महान कोश के महान् लेखक भाई कान्ह सिंह ने तथा डा० गोविन्द नाथ राजगुरु ने नरोत्तम की रचनाओं की जो सूचि दी है, वह अपूर्ण है और उनकी पृष्ठ संख्या भी गलत है।

नरोत्तम ने स्वयं गुरु तीर्थ संग्रह के अन्त में अपनी कृतियों का विवरण दिया है।[१]

क्रमांक	रचना	रचना काल	पृष्ठ संख्या
१-	मोक्षपंथ की टीका	संमत १६२२	अप्राप्य
२-	सुरतरु कोश	संमत १६३३	अप्राप्य
३-	गुरुमत निरणय सागर	संमत १६३४	५५७

१- गुरु तीर्थ संग्रह- तारा सिंह नरोत्तम- पृ० २७४-२७५

क्रमांक	रचना	रचना काल	पृष्ठ संख्या
४-	परीष्या परिकरण	संमत १६३५)	४४
५-	वाहगुरु शबुदार्थ	संमत १६३५)	१६
६-	अकाल मूरति परदरसन	संमत १६३५)	२४
७-	कालादि शबुदार्थ	-)१	१४
८-	गुरु वंशावली अथवा गुरु वंश तरु दरपण	संमत १६३५	अप्राप्य
६-	जप रहिरास सौहिला	संमत १६३७	४२७
१०-	भांता दी बाणी	संमत १६३६	६१६
११-	गुरु तीर्थ संग्रह	संमत १६४०	२८०
१२-	श्री राग टीका	संमत १६४२	४६६
१३-	गुरु गिरारथ कोश दो भाग	संमत १६५३[२]	१४२३
		पृष्ठ	४१७०

नरोत्तम के इस संपूर्ण साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता इसमें मौलिक कृतियों की उपलब्ध है। इन्होंने अनुवाद की ओर ध्यान नहीं दिया। नरोत्तम ने अपने गुरु गुलाब सिंह समान रचनाओं में अपनी बौद्धिकता का परिचय दिया है।

नरोत्तम ने गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य सम्बन्धी कई हज़ार पृष्ठों की गद्य सामग्री दी है। इनकी पद्यात्मक रचना बहुत कम है। गद्य में वर्णित विषय का ही विवरण कहीं कहीं पद्यों में उपलब्ध है।

१- एक ही पुस्तक-गुरुमत निर्णय सागर' के अन्त में चारों संकलित है।

२- गुरु गिरारथ कोश के दो भाग उपलब्ध हैं। एक ७१७ पृष्ठ का, दूसरा ७०६ पृष्ठ का। प्रथम का रचना काल संमत १६५१ तथा द्वितीय का रचना काल संमत १६५३ है। नरोत्तम की प्रौढ़ावस्था की रचनाएं हैं।

(१)- **गुरुमत:-** नरोत्तम ने गुरुमत निर्णय सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण रचनाओं की रचना की है। नरोत्तम के अनुसार गुरुमत सिद्धान्त का मूल उद्देश्य 'असुर भावों का त्याग और दैवी भावनाओं का ग्रहण है।' सिक्ख परम्पराओं के सन्दर्भ में विविध विषयों की चर्चा जैसे सांख्य, वैष्णव, शैव ईश्वर, भक्ति, वैराग्य विवेकादि पर की है। सिक्खों को क्या विहित है, क्या अविहित है, यही प्रतिपाद्य सामने रख कर गुरुवाणी नियम सिद्धान्त सम्बन्धी इस क्षेत्र में रचनाएं की।

(क)- **गुरुमत निर्णय सागर:-** नरोत्तम की यह कृति गुरुवाणी सिद्धान्त की प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है। इसका रचनाकाल संवत १६३४ है। सम्पूर्ण रचना चार खण्डों में और चारों खण्ड ३१ ऊर्मियों में बटे हुए हैं। सागर और ऊर्मि का काव्यमय विधान इस रचना को अधिक रुचिकर बनाता है।

निर्णय सागर में छोटी सी भूमिका देकर इसके प्रतिपाद्य का उल्लेख किया है। गुरुमत में भक्ति ही चरम साध्य मानी गई है और इसके लिए भक्ति सहित ज्ञान होना चाहिए। गुरु नानक जी के गुरु का निर्णय, गुरु अवतार, अवतार होने का कारण आदि अनेक विषयों पर भी विस्तृत चर्चा इस कृति में मिलती है। इन सब की चर्चा आगे जा कर की जाएगी।

वस्तुत: नरोत्तम की यह कृति जहां उनके ज्ञान अध्ययन की परिचायिका है वहां गुरुमत के प्रति उनकी आस्था की भी सूचना देती है।

(ख)- **गुरुमत: परिशिष्ट (कालादि शब्दार्थ):-** गुरुमत निर्णय सागर में इस छोटी सी रचना का संकलन है। नरोत्तम ने गुरु गोबिन्द सिंह जी के दशम ग्रंथ में आए काल के स्वरुप का उल्लेख किया है। काल, अकाल, महाकाल, महालोह, सर्वलोह, और सर्वकाल इन शब्दों के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की है। नरोत्तम ने गुरु गोबिन्द सिंह के इष्ट देव महाकाल को माना है।

(ग)- **परीष्या परिकरण:**- नरोत्तम की यह रचना भी गुरुवाणी सम्बन्धी निर्णय को प्रकट करती है। ३६ पृष्ठों की परीक्षा प्रकरण में नरोत्तम ने गुरुवाणी की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता की परीक्षा की है। आदि ग्रंथ और दशम गुरु के नाम से ग्रंथ साहिब से बाहर बहुत सी बाणी मिलती है। इनमें से कौन सी बाणी प्रामाणिक है और कौन सी अप्रामाणिक है। इन ~~के~~ सबके बारे में अपनी विचारधारा तथा प्रमाण सहित अपने भाव का स्पष्टीकरण किया है।

(घ)- **अकालमूरत प्रदर्शन:**- नरोत्तम ने इस रचना में अकाल पुरुष के स्वरुप का वर्णन किया है। यह अकाल परमशिव है। यही ब्रह्म है। लोगों ने इसकी पूजा रुद्र में समझ रखी है। नरोत्तम के अनुसार गुरु जी ने महाकाल की पूजा करनी कही है:-

> निरगुण सगुण स्वरुप धर राजत पुरुष अकाल,
> सीमा सरब मतान की पालक भक्त किरपाल।[१]

नरोत्तम ने अकाल के सगुण स्वरुप के मनोहर और भयंकर दोनों रुप बताए हैं।

(ङ)- **वाहिगुरु शब्दार्थ :-**

यह छोटी सी १६ पृष्ठों की रचना गुरुमत निर्णय सागर के अन्त में दी गई है। गुरु ग्रंथ साहिब में वाहिगुरु का मंत्र अलग से नहीं लिखा हुआ तथा नरोत्तम ने इस वाहिगुरु शब्द की महिमा बताई है।

(२)- गुरुवाणी: टीका

(क)- गुरु भाव दीपिका अथवा जपु रहिरास सोहिला-गुरुवाणी व्याख्या में नरोत्तम की यह प्रथम कृति है। इस कृति में जपुजी साहिब, रहरास साहिब, कीर्तन सोहिला तथा शब्दहजारे की टीका की गई है। टीका का आरम्भ मंगलाचरण से किया है।[२]

१- गुरुमत निर्णय सागर- तारा सिंह नरोत्तम- पृ० ६३८

२- स्वते सिध सुध बुध नित्य निर विकार निरजुर निरीह निरदोष निराकार है।
अजै अविनासी आदि अंत से बिहीन रुप अलष अपार पार निषल सार है।
एक रुप एक जोति एक सुष एक उन एक निधी एक देव एका सर्वाकार है।
वही निज माय मै पसार जोति तिन रुप धार के कहायो गिरासार उकार है।
-- गुरु भाव दीपिका, पृ० २

मंगलाचरण में प्रथम गुरु से लेकर दशम गुरु गोविन्द सिंह पर्यन्त स्तुति की गई है। इसमें एक ओंकार की व्याख्या बड़े विस्तार के साथ की गई है।

(ख)- **बाणी मंगता टीका:-** गुरुवाणी व्याख्या सम्बन्धी नरोत्तम की यह कृति दो भागों में विभक्त है। एक भाग गूजरी राग पृष्ठ ३६६ तक तथा दूसरा भाग पृष्ठ ५२० तक है। इस कृति में नरोत्तम ने आदि ग्रंथ में संकलित भक्तों की वाणी की व्याख्या विस्तारपूर्वक और बड़े सुन्दर ढंग से की है। भक्त वाणी की व्याख्या गुरुमत विचारधारा अनुसार की गई। व्याख्या के उपरान्त नरोत्तम ने कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाया है। भक्तवाणी को आदि ग्रंथ में स्थान क्यों, कैसे मिला? इस प्रश्न पर भी नरोत्तम ने विस्तार से विचार किया है। जिनका उल्लेख आगे जाकर किया जायगा।

(ग)- **सिरी राग टीका:-** नरोत्तम की टीका कारिता का सर्वोत्कृष्ट रुप टीका सिरी राग में मिलता है। टीका सिरी राग में नरोत्तम ने महत्वपूर्ण भूमिका दी है। जिसमें टीका साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का विवरण दिया है। टीका परिभाषा, प्रकार आदि विषयों पर प्रामाणिक रुप से लिखा है।-

टीका सिरी राग का आरम्भ भी मंगलाचरण से किया है:-

'गुरुवर दस के दुंद पद दाइ अदुंदानंद
बंद बार बहु निज गुरं पद पकंज पुन बंद।'[1]

गुरु नानक के गुरु 'अकाल पुरुष' सम्बन्धी जिज्ञासा इस कृति के महत्व को बढ़ा देती है।

नरोत्तम के अनुसार बाणी का सीधा अर्थ करना ठीक नहीं जहां सीधा[2] सम्भव हो वहां सीधा जहां वांछित अर्थ न निकले वहां भावार्थ करना चाहिए।

१- टीका सिरी राग- भूमिका

२- 'सैष रही बाणी के अरथ तिनके विचार में बहुत लोक कहते हैं। बाणी का सीधा अरथ करना ही सार है। जो सबद की सक्तिसे प्रतीत होवे हैं जो और व्रितीयों से प्रतीत होवे सो सार नहीं। इसी लिये बहुत लोक तरजमह

वाणी व्याख्याता के रूप में नरोत्तम बड़े प्रसिद्ध और उच्च कोटि के व्याख्याकार कहे जा सकते हैं। व्याख्या के अन्तराल अपने भावों के स्पष्टीकरण के लिए स्थान स्थान पर प्रमाण दिए हैं। टीका के समय वे वाच्यार्थ को लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की अपेक्षा अधिक प्रधानता देते हैं। यही कारण है कि उनकी टीका व्याख्या सजीव है।

नरोत्तम के पूरे टीका साहित्य को देखने से पता चलता है कि गुरुवाणी व्याख्या की एक समृद्ध परम्परा उन्हें उत्तराधिकार में मिली। इसी परम्परा को उन्होंने अपने ज्ञान अध्ययन से और भी अधिक सम्पन्न बनाया है।

तीर्थ संग्रह

गुरुमत सम्बन्धी 'तीर्थ संग्रह गुरु इतिहास में एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। 'तीर्थ संग्रह में नरोत्तम ने 'गुरुकुल' का इतिहासिक विवरण दिया है। गुरु नानकजी से लेकर गुरु गोबिन्द सिंह, पर्यन्त दस गुरुओं ने जहां जहां जन्म लिए हैं, जहां सिंघासन पर विराजमान रहे हैं। जहां धर्मोपदेश दिए, युद्धादि से भूमि को पावन किया उन सब स्थानों, 'गुरुधामों' का विवरण दिया है। नरोत्तम ने तीर्थ यात्रा को ज्ञान की पहली भूमिका बताया है। तीर्थ महिमा का सकामी व्यक्तियों को तीर्थ यात्रा से धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति होती है और निष्कामी व्यक्तियों को मोक्ष की प्राप्ति होती है। तीर्थों के वर्णन में ज़िला, शहर, ग्राम दिशा, कोश, कोस आदि का वर्णन बड़ा सराहनीय है। इसका वर्णन आगे जाकर किया जाएगा। यह कृति पंजाब के साहित्य में बड़ा महत्व रखती है। अछूते यद्यपि यह कृति आज उपलब्ध न होती तो आज बहुत से गुरुधाम' अछूते रह जाते। इससे

(पिछले पृष्ठ से)

व टीका वैसी करते हैं जिनमें केवल मूल के पाठों के दूसरे नाम ही आवें। मूल का भाव नास ही होवे। परंतु यह यह रीती भली नहीं। काहे ते जेकर सीधा अरथ करना है सार होवे तब जो लोग संस्कृत में भावारथ कहते हैं। पारसी में मुरादी मायने कहते हैं तो सो न करने ही गैं। और करे हैं। याते जहां सीधा संभवे करो। जहां सीधे से वकता का वांछित अरथ ना निकसे तहां भावारथ करो। कोई लोक केवल भावारथ ही लिखते हैं। - - -

तारा सिंह नरोत्तम की भ्रमणशील प्रवृत्ति का भी पता चलता है।

कोश

टीका व्याख्या और गुरुमत निर्णय सम्बन्धी रचनाओं के पश्चात् तारा सिंह नरोत्तम एक ~~[illegible]~~ कोशकार के रुप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। गुरुवाणी अर्थ सम्बन्धी नरोत्तम ने दो कोशों का निर्माण किया:-

१- सुरतरु कोश- चार हजार शब्दों के संकलन का कोश है।
२- गुरु गिरारथ कोश दो भागों में उपलब्ध है।

सुरतरु कोश आज अपर्याप्त है। गुरु गिरारथ कोश के पूर्वार्द्ध में वर्णमाला क्रम 'उ अ इ' से लेकर 'णा' तक के अक्षर को लिया गया है। उत्तरार्द्ध में वर्णमाला क्रम 'त' से लेकर 'ड़' (ड़) तक है। गुरु गिरारथ कोश नरोत्तम की प्रौढ़ावस्था की रचना है। इन कोश सम्बन्धी रचनाओं में नरोत्तम का जीवन-व्यापी अध्ययन स्पष्ट होता है।

नरोत्तम ने गुरु गिरारथ कोश की भूमिका के कोश सम्बन्धी कई प्रश्नों का उल्लेख किया है। किस प्रकार का कोश होना चाहिए। उसमें शब्द शक्ति का कौन सा अर्थ लेना उचित है। कोश परिभाषा[1], कोश शैली[2] इन सब का उल्लेख किया है।

(पिछले पृष्ठ से)

भावारथ में अषरारथ होवे नहीं। चाहिए पहिले अषरों का अरथ यति उभै टीका सार है। केवल भाव व केवल सीधी टीका सार नहीं।-

भक्त बाणी पृ० ७

१- 'कोस नामों के अरथ बोधक ग्रंथों को कहते हैं। सो भी व्याकरण वत विद्या के अभ्यास के मूल है। इसी लीए जो लोग जिस बोली के सीषने की इछा करते हैं। पहले उसके अरथ ग्यान वासते तिसके कोस अर व्याकरण को पड़ते हैं। किउं की व्याकरण बिना पदों के यौगिक अरथों का ग्यान नहीं हो सकता। कोस बिना गूढ़ पदों का योग रुढ़ पदों का अरथ ग्यान नहीं हो सके। प्राचीन कोसों से भी पदों के बहु अरथ जाने जाते हैं जिन अरथों

नरोत्तम जहां एक ओर नाना शास्त्र पारंगत आचार्य थे वहां दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ थे। कुछ शब्दों को लेकर उन्होंने भाषा शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। अरबी, फारसी और अंग्रेजी भाषाओं का साधारण ज्ञान तो उन्हें था ही पंजाबी तथा पंजाबी की उपबोलियों का भी पर्याप्त ज्ञान उन्हें था।

(पिछले पृष्ठ से)

में पदों की शकती व्रिती है। जैसे उलू पद की उलूक पषी में सकती है। कोस में इसका जह नाम देषने से उसी का ध्यान होता है। जिन अरथों में पदों के लषणा है वा व्यंजना है वहु अरथ कोस में नहीं लिषा जाते जैसे उलू पद की मूरष पुरष में लषणा है याते कोस में मूरष का नाम उलू नहीं लिषा जाता।" - गुरु गिरारथ कोस- भूमिका

२- वरण क्रम के कोसों में नाम षोजने की दो रीति है एक तो जिस अषर वाला नाम षोजना होवे। उस अषर से आगे अषर से मेल से नाम षोजा जाता है। जैसे अगना अगम अगाध अगोचर नामों के अरथ षोजने होवें तो आदि में ङङा आगे गकार षोज के नाम मिलता है। सो रीति इस कोस में नहीं रषी गई। दूसरी जिस अषर वाला नाम षोजना होवे उसके अंत का अषर देष के नाम मिलता है। जैसे सुत सुता सुरति सुनीति सुरपति नामों के अरथ षोजने होवे तो आदि में ओंकड़ वाला सस षोज के पीछे तंता देषने से नाम मिलता है सो रीति इस कोस में है, जहां ( ) ऐसा चिंन होवेगा। तहां संस्कृत पदों से करता करणादिक अर्थों का सूचक होवेगा। जहां " " ऐसा चिंन होवेगा तहां प्रमाण वाक्य का सूचक होवेगा। --

वही, भूमिका

निष्कर्ष

स्पष्ट होता है कि नरोत्तम के समस्त चिन्तन पर वेदान्त और योग दर्शन छाया हुआ है। अपने समस्त दार्शनिक चिन्तन को नरोत्तम ने गुरुवाणी की व्याख्या के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। नरोत्तम एक ओर तो दर्शन के प्रकांड पंडित थे। दूसरी तरफ वाणी जैसी मर्मज्ञ थे। इनके व्यक्तित्व की तीसरी फलक प्रमुख कोशकार के रुप में दिखाई पड़ती है। टीका कारिता का सर्वोत्कृष्ट रुप इनकी कृतियों में देखने को मिलता है।

नरोत्तम ने भारतीय संस्कृति, विचारधारा, साहित्य का गहरा अध्ययन किया है। विषय का व्याख्यात्मक निरुपण, भाषा तथा शैली जैसी विविधता तथा विभिन्नता इनके साहित्य में पाई जाती है।

गुरुमत की पूरी-पूरी व्याख्या नरोत्तम ने बड़ी गम्भीरता के साथ की है। तीर्थ-यात्रा सम्बन्धी विवरण भी उनके बहुत प्रामाणिक है। कोश सम्बन्धी रचनाओं में गुरु ग्रंथ साहिब सम्बन्धी कठिन पदों का अर्थ समझाने का अद्भुत ढंग से प्रयत्न किया है। अपने भावों के स्पष्टीकरण के लिए स्थान-स्थान पर वेदान्त-प्रमाण तथा गुरुवाणी प्रसंग देकर अपने मत की पुष्टि की है।

नरोत्तम ने एक और तो गुरुमुखी लिपि में साहित्य लिखकर साहित्य की वृद्धि और समृद्धि की तथा दूसरी ओर भाषा के विकास में विशेषकर खड़ी बोली में पंजाब के सन्त कवियों में बड़ा योगदान दिया।

यद्यपि नरोत्तम बड़े उच्च श्रेणी के विद्वान पंडित हुए और इनकी रचनाओं में बहुज्ञता, पौराणिक सन्दर्भ की फलक देखने को मिलती है परन्तु व्याख्या करते समय बहुधा भटक जाते हैं। इनकी बहुमुखी प्रतिभा, शास्त्रार्थ में निपुणता तथा भाषा की मर्मज्ञता इन्हें बहुत प्रभावित करती है। अन्तत: नरोत्तम का सम्पूर्ण जीवन विविधता और विशालता से भरा हुआ है। रचनाओं के माध्यम से एक अमूल्य साहित्यिक निधि हिन्दी साहित्य में दे गए हैं।

Why discuss him at all

(३)- साधु सिंह

तारा सिंह नरोत्तम के गुरु भाई साधुसिंह का जन्म भाई कान्ह सिंह के अनुसार अमृतसर के जिले गांव सरली में समंत १८८७ में हुआ।[1] परन्तु महन्त गणेशा सिंह इनका जन्म संमत १८८७ में न मानकर समंत १९०३ में हुआ मानते हैं।[2]

महन्त साधु सिंह ने 'श्री मुख वाक्य सिधांतज्योति' के अन्त में अपने पिता का नाम शोभासिंह तथा माता का नाम पुनदेवी बताया है:-

'परमगुरु महासुराम हरि जाने प्रसिद मतु मातु।
साधु सिंघ पद बदना करति बंद बिबुधाना।
सोभाहरि पितु मात पुनदेवी नाम बषाना।
तिन प्रसादि गुरु सरण लहि परानंद उरमाना।'[3]

महन्त साधु सिंह निर्मल सम्प्रदाय के उच्चकोटि के विद्वानों में से एक थे। यह निर्मल पंथ के सच्चे हितैषी, परोपकारी, दयावान गुरुमत के सच्चे प्रेमी, दृढ़ विश्वासी तथा पंडित गुलाब सिंह के शिष्य रहे।

साधु सिंह प्राय: भजन-पाठ, या लिखने पढ़ने में ही अपना समय व्यतीत किया करते थे। यद्यपि साधु सिंह बहुत कम समय ही निर्मल पंचायती अखाड़ा के श्री महन्त पद पर विराजमान रहे तथापि उस कम समय में ही निर्मल पंथ की पर्याप्त सेवा आपने की। महन्त साधु सिंह की गुरुवाणी व्याख्याओं को देखकर गणेशा सिंह ने इन्हें गुरुघर का 'व्यास' कहा है।[4]

१- गिड़वड़ी निवासी संत साधू जी इन्हां दा जनम पिंड सरली (जिला अम्रितसर) विच संमत १८८७ नूं होइआ।' महान कोश- पृ० १३७

२- 'महंत साधु सिंघ जी पिंड सरलीआं तेहसील तरन तारन जिला अम्रितसर विषे समंत १९०३ विच पैदा होए सन।'
- निर्मलभूषण- गणेशा सिंह- पृ० १४२

३- श्री मुख वाक्य सिधांत ज्योति- साधू सिंह- पृ० ४७६

४- आपने जो कुछ रचना कीती सो सभ गुरुघर दे ही प्रमाणा द्वारा भरपूर है। आपनूं गुरुघर दे व्यास कहिआ जावे तां अत्युक्ति नहीं।- निर्मल भूषण गणेशा सिंह, पृ० १४४

साधु सिंह संस्कृत और हिन्दी के विद्वान पंडित तथा गुरुवाणी के गम्भीर अध्येता थे। गुरुवाणी व्याख्या करते समय परम्परा प्राप्त वेदान्त का प्रभाव इनकी रचनाओं में कहीं भी देखा जा सकता है। यद्यपि इनके गद्य में संस्कृत-प्रभाव के कारण प्रवाह कम है। फिर भी इनकी रचनाओं में विचारों की जो एक अपूर्व निधि विद्यमान है उसका मूल्य और महत्व कम नहीं है।

रचनाएं

भाई कान्ह सिंह के अनुसार साधु सिंह दो कृतियों के सफल लेखक रहे हैं:-

१- ग्रन्थ श्री गुरु-वाक्य सिधांत ज्योति

२- गुरु सिष्या प्रभाकर।

परन्तु महन्त दयाल सिंह के अनुसार इन कृतियों के अतिरिक्त 'द्वैपंथ प्रदीपका' तथा 'ब्रित दीपका' (पंज कोश विवेक) भी इन्हीं की कृति है।[२] हमें केवल उपरलिखित दो ग्रन्थ ही देखने को मिले हैं।

'श्री गुरु वाक्य सिधांत ज्योति' पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है। संमत १९५० में प्रकाशित हुई। पूर्वार्द्ध में तेरह अंश तथा उत्तरार्द्ध में चौदह अंश है। कुल ७५६ पृष्ठों की यह आलोच्य काल की प्रमुख कृतियों में से एक है।

इस कृति में दार्शनिक तत्वों तथा अद्वैतवादी सिद्धान्त का उल्लेख गुरुवाणी की व्याख्या करते हुए किया है। मुख्य प्रतिपाद्य गुरुवाणी व्याख्या ही है। परन्तु इसके सन्दर्भ में कई विभिन्न विषयों की चर्चा भी कर गए हैं।

१- 'आपने जो कुछ रचना कीती सो सभ गुरुघर दे ही प्रमाणा द्वारा भरपूर है। आपनूं गुरुघर दे व्यास कहिआ जावे तां अत्योक्ती नहीं।' निर्मल भूषण- गणेशा सिंह- पृ० १५८

२- इथे रहि के गुरु सिषिआ प्रभाकर, गुर सिधांत ज्योती, द्वै पंथ प्रदीपका ब्रितदीपका, (पंज कोश विवेक) आदि कई पुसतक लिष के गुरुघर दी सेवा करदिआं होइआं समा बतीत कीता।
- निर्मल पंथ दर्शन- महन्त दयाल सिंह- पृ० ४५४

गुरु सिष्या प्रभाकर में विस्तार पूर्वक परब्रह्म स्वरुप सच्चिदानंद का प्रतिपादन किया है। द्वैत प्रतिपादन का तिरस्कार कर अद्वैत ब्रह्म विद्या का उल्लेख किया है। सच्चिदानंद स्वरुप होने से ब्रह्म व्यापक है और उसका निवास समष्टि, व्यष्टि, जड़-जंगम सभी में है।

साधु सिंह ने नरोत्तम के समान ही गुरु को अवतार माना है।[१] साधु सिंह अपने काव्य का आरम्भ अन्य निर्मल सन्तों के समान मंगलाचरण से करते हैं। जिसमें दसों गुरुओं की स्तुति और गुरु के गुरु की तथा अपने गुरु की वन्दना की है।[२]

इन कृतियों में साधु सिंह ने दार्शनिक शब्दावली के द्वारा किसी अद्वैत तत्व अथवा दर्शन का ज़िक्र आरम्भ में ही किया है। अर्थात् प्रत्येक अंश में दार्शनिक तत्व का उल्लेख पद्य के साथ प्राय: आरम्भ किया गया है। मुख्यत: अद्वैतवादी सिद्धान्त का उल्लेख कर उसकी पुष्टि के लिए गुरुवाणी प्रमाण[३] या किसी भक्त की वाणी प्रमाण स्वरुप उद्धृत कर 'तदुक्तंच' कहकर की गई है। इसके उपरान्त अर्थ व्याख्या की है।

१- माटी मों यों घटतंतु पटकंत रंग रंग चित्र धूपनी रहे मवलेउ सिसार है।
सीपि रुपो रजु साप ठूठ चोर न मनील शिला देवदारु फट गजन वनारि है।
लाल क्रांति सिता कटु संख पीत अभ्र धूम गिरि मनो राजसाक्षी स्वप्न संसार है।
तैसे ये संसार भ्रम भासति परमातमा मैं अंयान पछाने याते गुरु अवतार है।
धार के स्वरुप दश नानक गोबिंद सिंघ उभे गुरु ग्रंथन मे सो सिधांत गानिउ।
तोपि ईश रचना ते परे न पधान पुन तो परेश गुर हवे मैं कीनी बिलपानिउ।
सुक्रिति समूहजन सुगम पछाने जिम याहि हेतु यामें ततसार है बषानिउ।
साधु हरि देवी गुणधारि जो बिचारे याहि ताहि जग ब्रह्म मान आनंद महानिउ।
श्री मुख वाक्य सिधांत ज्योति- उत्तरार्द्ध अंश- पृ० २

२- एक ओंकार सतिगुर प्रसादि- अथ अनुर अराध प्रारंभ- श्री गुरु ध्यानम:
कबित- ईश्वर नानक गुरु अंगद अमरदास रामदास अरजुनु सिमरो गोबिंद हरि
हरिराई क्रिशन हरि तेग धनी ध्यान कर दशम गोविंद सिंघ विघन समूलहरि
करम सिंघ जै सिंघ मेहर म्रिगिंद औ अबीर सिंघ चेत सिंघ सदा सिंघ पार .
मानसिंह क्रिपा सिंघ सिमरो जमति सिंघ बदेना गुलाबसिंघ गुरु कवि साधु हरि।
श्री मुख वाक्य सिधांत ज्योति- उत्तरार्द्ध अंश पृ० एक

ऐसा प्रतीत होता है कि साधु सिंह ने भारतीय दर्शन, संस्कृति का गहरा अध्ययन किया हुआ था क्योंकि गुरुवाणी व्याख्या के साथ-साथ वेदान्त की चर्चा भी विस्तार से की ~~ह~~ है। गुरुवाणी व्याख्या के आरम्भ में, बीच में, कहीं न कहीं पर उन्होंने वेदान्त चर्चा ला खड़ी की है। जिसमें विवर्तवाद, तत्ववाद, द्वैत-अद्वैतावाद, अवच्छेदवाद का उल्लेख किया है। गुरुवाणी की व्याख्या और उस व्याख्या को भारतीय दर्शन के पूरे परिवेश में प्रस्तुत करना साधु सिंह की एक बड़ी सफलता है।

(४)- ठाकुर निहाल सिंह

भाई साधु सिंह के पश्चात् ठाकुर निहाल सिंह निर्मल वर्ग के एक और विद्वान ने गुरुवाणी व्याख्या में अपना सहयोग दिया। साधु सिंह की प्रेरणा से ही इन्होंने गुरुवाणी की व्याख्या की। भाई कान्ह सिंह के अनुसार महल सिंह के घर निहाल सिंह का जन्म अमृतसर में हुआ। तथा इन्होंने 'जाप साहब' पर 'चक्रधर चरित्र चारु चन्द्रिका' नाम की टीका समत १९२९ में की। तथा इसका प्रकाशन समय १८९८ ई० है। ठाकुर निहाल सिंह ग्राम 'थोहा' के निवासी थे।

चक्रधर चरित्र चारु चन्द्रिका दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध।

पूर्वार्द्ध में ~~उप~~ ३४ अंश तथा उत्तरार्द्ध में १७ अंश हैं।

कृति के आरम्भ में 'गुरुकुल' की स्तुति की गई है।[१] गुरु नानक जीवन सम्बन्धी

(पिछले पृष्ठ से)

३- एक ओंकार सतिगुर प्रसादि। श्री गुरु भ्योनमः दोहरा:-
ब्रह्म निजातम लखाति मनि वदति वेद गुरु सोई।
अनिक युक्ति आधिकारि मनि भेद भ्रम भय खोई।
तदाच श्री मुख वाक्य- सतिपुरुष जिनि जानिआ सतिगुरु तिस का नाउ
तिस के संगि सिख उधरै नानक हरिगुण गाउ।'
- श्री मुख वाक्य सिधांत ज्योति- पृ० ३२

१- श्री नानक अंगद अमर राम दास जग जानि
अरजुन हरि गोबिंद हरिराय क्रिशन हरि भानु।

घटनाओं का उल्लेख भी किया है। जाप साहब दशम गुरु की सर्वोत्कृष्ट कृति होने पर ठाकुर निहाल सिंह ने बड़ी सरल और विस्तार के साथ इसकी टीका की है।

निहाल सिंह ने भारतीय दर्शन, वेदान्त पुराण आदि का गहरा अध्ययन किया हुआ था। द्रौपदी, पांच पांडव, पांच तत्व, सांख्य, गजानन, वेद-व्यास, त्रेता- द्वापर युग का वर्णन, मीमांसा, पंत जलि, अश्वनि कुमार, बलभद्र, बलदेव, रामचन्द्र कृष्ण आदि पौराणिक प्रसंग और सन्दर्भ देकर अपने भाव का स्पष्टीकरण[1] किया है। इसी जाप साहिब की व्याख्या में निहाल सिंह ने जापजी का जन्म जाप की स्तुति,[2] जाप की व्युत्पत्ति[3] आदि का विवरण दिया है।

(पिछले पृष्ठसे)

तेग बहादरि तिलक जग श्री कलगी धर पाय।
बंदौ द्वै कर जोर कर करि हैं सगल सहाय। १०

चक्रधर चरित्र चारु चंद्रिका- निहाल सिंह- पृ० ३

१- सवैया-
गोरषदत दिगंबर अंबर आइ अदेस अलेषा अलाई।
गोबिंद सिंघ सुनौ भव पंथ स्व पंथ कुपथं कुधार कराई।
गोरषादत सुनौ सुभ सत अदेस अलेषा अलेषा को भाई।
जाप जपै जप जाप को जापक आपक आपकु आप लषाई।'

-चक्रधर चरित्र चारु चंद्रिका- पृ० ४१

२- 'रे रे मन क्यों फिरत जंत्र तंत्र न मे मंत्रन से मित्त तान षोजे कहूं पावैगो।
त्यौ हरि निहाल जाल जानकलि काल जू के बेद भेद षद बिन कौनु सिषरावैगो।
और सुनो अंगन को रोक जोग जग्य कर ग्यान हूं कथे ते ग्यानपदवी न पावैगो।
बिना जाप जी के नीके ही के सुष ही के भैया साची कहो बाद ही गमावैगो।

-- वही, पृ० ४२

३- 'जप्यतीति जाप: जपीए सो कहीए जाप। वा जप एव जापह।
जप ही जोइ सो जाप। वा जप्यते अने नेति जाप:।
जिस कर के जप करीए सो कहीए जाप।'

चक्रधर चरित्र चारु चंद्रिका- पृ० १०८ ।

ठाकुर निहाल सिंह के अनुसार सत्य स्वरुप परमात्मा की प्राप्ति सतगुरु की कृपा के बिना नहीं होती। अनन्त परमात्मा अद्वितीय, सजातीय, विजातीय स्वगत भेद से रहित माया के आश्रित होकर सृष्टि का कर्ता है। सृष्टि दो प्रकार की है। एक ईश्वर कर्तृक दूसरी जीव। जागृत अवस्था से लेकर मोक्ष पर्यन्त अनन्त प्रकार की रचना जीव सृष्टि है। अकाल पुरुष के स्वरुप का उल्लेख भी किया है।

निहाल सिंह ने प्रश्नोत्तर शैली के द्वारा अपने वक्तव्य को स्पष्ट बनाया है। अकाल पुरुष जी माया का आश्रय व रुप होकर अंत भाव को प्राप्त हुआ वह कैसा है। ठाकुर निहाल सिंह के अनुसार वह आश्चर्य रुप है। निर्गुण अकाल पुरुष क्योंकि सबसे भिन्न है और सब के मध्य है इस लिए आश्चर्य रुप है।

निहाल सिंह ने व्याकरण[१] और कोशानुसार एक-एक शब्द के अनेक अर्थ व्याख्या के उपरान्त दिए हैं। इसी प्रकार वाहिगुरु मंत्र की व्याख्या लगभग ५० पृष्ठों अर्थात् पूरे एक अंश में की है। इससे प्रतीत होता है कि लेखक के पास ज्ञान का बहुत बड़ा भंडार था जिसे शब्दार्थ व्याख्या द्वारा भिन्न-भिन्न पौराणिक सन्दर्भ देकर प्रकट किया है।

१- नमस्तंव अकाले:- अकाल जो तू है नास ते रहित तुझ को नमसकार होवै। एक वा अकाल (अ) वासदेव (क) ब्रह्मा (ल) प्रलय का वाचक है सो रुद्र जान लीजे ए तन मूरति त्रय रुप तुझ के प्रति नमसकार होवै।२। वा हे अकाले भगवती तुझ को नमसकार होइ इस अरथ में किसी ने गिलानी नहीं करनी किउं के युगल उपासना है युगल उपासना बिना कारज की सिधी भी नहीं होती। और दो कथन मात्र है वासतव ते अभेद है जैसे सूरज और प्रभा चंद्रमा और क्रांती शबद और अरथ इनमो भेद नहीं है। एक और बात है कि देखो प्रथम सक्ति का उचारन होता है। जैसे सीता रामचंद्र राधा क्रिशन लखमी नाराइण।३। वा काल नाम काल का है। (अ) निषेध वाचक है अकाल है क्या शुध है निसकलंक है। सो तुझ को नमसकार होइ।४। वा काल नाम जम का भी है। अरथ किया जिस को जमादिक मै नहीं दे सकते सो तिसको नमह। और काल नाम सरप का है। क्या सरपादि क्रूरता से रहित है अरथात सौम्य भाव है सो तिसको नमसकार होइ। ६।

चक्रधर चरित्र चारु चंद्रिका। - पृ० २०४

कहीं पर टीकाकार लम्बे-लम्बे वाक्यों में उलझ गया है परन्तु सामान्यत: उन्होंने बड़ी ही स्पष्ट और सशक्त शैली में अपना मंतव्य प्रस्तुत किया है।

ठाकुर निहाल सिंह नरोत्तम के समान शुद्ध पाठ पढ़ने को महत्व देते हैं जो शुद्ध वाणी पाठ करता है वह गुरु रुप है जैसे गुरु ग्रंथ साहिब में लिखा है:-

बाणी विच बाणी अंम्रित सारे
बाणी कहै सेवकु जनमाने प्रतख गुरु निसतारे।

ठाकुर निहाल की भाषा[1] में प्रवाह और माधुर्य है। प्राय: इन्होंने सभी प्रकार[2] के छन्द, दोहरा, कबित्त छप्पय, चौपाई, सोरठा, रुपांतर विधुनमाला आदि का उल्लेख बड़े सुन्दर ढंग से किया है। अनुप्रास प्रधान शब्द प्रयोग से एक चित्र सा खींच देते हैं।[3]

१- कबित्त- पराहूते परा रुप अच्युत अनंत जोई उ अंकार
वैषरी को रुप क्रित करयो है।
त्रैता मांझ बेद त्रैई रुप तिन धार लीनो ब्रह्म बेद
व्यास द्वारा दुक्रित को दरयो है।
भनत निहाल सिंघ सिंम्रिति पुरान रुप द्वापुर में
दयानिधि थूल रुप बरयो है।
थोरी बुल थोरी ब्रिध थोरी आव जीव जान
कलियुग मै आप गुरु ग्रंथ रुप धार्‌यो है।=
चक्रधर चरित्र चारु चंद्रिका- पृ० १२

२- पापन मरजन। पुन्यन मरजन
मरजन तरजन। करत अमरजन
दुषनि हरिजन। सुषनि हरिजन
नमो नमो कर जन गुरु अरजन। १२।-- वही, पृ० ५

३- परम पुरष पूरन प्रभू प्रगट परावरनाथ
पदमापति पितु पदम जा प्रणव पदम पदमाथ। ५। वही पृ० १३

स्पष्ट है कि ठाकुर निहाल सिंह निर्मल सम्प्रदाय के विद्वान साधुओं में अपना विशेष स्थान रखते हैं। एक सफल व्याख्याता के रूप में हमारे सम्मुख आए हैं। सरल, प्रवाहमयी, बोधगम्य शैली में लिखी गई इनकी रचना हिन्दी साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

निष्कर्ष

निर्मल वर्ग के इन लेखकों ने जहां गुरुवाणी की व्याख्या एक नये ढंग से की वहां गुरुवाणी से संबंधित दार्शनिक तथा दूसरे प्रकार का पर्याप्त साहित्य प्रस्तुत किया। इस समस्त साहित्य की ये विशेषताएं हैं:-

१- गुरुवाणी की व्याख्या में परम्परा प्राप्त व्याख्याओं के साथ अपनी निजी दृष्टि की योजना।

२- वेदान्त आदि विभिन्न दर्शनों की सहायता से गुरुमत को दर्शन के स्तर पर प्रस्तुत करना।

३- गद्य पद्य के माध्यम से खड़ी बोली के साहित्य को सम्पन्न बनाना।

अध्याय- चतुर्थ

पंडित तारा सिंह नरोत्तम: कृतित्व

खण्ड- एक

(क)- गुरुमत निर्णय सागर
-पुस्तक परिचय

(ख)- भक्ति: पीठिका-
- भक्ति परिभाषा, भक्ति प्रकार, नवधा भक्ति

(ग)- भक्ति: ज्ञान: सामंजस्य

(घ)- भक्ति कर्म

(ङ)- भक्ति योग, कैवल्य प्राप्ति, भक्ति वैराग्य

(च)- भक्ति दर्शन

(छ)- भक्ति रस

(ज)- गुरु नानक: गुरु (अवतारवाद- विष्णु)

(झ)- चार कौड पत्र

अध्याय- चतुर्थ

पंडित तारा सिंह नरोत्तम: कृतित्व

गुरुमत निर्णय सागर

पुस्तक परिचय:- इस पुस्तक की समाप्ति संमत १६३४[1] तथा प्रकाशन संमत १६५५ है।[2] पूरी पुस्तक में ५५७ पृष्ठ हैं। इस कृति को चार खण्डों और इक्कीस उर्मियों में विभाजित किया है।[3]

१- पसचात ग्रंथ साहब जी के अरथ बिचार का परम सहाई षट सहस्र आठ सै संष्या गुरुमत निरणय सागर ग्रंथ संबत १६३४ में माघ वदी छठी को समापत कीआ।'- गुरु तीर्थ संग्रह- पृ० २७४

२- संत गुलाब सिंघ जी दे उद्योग से सरदार बूटा सिंह राए बहादर रावल पिंडी वाले ने अंगलो संसक्रित प्रेस लाहौर विच रामचंद मानक टाहले दे प्रबंध नाल छपवाया संमत १६५५-
गुरुमत निर्णय- सागर- पृ० मुख।

३- याते यह ग्रंथ इन मतों के निरणो का सागर है सागर मो लहरां होती हैं उनके ठिकाने इसमों इकतीस उरमीआ हैं। उरमी उरमी मो- कहने योग्य अरथों की सूचना लिषी जाती है जिसको देष कर के समग्र ग्रंथ में प्रतिपादन कीए पदारथों की शीघ्र सिम्रिति होगी।
- गुरुमत निर्णय सागर- भूमिका

गुरु घर की मर्यादा: रहतनामे

गुरुमत निर्णय सागर से पूर्व पंजाब में 'रहतनामों' की एक विशाल परम्परा मिलती है। ये ग्रंथ एक प्रकार से सिक्ख धर्म की 'आचार-संहिता' है। 'रहत' का शब्दार्थ रहित > √रह धातु > रहना > आचरण अर्थात् सिक्खों की 'रहणी-बेहणी' है। रहन-सहन का विस्तृत विधान इन ग्रंथों में है। विधि-निषेध की पूरी मर्यादा इन ग्रंथों में पाई जाती है।

प्राचीन रहतनामों का एक संकलन 'विवेक-वारिधि' बताया जाता है। जिसमें ३७ रहतनामों का संग्रह है। पंडित भगवान सिंह इसके लेखक बताए गए हैं।(1) रहतनामों के आधार ये हैं:-

१- गुरुबाणी
२- भाई गुरुदास की बाणी
३- भाई नन्द लाल की रचना
४- सर्वलोह प्रकाश
५- तनखाह नामा
६- चौपा सिंघ का रहतनामा
७- प्रहलाद सिंघ का रहतनामा
८- प्रेम सुमार्ग
९- भाई नंदलाल: प्रश्नोत्तर
१०- देसा सिंह का रहतनामा
११- दया सिंह का रहतनामा
१२- गुरुशोभा रतनमाल
१३- सौसाखी
१४- बाज बुल अरज
१५- महिमा प्रकाश, गुरु प्रताप सूरय आदि।

सिक्ख 'आचार-संहिता' सम्बन्धी भाई कान्ह सिंघ का गुरुमत प्रभाकर ( ), भाई जोध सिंह का गुरुमति निर्णय, तथा भाई लाल सिंह का गुरुमत निर्णय भंडार (जुलाई १९४४ ई०) में प्रकाशित) प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

---

(1) महान कोश - पृष्ठ 760

੧ ੴ ਸੂਚੀ ਗੁਰਮਤ ਨਿਰਣਯਸਾਗਰ ਕੀ ॥

	ਉਰਮੀ ਪ੍ਰਿਸ਼ਾਂਕ
ਪਹਲੀ ਉਰਮੀ ਮੇ ਭਕ੍ਤੀ ਸਹਿਤ ਗਯਾਨ ਗੁਰੁ ਮਤ ਕਾ ਸਿਧਾਂਤ ਲਿਖਿਆ	੧੦
ਦੂਸਰੀਮੇ ਗ੍ਰੰਥ ਜੀ ਕੀ ਬਾਣੀ ਕੋ ਪ੍ਰਮਾਣਤਾ ਔ ਪੌਨਰ ਯਨਕਤ੍ਵਾ ਸਿਧਕਰੀ	੧੯
ਤੀਸਰੀ ਮੈ ਵੇਦਾਦਿਕੋਂਵਤ ਇਸਕੀ ਟੀਕਾ ਅਵਸ਼ਯ ਚਾਹੀਯੇ ਯਹਸਿਧਕੀਆ	੩੨
ਚੌਥੀ ਮੇ ਟੀਕਾ ਕੇ ਰਚਨ ਕੀ ਰੀਤ ਲਿਖੀ	੪੪
ਪਾਂਚਵੀਂ ਮੈ ਗੁਰ ਨਾਨਕ ਜੀ ਕੇ ਗੁਰੂ ਕਾ ਨਿਰਣਯ ਲਿਖਾ ਹੈ	੫੩
ਛਠੀ ਮੈ ਗੁਰ ਪ੍ਰਮੇਸ਼ੁਰ ਕਾ ਅਵਤਾਰ ਸਿਧ ਕੀਯੇ	੭੫
ਸਾਤਵੀਂ ਮੈ ਅਵਤਾਰ ਹੋਨੇ ਕਾ ਬੀਜ ਲਿਖਾ ਹੈ	੭੯
ਆਠਵੀਂ ਮੈ ਵੇਦ ਕੇ ਮਾਰਗ ਕਾ ਚਲਾਵਨਾ ਲਿਖਾ ਹੈ	੯੭
ਨੌਵੀਂ ਮੈਂ ਗੁਰਮਤ ਕੇ ਇਸਟ ਦੇਵ ਕਾ ਨਿਰਣੇ ਲਿਖਾ ਹੈ	੧੧੩

ਇਤੀ ਪ੍ਰਥਮ ਖੰਡ:

ਦਸਵੇਂ ਅਧ੍ਯਾਯਮੈਂ ਪਾਖਾਣ ਪੂਜਾ ਕਰਨੇ ਯੋਗਯਨਹੀਂ ਯੁਗਲ ਉਪਾਸਨਾ ਕੀ ਆਵਸ਼ਯਕਤਾਨਹੀਂਭਕਤੀ ਗੁਰੂਮਤਮੇ ਅਨਨਯਹੈ ਯਹ ਲਿਖਾਹੈ	੧੩੦
ਗਯਾਰਵੀਂ ਮੈ ਸਭ ਮਤ ਸੰਮਤ ਭਕਤੀ ਕੀ ਰੀਤਿ ਸਿਧ ਕਰੀ	੧੪੯
ਬਾਰਵੀਂ ਮੈ ਭਕਤੀ ਕਾ ਭਕਤੀ ਕੇ ਗ੍ਰੰਥੋਂ ਕੇਅਨੁਸਾਰ ਪੂਰਾ ਪਕਾਰਲਿਖਾਹੈ	੧੭੪
ਤੇਰਵੀਂ ਮੈਂ ਸਾਮਗ੍ਰੀ ਸਹਿਤ ਰਸੋਂ ਕਾ ਸ੍ਵਰੂਪ ਨਿਰਣੇਕਰ ਸਾਂਤ ਰਸ ਮੈਂ ਸਭ ਸ਼ਾਸਤ੍ਰ ਕਾ ਤਾਤਪਰਯ ਲਿਖਯਾ ਹੈ	੨੧੦
ਚੌਧਵੀਂ ਮੈ ਬਾਤਸਲਯਾਦਿ ਪਾਂਚ ਰਸੋਂ ਕੇ ਸ੍ਵਰੂਪ ਨਿਰਣੇਕਰ ਭਕ੍ਤੀ ਕੇ ਬਿਚਾਰ ਕੀ ਸਮਾਪਤੀ ਕਰੀ ਹੈ	੨੧੯
ਪੰਦ੍ਰਵੀਂ ਮੈ ਦੂਸਰੇ ਭਾਵ ਕੇ ਨਿਰਣੇ ਮੈ ਵਿਵੇਕਾਦਿਕ ਚਾਰ ਸਾਧਨੋਂ ਕੇ ਸ੍ਵਰੂਪ ਲਿਖੇ ਹੈਂ	੨੩੧
ਸੋਲਵੀਂ ਮੈ ਗੁਰੁਸਮੀਪ ਜਾਕਰ ਸ੍ਰਵਣਾਦਿ ਔ ਪਦੋਂਮੈ ਸਕਤੀ ਲਖਣਾਕੇ ਬਿਚਾਰ ਲਿਖੇ ਹੈਂ	੨੪੫
ਸਤ੍ਹਾਰਵੀਂ ਮੈ ਪਦੋਂ ਸੇ ਔਰ ਵਾਕ੍ਯ ਸੈ ਜੈਸਾ ਅਰਥ ਗਯਾਨ ਹੋਤਾ ਹੈ ਔ ਤਿਸ ਗਯਾਨ ਸੈ ਜੋ ਮੁਕਤੀਆਂ ਹੋਤੀਆਂ ਹੈਂ ਉਨਕੇ ਸ੍ਵਰੂਪੋਂ ਕਾ ਬਿਚਾਰ ਲਿਖਾ ਹੈ	੨੬੫

एक उंअकार सूची गुरुमत निरणाय सागर की।

	उरमी ~~प्रिष्ठांक~~ प्रिशांक
पहली उरमी मौ भक्ती सहित ग्यान गुरु मत का सिधांत लिषिआ	१०
दूसरी मैं ग्रंथ जी की बाणी कौ प्रमाणता औ पुन्य जनक्ता सिध करी।	१६
तीसरीमै बेदादिकौं वत इसकी टीका अवश्य चाहीये यह सिध कीआ।	३२
चौथी मैं टीका के रचन की रीत लिषी।	४४
पांचवी मैं गुर नानक जी के गुरु का निरणाय लिषा है	५३
छठी मैं गुर प्रमैश्वर का अवतार सिध कीये।	
सातवीं मैं अवतार हौनै का बीज लिषा है।	
आठवीं मैं वेद के मारग का चलावना लिषा है।	
नौवीं मैं गुरमत के इसट देव का निरणै लिषा है।	

इती प्रथम षंड:

दसवें अध्याय मैं पाषाण पूजा करनै योग्य नहीं युगल उपासना।
कीआवश्यक्ता नहीं भक्ती ~~मुरुम~~ गुरुमत मैं अन्नय है यह लिषा है
ग्यारवीं मैं सभ मत संमत भक्ती की रीति सिध करी।
बारवीं मैं भक्तीका भक्ती के ग्रंथौं के अनुसार पूरा प्रकार लिषा है
तेरवीं मैं सामग्री सहित रसौं का सरुप निरणै का सांत रस मैं
सभ सासत्र का तातपरय लिष्या है
चौधवीं मै बातसल्यादि पांच रसौं के स्वरुप निरणै कर भक्ती
के बिचार की समापती करी है।
पंद्रवीं मैं दूसरे भाव के निरणै मैं विवेकादिक चार साधनौं के
स्वरुप लिषे हैं।
सोलवीं मैं गुरुसमीप जाकर स्रुवणादि औ पदौं मैं सक्ती लषणा के
विचार लिषे हैं।
सतारवीं मैं पदौं से और वाक्य से जैसा अरथ् ग्यान होता है
औ तिस ग्यान से जो मुक्तीआं होतीआं हैं उनके स्वरुपौं का
विचार लिषा है।

੧ ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

ਗੁਰੁ ਮਤ ਨਿਰਣਯ ਸਾਗਰਮੇਂ ਮਤ ਨਾਮ ਹੈ ਪ੍ਰਮਾਣੋਂ ਸੇ ਸਿਧਕਰ ਅੰਗੀਕਾਰ
ਕੀਏ ਪਦਾਰਥੋਂ ਕਾ ੧ ਦੂਸਰੇ ਬਚਨੋਂ ਕੇ ਤਾਤਪਰਯਸੇ ਸਿਧ ਭਏ ਪਦਾਰਥੋਂ
ਕਾ ੨ ਇਨ ਦੋਨੋਂ ਅਰਥੋਂ ਸੇ ਅਪਨੇ ਅਪਨੇ ਸੰਪ੍ਰਦਾਯ ਮੇਂ ਮਾਨੇ ਪਦਾਰਥੋਂ ਕਾ
ਨਾਮਮਤ ਸਿੱਧ ਹੋਤਾ ਹੈ ਜੈਸੇ ਸਾਂਖ੍ਯ ਪਾਤੰਜਲਾਦਿ ਸ਼ਾਸਤ੍ਰੋਂ ਮੇਂ । ਜੋਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤਿ ਪੁਰਖਾ
ਦਿ ਪਦਾਰਥ ਗ੍ਰਹਣ ਕਰੇ ਹੈਂ । ਸੋ ਸਭ ਪ੍ਰਤੱਖਾਦਿ ਪ੍ਰਮਾਣੋਂ ਸੇ ਸਿਧ ਕਰ ਅੰਗੀ
ਕਾਰ ਕਰੇ ਹੈ । ਬਿਨਾ ਪ੍ਰਮਾਣ ਕੋਈ ਵਸਤੁ ਨਹੀ ਮਾਨੀ । ਯਾਤੇ ਸਾਂਖ੍ਯਮਤ ।
ਸਾਂਖ੍ਯਸ਼ਾਸਤ੍ਰ ਮੇਂ ਪ੍ਰਮਾਣੋਂ ਸੇ ਸਿਧ ਕਰ ਅੰਗੀਕਾਰ ਕਰੇ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤਿ ਆਦਿਕਤੱਤ ।
ਪਾਤੰਜਲਮਤ ਪਾਤੰਜਲ ਸ਼ਾਸਤ੍ਰ ਮੇਂ ਗ੍ਰਹਣ ਕਰੇ ਪ੍ਰਕ੍ਰਿਤਿ ਈਸ੍ਵਰਾਦਿ ਪਦਾਰਥ
ਏਵੰ ਬੇਦਾਂਤਾਦਿ ਔਰ ਸ਼ਾਸਤ੍ਰੋਂ ਮੇਂ ਜਾਨੋਂ । ਬੈਸਨੋ ਮਤ ਬੈਸਨੋ ਸੰਪ੍ਰਦਾਯ ਮੇਂ ਗ੍ਰਹ
ਣ ਕਰੇ ਬਾਹਰ ਮਾਲਾ ਤਿਲਕਾਦਿ ਅੰਤਰ ਈਸ੍ਵਰ ਭਕ੍ਤਿ ਵੈਰਾਗ੍ਯ ਬਿਬੇਕਾਦਿ
ਪਦਾਰਥ । ਸੈਵ ਮਤ ਸੈਵ ਸੰਪ੍ਰਦਾਯ ਮੇਂ ਅੰਗੀਕਾਰ ਕਰੇ ਰੁਦ੍ਰਾਖ੍ਯਮਾਲਾ ਸ਼ਿਵਪੂਜ
ਨਾਦਿ ॥ ਗੁਰੁਮਤ ਗੁਰੁਸੰਪ੍ਰਦਾਯ ਮੇਂ ਗ੍ਰੰਥ ਜੀ ਕੇ ਬਚਨੋਂ ਸੇ । ਔਰ ਉਨ ਬਚਨੋਂ
ਕੇ ਭਾਵ ਸੇ ਗ੍ਰਹਣ ਕਰੇ ਪਦਾਰਥ । ਜੈਸੇ ਸਤਨਾਮ ਕਰਤਾ ਪੁਰਖੁ ਨਿਰਭਉ
ਨਿਰਵੈਰੁ ਅਕਾਲਮੂਰਤਿ ਅਜੂਨੀ ਸੈ ਭੰ ਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ਜਪੁ ਆਦਿਸਚੁ । ਜੁਗਾ
ਦਿਸਚੁ । ਹੈਭੀਸਚੁ । ਨਾਨਕਹੋਸੀਭੀਸਚੁ ॥ ਤਥਾ ਚਕ੍ਰਚਿਹਨਅਰਬਰਣਜਾਤ
ਅਰਪਾਤਨਹਨਜਹ ॥ ਰੂਪਰੰਗ ਅਰਰੇਖਭੇਖਕੋਊਕਹਨਸਕਤਕਹ ॥ ਅਚਲ
ਮੂਰਤਿ ਅਨਭਉ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਅਮਿਤੋਜਕਹਿਜੈ ॥ ਕੋਟਇੰਦ੍ਰਇੰਦ੍ਰਾਣਸਾਹਸਾਹਾਣਿਗ
ਣਿਜੈ ॥ ਤ੍ਰਿਭਵਣਮਹੀਪਸੁਰਨਰਅਸੁਰਨੇਤਿਨੇਤਿਬਨਤ੍ਰਿਣਕਹਤ ॥ ਤਵਸਰਬ
ਨਾਮਕਥੈਕਵਨਕਰਮਨਾਮਬਰਨਤਸੁਮਤਿ ॥ ਯਹਪ੍ਰਮੇਸ੍ਵਰ ਕੇ ਸ੍ਵਰੂਪ ਨਿਰਣਯ
ਮੇਂ ਸਰਬ ਗੁਰੋਂ ਕਾ ਮੁਖ੍ਯ ਗੁਰੁਮਤ ਹੈ ਜਿਸਕੇ ਨਿਰਣਯ ਪੈ ਨਿਖਲ ਪ੍ਰਮੇਸ੍ਵਰ
ਮਾਨਨੇ ਵਾਲਿਓਂ ਕੀ ਕਮਰ ਬਾਂਧੀ ਹੁਈ ਹੈ ॥ ਪੁਨਾ ਕਾਮ ਕ੍ਰੋਧ ਕਿਨੇ ਨ ਪਾਇ
ਓ ਪੂਛਹੁ ਗ੍ਯਾਨੀਆ ਜਾਇ ॥ ਤਥਾ ਕਾਮ ਕ੍ਰੋਧ ਅਹੰਕਾਰ ਲੋਭ ਹਠਮੋਹ ਨ ਮਨ
ਸੋਲਿਆਵੈ ॥ ਤਬਹੀ ਆਤਮਤੱਤਕੋ ਦਰਸਹ ਪਰਮ ਪੁਰਖ ਕਹਿਪਾਵੈ । ਇਤ੍ਯਾ
ਦਿ ਮੁਕ੍ਤਿ ਮਾਰਗ ਕੇ ਪਰਮ ਬਿਰੋਧੀ ਅਸੁਰ ਸੁਭਾਵੋਂ ਕੇ ਤ੍ਯਾਗ ਔ ਦੇਵੀ ਸੰਪਤ
ਰੂਪ ਸੁਭ ਸੁਭਾਵੋਂ ਕੇ ਧਾਰਣ ਮੇਂ ਮਧ੍ਯਮ ਗੁਰਮਤ ਹੈ ॥ ਪ੍ਰਥਮ ਗੁਰੋਂ ਸੇ ਲੇ ਪੰਚਮ
ਗੁਰੋਂ ਪ੍ਰਯੰਤ ਵੇਸ ਸੇਲੀ ਟੋਪੀ ਕਾ ਰਹਿਆ ਛਠੇ ਗੁਰੋਂ ਸੇ ਲੇ ਅੰਮ੍ਰਿਤਸੇਪਹਲੇ ਦਸਮ
ਗੁਰੋਂ ਪ੍ਰਯੰਤ ਵੇਸ ਪਗੜੀ ਧਾਰਣ ਕਾ ਰਹਿਆ ਅੰਮ੍ਰਿਤ ਪੀਛੇ ਵੇਸ ਬੀਰ ਰਸ
ਵਾਲਾ ਕਛ ਕੇਸਾਦਿ ਧਾਰਣ ਕਾ ਕੀਆ ਯੇ ਗੌਣ ਗੁਰਮਤ ਹੈ ਇਨਮੇਂ ਮੁਖ੍ਯ
ਮਧ੍ਯਮ ਗੁਰਮਤ ਕਾ ਨਿਰਣਯ ਇਸ ਗ੍ਰੰਥ ਮੇਂ ਅਛੀ ਤਰਹ ਹੋਗਾ ॥ ਯਾਤੇ ਯਹ
ਗ੍ਰੰਥ ਇਨ ਮਤੋਂ ਕੇ ਨਿਰਣੇ ਕਾ ਸਾਗਰਹੈ ਸਾਗਰਮੇਂ ਲਹਰਾਂ ਹੋਤੀਹੈਂ ਉਨਕੇ
ਠਿਕਾਨੇ ਇਸਮੇਂ ਇਕਤੀਸ ਉਰਮੀਆਂ ਹੈਂ ਉਰਮੀ ਉਰਮੀ ਮੇਂ ਕਹਨੇ ਯੋਗ੍ਯ ਅਰ
ਥੋਂ ਕੀ ਸੂਚਨਾ ਲਿਖੀ ਜਾਤੀ ਹੈ ਜਿਸਕੇ ਦੇਖਕੇ ਸਮਗ੍ਰ ਗ੍ਰੰਥ ਮੇਂ ਪ੍ਰਤਿਪਾਦਨ
ਕੀਏ ਪਦਾਰਥੋਂ ਕੀ ਸ਼ੀਘ੍ਰਸਿਮ੍ਰਿਤੀ ਹੋਗੀ

(

एक उअकार सतिगुरु प्रसादि।

गुरुमत निरणाय सागर मौ मत नाम है प्रमाणौं से सिध कर अंगी कार कीए पदारथौं का एक दूसरे बचनौं के तातपरय से सिध भए पदारथौं का दूसरा इन दौनौं अरथौं से अपने अपने संप्रदाय मौ माने पदारथौं का नाम मत सिध होता है जैसे साष्य पातंजलादि सास्रतौं मैं। जो प्रक्रिति पुरषादि पदारथ ग्रह्णा करे हैं। सो सभ प्रतषादि प्रमाणौं से सिध कर अंगी कार करे है। बिना प्रमाण कोई वसतु नहीं मानी। याते सांष्यमत सांष्यसासत्र मौ प्रमाणौं से सिध कर अंगीकार करे प्रक्रिति आदिकतत। पातंजलमत पातंजल सासत्र मौ ग्रह्णा करे प्रक्रिति ईश्वरादि पदारथ एवं बेदांतादि और सासत्रौं मैं जानौं। बैसनो मत बैसनो संप्रदाय मौ ग्रह्णा करे बाहर माला तिलकादि अंतर ईश्वर भक्ति बैराग्य बिबेकादि पदारथ। सवै मत सैव संप्रदाय सो अंगीकार करे रुद्राष्यमाला शिव पूजा आदि गुरुमत गुरु संप्रदाय मौ ग्रंथ जी के बचनौं से। अर उन बचनौं के भाव से ग्रह्णा करे पदारथ। जैसे सतनाम करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सै भं गुरु प्रसादि जपु आदि सचु। जुगादि सचु। है भी सचु। नानक होसी भी सचु। तथा चक्र चिहन अर बरणा जात अर पातन इन जन। रुपरंग अर रेष भेषा कोउ कह न सकत कह। अचल मूरति अनभउ प्रकास अभितोज कहिजे। कोट इंद इंद्रणि साह साहाणि गणिजे। त्रिभवण महीपसुर नर असुर नेति नेति बण त्रिण कहत। तवसरब नाम कथे कवन करम नाम बरनन सुमति। यह प्रमेस्वर के स्वरुप निरणाय सो सरबगुणौं का मुष्य गुरुमत है जिसके निरणाय पै निषाल प्रमेस्वर मानने वाल्यौं की कमर बांधी हुई है। पुना काम क्रोध किनै न पाइउ पूछहु ग्यानीआ जाइ। तथा काम क्रोध अहंकार लोभ हठ मोह न मन सो लिआवे। तबही आतमतत का दरसह परम पुरष कहिावे। इत्यादि मुकतिमारग के परम विरोधी असुर सुभावौं के त्याग औ देवी संपत रुप सुभ सुभावौंके धारण मो मध्यम गुरमत है। प्रथम गुरौं से ले पंचम गुरौं प्रयंत वैस पगड़ीधारण का रहिआ अंम्रित पीछे वैस बीर रसवाला कछ केसादि धारण का कीआ ये गौण गुरमत है इनमौ मुष्य मध्यम गुरमत का निरणाय इस ग्रंथ मौ अछी तरह ~~अछी तरह~~ होगा। याते यह ग्रंथ इन मतौं के निरणै का सागर है सागर मौ लहरौं होती है

उनके ठिकाने इस माँ इक्कीस उमर उरमीआं है उरमी उरमी माँ कहने योग्य अरथों की सूचना लिषी जाती है जिसका देष कै समग्र ग्रंथ में प्रतिपादन कीए पदारथों की सीघ्र सिम्रिती होगी।

पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने भी इस क्षेत्र में गुरुमत निर्णय सागर' नामक अद्भुत कृति प्रस्तुत की है। इस पुस्तक की विषय सूची देखकर इस रचना की गंभीरता तथा इसकी प्रामाणिकता का अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रतिपाद्य

इस कृति में सिक्ख धर्म की साम्प्रदायिक मान्यताओं का निर्णय, सिक्ख धर्म के सिद्धान्त, नियम, गुरुमत सम्बन्धी प्रश्नों का समाधान किया गया है। संक्षिप्त सी भूमिका में नरोत्तम ने स्वयं कहा है, 'क्या विहित तथा क्या अविहित है?' यही इस कृति का प्रतिपाद्य है।

गुरुमत का सिद्धान्त भक्ति सहित स्पष्ट करने का प्रयास है। सिक्ख सम्प्रदाय सम्बन्धी बहुमूल्य धारणाओं और स्थापनाओं के कारण इस रचना का बहुत अधिक महत्व है। सिक्ख परम्पराओं के सन्दर्भ में विविध विषयों की चर्चा की गई है। नरोत्तम के अनुसार मुक्ति मार्ग के परम विरोधी असुर[1] भावों का त्याग और दैवी भावनाओं का ग्रहण ही सिक्ख धर्म का मूल उद्देश्य है। गुरुमत निर्णय सागर[2] का आरम्भ मंगलाचरण से हुआ है। जिसमें आदि गुरु नानक की स्तुति की गई है। इससे प्रतीत होता है कि नरोत्तम परम्परा प्राप्त को अपनाए हुए हैं।

तारा सिंह नरोत्तम ने गुरुमत निर्णय सागर में सबसे विस्तृत चर्चा भक्ति, गुरु नानक का गुरु और अवतारवाद पर की है। इस चर्चा का सारांश इस प्रकार दिया जा सकता है।

१- 'मुक्ती मारग के परम विरोधी असुर सुभावों के त्याग और दैवी संपत रूप सुभ सुभावों के धारण मी मध्यम गुरुमत है।'

- गुरुमत निर्णय सागर भूमिका

२- दोहरा- कलि कुल कलुष न काट बैधरो धरा अवतार
दस वपु दस दिस रघ के नानक देव मुरार।'

गुरमत निर्णय सागर पृ० एक

नरोत्तम भक्ति: परिभाषा

तारा सिंह नरोत्तम ने भक्ति को परमानंद स्वरूप माना है। भक्ति को उन्होंने योग के समकक्ष और परम पुरुषार्थ बताया है।[1]

'द्रवी भाव पूरबक भगवत गोचर मन की सविकल्पक ब्रिति भक्ती कहीए है।' भक्ति के लिए द्रवी भाव का होना, मन की सविकल्प वृत्ति का होना आवश्यक है तथा मन की निर्विकल्प वृत्ति को ब्रह्म विद्या बताया है। नरोत्तम ने भक्ति के सन्दर्भ में द्रवीभाव और मन की सविकल्प वृत्ति को[2] अधिक महत्व दिया है। भक्ति को योग का पद देने की परम्परा बहुत पुरानी है।[3]

तारा सिंह नरोत्तम के अनुसार भगवत ग्रंथों का[3] श्रवण भक्ति का साधन है। यह ग्रंथ भगवान के जन्म कर्म से सम्बद्ध होने चाहिए। श्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्ति के[4] रूप साधन भक्ति है और जीव का अनुराग ईश्वर में परम स्नेह भक्ति का फल है। इसी मत का समर्थन शाण्डिल्य सूत्र में तथा रूप गोस्वामी आदि ने किया है।[5]

१- 'परमानंद रूप भगवान का साध्यात कार भक्ती योग कहीये है।---
 औ भक्ति योग समाधि के सुखवत परमानंद रूप है याते परम पुरषारथ है।
 - गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १४६-१५०

२- द्रवी भाव से बिना अद्विती आतम गोचर मन की निरविकल्पक ब्रिति ब्रह्म विध्या कहीये है परमानंद रूप भगवत की प्रापती भक्ती का फल है। सरब अनरथों के मूल अग्यान की निब्रिति सहित परमानंद की प्रापती ब्रह्म विध्या का फल है। - वही, पृ० १५२

३- विशेष विवरण के लिए- बाल गंगाधर तिलक का 'कर्मयोग शास्त्र' देखें।

४- 'भगवान के जनम करम प्रभाव के बोधक ग्रंथों का स्रवण भक्ती का साधन है।-
 -गुरुमत निर्णय सागर- पृ० १५२-५३

५- 'ईश्वरे नाम ईश्वर विषै जो अनुरक्ति नाम इस जीव का अनुराग भाव परम स्नेह सापरा नाम नवधा से परे प्रेम लषणा भक्ती है यह भक्ति फल है श्रवण कीरतनादि रूप नवधा अपरा भक्ति कहीये है यह साधन रूप है।'
 वही, पृ० १३३

नारद ने भी परमेश्वर के प्रति होने वाले परम प्रेम को ही भक्ति माना है।[१] भागवत में भी भक्ति की यही परिभाषा दी गई है कि भगवान में हेतु रहित, निष्काम, एक निष्ठा युक्त, अनवरत प्रेम का नाम ही भक्ति है।[२]

नरोत्तम के अनुसार भक्ति का अधिकारी प्राणी मात्र है और ज्ञान का अधिकारी केवल साधन चतुष्टय संपन्न पुरुष ही है।

नरोत्तम के विचानुसार ईश्वर[३] ने मनुष्यों को मुक्ति हेतु चार प्रकार के योग कहे हैं। कर्म, हठ, भक्ति और ज्ञान। आध्यात्मिक साधनों के क्षेत्र में कर्म ज्ञान और भक्ति त्रिविध साधन मुक्ति के रूप में स्वीकृत होते चले आए हैं।

(पिछले पृष्ठ से)

६- तात्पर्य यह है कि भक्ति स्वयं साध्य और साधन रूप है।
शाण्डिल्य सूत्र में ईश्वर के प्रति अनन्य अनुराग को भक्ति माना गया है।
अर्थात् परानुरक्तिरीश्वरे' आराध्य के प्रति परानुरक्ति को ही भक्ति
कहा है। इसमें प्रेम का भाव निहित है यह राग आनन्द से परिपूर्ण है।
श्री रूप गोस्वामी ने अपने भक्ति रसामृत सिन्धु में भक्ति की व्याख्या इस प्रकार
की है'अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति की अभिलाषा न करते हुए कर्म अथवा
वैराग्य का भी मोह न रखते हुए और अपने भी किसी स्वार्थ कीभावना को
स्थान न देते हुए केवल श्री कृष्ण की सन्तुष्टि के लिए उनका प्रेम भाव से
चिन्तन करना ही उत्तम भक्ति है।
-कल्याण भक्ति अंक, १९३८, वॉ० ३२, पृ० १६

१- नारद ने भक्ति का लक्षण इस प्रकार लिखा है--
'स त्वस्मिन परम प्रेम रूपा अमृत स्वरूपाच।'- कल्याण भक्ति अंक-१९३८-
वॉ० ३२, पृ० ४१

२- 'स वै पुंसां परो धर्मोयतो भक्ति रधोक्षजे
अहैतुक्य प्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति।- भक्ति का विकास-मुंशीराम शर्मा, पृ० ३०६

३- जीवों की मुक्ती हेत प्रमेश्वर ने चार योग कहे हैं। एक करम दूसरा हठ
तीसरा भक्ती चौथा ग्यान। चारों में कोई साष्यात मुक्ती का साधन है।
कोई परम्परा साधन है- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० १४६

भक्ति: प्रकार

भक्ति के यह भेद-उपभेद प्राचीन आचार्यों ने इस प्रकार निश्चित किए हैं। तथा तुलनात्मक चित्र इस प्रकार दिया जा सकता है[1]:-

श्रीमदभागवत :-[1]

- भक्ति प्रकार
  - सगुण
    - तामस
    - राजस
    - सात्त्विक
  - निर्गुण (अहैतुकी)
- **नवधा भक्ति**
  - श्रवण
  - कीर्तन
  - स्मरण
  - चरण सेवा
  - अर्चन
  - वन्दना
  - दास्य
  - सख्य
  - आत्म निवेदन

नारद भक्ति सूत्र[2]

- **भक्ति भेद**
  - परा
  - गौण

१- भक्ति का विकास- मुंशी राम शर्मा- पृ० ३०८

२- वही, पृ० ३०६

भक्ति प्रकार (सक्ति के आधार पर)

- गुण
- रुप
- पूजा
- स्मरण
- दास्य
- सख्य
- कान्ता
- वात्सल्य
- आत्म निवेदन
- तन्मयता
- परम विरह

शास्त्रीय दृष्टि[1] :-

भक्ति प्रकार

- वैधी
- रागानुगा
  - कामरुपा
  - सम्बन्ध रुप

शाण्डिल्य मुनि[2] :-

भक्ति भेद

- मुख्या
- इतरा

१- भक्ति का विकास- मुन्शी राम शर्मा- पृ० ३०६

२- वही, पृ० ३०६

रुपगोस्वामी[१] :-

भक्ति भेद

- शान्त भक्ति
- प्रीत भक्ति
- प्रेमभक्ति
- वत्सल भक्ति
- मधुरा भक्ति

वल्लभ :-

भक्ति भेद

- विहित
- अविहित

बलदेव उपाध्याय[२] :-

भक्ति भेद

- मर्यादा भक्ति
- पुष्टि भक्ति

निष्कर्ष

भक्ति भेद

- रागानुगा
- वैधी

१- भक्ति का विकास- मुन्शी राम शर्मा, पृ० ३०८

२- भागवत सम्प्रदाय- बलदेव उपाध्याय- पृ० ३८५

नरोत्तम भक्ति प्रकार

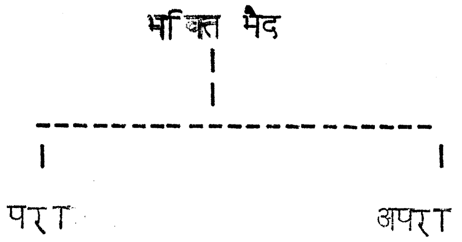

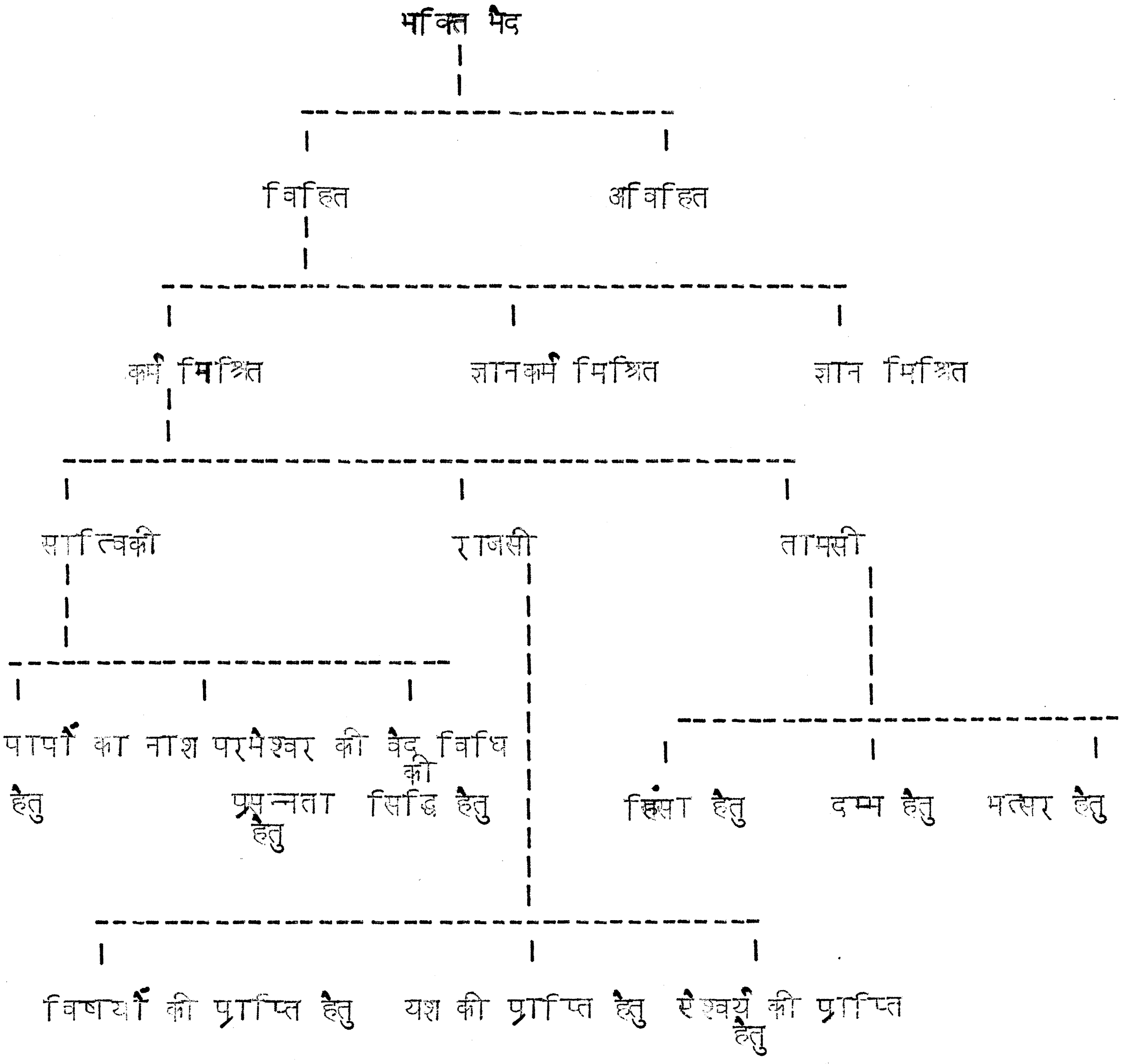

नरोत्तम के अनुसार कर्म मिश्रित भक्ति के तीन भेद की अपेक्षा ९ भेद हो गए और उन ९ भेदों के भी उपभेद कर दिए हैं। इन में से प्रत्येक का उत्तम, मध्यम और मन्द भेद करने से २७ भेद हो जाते हैं और इन २७ भेदों के भी उपभेद अर्थात् एक-एक के उत्तम-उत्तम, उत्तम-मध्यम, उत्तम-मंद। मध्यम-उत्तम, मध्यम-मध्यम, मध्यम-मन्द। तथा मन्द-उत्तम, मन्द-मध्यम, मन्द-मन्द के द्वारा कर्म मिश्रित भक्ति के ८१ भेद होते हैं।[1]

१- भक्ति पुना दो प्रकार की है। एक बिहित दूसरी अबिहित। दोनों में पूरब कही नव प्रकार की बिहित भक्ति कहीये है। सो पुना तीन प्रकार की है। एक करम मिस्रित है। दूसरी ग्यान करम उभय मिस्रित है। तीसरी केवल ग्यान मिस्रित है। तीनों में करम मिस्रित भक्ति सात्विक राजसी तामसी तीन प्रकार की है। तीनों में सात्विकी पुना तीन प्रकार की है। एक पापों के नास हेत है दूसरी प्रमेस्वर की प्रसन्नता हेत है। तीसरी बेद बिधि की सिधि हेत है। ऐसे ही राजसी भी तीन प्रकार है विषयों की प्रापती हेत यस की प्रापती हेत ऐस्वरय की प्रापती हेत। एवं तामसी भी तीन प्रकार है। हिंसा हेत दंभ हेत मतसर हेत।

इस एक प्रकार करम मिस्रित भक्ति के नव भेद हुये। नवों में भी एक एक के उतम मध्यम मंद करने से सताईं भेद हुये। सताईयों में भी एक एक के उतम उतम, उतम मध्यम, उतम मंद। मध्यम उतम, मध्यम मध्यम, मध्यम मंद। मंद उतम, मंद मध्यम, मंद मंद। यह और भेद मिला के करम मिस्रित के इकासी भेद हुये।

-- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० १६८- १६९

भागवत में भी सात्विकी, राजसी, तामसी आदि के भेद-उपभेदों में यही बात थोड़े से अन्तर के साथ दी गई है।

भक्ति के ये भेद-उपभेद प्राचीन आचार्यों ने निश्चित किए हुए थे। इसी लिए नरोत्तम तथा डा० दास गुप्त[१] जैसे विद्वान पृथक पृथक रूप से विचार करते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं। तारा सिंह नरोत्तम ने कर्म मिश्रित नवधा भक्ति के ये अवांतर भेद केवल हेतु या प्रयोजन को लेकर किए हैं।

इसी प्रकार कर्मज्ञान उभय मिश्रित भक्ति भी तीन प्रकार की है।[१]

कर्म ज्ञान उभय मिश्रित भक्ति

- उत्तम
- मध्यम
- मन्द

१- "Bhakti may be classified as Phall rupa (fruit) as Sadhana rupa (means) and as saguna. The Saguna Bhakti is of three kinds as forming part of different kinds of ~~medition~~ meditation, as part of knowledge and as part of Kalma. These again may be eighty one kinds as associated with different kinds of quality. Bhakti as a phala is of one kind, and as Sadhana (means) is of two kinds.viz., as part of knowledge (Jnanan gabhata) and as directly leading to emancipation (Bhakti-Svatantryena mukti datri) the Jnanagabhuta ~~Bhag~~ Bhakti is itself of two kinds of saguna and nirguna of which the former is of three kinds- Jnanamisra, vaisagya misra and Kelam misra. The Jnanamisra (mixed with knowledge) may be of three kinds high-middling and lower. The Vairagya misra (mixed with detachment) is only of one kind. The Kalmamisra (mixed with action) is of three kinds."

-A History of the Indian Philosophy by Das Gupta- vol.4- page 353.

ज्ञान मिश्रित भक्ति को भी नरोत्तम ने तीन भेदों में बाँटा है।[१]

ज्ञान मिश्रित भक्ति

- मन्द
- मध्यम
- उत्तम

जिसमें सत्य ब्रह्म रुप जगतका मान हो वह मंद है। जिसमें सम्पूर्ण प्रपंच का मिथ्या रुप का मान हो वह मध्यम है और जिसमें सत्य का मिथ्या दोनों रुपों का मान नहीं होता वह उत्तम है। नरोत्तम ने यहां पर अद्वैत की स्थापना कर दी है क्योंकि अद्वैत में ब्रह्म सत्य जगत्मिथ्या को लिया गया है और नरोत्तम की विचारधारा इसी का समर्थन है। करती है।[२]

(पिछले पृष्ठ से)

१- एवं करम ग्यान उभय मिश्रित भी उतम मध्यम मंद भेद से तीन प्रकार की हैं। तीनों में जो तरगों में जल भाव वत सरब भूतो में अपनी भगवत स्वरुपता देषाता है वहु उतम है जो ईश्वर में प्रेम। तिसके भक्तों में मैत्री दीनों पै क्रिपा बिरोधीयों में उपेषा करता है वहु मह मध्यम है। जो मूरती में स्रधा से प्रमेश्वर के पूजन की इछा करता है भक्तों में अर इतरों में प्रेम नहीं करता वहु मंद है। ईहां उतम भक्ति का आतम निवेदन में मध्यम का दास भाव में मंद का अरचन में अंतर भाव जान लेना।

- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १६६-१७०

१- ग्यान मात्र मिस्रित भी मंद मध्यम उतम भेद से तीन प्रकार की है। तीनों में सत ब्रह्म रुप करके जिसमें जगत का मान होवे बहु मद है। जैसे 'ईह जगत हरि का रुप है। हरि रुप नदरी आईआ।' जिसने संपूरण प्रपच का मिथिया रुप कर भान होवै वहु मध्यम है जैसे इष्ट भान है सगल मिथैना। ईहु जग धूंए का पहार। जिसमें सत वा मिथ्या दो ही रुपों से प्रपंच का भान ना होवे। बहु उतम है। जैसे 'प्रेम के रंग राचजन रहे।' -- वही पृ० १७०

२- जिन को द्रवावस्था के परिपाक से सरब पदारथ भगवत रुप भान होवे है वह

विहित भक्ति के अन्तर्गत तारा सिंह नरोत्तम ने परा और प्रेम भक्ति को भी रखा है। इसी भक्ति को फलरूप माना है और नवधा के रूप को साधन माना है।

नवधा भक्ति

प्राचीन आचार्यों की तरह नरोत्तम पर भी नवधा भक्ति का प्रभाव बहुत गहरा है। नवधा भक्ति के सभी अंगों के साथ गुरुवाणी का सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न नरोत्तम ने किया है। सबसे अधिक बल नाम पर दिया है।[1] हरि का नाम जपने से ही कलियुग में मुक्ति मिल सकती है। और नवधा भक्ति के द्वारा इस भवसागर से पार निकला जा सकता है।[2] इस बात के समर्थन के लिए नरोत्तम ने पौराणिक सन्दर्भों को सामने रखा है।

सगुण और निर्गुण सभी भक्तों ने नाम के प्रति अपनी श्रद्धा और विश्वास को प्रकट किया है। निर्गुण भक्तों के पास केवल नाम का ही आश्रय था जबकि सगुण भाव से उपासना करने वाले भक्त के पास उस प्रभु का रूप और लीलाएं थीं। लेकिन फिर भी भक्ति कालीन युग में ही नाम-कीर्तन का चरम विकास हुआ।

नरोत्तम ने गुरुमत विचारधारा के अनुरूप इसी नाम कीर्तन की महत्ता को प्रकट[3] किया है कि मनुष्य को उठते-बैठते हर समय हरि के नाम का जाप करना चाहिए।

(पिछले पृष्ठ से)

उत्तम भी तीन प्रकार के हैं। एक प्रपंच के सत्यत्व भान सहित है। दूसरे मिथ्यात्व भान सहित है। तीसरे सत्यत्व मिथ्यात्व दो ही प्रकार के भान सहित है।---- वह गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १५७

१- याते मुक्ती हेत है कलिहरि ही को नाम
वर नवधा बपु भक्ति भौ दूर करै भवधाम। गुरुमत निर्णय सागर, पृ० २

२- यही परीक्षत नृपत को सुकमुन भाषणा कीन
कलि कीरति हरि नाम बिन साधन मौष्य नवीन- वही, पृ० २

३- उठत बैठत सोवते मुषा पौं हरि के नाम
कहि गुर उचै टेर के जन के एही काम।
बच एवं स्रुति सिम्रिती गुरु वाक्य अनुसार
राम नाम जप लीजीये भव निध तारनहार। २७। वही, पृ० ४

परन्तु गुरुमत विचारधारा में नवधा भक्ति के सभी रूप देखने को नहीं मिलते। गुरु नानक की भक्ति भावना में अर्चन, पादसेवन वन्दन का रूप नहीं मिलता। ऐसे ही तारा सिंह नरोत्तम ने नवधा भक्ति को गुरुमत पर थोपने का प्रयत्न किया है। नरोत्तम की अपनी विचारधारा नवधा भक्ति के लिए ठीक है। गुरुमत के लिए नहीं।

अविहित भक्ति

पीछे भक्ति प्रकार के एक विहित भक्ति के भेद-उपभेद को देखा गया है। यहां पर अविहित भक्ति को देखते हैं। नरोत्तम ने अविहित भक्ति को चार प्रकार की बताया है:-[१]

अविहित भक्ति

द्वेष जन्य | भक्त जन्य | स्नेह जन्य | काम जन्य

नरोत्तम ने फल और साधन रूप से भक्ति दो प्रकार की कही है।[२] इस प्रकार नरोत्तम ने परम्परा प्राप्त भक्ति के भेद-उपभेदों की चर्चा की है।

१- 'अविहित भक्ति चार प्रकार की है। एक द्वेष जन्य जैसे रावण सिसु पाल की। दूजी भय जन्य जैसे कंस मरीच की। तीजी सनेह जन्य जैसे नंद यशोदा की चौथी काम जन्य जैसे गोपीयों की।

दोहरा:-

विहित सभी पुन दुविध है अन्य अनन्य बिभेद
अन्य भेद में भक्ति है दूसरता बिन वेद।' वही, पृ० १७

२- फल साधन भेद से भक्ती दो प्रकार की होवे है। दोनों में फल भक्ती पुरषारथ है काहे ते जैसे स्रवण कीरतनादि नव प्रकार है बहु सम केवल प्रमेश्वर में अत्यंत प्रेम हेत होवे है याते प्रेम सम का फल है वही परमानंद रूप होवे ते पुरुषारथ है। साधन भक्ती पुरुषारथ नहीं। याते हरि भगत करो मन भीत इत्यादि बचन स्रवणादिक साधन भक्ती बोधन में प्रमाण है।
वही

भक्ति ज्ञान

ईश्वर का रुप भक्ति से ही जाना जा सकता है। ज्ञान भक्ति का साधन है। भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठ माना गया है क्योंकि वह फलरुप है। नरोत्तम के अनुसार भक्ति के लिए पहले भगवत प्रबोध का होना अर्थात् ज्ञान वैराग्य चाहिए। फिर परम वैराग्य तथा इसके उपरान्त तभी भक्ति हो सकेगी। नरोत्तम ने ज्ञान की परिभाषा इस प्रकार दी है:-

> भगवान नित्य विभू परमानंद रुप उपादेय है। ताते भिन्न सभी तुछ पदारथ हेय है अैसे जानने का नाम ग्यान है।[१]

नरोत्तम ने ज्ञान की दार्शनिक चर्चा की है। ज्ञान उत्पन्न हो जाने से अज्ञान दूर हो जाता है और तत्वज्ञान के उत्पन्न होने से ब्रह्म से ब्रह्म का मेल हो गया और कोई भेद नहीं रहा।[२]

तारा सिंह नरोत्तम ने ज्ञान को मुक्ति का द्वार न मानकर स्वतन्त्र साधन माना है।[३] अन्य सभी ग्रंथों में भक्ति को ज्ञान से ऊंचा माना गया है क्योंकि लोगों की तृप्ति केवल बोध से नहीं हो सकती वे तो अनन्य भक्ति चाहते हैं। नरोत्तम के अनुसार यदि भक्ति को अनन्य भाव से किया जाए तो ईश्वर मिल सकता है।[४] अनन्य भक्ति ज्ञान का अंग होकर मुक्ति जनक है।

१- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० १५६

२- 'तत्व ग्यान जब उपजिआ लोक तथा परलोक
ब्रह्म माहि ब्रह्म मिल गयो भेद न कोई' कथोक १५०- वही, पृ० ७

३- 'ऐसे सोषा कहीये संपूरण संसयादि अग्यान ततकारय के नाभ में ग्यान स्वतंत्र साधन है। भक्ति का दरवाजा नहीं बने। साधन का पराचीन आचार्यों ने यह लक्षण कहिआ है जिस के हुया उतर काल में। व्यवधान बिना साध्य सिध होवे सो साधन। सो ग्यान के हुयां अग्यान ततकारय के नास में देर नहीं होती याते ग्यान भक्ती का दरवाजा नहीं। वही, पृ० ८

४- अनन्य भक्ति से लभ्य है पारथ पुरष बिसेष
मैं एवं बिध परत हो भक्ति अनन्य से देष- ३६- वही, पृ० ५-६

तुलसी ने लिखा है:-

'ज्ञान क पंथ कृपान की धारा'
मोहि न नारि नारि के रुपा।'

ज्ञान की अपेक्षा भक्ति से भगवान शीघ्र मिल जाता है। नरोत्तम ने भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है।

डा० दासगुप्त ने भी भक्ति को ज्ञान और कर्म की अपेक्षा उत्कृष्ट बताया है। उनका कहना है कि भक्ति को अपनाते हुए भक्त को ज्ञान के रास्ते को नहीं अपनाना चाहिए।[१] शास्त्रों में विभिन्न प्रकार के कर्मों की चर्चा की गई है वे तभी सफल हो सकेंगे जब उनको भक्ति का माध्यम बनाकर किया जाए।[२] अत: दास गुप्त ने भक्ति को प्रथम और ज्ञान को दूसरा स्थान दिया है।

भक्ति कर्म

नरोत्तम ने भक्ति के साथ कर्म की महिमा भी स्वीकृत की है। वर्णाश्रम, धर्म,' वेद-पाठ, यज्ञ, दान, तप आदि साधन[३] कर्मयोग के अंग हैं। नरोत्तम के अनुसार कर्म दो प्रकार का है। आद्रुत दौर द्रुत। अद्रुत में निर्वेद पूर्वक तत्वज्ञान अर्थात् ज्ञान

१- For the followers of the path of Bhakti has no right to follow the path of knowledge or of duties. God manifests Himself directly in the conscious processes of all men."

-A History of Indian Philosophy- Vol.4-Das Gupta,p.417.

2. Yet the Path of Bhakti is regarded as superior those who are in it need not follow the path of knowledge and the path of disinclination from wordly things. All the various duties prescribed in the sastras are fruitful only if they are ~~pre~~ performed through the inspiration of Bhaktixxxxxxx this reality of God can only be properly realized and apperceived through Bhakti. Bhakti brings not only knowledge but also realization it is,therefore, held that Bhakti is much higher than philosophic knowledge which is regarded as the secondary effect of it---- same. p.416.

और द्रुत में भगवत कथा का श्रवण, धर्म में श्रद्धा अर्थात् भक्ति आते हैं। इसके अतिरिक्त नरोत्तम ने निष्काम भक्ति का भी उल्लेख किया है। नरोत्तम के अनुसार निष्काम भाव से भक्ति करनी चाहिए। निष्काम कर्म द्वारा भक्ति करने से मनुष्य सफल हो जाता है। पापों का नाश हो जाता है। ईश्वर की प्रसन्नता के लिए निष्काम कर्मों को करना चाहिए।[१]

नरोत्तम ने प्रभु मिलन के लिए ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों साधनों को लिया है। साधक कोई भी मार्ग को अपनाए लक्ष्य वही परमपद की प्राप्ति ही है। उक्त तीनों मार्ग अपना पृथक अस्तित्व रखते हुए भी एक दूसरे से पूर्ण रुपेण भिन्न हैं। किसी भी माध्यम द्वारा उस परोक्ष सत्ता को जाना जा सकता है।

(पिछले पृष्ठ से)

२- 'करम योग की अवधि दी कही है। अद्रुत चितों को निरवेद पूरबक
तत्वग्यान द्रुत चितों को भगवत कथा स्रवणादि रुप भागवत
धरमों में स्रधा पूरबक भक्ती करम योग से अनंतर अष्टांग रुप हठ योग कहिआ।'
वही, पृ० १४६

१- 'करम निषिधन काम सह त्याग धरो पर धरम
हरि नाम न जप आदि का जग निसकाम सुकरम।
वही, पृ० २२४

भक्ति योग

न केवल नरोत्तम ने अपने क्षेत्र में भक्ति ज्ञान और कर्म को ही लिया है, अपितु भक्ति के साथ योग को भी उतना महत्व दिया है। नरोत्तम ने मुक्ति हेतु योग की चर्चा की है।

पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने योग शास्त्र के केवल अष्टांग योग और राजयोग का वर्णन किया है। उन्होंने हठ योग, मंत्रयोग, लय योग और सहज योग को नहीं लिया। नरोत्तम की योग साधना मनोयोग है।

अष्टांग योग

तारा सिंह नरोत्तम ने विवेक की प्राप्ति के लिए अष्टांग योग का विधान किया है। भष अष्टांग योग का प्रतिपादन योगशास्त्र के प्रसिद्ध और प्राचीनतम ग्रंथ पातंजल योगसूत्र में मिलता है। योग सूत्र में योग के आठ अंगों का वर्णन है। तारा सिंह नरोत्तम ने इसी आधार पर योग के आठ अंगों का वर्णन किया है। वे हैं, यम, नियम, आसन, प्राणायाम[1], प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। पंतजलि ने यम पांच बताए हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन सब का उल्लेख प्राय: सभी सन्तों ने किया है। तारा सिंह नरोत्तम ने भी इन सब का संक्षिप्त सा वर्णन किया है। नरोत्तम के अनुसार चोरी न करना अष्तेय है, जती रहना ब्रह्मचर्य है, जमा न करना अपरिग्रह है और दूसरे दोनों प्रकार स्पष्ट है।

नरोत्तम अनुसार ब्रह्मचर्य के धर्म कीपालना करना ही तप है। मनु इन्द्रिय और शरीर के संयम हेतु साधना करना तप है। नरोत्तम स्वाध्याय के लिए नित्य भजन-पाठ करना मानते हैं। तथा ईश्वर की भक्ति करनी ईश्वर प्रणिधान है। भगवान का श्रवण, मनन, कीर्तन द्वारा भगवान से अनन्य प्रेम करना ईश्वर प्रणिधान के अन्तर्गत आता है। पंतजलि के मतानुसार ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है।

१- 'सिध पदमादि आसन है पूरक रेचक कुंभक ये प्राणायाम है इंद्रियों का अपने विषयों से रोकना प्रत्यहार है। एक वस्तु में चित थिर करना धारणा है बीच में और काहू और न लगाकर चित ने एक में जुड़े रहना ध्यान है। चित का निरोध हो जाना समाधि है।- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० २२०-२२१

इसी का समर्थन नरोत्तम की विचारधारा में मिलता है।

यम नियम के उपरान्त नरोत्तम ने आसन को लिया है। आसन में साधक की ऐसी स्थिति होनीचाहिए जिससे वह अपने हृदय को ईश्वर चिन्तन में लगा सके। ८४ आसनों का उल्लेख तो है परन्तु नरोत्तम ने उन सब का विवरण नहीं दिया।

प्राणायाम की व्याख्या न कर भेदों की चर्चा की है। पूरक, रेचक और कुंभक तीन भेद प्राणायाम के बताए हैं।

नरोत्तम ने इन्द्रियों को रोकना प्रत्याहार कहा है। एक वस्तु में चित्त को स्थिर करना धारणा है। इसी में ध्यान का उल्लेख है। व्यक्ति उस एकाग्रता में इतना डूब जाता है कि अपने अस्तित्व का उसे ध्यान ही नहीं रहता केवल एक भाव उसके सामने रहता है। नरोत्तम के अनुसार ऐसी स्थिति में चित्त का निरोध हो जाना ही समाधि है।

नरोत्तम ने समाधि में तीन मुख्य बातें कहीं हैं। मन मन का नाश होना, वासना का क्षय और तत्वज्ञान का उदय होना है। नरोत्तम ने समाधि को सविकल्प और निर्विकल्प समाधि दो भागों में विभक्त किया है। नरोत्तम के अनुसार ज्ञान के यत्न द्वारा सविकल्प समाधि से चित्त का निरोध होता है।[१]

१- समाधि सिध भया मनोनास होवे है वासना षय होवे है तत्वग्यान मनोनास वासनाषाय इन तीनों के समकाल में अभ्यास ते जीवन मुकती द्रिढ होवे है। - - - याते ग्यानानंतर यतन से सविकलपक समाधि कर चित का निरोध कीये उतर काल में पचमी षाष्टी सप्तमी भूमी रुप निरविकलप समाधि होवे है।

गुरुमत निर्णय सागर, पृ० २२१

कैवल्य प्राप्ति

नरोत्तम अनुसार तत्वज्ञान, मन का नाश और वासना क्षय इन तीनों के अभ्यास से जीवन मुक्ति की अवस्था को प्राप्त होता है। अर्थात् अष्टांग योग के अंगों की साधना से जीवात्मा को कैवल्य की प्राप्ति होती है।

अज्ञान की निवृत्ति हो जाने पर तारा सिंह नरोत्तम के अनुसार परमानंद की प्राप्ति कैवल्य मुक्ति है।[1] इस कैवल्य प्राप्ति के लिए नरोत्तम ने निष्काम कर्म पर अधिक जोर दिया है। मुक्ति के लिए नैमित्तक निष्काम कर्म करना चाहिए। जिससे चित्त की शुद्धि होतीहै और नित्य F अनित्य वस्तु का विवेक उत्पन्न होता है। विवेक उत्पन्न होने से अनित्य पदार्थों से वैराग्य उदय होता है। वैराग्य के अतिरिक्त सत संगादि ~~उपसाधन~~ भी भक्ति के सहायक है। भक्ति का झुकाव ज्ञान, कर्म के साथ धर्म की ओर भी है। इसी भाव को लेकर तारा सिंह नरोत्तम ने शरणागति की व्याख्या इस प्रकार की है:-

और धर्मों का भरोसा छोड़ के प्रमेश्वर को अपना रुपक जानना इस का नाम सरणागति है।[2]

नरोत्तम के अनुसार श्री भागवत के पहले स्कन्ध में इसी भक्ति के ।। उपायों का वर्णन किया गया है। महत सेवा, उनकी दया की पात्रता, श्रेष्ठ धर्मों में श्रद्धा हरिगुणों का श्रवण, रत्युंकरोत्पत्ती स्वरूपादिगति, परमानंद में प्रेम की वृद्धि, प्रेमजन्य भगवान का साक्षात्कार, भगवत धर्मों में निष्ठा, तदगुण सालिता, प्रेम की परमावधि इन ग्यारह उपायों का वर्णन नरोत्तम ने किया है। इन सभी उपायों में सेवा को अधिक महत्त्व प्रधान किया है।[3] सेवा को दो प्रकार की माना है एक भगवत भक्तों की तथा दूसरी भगवत की सेवा।

१- 'अग्यान ततकारय की अत्यंत निब्रिति सहित परमानंद की प्रापती कैवल्य मुक्ती कहीये है। ताकी प्रापती का परम मूल काम निखिध करम के त्याग सहित निसकाम करम का करना है। निसकाम करमो में भी परम धरम ईश्वर की भक्ती है। -- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० २१८

२- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १६०-६१

३- ग्रिह इसतरी पुत्रों से विरक्त तपसी ऐसे महातमाजनो को तन मन धन अरपन

भक्ति भूमिका

तारा सिंह नरोत्तम ने भक्ति द्वारा मोक्ष के लिए ।। प्रकार की भूमिकाओं का विवरण दिया है। सेवा को भक्ति की पहली भूमि माना है जो भगवत भक्ति और भगवत भक्तों की सेवा दो सोपानों में विभक्त है। भक्ति का दूसरा सोपान दया है।[1] तीसरा श्रद्धा है जिसका सम्बन्ध श्रेष्ठ कर्मों का अनुसरण करने क से कृतार्थ होने की भावना से है। भक्ति का चौथा सोपान हरिगुणों का श्रवण आदि नवधा रुप को नरोत्तम ने लिया है। नरोत्तम की ।। प्रकार भक्ति भूमिका सम्बन्धी धारणा भागवत् के आधार पर है।

भक्ति दर्शन

प्राचीन काल से सहस्त्रों वर्षों तक यहां के साधकों, विचारकों, और आचार्यों ने दार्शनिक तथ्यों का उद्घाटन किया है। डा० राधा कृष्णन के अनुसार भारतीय जीवन में दर्शन शास्त्र मूल रुप से आध्यात्मिक है। दर्शन का मुख्य प्रयोजन अन्ततोगत्वा सत्ता के मुख्य अर्थ की खोज करना है। सत्य का संस्थापन और असत्य का प्रतिकार ही भारतीय दर्शन का उद्देश्य रहा है।[2]

(पिछले पृष्ठ से)

पूरबक संगत करनी यह भक्तों की सेवा है। सरब यग्य दानादिक धरमों का भरोसा छोड़ के तरने हेत केवल प्रमेश्वर का आस्रय लेना यह भगवत सेवा है।- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १६१

१- दूसरा उपाय तिनो की दया पात्रता है। सो उतम गुणों से है होवे है क्रिपालू। अद्रोही सदाचारी तितिछू। उपकारी। कोमल। सूचि। विरक्त। स्वलपाहारी। अप्रमादी। घ्रिति-मान। अमानी मानद। इंद्रियजित। इत्यादिक उतम गुणों बिन सिषा को हूआ भी भगवन भक्तों का संग निसफल होवे है। याते उतम गुणों के योग से सिष्य मे दया पात्रता दूसरी भूमिका है। वही, पृ० १६१-६२

२- भारतीय दर्शन- डा० राधाकृष्णन- पृ० २०

भारतीय दर्शन की स्वाभाविक प्रवृत्ति जीवन एवं प्रकृति की अद्वैत परक व्याख्या की ओर रही है। भारतीय दर्शन जो अध्यात्मपरक है। जिसका मुख्य विषय जीवात्मा और परमात्मा तथा इन दोनों के साथ सामंजस्य स्थापित करना है। इसका प्रभाव परवर्ती आचार्यों पर इतना अधिक पड़ा कि सभी आचार्यों ने प्राय: दर्शन की चर्चा भक्ति के सन्दर्भ में की है।

अद्वैत दर्शन का प्रभाव हमारी संस्कृति पर इतना गम्भीर है कि चिंतन साधना तथा जीवन का प्रत्येक पक्ष इसी अद्वैत से प्रभावित हुआ है। इसी अद्वैत दृष्टि ने भावमय होकर भक्ति को प्रभावित किया। पंडित तारा सिंह नरोत्तम के दर्शन में भी वेदान्त दर्शन और योगवासिष्ट की मुख्यता रही। अर्थात् वेदान्त के अद्वैतवादी दृष्टिकोण को नरोत्तम ने अपनाए रखा।

नरोत्तम की विचारधारा भी अद्वैत भाव पर आधारित है। तारा सिंह नरोत्तम जीव को परमेश्वर का रुप मानता है। जीव और ब्रह्म भिन्न नहीं। जिस प्रकार जल और जल की तरंग एक रुप है या अग्नि और अग्नि का प्रकाश एक है ठीक उसी प्रकार ब्रह्म और जीव एक है। इनमें भेद नहीं पाया जाता।[१]

इसी बात का समर्थन गुरुमत में देखने को मिलता है। गुरुनानक का अद्वैत सिद्धान्त शंकर से भिन्न है। शंकर का अद्वैतवाद माया को लिए हुए है। गुरु नानक ब्रह्म को सत्य मानते हुए जगत् को सत्य भी मानते हैं। जगत् को उन्होंने मिथ्या नहीं कहा। यह संसार तो परम सत्य का निवास स्थान है। वह उसी के 'हुकम' से चलता है। गुरु नानक संसार को क्षणभंगुर तो मानते हैं परन्तु उसकी सत्ता निश्चित है। गुरु नानक ने अद्वैत की स्थापना इन वचनों के आधार पर की है:-

---

१- ब्रह्म से जीव को भिनं माने घटादि की वत जड़ता होवेगी। याते जीव ब्रह्म भिनं नहीं। ऐसी भेद की बाधक औ जिस प्रकार जल के तरंग और जल एक रुप हैं। पुना अगनि के बिसफुलिंग औ अगनि एक रुप है एवं जीव प्रमेश्वर भी एक रुप है ऐसी अभेद की साधक युक्तीयों से अभेद चिंतन मनन कहीये है-- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० २३७

सतिगुरु साची सिष सुनाई
हरि चेतहु अंत होइ सहाई।
कथनी कहह कहहि से मूए
सो प्रभ दूर नहीं प्रभ तू है
जल ते तरंग तरंग ते है जल कहन सुनन को दूजा
तत निरंजन जो तिस बाई सोह भेदन कोई जीउ
ब्रह्म मह जन जन मह पारब्रह्म रे के आप नहीं कछु भरम।[१]

गुरु मत अनुसार कारण का कार्य अर्थात् ब्रह्म का जगत भी सत्य है मिथ्या नहीं।

आपि सति कीआ सभ सति
तिसु प्रभ ते सगली उतपति। सुषमनी म० ५

नरोत्तम ने शंकर के अद्वैत की पुष्टि की है। जीवन के अन्त हो जाने पर सब यहां रह जाता है सब मिथ्या है केवल ब्रह्म सत्य है:-

पुत्र कलत्र लोक ग्रिह बनिता माइआ सन बंधे ही
अंत की बार को षारा न होसी सब मिथ्या असनेही।[२]

इन सिद्धान्तों के सन्दर्भ में तारा सिंह नरोत्तम भक्ति का अद्वैत के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए अपने आप को प्रियमान कर अपनी आत्मा की ही भक्ति प्रकारान्तर से स्थापित करते हैं। सबसे अधिक अपनी आत्मा को ही प्रिय माना है।[३]

गुरु

गुरुमत में गुरु शब्द ब्रह्म (अकाल पुरुष) का पर्याय है। साकार रुप उसका गुरु है। नरोत्तम भी गुरुमत अनुसार उस ब्रह्म को पाने के लिए या भवसागर से

१- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० २३२

२- वही, पृ०२२८

३- अपनी आप प्रियो अहै यह अनुभव सब केर
परम प्रेम बपु आतमा याते जान निबेर।'- वही, पृ० १३७

पार जाने के लिए मुख्य साधन गुरु को माना है। इस संसार रुपी भवसागर से पार जाने के लिए केवल गुरु का ही सहारा है जो अविधा को दूर कर ज्ञान का उपदेश ह देता है। उस प्रभु के रुप, आकार, गुण आदि को जानने के लिए गुरु के सहारे की आवश्यकता है। नरोत्म के अनुसार[१] गुरु को तन मन धन सब कुछ अपर्ण कर उसकी कृपादृष्टि[२] को प्राप्त करना चाहिए। गुरु उपदेश बिना ब्रह्म का मर्म[३] नहीं जाना जा सकता। गुरु ज्ञान द्वारा उस सत्ता को पहचाना जा सकता।

तत्व ज्ञान

दर्शन की साधना के रुप में पंडित तारा सिंह नरोत्म ने तत्व ज्ञान को आवश्यक बताया है। इसका निजी महत्व है। तत्व ज्ञान के उपदेश से अविधा[४] की निवृत्ति होती है अर्थात् सूर्य के उदय होने पर अंधकार नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार तत्व ज्ञान के उत्पन्न होने पर अविधा या अज्ञान दूर होकर उस परम ब्रह्म के स्वरुप की पहचान होने लगती है। अविधा का पर्दा हट जाता है तत्वज्ञान का उद्देश्य

१- तन से सब तनारपन धन अरपन दुई भांत
हित विरक्त धन त्यागनो अविरक्तह तिहदात
मन अरपन सम ईस के गुर में चित की प्रीत
इह सेवन से हुइ खुसी तब आगे सुन रीत।- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० २३२

२- गुरु उपदेस बिना सुनो तरिउ न भवजल कोई
सबद पाइ सब जनन को जनम सफल जग होइ। वही।
गुर उपदेसित सबद की कही प्रसंसा भूर
जिग्यासू प्रब्रित हुइ जिह पिषर्नी के तूर।- वही, पृ० २३३

३- निज सिष को उपदेस है गुरु उपासन ग्यान
यथा होइ अधिकार जिह बहु ले तथा पछान।- वही, पृ० २३२

४- जैसे तत्वग्यान के उदय समे ही सूरय उदे से अंधकार वत अविध्या की निव्रिति होवे है। अविध्या निव्रिति हु यां अविध्या कृत आवरण निव्रित होवे है। आवरण निव्रित भयां ताके कारय संसय बिपरय दूर होवे है तैसे परारबध से भिंन संचित सरब करम नास होवे है। तत्वगान के प्रताप से क्रियमाण करम

सत्ता के स्वरुप को जानता है अर्थात् जो कुछ है उसे जाना जा सके।

तारा सिंह नरोत्तम ने तत्वज्ञान का लक्षण इस प्रकार दिया है, 'जिस ग्यान में एक पद के अरथ में दूसरे पद के अरथ का संबंध नहीं भासे पुना एक पद के अरथ बिसेषा मै दूसरे पद के अरथ की विसिष्टता नहीं भासे। ऐसा वाक्य जन्य संसरग बिसिष्ट शून्य निरविकलपक ग्यान होवै है। अभेद बोधक बचनों से तत्वग्यान होवै है।'[1]

ज्ञान के उदय होने से अविद्या की निवृत्ति होती है। नरोत्तम के अनुसार अविद्या द्वारा कृत आवरण भी निवृत्त हो जाता है और इसके साथ कार्य संशय दूर हो जाता है। गुरु नानक अनुसार हृदय में विश्वास के उत्पन्न हो जाने से तत्वज्ञान उदय हो जाता है। 'जाके रिदै विश्वास प्रभ आया तत्वग्यान तिस मन प्रगटाइआ।'[2] इसी भाव को नरोत्तम ने लिया है उत्तम अधिकारी को गुरु के उपदेश को श्रवण करके जगत् दु:ख का नाश और परमानंद की प्राप्ति करने वाला ज्ञान उदय होता है जिससे जीव अल्पज्ञ और ब्रह्म सर्वज्ञ की जानकारी होती है।

ज्ञान भूमिका

तारा सिंह नरोत्तम ने ज्ञान की भूमिकाओं की चर्चा विस्तार से की है।[3] ज्ञान की ७ भूमिकाओं में से 'श्रवण' 'मनन' और निदिध्यासन को मुख्यत: लिया है तथा अन्य ४४ पद पर इतना जोर नहीं दिया। श्रवण, मनन और निदिध्यासन मुक्ति के साधन के रुप में हैं।

(पिछले पृष्ठ से)

का पदम के पत्र साथ जलवत सपरस नहीं होवैं। - गुरुमत निर्णय सागर, पृ० २२०

१- वही, पृ० २२०

२- वही, पृ० २३४

३- 'ग्यान की सभी सात भूमिका है भूमिका नाम चित की अवस्था बिसेषों का है जिनको यवन दरजे कहे हैं। सातों में निसकाम करम द्वारा नित्य औ अनित्य वस्तु के विवेक से ले मुकती की इछा प्रयंत पहली भूमिका है।- गुरुभाव दीपिका- पृ० १७७

ज्ञान की प्रथम भूमिका में 'श्रवण' को नरोत्तम ने लिया है। इसमें अशुभ इच्छाओं का त्याग करना, सत्य सुनना, पाठ करना, किसी की निंदा को न सुनना ही ज्ञान की प्रथम भूमिका है। सब प्रकार की सांसारिक कामनाओं का त्याग कर सच्चिदानंद ब्रह्म के उपदेशों का श्रवण करना, सत्पुरुषों का संग कर उनसे महावाक्यों को सुनना श्रवण के अन्तर्गत आता है।

ज्ञान कीदूसरीभूमिका 'मनन' के बारे में नरोत्तम ने लिखा है। शास्त्रों का अध्ययन, सत्पुरुषों का संग और उनके उपदेशों का मनन ही विचारणा है। विषय भोगों से अनासक्त होकर संसार में विचरण करना निदिध्यासन है।

तारा सिंह नरोत्तम ने ज्ञान को मोक्ष का एक साधन माना है अर्थात् ज्ञानोदय होने से मानव इस जीवन से दूर जाने के लिए उस सत्ता के वास्तविक रुप को जान पाता है और अपने जीवन को सफल बना लेता है।

निष्कर्ष यह है कि तारा सिंह नरोत्तम ने भक्ति की बड़ी विस्तृत चर्चा की है। सारे ग्रंथ में नरोत्तम ने भक्ति को सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया है। नरोत्तम ने भागवत भक्ति की व्याख्या अधिक की है। गुरु नानक की दृष्टि से भक्ति का स्वरुप निश्चित नहीं किया। भक्ति व्याख्या के अन्तर्गत भागवत धर्म और गुरुमत दोनों को लिया है। स्थान स्थान पर गुरुवाणी से सन्दर्भ लिए हैं।

गुरु नानक निर्गुणवादी सन्त थे और निर्गुण के आधार पर ही सगुण रुप में प्रभुका वर्णन किया है। परन्तु नरोत्तम ने निर्गुण रुप में गुरुनानक की व्याख्या न कर सगुण भक्ति के नवधा भक्ति को गुरुमत पर लादना चाहा है जबकि नवधा भक्ति के सभी रुप गुरु नानक वाणी में मान्य नहीं है।

तारा सिंह नरोत्तम ने भक्ति को परमानंद रुप में स्वीकार किया है। सब बाधाओं से छुटकारा पा लेने के उपरान्त व्यक्ति अन्त में परमानंद की उपलब्धि को प्राप्त करता है। नरोत्तम ने प्रभुमिलन के लिए भक्ति ज्ञान और कर्म तीनों साधनों को अपनाया है। साधक कोई भी मार्ग अपनाए लक्ष्य वही परमपद की प्राप्ति ही है।

अन्तत: निष्कर्ष यह है कि नरोत्तम की भक्ति सम्बन्धी दृष्टि के प्रमुख तत्व ये हैं:-

अद्वैतभाव :- नरोत्तम के समस्त चिन्तन पर वेदान्त और योग दर्शन छाया हुआ है। वेदान्त को भारतीय अध्यात्म शास्त्र का चरम विकास माना गया है। इस समस्त दार्शनिक चिन्तन को नरोत्तम ने गुरुवाणी की व्याख्या के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। इसी अद्वैत दृष्टि ने भावमय होकर भक्ति को प्रभावित किया है।

नरोत्तम ने पराभक्ति को अद्वैत दृष्टि के लिए अनुपयुक्त बताया है क्योंकि न वहां सेव्य-सेवक भाव-प्रेम-प्रेमी भाव ही स्थापित किया जा सकता है। द्वैत की दृष्टि से नवधा भक्ति स्वीकृत हो सकती है।

इस भक्ति का लक्ष्य गुरु नानक भक्ति दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करना था। नरोत्तम ने भक्ति का उद्देश्य मुक्ति को माना है। मनुष्य कैवल्य प्राप्त करने के लिए ही साधन चतुष्टय को अपनाते हैं। तथा नरोत्तम ने अनन्य भक्ति प्रेम लक्षणा भक्ति का ही विवेचन किया है।

भक्ति रस

नरोत्तम ने रस की व्याख्या भक्ति के सन्दर्भ में की है। रस शब्द का प्रयोग आनन्द के अर्थ में किया है। नरोत्तम ने रस का पर्याय आनन्द माना है। परमानन्द रूप रस एक है और वह है भक्ति रस। नरोत्तम के विचारानुसार:-

'रस नाम आनंद का है--- आनंद से सम भूत उपजे हैं आनंद मे थित होवै है। आनंद में लै होवै है। इस प्रकार आनंद सारे जगत का उपादान कहिआ है।'[१]

१- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १७४-१७५

भक्ति रस

भक्ति को ही मुख्य रस के रुप में नरोत्तम ने स्वीकार किया है। 'मृत्तिका' 'घट' जैसे उदाहरणों से यही सिद्ध किया है कि शेष सभी रस या तो गौण हैं या फिर अन्त में भक्ति में ही समाहित हो जाते हैं।

भक्ति रस में विषयहीन आनंद का भान तथा अन्य रसों में विषय युक्त आनंद का भान होता है। नरोत्तम के शब्दों में;-

'भक्ती रस से भक्ती रस के रसीआ भक्तों की मुक्ती होवे है याने यह हेतु है भक्ती रस में केवल विषय हीन आनंद का भान होवे है। सिंगारादिकों में कांतादि विषया वंछिन्न आनंद का भान होवे है। याते कांतादि विषय मिस्रित रसों को छोड़ के मुक्ती हेतु यही सरब को सेवना उचित है, यह पूरा सिधांत है।'[१]

रस परिभाषा:- पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने रस की परिभाषा इस प्रकार की है:-

'विभावादिकों के योग से स्थायी भाव मन में परमानंद साक्षात्कार रुप से व्यक्त होते हैं तभी रस कहते हैं।'[२]

एक अन्य स्थान पर भी तारा सिंह नरोत्तम ने अपनी इस मान्यता को दुहराया है:- जब विभावादिकों के योग से मन में परमानंद साष्यातकार रुप से व्यक्त होवे तब रस कहावे है।' अर्थात् विभावादिकों के संयोग द्वारा मन में परमानंद साक्षात्कार ही रस है।

परमानंद :- नरोत्तम ने 'परमानंद' शब्द रस की परिभाषा में रखा है। 'परमानंद' शब्द में एक ओर तो लोकोत्तर आनंद की ध्वनि निहित है। दूसरी ओर आनंद,

---

१- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १७५

२- विभाव अनुभाव सात्त्विक संचारीयों से परिपूरण आनंद रुप साष्यातकार को प्रापत हुआ। स्थाई भाव रस कहीए है। -- वही पृ० १७५

रस और ब्रह्म इन तीनों की एकरूपता भी इस शब्द में व्यंजित है।

साक्षात्कार रूप

रस की परिभाषा में 'आस्वादन' या 'चर्वणा' प्रभृति शब्द तो प्राचीन आचार्यों ने भी प्रयुक्त किए हैं। परन्तु 'परमानंद' का साक्षात्कार (साक्षात्कार रसानुभूति) इस सन्दर्भ में काफी रोचक शब्द नरोत्तम ने प्रयुक्त किया है।

इस परिभाषा से सिद्ध होता है कि रस विषयक पूरी परम्परा से नरोत्तम परिचित थे। उपनिषद् युग की रस-सम्बन्धी धारणा की भी वे पूरी जानकारी रखते हैं। फलत: साहित्य शास्त्रीय तथा उपनिषदों की विचारधारा से प्रभावित नरोत्तम की दृष्टि बहुत निर्मल जान पड़ती है।

रस का लक्षण

विभाव अनुभाव सात्विक संचारीयों से परिपूरण आनंद रूप साक्ष्यातकार को प्रापत हुआ। स्थाई भाव रस कहीए है। यह ताका लषण है। औ जिस आनंद का अनंभव करती हुई ब्रिति अन्यवस्तु का अनुभव ना करे बहु आनद का अनुभव रस यह लषण का सार है।[1]

स्थायी भाव

स्थायी भावों के प्रति प्राय: सभी आचार्यों के एक मत हैं। तारा सिंह नरोत्तम ने स्थायी भाव की परिभाषा इस प्रकार ह दी है, 'याते चित की द्रववस्था में प्रविष्ट विषय का आकार[2] स्थायीभाव कहीये है। इस प्रकार स्थाई भाव वस्तु के थिर अकार का नाम है।' जब बहुथिर आकार मन में अव्यक्त रहे तब स्थायी भाव कहावे है।'

१- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० १७५

२- वही, पृ० १७८

स्थायीभाव में 'चित्त की द्रवावस्था' तथा विषय का आकार' दो पद साभिप्राय है। प्राय: सभी आचार्यों ने स्थायी भाव के प्रति वस्तु के स्थिर आकार का नाम दिया है। रस और स्थायी भाव कितने हैं, इस प्रश्न के उत्तर में स्थायी भाव पर विचार किया गया है। एक अन्य स्थान पर नरोत्तम ने अपनी मान्यता को दुहराया है:-

> 'जो अपने सजाती विजाती भावों से तिरसकार को प्रापत ना होते आं उनको अपने स्वरुप में प्रापत कर लेवे अर आप रस की उतपती प्रयंत थित रहै जैसे सांत में निरवेद स्थायी भाव है बहु अपने सजाती मुक्ती के साधनों में क्लेस भावना से होने वाले कदाचित निरवेद से दूर नहीं होवे। पुना अपने विजाती गुर सासत्र रति से भी दूर नहीं होवे किंतु उन विकारों को अपने में लय कर के आप सांत रस को उतापती प्रयंत थिति रहै है। याते स्थाई भाव कहीये है।'[1]

नाम-गणना

स्थायी भाव रस संख्या पर निर्भर करते हैं। जिनके प्रकार के रस है उतने ही प्रकार के स्थायी भाव होंगे। यहां नरोत्तम ने १२ प्रकार के रसों का उल्लेख कर १२ प्रकार के स्थायी भावों को बताया है। जैसे शृंगार का रति स्थायी भाव इसी प्रकार हास्य का हास, करुणा का शोक, रौद्र का कोप, वीर का उत्साह, भयानक, का भय, वीभत्स का जुगुप्सा, अद्भुत का विस्मय, शान्त का निरवेद अथवा शम, वात्सल्य का निरनिमित कोमलता, दास्य का निरंतर चरण प्रीति तथा सख्य का समभाव से प्रीती। यह १२ प्रकार के स्थायी भाव बताए गए हैं। इन सब की नरोत्तम ने विस्तार के साथ व्याख्या की है।

१- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० १७७

भावाभास

भारतीय रस सिद्धान्त का मूल भूत आधार तत्व भाव है। भाव मन के विकारों को कहते हैं और यही मन के विकार अनुभाव, विभाव और संचारी भावों द्वारा अभिव्यक्ति पाते हैं। भाव का अर्थ उन तत्वों से है जो काव्यार्थ को सहृदय के चित्त में व्याप्त करते हैं। तारा सिंह नरोत्तम ने भावाभास की परिभाषा इस प्रकार ~~की~~ दी है:-

> 'याते जो अन्य भावों के अंग रुप रत्यादिक भाव है अर आप और सहकारीयों से पुश्ट नहीं हुये सो स्थायी भाव नहीं होवें सचारी होवे है एवं जो लोक वेद विरुध इतिहासादिक भाव है सो भी स्थायी भाव नहीं होवे किंतु तिन का आभास होवे है जैसे राजपतनी गुरुपतनी में रति है। सो लोक वेद विरुध[1] है याते वहु भावाभास है भाव नहीं अर भाव होने से रसाभास है।'

रस अवयव

भरतमुनि ने रस-स्वरुप विवेचन करते समय 'विभानुभाव व्यभिचारी संयोगाद रस निष्पत्ति' कहा था। अर्थात् विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

विभाव:- ~~उल्लेख-किया-ह~~ नरोत्तम ने रस की व्याख्या करते हुए इन्हीं रस-अवयवों का उल्लेख किया है। विभाव की परिभाषा इस प्रकार दी है, 'जो स्थायी भाव को उत्पन्न कर रस की अभिव्यक्ति कराए वे विभाव है।[2] विभाव का विस्तार इस प्रकार दिया है, सर्वप्रथम स्थायी भाव लोक में हेतु से पैदा होते हैं, उत्पन्न होकर कार्य रुप चिह्नों द्वारा जाने जाते हैं और उद्दीप्त हुए भावों से पुष्ट होते हैं और काव्य में शब्द शक्ति द्वारा जाने जाते हैं। प्राय: विद्वानों की यही मान्यता

१- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० १८२

२- विनाम विसेष कर जो स्थायी भाव को उतपन कर तां की रस रुप अभिव्यक्ती करे सो कहीये विभाव।' वही, पृ० १८४

रही कि स्थायी भावों की उद्दीप्ति के कारणों का ही विभाव की संज्ञा मानी है।

विभाव दो प्रकार का बताया है एक आलंबन दूसरा उद्दीपन। आलम्बन के दो भेद बताए हैं एक आश्रयालम्बन दूसरा विषयालम्बन। 'जो स्थाई भाव की दीप्ती करावन वाले पदारथ हैं वहु उदीपन विभाव कहीए है।'[1]

अनुभाव

अनुभाव का अर्थ है भावों के पीछे होने वाला। तारा सिंह नरोत्तम ने प्राचीन आचार्यों की परम्परा में अनुभाव की व्याख्या इस प्रकार की है, 'जो स्थायी भाव से उपज कर तिस को रस रुप अभिव्यक्ती का इतरों को अनुभव करावे सो कहीये अनुभाव।'[2] एक अन्य स्थान पर इस प्रकार लिखा है:-

'जो स्थाई भाव को भक्त में इतरों को जनावने वाले सरीर बाणी के विकार है सो अनुभाव कहीये है।'[2]

नरोत्तम ने अनुभाव को दो प्रकार का बताया है। एक प्रकार के अनुभाव किसी एक विशेष रस से ही सम्बद्ध होते हैं। जैसे शृंगार रस में कटाक्षादि, करुणा में विलाप, वीर में उग्रता आदि अलग-अलग अनुभाव है। दूसरे प्रकार के अनुभाव सब रसों में एक समान होते हैं। इस प्रकार के अनुभाव को नरोत्तम ने सात्त्विक भाव से पुकारा है। अत: सात्त्विक भाव सब रसों में समान रहते हैं। नरोत्तम ने सात्त्विक भाव का उल्लेख और उनका स्वरुप का विवेचन भी किया है।

अनुभाव की परिभाषा में ये दो मुख्य पद बहुत सार्थक हैं:-

१- स्थायी भाव की रस रुप अभिव्यक्ति।

२- तथा इस अभिव्यक्ति को दूसरों तक पहुंचाना।

१- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १८५-१८६

२- वही, पृ० १८६

व्यभिचारी

संचारी भावों का दूसरा नाम व्यभिचारी है जो भाव क्षण-क्षण में बदल कर स्थायी भाव को उद्दीप्त करते हैं, वे संचारी भाव है। संचारी भाव की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं, और विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार संचारी भाव रस की अभिव्यक्ति के लिए उद्बुद्ध होते हैं तथा क्षण क्षण में बदल कर स्थायी भावों को उद्दीप्त कर समाप्त हो जाते हैं ~~भक्त~~ नरोत्तम के शब्दों में, 'बि नाम बिसेष कर अभि नाम सनमुष होकर समुद्र में लहरों वत स्थाई भावों मै उदे होते हो लय होते तिन स्थाई भावन को रस रुप कर अभिव्यक्ती करे सो कहीए व्यभिचारी।'[1]

अथवा- जो अंतहकरण की ब्रिति रुप वस्तु सम रसों में सम स्वभाव ना रहे। किंतु बदल जावे। बहु संचारी कहीये है।'[2]

~~वितर्क संचारी~~ संचारी भाव के तारा सिंह नरोत्तम ने परंपरानुसार ३३ भेद किए हैं। तथा वितर्कसंचारी के आगे चार प्रकार बनाए हैं:-

१- विचार

२- संशय

३- अध्यवसाय

४- बिप्रतिपती (विप्रतिपत्ति)[3]

विचार:- इस हेतु ऐसा होने योग्य है इसका नाम विचार है।

संशय:- ऐसा भी होने योग्य है अन्यथा भी होने के योग्य है। इसे संशय कहा है।

१- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १८४ (२)- वही, पृ० १८८

३- बितरक विचार, संसय, अनध्यवसाय, बिप्रतिपती भेद से चार प्रकार का है। - - - यह ऐसा भी होने के योग्य है अन्यथा भी होने के योग्य है इसका नाम संसय है। --- इह इस युक्ती से यही बने है और नही बने इसका नाम अनध्यवसाय है। --- अनेक कलपना उठावनी विप्रतिपति है- वही, पृ० १६३-१६४

(अगले पृष्ठ से) ४- इस प्रकार आलबंन उदीपन विभावों का स्थाई भावों साथ जन्यजनक भाव संबंध है। अनुभावों का गम्य गमक भाव संबंध है। संचारीयों का पोष्य पोषक

अध्यवसाय :- इस युक्ति से यही बने है और नही बने। इसका नाम अध्यवसाय है।

विप्रतिपत्ति:- अनेक प्रकार की कल्पना को उठाना विप्रतिपत्ति है।

नरोत्तम के अनुसार विभावों का जन्य-जनक भाव, अनुभावों का गम्य-गमक भाव और संचारीका पोष्य-पोषक भाव का सम्बन्ध है। (1)

रस संख्या

भरतमुनि ने रस के विभिन्न भेदों का उल्लेख किया है। भरतमुनि ने मूल रुप में रस चार मन माने हैं। शृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स। फिर इनसे क्रमश: हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति मानी है। शृंगार और हास्य वीर और अद्भुत, बीभत्स और भयानक रस युग्म का पारस्परिक कारण कार्य भाव होने के कारण उत्पाद्योत्पादक सम्बन्ध स्वत: सिद्ध है। रौद्र और करुण में भी यह सम्बन्ध मन:स्थिति के आधार पर परिपुष्ट है।[2]

आठ रसों की संख्या के अनुकूल स्थायी भावों की संख्या भी आठ मानी जा सकती है। रसों की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। आगे चलकर अभिनव गुप्त ने नाट्यशास्त्र के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भरत ने रस संख्या ८ के बावजूद ६ मानी है।[3] ऐसा कहा जा सकता है कि शान्त सहित नव रस का उल्लेख सबसे प्रथम उद्भट ने किया है। नाट्यशास्त्र कार ने ~~क~~ शान्त रस को नाट्य रसों में इस लिए नहीं गिना। उनके अनुसार इसके स्थायी भाव 'शम' का अभिनय नहीं किया जा सकता। परन्तु श्याम सुन्दरदास इस मत से सहमत नहीं। उनके मतानुसार 'शम' के लिए पूर्ण संयम, इंद्रिय निग्रह और

(पिछले पृष्ठ से)

(1) भाव संबंध हे जो उतपती में स्थायी है वही अभिव्यक्ती में रस होवे है।

गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १६४-१६५

२- भारतीय काव्यांग- डा० सत्यदेव चौधरी, पृ० ८०

३- रस सिद्धान्त- डा० नगेन्द्र, पृ० २३७

निश्चैष्टता की आवश्यकता है। जब निर्वेद संचारी का अभिनय हो सकता है, तब कोई कारण नहीं कि निर्वेद स्थायी का भी अभिनय न किया जाए।[1]

तारा सिंह नरोत्तम के अनुसार रस संख्या १२ है। शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, शान्त, वात्सल्य, दास्य तथा सख्य।[2] नरोत्तम की रस संख्या का आधार प्राचीन परम्परा से चले आ रहे विभिन्न मत-मतांतरों का है क्योंकि नरोत्तम ने नाट्य, काव्य तथा भक्ति ग्रंथों में आई रस संख्या को देखते हुए निष्कर्ष रूप से १२ प्रकार के रस गिना दिए हैं जबकि 'वात्सल्य' 'दास्य' तथा 'सख्य' ये केवल भाव हैं। ये 'रसदशा' तक नहीं पहुंच सकते।

(पिछले-पृष्ठ

१- साहित्यालोचन- डा० श्याम सुन्दर दास- पृ० २६१

२- सामग्री भेद से रस भी अनेक हैं। वास्तव तै परमानंद रूप रस एक है। नाट्य वाले रस आठ माने हैं यांते तिस मन में स्थायी भाव आठ है। काव्य वाले सांत मिलाकर नव माने हैं तिन के मत के स्थाई भाव नव है। भक्ति ग्रंथों में रस पांच माने हैं। सभी मिलाकर गिने तब स्रिंगार। हास्य करुण रौद्र बीर भयानक बीभतस अद्भुत सांत बातसल्य दास्य संख्य ये रस द्वादस होवे है। यति तिनके स्थायी भाव भी क्रम से —— द्वादस है। रति हास, शोक, कोप, उतसाह, भय, जुगुपसा, बिसमय, निरवेद, वा सम निरनिमित कोमलता, निरंतर चरण प्रीती, सम भाव से प्रीती।'--

गुरुमत निर्णय सागर- पृ० १००

भक्ति रस

रुप गोस्वामी ने काव्य शास्त्रियों के भक्ति सम्बन्धी निर्णय का घोर विरोध किया है। भक्ति को रस मान कर उसकी पूर्ण व्यवस्था के साथ भक्ति को प्रधान और अन्य रसों को गौण बताया है। इनके मतानुसार रस दो प्रकार का है। मुख्य रस और गौण रस।[१] मुख्य रस के अन्तर्गत शान्त भक्ति रस, प्रीतभक्ति रस, प्रेमानुभक्तिरस, वत्सल भक्ति रस तथा मधुर भक्ति रस आते हैं। तथा गौण रस के अन्तर्गत हास्य भक्ति रस, अद्भुत भक्ति रस, वीर भक्ति रस, करुण भक्ति रस, रौद्र भक्ति रस, भयानक भक्ति रस और बीभत्स भक्ति रस आते हैं। रुप गोस्वामी ने भक्ति रस को ही सर्वाधिक की है। रसों की संख्या में क्रमश: वृद्धि होती चली गई। अन्त में वात्सल्य दो रस जुड़े।

तारा सिंह नरोत्तम द्वारा बताए गए सख्य, वात्सल्य तथा दास्य रसों में से वात्सल्य और सख्य की कई संस्कृत ~~अलंकारिकों~~ आचार्यों ने पहले ही निर्दिष्ट किए हुए थे। भक्ति की प्रतिष्ठा भी स्वीकृत की जा चुकी है।

डा० नगेन्द्र ने रस भेदों का विश्लेषण करते समय उपलब्ध तथ्यों के आधार पर इस प्रकार प्रस्तुत किया है। सभी प्रकार की उद्भावनाओं को मिलाकर रस भेदों का सर्वयोग ३२ बैठता है प्राय: सर्व स्वीकृत[२] रस श्रृंगार, हास्य, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, बीभत्स और शान्त है।

श्याम सुन्दरदास के अनुसार यह जो भेद माने गए हैं, वह केवल स्थायी भावों के भेदों के आधार पर किए गए हैं।[३] जिससे रस प्रक्रिया के ज्ञान में सुगमता हो। रस तो सदा भेद रहित और एक रस है।

नरोत्तम ने भी परमानंद रुप रस एक ही माना है।[४] विभावादि सहकारियों

१- रस सिद्धान्त- डा० नगेन्द्र, पृ० २३६

२- विशेष विवरण के लिए डा० नगेन्द्र का 'रस सिद्धान्त' देखें।

३- साहित्यालोचन- डा० श्याम सुन्दरदास- पृ० २६१

४- याते रस यद्यपि एक रुप है। तथापि तिसके प्रगट होने की सामग्री रुप उपाधीओं पृथक पृथक है। यातें तिस के श्रृंगारादि पृथक पृथक

के प्रभाव से आनन्द रुप रस उद्बुद्ध होता है। मुख्य रस यही है। रस वास्तव में एक ही है परन्तु इसके प्रकट होने की सामग्री रुप उपाधियां पृथक-पृथक है। सामग्री भेद के कारण एक ही रस अनेक प्रकार का प्रतीत होता है। वह रस एक परमानंद स्वरुप है।

तारा सिंह नरोत्तम ने संक्षेप में अन्य रसों की भी व्याख्या की है। तारा सिंह नरोत्तम ने जिन रसों को काव्य या नाट्य में मान्यता प्रदान नहीं की गई। उन सब का वर्णन किया है। युक्तिपूर्वक यह सिद्ध करना चाहा है कि उनका स्थान भी काव्य में अन्य रसों के समान है। जैसे नरोत्तम ने शान्त रस को काव्य और नाट्य दोनों में स्थान दिलवाने का प्रयास किया है। जिस प्रकार 'आदि ग्रंथ' शान्त रस की अद्भुत कृति है। उसी प्रकार आदिग्रंथ' में कहीं कहीं पर परमेश्वर को अपनी माता-पिता, कहीं पर पुत्र रुप अर्थात् वात्सल्य रस की झलक भी देखने को मिलती है।

वात्सल्य

तारा सिंह नरोत्तम ने वात्सल्य की परिभाषा इस प्रकार दी है:-

'प्रियपुत्र की प्रीती से चित कोमलता में आनंद का अनुभव बहु वातसल्य कहीये है।'[1] परम प्रीति ही वात्सल्य का स्थायी भाव है।

दास्य:- वात्सल्य के समान ही दास्य रस की चर्चा नरोत्तम ने की है:-

'चरणों की प्रीती में आनद का अनुभव दास्य रस कहीये है।'[2]

(पिछले पृष्ठ से)

नाम कहे जावे। ऐसे एक ही खांड के संचियों के भेद से अनेक प्रकार के खिलौने बने है। वास्तव से बहु सभी एक खांड रुप है। इसी प्रकार मत भेद से आठ वा नौ वा पांच प्रकार का बहु एक हीलोक में स्वभाव से औ काव्य में सब्द की सक्ती से और नाट्य में सांगन से देषीये है।'

गुरुमत निर्णय सागर- पृ० २००

१- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० २११

२- वही, पृ० २११-२१२

भगवत चरणों की निरन्तर प्रीति ही स्थाई भाव हो सकता है।

सख्य

दास्य रस के समान सख्य को लिया है। भक्त ईश्वर के साथ मित्र भाव से प्रीति करता है। सख्य में सम भाव सेवा में चित्त को निरंतर प्रीति इसका स्थायी भाव है। सख्य की परिभाषा इस प्रकार दी है:-

'सम भाव से चित की निरंतर प्रीती रुप ब्रिति में आनंद का अनुभव सष्य रस कहीये है।'[1]

भक्त का ईश्वर से कोई परदा नहीं होता। वह उसके प्रेम में अत्यन्त मग्न हो जाता है। सख्य, दास्य, वात्सल्य सब भावों में यह भाव मुख्य है। इस भाव में रस केवल शृंगार है।

माधुर्य

नरोत्तम का कहना है कि माधुर्य शृंगार सदा से चला आ रहा है। इसी से ब्रह्मानंद का लाभ होता है। माधुर्य से ही सख्य दास्यादिभाव होते हैं। करुणा वात्सल्य आदि भी किसी स्वरुप कीमाधुर्यता को देख[2] कर होते हैं। जिस को देखकर होती है वही इन अंगों का अंगी रुप माधुर्य शृंगार है। संसार की रीति में प्रिय और

१- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० २१२

२- जिस जिस रिषि मुनि महातमा का चित प्रमेश्वर में लगा। तिन सम का प्रमेश्वर के अद्भुत स्वरुप को देष कर ही लगा याते यह माधुरय स्रिंगार सदा से चला आवता है। इसी से ब्रह्मानंद का लाभ होता है। इस माधुरय से ही सभी सष्यदास्यादि भाव होते हैं याते थांही के अंग है।--- करुणा बतसलतादि भी तो काहू स्वरुप की अद्भुतता रुप माधुरय को देष कर ही होवे है। जिस को देष करहोवे है वही इन अंगों का अंगी रुप माधुरय स्रिंगार है।-- यह माधुरय स्रिंगार सांत रस के समान है।

प्रियतम के गुणों के समान ही भगवत् की प्रीति में भी करुणा वत्सलता भगवान के गुणों का व्याख्यान सच्चिदानंद स्वरुप का उल्लेख वेदादि शास्त्रोंमें देखने को मिलता है। यही माधुर्य शृंगार है। नरोत्तम ने अम्म माधुर्य रस को शान्त रस के समान माना है।

तारा सिंह नरोत्तम ने भक्ति को विभिन्न सम्प्रदायों में विभिन्न प्रकार की देखा है।[१] जैसे विष्णु, सम्प्रदाय वाले भगवान् के बाल रुप के उपासक है। मध्य सम्प्रदाय वाले परकीया भाव से राधा की उपासना करते हैं। चित्त रुचि के अनुसार सख्य दास्यादि भक्ति करें।

भक्ति करने के लिए भक्त किसी भी मार्ग को अपना सकता है उसके लिए कोई बन्धन नही। जिसमें उसकी रुचि हो वैसी ही वह भक्ति करेगा।

नरोत्तम के अनुसार भक्ति में मुख्य यही शान्तादि पांच रस हैं। वीरादि से बहुधा भक्ति नहीं कीजा सकती और वे गौण रस के अन्तर्गत आते हैं। रस मिलत भक्ति इन्हीं रसों के मेल से होती है। केवल भक्ति इनसे भिन्न होती है। ज्ञान इनका साधन होने से अंग है। भक्ति साध्य होने से अंगी है। इन दोनों से भिन्न मार्ग नहीं होता। ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य बताते हुए नरोत्तम का कहना है कि बिना ज्ञान के मैं मोक्ष उपलब्ध नहीं होता। अत: ज्ञान भक्ति से भिन्न मुक्ति का मार्ग नहीं। ज्ञान और भक्ति का सम्बन्ध साधन साध्य या अंग अंगी के समान है। इन दोनों के सामंजस्य से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। आज तक एक ही भाव का वर्णन सभी भक्ति ग्रंथों में देखने को मिलता है।

१- बिस्नु स्वामी संप्रदायवाले उपासक बाल रुप के हैं। परंतु राधा को सुकीया भाव से सेवे है। मध्व संप्रदाय वाले परकीया भाव से सेवे हैं। पंच देवन के उपासक कोई एक भाव प्रपक (परिपक्व) नहीं रखे। याते चितरुचि अनुसार सख्य दासादि भक्ती करे है। गुरुमत में भी वही रीती है याते जिसको सखी भाव में रुची होवे वह सखी भाव से भी भक्ती करे। सखी भाव का आग्रह नहीं करे तो गुरु ने बार बार लिखने से कुछ दोष नहीं केवल सिंगार का स्थाई भाव रति है। मन के अनुकूल पदारथ में चित बिृती के प्रवाह को रति कहे हैं। याते जीव रुप इसत्री का मन के अनुकूल पति प्रेमेस्वर में चित का प्रवाह या रस का स्थाई भाव है। भक्त रुप इस्त्रीयां

रुप गोस्वामीने इस के रस के मुख्य औरगौण दो वर्ग बतलाए हैं। उन्होंने शान्त, प्रीत, प्रेयस वात्सल्य और मधुर इन पांचों को मुख्य भक्ति माना है। इनमें मधुर रस की प्रधानता होने के कारण परामक्ति या मधुरा भक्ति ही भक्ति रस के नाम से अभिहित की जाती है।

मधुसूदन सरस्वती ने भी भक्ति को अन्य रसों की अपेक्षा महत्व प्रदान किया है। उनका विचार है अन्य रसों में पूर्ण सुख का स्पर्श नहीं रहता जबकि भक्ति रस नितान्त रुप से सुखमय है। यही कारण है कि इसके सम्मुख अन्य रस क्षुद्र प्रतीत होते हैं। इतर रस इसके सामने आदित्य के सम्मुख खद्योत के समान जान पड़ते हैं।[1]

डा० नगेन्द्र के अनुसार रुप गोस्वामी ने भक्ति के पांच भेद किए हैं। और उन्हें मुख्य रस के अन्तर्गत रखा है।

रुप गोस्वामी ने मधुर रस को ही प्राकृत रस माना है और अन्य रसों को उसीके विभिन्न रुप मेंस्वीकार किया है। भक्ति रसराज मधुर रस को ही माना है। कई आचार्यों ने इस मधुर भक्ति रस को स्वतन्त्र न मानकर भावमात्र माना है और उसका शान्त, शृंगार, अद्भुत आदि में अन्तर्भाव हो जाता है।

प्राचीन ग्रन्थों में रुप गोस्वामी, चैतन्य महाप्रभु, मधुसूदन, कृष्णदास कविराज, अयोध्यासिंह उपाध्याय, गुलाब राय आदि ने मधुर भक्ति रस को स्वतन्त्र रस के रुप में स्थापना की है।

(पिछले पृष्ठ से)

का आश्रयालंबन परम सीमा धाम पति प्रेमेस्वर या का विषयालंबन है। पतितपावनादि गुण उदीपन है। --- वही, पृ० २१५

निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि तारा सिंह नरोत्तम ने भी भक्ति को ही मुख्य रस के रुप में व्याख्या की है। इसी सन्दर्भ में रसस्वरुप, अवयव, संख्या आदि का विवेचन करते हुए सभी रसों को एक रस के अन्तर्गत लाने का प्रयत्न किया है। तारा सिंह नरोत्तम द्वारा अभिव्यक्त सभी परिभाषाएं परम्परा प्राप्त हैं।

अन्तत: नरोत्तम की रस सम्बन्धी मुख्य विचारधारा यही दृष्टिगत होती है कि उन्होंने 'रस एक है, माना है और वह परमानानंद स्वरुप है जिसे सभी रसों में देखा जा सकता है।

गुरु नानक और उनका इष्ट

तारा सिंह नरोत्तम ने गुरुमत निर्णय सागर में गुरुनानक के इष्ट के बारे में अपने विचार रखे हैं। इनसे पूर्व गुरु नानक का गुरु कौन था। इस रोचक प्रश्न को आनन्दघन ने उठाया था। इस प्रसंग के अन्त में वे नानक को 'स्वयं सिद्ध' स्वीकार कर लेते हैं और गुरु पद की रुढ़ि गुरु नानक में ही मान लेते हैं। साम्प्रदायिक आग्रह और तार्किकता दोनों का आभास इस प्रश्न के उत्तर में मिलता है।[१]

यह बड़ा ही रहस्यमय प्रश्न है कि गुरु नानक का इष्ट कौन था, क्या यह स्वयं ही अपने इष्ट थे, किस गुरु की स्तुति किया करते थे? क्या देवी को मानते थे? आज भी गुरुनानक के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण विचारधाराएं देखने को मिलती हैं।

१- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य- गोविन्द नाथ राजगुरु- पृ० १४४

गुरु नानक देव जी से सिद्धों ने पूछा[2] कि आपका गुरु कौन है?[1] गुरु नानक देव जी ने 'शब्द' को गुरु बताया। और सुरत ही उसका चेला है। वह गुरु गोपाल हर युग में विद्यमान है।

तारा सिंह नरोत्तम ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया है। नरोत्तम के अनुसार गुरु नानक ने अपने इष्ट के बारे में नहीं बताया यही सबसे बड़ी कमी रह गई। नरोत्तम का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब कि निर्मले सन्त पौराणिक परम्परा को अपनाए हुए थे। नरोत्तम के स्वयं गुरु सन्त गुलाब सिंह निर्मला ने ईश्वर की राम रुप में ही भक्ति की है। गुलाब सिंह ने दार्शनिक राम की महिमा प्रत्यक्ष रुप से गाई है। अत: यह स्वाभाविक था कि नरोत्तम पर इन सब का प्रभाव पड़ता।

१- 'कवणु मूलु कवणु मत वेला
तेरा कवणु गुरु जिसका तू चेला
कवणु कथा ले रहुह निराले?

२- बोले नानक सुणो तुम बाले
ऐसु कथा का देह बीचारु भवजलु'सबदे लंघावणहारु
पवन अरंभ सतिगुरु मति वेला'सबदे गुरु सुरति धुनि चेला।
अकथ कथा ले रहउ निराला नानक जुगि जुगि गुर गोपाला।
आदि ग्रंथ रामकली महला १, पृ० ६४३

तुलना 'सबद हमारा षरतर षांडा'- गोरखनाथ

नरोत्तम के अनुसार वैदिक मत का प्रचारक और हरि के अवतार के रुप में गुरु नानक ही इस कलियुग में हुए।[1] नरोत्तम का कहना है जिस प्रकार सभी धर्मों में विष्णु के विभिन्न नाम अवतार रुप को प्रयुक्त किया गया है उसी प्रकार आदि ग्रंथ में भी विष्णु के विभिन्न नाम लिए गए हैं और वे सभी नाम उस विष्णु की स्तुति के लिए ही स्वीकृत किए गए हैं। नरोत्तम के अनुसार आदिग्रंथ में ३७ विष्णु के नाम आए हैं।[1] इस बात का समर्थन तारा सिंह नरोत्तम आदि ग्रंथ के श्लोक से करता है।[2]

'ज्यु प्रह्लाद हरिनाषस ग्रासिउ हरि राष्यौ हरि सरना।
बावा बार बार बिश्नु समार। लषमी बरसौ जो लिव लावै।
बिन हरि नौव को बेली नाहीं। हरि जपीये सारंग पाणी है।
मन तन निरमल सोहना मैय्या क्रिस्न मुरारि।
अचुत पार ब्रह्म परमेश्वर आदि समग्र- मारु सोलहा-

१- ननु हरि के अवतार गुरु बैदक मत्र प्रचार
कारक जानै भली बिध फिर संका इक मार।
गुरुमत निर्णा सागर, पृ० ८७-८८

२- वही कहौ कछु सुनौ अब हरि परमेश्वर राम।
जगनाथ जगदीश्वरौ मुरली मनोहर स्याम।
रिषीकेश मधुसूदनौ औ गोबिन्द गोपाल।
गिरि गोवरधन धार को गोपीनाथ अकाल।
अच्युत मुरिआरि प्राण हा, श्रीधर कमलाकांत
ईश्वर नरहरि धरणि धर दामोदर गुणावतं
और लषमी नाराइणे बिश्नु किष्ण मुकंद
सारंगपाणी चक्रधर वछल भगत अनंद।
वासदेव पुन माधवै गिरिधर मोहन लाल।
ध्रू प्रह्लादक भयहरन द्रुपदी करन निहाल-- गुरुमत निर्णय सागर,पृ० ८८-८९

नरोत्तम के अनुसार गुरु के मुख से ही विष्णु भगवान के अपार नामों का उच्चारण हुआ। परन्तु यदि देखा जाए तो गुरुवाणी में जितनी बार भी वासुदेव, राम या कृष्णादि के नाम आए हैं वे सब निर्गुणवादी विचारधारा के अनुरुप है। अत: ये नाम विष्णु का रुप नहीं हो सकते। वे तो उस अकाल पुरुष की स्तुति के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

तारा सिंह नरोत्तम ने इस विषय पर 'षट्लिंग' का आश्रय लिया है। षट्लिंग ये हैं:-

१- उपक्रम, उपसंहार की एक रुपता
२- अभ्यास
३- फल
४- अर्थवाद
५- अपूर्वता
६- उपपति

इन षट्लिंगों का विवेचन विस्तार के साथ नरोत्तम ने किया है।[१] आदि ग्रंथ में आरम्भ से लेकर अंत तक सतिनाम अमिट नाम का कथन। बार बार हरि का नाम जपा

१- जो जिस ग्रंथ से प्रतिपादन योग्य वस्तू है तिस का उपक्रम आदि में और उपसंहार समापती में वैसा कथन उपक्रम उपसंहार की एक रुपता कहीए है। यह तातपरय निरणाय में एक चिह्न है। जैसे सत नाम अम्रित नाम ठाकुर का पाया यह आदंत में कथन है। ग्रंथ प्रतिपाध्य वस्तु का पुन पुना कथन अभ्यास कहीए है जैसे रामभज। रे मन राम सिउ कर प्रति यह पुन पुना कथन रुप दूसरा चिहृन है। ग्रंथ प्रतिपाद्य वसतू बिना पुरषारथ की अप्रापती का कथन अपूरबता कहीए है जैसे बिन हरि नाम न मुकति होइ इह कहर में कबीर। बिन हरि नावे को बेली नाहि। इत्यादि पाठ से हरिनाम बिना मुकती की अप्रापती कही है। यहि तीसरा चिन है। अन्य ग्रंथों में अपूरबता का ग्रंथ प्रतिपाध्य वस्तू का अन्य प्रमाण से ग्यान ना होना लषण है। सो प्रकरणी पयोगी नहीं। काहे तो इहा ग्रंथ प्रतिपाद्य का। वेद पुराण से भी ग्यान होवे है। याते यह लषण लिषा है। ग्रंथ प्रतिपाद्य वस्तू से ही तिस की प्रापती कहनी फल कहीये है। जैसे ज्यों जल में जल

गया है। नरोत्तम ने आदि ग्रंथ में से उदाहरण लेकर गुरु-नानक के गुरु को सिद्ध करने का प्रयास किया है। उसके अनुसार षट्लिंग के प्रथम अंग से लेकर अन्त तक विष्णु का नाम ही बार-बार आया है? हरि के नाम लेने से ही मोक्ष मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

नरोत्तम के अनुसार हिन्दुओं और यवनादियों ने राम रहीम का नाम विष्णु के सन्दर्भ में लिया है। राम रहीम में एकता अर्थात् राम-कृष्ण रहीम में ही विष्णु समाया है। इसी प्रकार गुरुमत में भी अकाल पुरुष और वाहिगुरु का नाम विष्णु के सन्दर्भ में प्रयुक्त हुआ है:-

पुरष अकाल वाहगुरु इन सबदन के साथ
भजो इष्ट गुरु विष्णु ही यैनि जगत की गाथ।[१]

अत: गुरु नानक का इष्ट विष्णु ही है।

टीका सिरी राग के आरम्भ में भी तारा सिंह नरोत्तम ने गुरु नानक का इष्ट विष्णु ही बताया है।[२] नरोत्तम ने गुरु नानक के समान दसम गुरु गोबिन्द

१(पिछले पृष्ठ से)

आइ षटाना तयों जोती संग जीत समाना। मिट गए गवन पाए बिसराम। नानक प्रभू के सदकुरबान। यहि ग्रंथ प्रतिपाध्य हरि भक्ति से हरी की प्राप्ती करना रुप चतुरथ चिह्न है। प्रकरण प्रतिपाध्य वस्तू की प्रसंसा करनी अरथवाद है।--- ग्रंथ प्रतिपाध्य वस्तू का दृिश्टातों से कथन उपपती है।--- दृिश्टातों से हरि भक्ति को मैल गवावनी कही है। यहीछठी चिह्न है।

वही, पृ० ६०-६१

१- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० ६३

२- अर कोई गुरु नानक जी का गुरु है औसे गुरु के गुरु का होणा उनके 'बलिहारी गुर आपणे दिउहारी सदवार इत्यादि और वाक्यन से निसचे कीआ। अरप्रश्नोतर करना।' मैं आपणा गुरु पूछि देषिआ। 'इस बचन से जाणिआ अर वहु कोण गुरु है जिससे प्रश्नोतर हुआ। औसी इछा भया उनके और वचनों से गुरु विश्नु है यह निसचे कीआ सोई दिषावें है।

सिंह का इष्ट भी विष्णु को ही माना है:-

'ननु इह बिध सो रहु भले इष्ट बिस्नु गुर आदि
भली भात से अब करो इष्ट दसम प्रतिपाद।
सुनीए भले सुनाइहों जो तुम पूछीएह
इष्ट विस्नु ही तिन अहे यमि नहि संदेह।'[1]

(पिछले पृष्ठ से)

मारु महला। १। हरि गुरु मूरति एका वरते नानक हरि गुरु भाइआ।
बसंत महला १। पारस भेद भेद भए से पारस नानक हरि गुरु संग थीए।
बसंत महला १। बिन हरि गुरु प्रीतम जनम बदा इतिआदि बाक्यन में
गुरु नानकजी ने विशनु ही अपना गुरु दिखाइआ है।- टीका सिरी राग-
पृ० २०

जब जब संसार में अधरम की ब्रिधी औ धरम की न्यूनता हो जावें है तब तब उतम लोकों की रख्या हेत औ दुसटो के विनास हेत परमेस्वर का अवतार होने का निमित्त है सो पुराणो में सरबत्र लिखे है अर इस मत में भी बड़े महान भाई गुरदास जीने लिखा है सुणी पुकार दातार प्रभु गुरु नानक जग माहि पठाइआ। ग्रंथ साहिब जी में पहली पातसाही के बरशान मे छठे सवैये में कल भटने लिखा है सत जुग ते माणिउ छलयो बलि बाबन भाइउ स्री मुख वाक सवैयो मे गुरु अरजन देव जी लिखे है। हरिगुरु नानक जिन परसिउ उसि जन्ममरण। दुहु ये रहिउ भविष्यत पुराण के पैतीसवें अध्याय में लिख्या है जब अधरमी राजा लोकों के प्रभाव से धरम का नास हो जावेगा तिस काल में धरम की रषा और मलेछ लोकों के नास हेत बेदी बंस विषे पछम देस मों खात्रीयों की कुल विषे नानक नाम वाला विसनु का अवतार होवेगा । लोगन का ब्रह्म ग्यान का उपदेस करेगा। औ तिन के धरम की रछा करेगा। - -- गुरदास बचन से लेकर पीछे समग्र लिखे का भाव यह है कलियुग में संपूरण लोकों के धरम की रछा हेतबिसनु भगवान ने पूरब अवतारों वत गुरु नानक अवतार धार्या।

-गुरु भावदीपिका- पृ० ६-१०

१- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० ६६

नरोत्तम का कहना है कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुरु गोबिन्द सिंह ने अपने ग्रंथ में विष्णु के बिना और किसी को इष्ट नहीं माना। नरोत्तम अपने मत की पुष्टि गुरुवाणी में से उद्धरण लेकर देता है। शब्द हजारे में विष्णु भगवान से अपने उद्धार के लिए प्रार्थना की गई है:-

विष्णु भक्ति की इह फल होई
आध व्याधि हवै छवै सके न कोई
प्रभु जू तो कहु लाज हमारी
नीलकंठ नर हर नाराइण नील बसन बनवारी।[१]

परन्तु नरोत्तम की यह धारणा निराधार है। गुरु नानक ने अपना इष्ट उस दिव्य शक्ति को चुना जिसे वे 'अकाल पुरुष' कहते हैं। 'अकाल पुरुष' की यह कल्पना भारतीय साधना पद्धति के इतिहास में बिल्कुल नवीन कल्पना है। इसी प्रकार गुरु गोबिन्द सिंह ने अकाल पुरुष के लिए महाकाल, महालोक, सर्वलोक, सर्वअकाल आदि का नाम लिया है।

नरोत्तम ने गुरु नानक के व्यक्तित्व का परिचय निर्गुण और सगुण दोनों रुपों में दिया है। स्वयं गुरु ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना की है। गुरु नानक ने कहा है कि ब्रह्म विष्णु महेश उस अकाल पुरुष द्वारा पैदा हुए हैं। गुरु नानक ने उस अकाल पुरुष के स्वरुप को एक ओंकार, सतिनाम करता पुरख निरभउ निरवैर अकाल भम मूरति अजूनी से भं आदि विशेषणादि दिए हैं। जो सृष्टि में व्यापक है, काल से परे है, जन्म मरण से रहित है, स्वप्रकाशमय है। अतः गुरु नानक ने निर्गुण रुप में अकाल पुरुष की स्तुति की है।

पुराणों में यह विचारधारा देखने को मिलती है जब धर्म का ह्रास और अधर्म का प्राबल्य होता है तभी विष्णु किसी न किसी रुप में इस पृथ्वी में अवतार लेते हैं। भक्तों की सहायता ही उनका उद्देश्य है। विष्णु के २४ अवतार बताए गए हैं परन्तु इस समय के अवतारों का रुप रक्षक का रहा है। परन्तु निर्गुण सन्त काव्य में अवतारवाद का स्पष्ट खण्डन मिलता है।

१- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० १००

सिक्ख गुरुओं को अवतारवाद मान्य नहीं था। गुरु अर्जुन देव ने कहा है:-

दस अवतार राजे होइ वरते महादेव अउधूता
तिन भी अंतु न पाइओ तेरा लाइ थके बिभूता। - आदि ग्रंथ, पृ० ७४७

परन्तु नरोत्तम का कहना है कि सब लोगों के उद्धार हेत ही परमेश्वर ने गुरु के रुप[१] में अवतार लिया। जिस प्रकार राम कृष्ण शिवादि ने मूर्ति अवतार लिया। नरोत्तम ने भागवत पुराण और उपनिषदों के समान ही गुरु को इस परंपरित रुप में ग्रहण किया।[२] गुरु नानक को 'विभूति अवतार,' गुरु अंगद, अमरदास, रामदास को 'आवेश अवतार' और अन्य गुरुओं को अंशावतार माना है। गुरु गोबिन्द सिंह भी विभूति अवतार थे।[३] अवतारों के नरोत्तम ने चार भेद किए हैं। विभूति, अंश, कला, और आवेशादि। नरोत्तम के अनुसार जिस प्रकार त्रेता युग में श्री राम ने अवतार धारण किया और द्वापर युग में कृष्ण ने उसी प्रकार[४] कलियुग में गुरु नानक गुरु अंगद देव, गुरु अमर दास आदि ने अवतार लिया।

---

१ तैसे सरब जनों के उधार हेत प्रमेश्वर का गुरु रुप अवतार है याही ते ग्रंथ साहिब में गुरु के दरशन का जनमा भाव महातम कहिआ है। गुरु नानक जिन दोखिआ सुनिआ फिर गरभासन परिआ।'
गुरुमत निर्णय सागर, पृ० ५५

२- गुरु ब्रह्मा गुर विश्नु गुररदेवी महेश्वर
गुरु देव परब्रह्म तस्मै श्री गुरु वेनम। - वही, पृ० ५६

३- प्रकरण में गुरु नानक विभूती अवतार है। अंगद अमरदास रामदास आवेस अवतार है। अन्य गुरु अंसा अवतार है। गुरु गोबिन्द सिंघ जी विभूती अवतार है। याही तन ते प्रथम और दसम अवतारों की पूर्ण पूरणा अवतारा कथन संभव है।-- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० ५६

४- 'याते नानक विष्णु है यामे संक न रंच
वासतव ते हरि रुप ही जो दोसत प्रपंच।
कलयुग नानक रुप में तैसे अंगद रुप
अमरदास हुइ जनन को मोह मिटायो कूप। - वही, पृ० ६८

नरोत्तम ने स्वयं यह माना है कि गुरु नानक ने अपने को विष्णु नहीं कहा।[१] गुरु नानक से लेकर गुरु गोबिन्द सिंह पर्यन्त जितने भी गुरु हुए हैं वे अपने आप ही गुरु है और उन्होंने[२] किसी दूसरे को गुरु नहीं कहा। नरोत्तम ने गुरु को स्वयं प्रकाशित माना है।

गुरु नानक ने अपने गुरु के बारे में इस प्रकार लिखा है:-

नानक सतिगुरु असा जाणीऐ
जो सभ सै लए मिलाए जीउ।।सिरीराग अष्टपदी म।

अथवा- सतिपुरषु जिन जानिआ सतगुरु तिस का नाउ
तिस कै संग सिषु उधरै नानक हरिगुन गाउ। सुखमनी मं० ५।

अथवा- अपरंपर पारब्रह्म परमेसुर
नानक गुरु मिलिआ सोई जीआ- सोरठ महला १

इत्यादि अनेक पंक्तियों से पता चलता है कि गुरु नानक का कोई मनुष्य गुरु नहीं था और विष्णु उनके इष्ट नहीं हुए।

'आदि अंत एकै अवतारा। सोई गुरु समझि अहू हमारा।'

अन्त में बाणी और गुरु का अभेद बताया गया।

बाणी गुरु गुरु है बाणी विचि बाणी अम्रित सारे
गुरु बाणी कहै सेवकु जनु मानै परतखि गुरु निसतारे- अष्टपदी, महला ४

१- सूरय उदयो भास है यह लोकन मत लेह
हम है विष्णु आप गुरु कही न माषी एह। २१। वही, पृ० ६६

२- सतो स्वयं गुर सबद को ये बी अरथ न माष
स्वै को स्वै ही गुरु है नाहि और को राष। ७८।
वही, पृ० ५३

नरोत्तम यह बात मानता है कि जिस व्यक्ति को जो रुप प्रिय होता है, उसी रुप को वह व्यक्ति अपनाता है। जिस प्रकार राम के उपासक राम की ही स्तुति करते हैं, कृष्ण के उपासक कृष्ण की, ठीक उसी प्रकार गुरुमत को मानने वाले उस 'अकाल पुरुष' की स्तुति करते हैं। गुरुमत में 'अकाल' शब्द का प्रयोग नरोत्तम अनुसार विष्णु के लिए किया गया है, जबकि नरोत्तम ने इस बात को सामने नहीं रखा जहाँ गुरु गोबिन्द सिंह ने 'आदि अंत एको अवतारा सोई गुरु समझी अहु हमारा' कहा है।

गुरु नानक की 'अकाल पुरुष' की कल्पना भारतीय साधना के क्षेत्र में अद्वितीय कल्पना है। उनका जो 'अकाल पुरुष' है वह काल से परे है। काल ने तो सभी अवतारों मनुष्यों का अन्तकर दिया परन्तु उस अकाल का कभी अन्त नहीं हुआ। अत: जितने भी गुरु ग्रंथ साहिब में विभिन्न नाम उपासना के लिएआए हैं वे सब विष्णु के लिए न हो कर उस अकाल पुरुष की स्तुति के लिए आए हैं। अत: विष्णु की स्तुति के लिए 'अकाल' शब्द का प्रयोग नहीं किया।

गुरुनानक की दृष्टि स्थूल तथ्यों की अपेक्षा सूक्ष्म तत्वों का अनुसन्धान करती है। निर्गुणवादी होने के कारण उनकी दृष्टि में बौद्धिकता की मात्रा अधिक है। यही कारण है कि वे सगुणवादी तथ्योंको कितनीही बार अनावश्यक और व्यर्थ बता देते हैं। अत्यधिक बौद्धिक होने के कारण उनका इष्ट स्थूल मूर्तिमान नहीं हो सका। सामान्यता इष्ट रुप में ग्रहण किये जाने वाले देव व्यक्तित्व इनके इष्ट नहीं बन सके। अन्तत: नरोत्तम पर परम्परा प्राप्त चली आ रही अवतरित धारणा का प्रभाव था जिसे नरोत्तम ने गुरु नानक पर थोपना चाहा है।

छोड़ पत्र[1]

वाहिगुरु शब्दार्थ

१६ पृष्ठों की यह छोटी सी रचना गुरुमत निर्णय में संकलित है। पृष्ठ ५५६ से लेकर ५७७ तक है। इस रचना में तारा सिंह नरोत्तम ने 'वाहिगुरु' शब्द की व्याख्या की है।

इस कृति का आरम्भ भी तारा सिंह नरोत्तम ने अन्य कृतियों के समान मंगलाचरण अर्थात् गुरुओं की स्तुति से किया है:-

'कलिकुल कलुषन करन हित जिह गुरु दस अवतार
कीने तिह पग बंद कै मंत्र अरथ कुल सार।'[1]

नरोत्तम के अनुसार गुरु ग्रंथ साहिब में वाहिगुरु का मन्त्र अलग से नहीं लिखा हुआ परन्तु इसका माहात्म्य लिखा हुआ है। नरोत्तम ने पारब्रह्म परमेश्वर का कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों तरह का नाम बताया है। वस्तु के स्वरुप को लेकर जो नाम कहा जाए वह[2] अकृत्रिम और यदि उसके गुण कर्म को लेकर कहा जाए तो वह कृत्रिम नाम होगा।

१- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० ५५६

२- अर पारब्रह्म परमेस्वर का यह क्रितम अक्रितम दोनों तरां का नाम बताया है जो जिसका नाम है उस वसतु के स्वरुप को लेकर बहु नाम कहिआ जावे तब अक्रितम नाम होते हैं। उसके गुण करम को लेकर कहिआ जावे तब क्रितम नाम होवे हैं। अक्रितम नाम स्वरुप नाम कहीये क्रितम नाम तटस्थ नाम कहीये है।

- गुरुमत निर्णय सागर, पृ० ५५६

नरोत्तम ने वाहिगुरु का शब्दार्थ १७ प्रकार से किया है। गुरुवाणी में सतिनाम के पश्चात् ही वाहिगुरु का नाम आता है। नरोत्तम ने वाहिगुरु शब्द की व्याख्या दो रूपों को सामने रखकर की है। एक सगुण दूसरा निर्गुण। सगुण में सूर्य, महादेव, रुद्र, विष्णु, शिव आदि को वाहिगुरु बताया गया है।

नरोत्तम के अनुसार 'गुरुदास ने लिखा है वासुदेव। हरि। गोबिंद। राम। इन चारों नामों के आदि के अक्षर लेकर व, ह, ग, र, से गुरु जी ने वाहगुरु नाम कहा है। इस लिए इस नाम की चारों युगों में महिमा है।' नरोत्तम का कहना है कि कुछ लोग इसकी उत्पत्ति के बारे में शंका रखते हैं। इन चारों अक्षरों से वाहिगुरु नाम नहीं बनता। 'वाहगोरा' बने हैं। अथवा भाषा रीति से गोबिन्द नाम से 'गु' लेकर 'वाहगुरा' बने हैं। तथा दूसरे स्थान पर वाहगुरु शब्द न होकर वाहिगुरु है और हरि' नाम से 'ह' लेने पर यह नाम नहीं बनता।

नरोत्तम ने इस प्रकार इस शंका का समाधान किया है। जिस प्रकार षड्दस शब्द षोडस (१६) का वाचक है उसी प्रकार भाई गुरुदास ने वाहिगुरु का शब्दार्थ किया है।

इसी प्रकार वाहिगुरु शब्द का शब्दार्थ वामन। हरि। गुरु, रुद्र। इन चारों नामों से सिद्ध होता है। नरोत्तम के अनुसार गुरुओं द्वारा उच्चरित 'वाहिगुरु' एक शब्द वही अर्थ रखता है जो इन चारों शब्दों के अर्थ में है।[१] इन चारों नामों को मिलाकर इसका यह अर्थ निकलता है जो सर्वव्यापी है, ज्योति स्वरुप है, सर्व पापों और अज्ञान को हरने वाला है। गुरु के उपदेश से योगिजन जिसमें चित्त जोड़ कर रमण करें ऐसा सत चित् आनन्द स्वरुप सर्व की रक्षा करने वाला पारब्रह्म वाहिगुरु 'शब्द का अर्थ है।' अत: जो इन सब के जपने से महात्म्य है वह इस एक शब्द के जपने में है। वाहिगुरु शब्द के कुछ अर्थ इस प्रकार

१- अरथ तिस एक में गुरु जी ने वहु रषिआ है जो उन चारों नामों का अरथ है। चारों में वासदेव नाम का अरथ सरब में निवास करने वाला होकर जो जोती स्वरुप होवे सो है। वासुका सभ में निवास करने वाला व्यापक परमेश्वर अरथ है। देव का जोती स्वरुप जिस के चानणे से सभ में चानणा होवे ऐसा उजाला अरथ है।-- गुरुमत निर्णया सागर, पृ० ५६३

जिस पर सवार हो उस सवारी का नाम 'वाह' अत: 'वाह' नाम चढ़ने की चीज़ का नाम है, और 'गो' नाम बैल का है, और 'वाह्गु' महादेव का नाम है। महादेव को सर्व का ज्ञान होता है जिससे 'वाह्गुरु' नाम कहा जाता है।

इसी प्रकार आश्चर्य रुप कार्यों के करने की अद्भुत शक्ति वाला जो होगा वह वाहिगुरु कहलाएगा। गुरु की स्तुति पर वाहिगुरु शब्द का अर्थ किया गया है। निष्काम कर्म करने वाले अधिकारी पुरुषों में ज्ञान रुप चमत्कार पैदा करने वाली शक्ति होती है। सम्पूर्ण ज्ञान इंद्रियों के विषय भाव को जो त्याग दे वह वाहिगुरु।[1]

नरोत्तम ने व्याकरणिक ढंग से भी वाहिगुरु का शब्दार्थ किया है। व्याकरण से √वह धातु का अर्थ प्राप्त होता है। जो कर्मों के वश होकर स्वर्ग नरकादि को प्राप्त हो उन जीवों का नाम 'वाह' है। 'गुरु' नाम वेदादि रुप हित का उपदेश करने वाले ईश्वर का है। 'तत्वमसि' वाक्य के समान जो गुरु हो वह वाहिगुरु अभेद प्रतिपादक वाहिगुरु का शब्दार्थ है।[2]

१- अथवा वा सबद का अरथ कोस से उपमा औ विकल्प है। ह सबद का अरथ अदभुतता ह्यांते गुरु में कही जो पूरब अद्भुत कारथ को पैदा करने की अदभुत सक्ती सो विकलप कर के गुरु में होवे है काहे ते निसकाम करम करने वाले अधिकारी पुरषों में ग्यान रुप चमतकार को पैदा करने वाली सक्ती देषी है। मंद मतिवाले विषयी पुरुषों में नहीं देषी यांते विकलप कर तैसी सक्ती वाला जो होवे गुरु सो कहावे। वाह्गुरु- वही, पृ० ५६६

२- अथवा व्याकरण से वह सबद का अरथ प्रापत होना है यांतो जो करमों के वस होकर स्वरग नरकादिक लोकों को प्रापत होवे तिन जीवों का नाम वाह है। गुरु नाम वेदादि रुप हित का उपदेस करने वाले ईस्वर का है। वाह्गुरु सबद में तत्वमसि आदिक वाक्न के समान वाह ही जो होवे गुरु। सो कहीये वाह्गुरु- - - ईहां भी लषणा करके जो अषंड अद्विती सरुप परमातम है सो वाह्गुरु सबद का अरथ है - - - अभेद प्रतिपादक अरथ है। वही, पृ० ५६७

गुरु जी ने अनेक नामों के तुल्य 'वाहिगुरु' शब्द बनाया। जो परमेश्वर संसार की रक्षा हेत सतोगुण से संयुक्त हुआ विष्णु रूप है। अत: जो परमेश्वर संसार कीरचना हेत रजोगुण संयुक्त हुआ, ब्रह्म रूप है। जो परमेश्वर जगत् के प्रलय करने हेतु तमोगुण से युक्त हुआ, रुद्र रूप है। अत: जगत में जन्म मरण प्रलय तीनों का कर्ता वाहिगुरु है।[1]

वाह शब्द का अर्थ शिव विष्णु दोनों हैं। शिवविष्णु स्वरूप जो गुरु होगा सो वाहिगुरु कहलाएगा। अर्थात् परमेश्वर को मानने वाले सभी लोगों के मत में प्रभु एक है। केवल नामों का ही भेद है। जो व्यक्ति जिस की स्तुति करते हैं, उसे ही अपना प्रभु मान लेते हैं।

नरोत्तम ने निर्गुण ब्रह्म के पक्ष से भी वाहिगुरु का शब्दार्थ किया है।[2]

१- अथवा मंत्र सासत्र के कोसों के अनुसार व ब्रह्मा वाचक है। वंवे का कना अकार विसनु का वाचक है। ह पद सिव का वाचक है। याते जो प्रमेस्वर संसार की रचना हेत रजोगुण संयुक्त हुआ ब्रह्मा रूप है। पुना जो प्रमेस्वर तिस की रष्या हेत सतोगुण संयुक्त हुआ विसनु रूप है। पुना जो प्रेमस्वर जगत के प्रलय करन हेत तमोगुण युक्त हुआ रुद्र रूप है। वही जगत के जनमादि करने वाला वाह है। जिस वाह का अनेक स्थानों में ग्रंथ साहिब जी में बहुत-बहुत बरणन है, वाह ही जो होवे गुरु सो कहावे वाहगुरु।
वही, पृ० ५६८

२- अथवा मंत्र सासत्र की रीति से 'व' नाम अम्रित का है। अम्रित ईहाँ मुकती लेनी। तिस मुकती को जो 'आह' नाम अपने स्वरूप के साष्यातकार से अधिकारी को प्रापत करे। तिस अखंड सचिदानंद ब्रह्म का नाम वाह है। वही जो होवे उपदेस करता की मूरति में थिति हुया गुरु सो कहावे वाहगुरु। यह निरगुण ब्रह्म पुष्य से पद की व्याख्या है। -- वही, पृ० ५७५-५७६
'व' अमृत। मंत्रशास्त्र की दृष्टि से 'आह' से प्राप्त करने वाला गलत है।

निष्कर्ष

१- सगुण भाव से किए गए अर्थ गुरु नानक की दृष्टि के अनुकूल नहीं है।

२- निर्गुण भाव से किया गया अर्थ मंत्रशास्त्र की भावना से प्रभावित है। मंत्रशास्त्र मूलत: गुरु नानक की दृष्टि का विरोध करता है।

३- वस्तुत: बात 'वाह' से स्पष्ट होती है। मिहरिवानु ने गुरु नानक को परब्रह्म के दरबार में पेश करते हुए नानक के मुंह से 'वाह' शब्द का प्रयोग ईश्वर के लिए करवाया है।

वाहगुरु शब्द से अकाल पुरुष की महिमा तथा उनके अमरत्व का बोध होता है।

क्रीड़ पत्र - दो

कालादि शब्दार्थ

पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने 'काल' का विवेचन किया है। १४ पृष्ठों की इस संक्षिप्त रचना में गुरु गोबिन्द सिंह के 'दशमग्रंथ' में आए काल के स्वरुप का उल्लेख किया गया है। यह रचना गुरुमत निर्णय सागर ने पृष्ठ ५७८ से लेकर ५९१ तक संकलित है।

पौराणिक साहित्य में जो स्थान 'विष्णु' को प्राप्त है, गुरु गोबिन्द सिंह ने वही स्थान 'काल' को अपनी रचनाओं में दिया है। गुरु गोबिन्द सिंह के साहित्य में काल नाम ईश्वर का प्रतिनिधि है।

नरोत्तम ने श्रद्धावनत होकर गुरु गोबिन्द सिंह जी के दशम ग्रंथ में आए काल, अकाल, महाकाल, महालोह, सर्व लोह, तथा सर्वकाल के स्वरुप का उल्लेख अक्षरार्थ के साथ और सप्रमाण किया है। यह सभी महाकाल देवता के बाचक 'मात्र' हैं।

नरोत्तम ने सर्वप्रथम मकाल का शब्दार्थ करते हुए बहुत से शब्दों का उल्लेख किया है। महाकाल, शिव, यम, दण्डधर, कृष्ण वर्णी मृत्यु, शनि, कोकिल, रज, सत, तम इनगुणों को सक्रिय बनाने वाला, ~~कल~~ कालदण्ड, निमेषादिको का अभिमानी देवता, क्षण दंड मुहूरत, पहर, दिन, रात, पक्ष, मासादि।[१] यह सभी शब्द काल के लिए प्रयुक्त किए हैं और इन सब शब्दों में से महाकाल को ग्रहण किया है। व्याकरण में अनेक

१- प्रथम काल सबद के अरथ बहुत हैं। जिनमें कईक लिखे हैं। महाकाल सिव, यम। (२)- दण्डधर (३)- क्रिशनवरण, (४)- म्रित्यु, (५)- सनिश्चर, (६)- कोकिल, (७)- रज सत तम इन गुणों में क्रिया कराने वाला, (८)- कालदण्ड नामायोग (९)- निमेषादि को का अभिमानी देवता। (१०)- छिणदण्ड मुहूरत पहर दिन रात्र पष मास और बतसरादि (११)- इत्यादिक और भीकाल सबद के बहुत अरथ है तिन सम में से ईहां तीन देवतियों के क्रिय्या करणे वाले चौथे स्वरुप महाकाल का ही ग्रहण है। वही, पृ० ५७८-५७९

धातुओं से काल का शब्दार्थ मिलता है। 'कल' धातु का अर्थ प्रेरणा है। सर्व के प्रेरक का नाम काल है। दूसरा 'कल' शब्द का अर्थ 'प्राप्ति' है। सर्व का अपना आप होकर जो सर्व में प्राप्त है, उसका नाम काल है। नरोत्तम ने काल का अर्थ धातु 'क्षेप' में किया है। 'क्षेप' का अर्थ फेंकने का है जो सम्पूर्ण शत्रु वर्ग को युद्ध में फेंके, उसका नाम काल है। 'काल' धातु का अर्थ उपदेश है। कल धातु 'शब्द' और सचा दो अर्थों में भी है। अर्थात् अपनी रक्षा हेतु, निखिल जन शब्दों का उच्चारण करते हैं।[१]

१- इस काल सबद की सिधी व्याकरण में अनेक धातुयों से करी है। धातु को फारसी वाले मसदर कहिते हैं। - - - कल धातु का प्रेरन अरथ है। उससे बनाईए। तब सरब के प्रेरक का नाम काल है। जैसे गीता में लिखा है। ईस्वर सरबभूतों के हिरदे में बसे हैं। सरब भूतों को वही प्रेरे हैं। अथवा कल सबद का अरथ प्रापति है। और संख्या है। याते सरब का अपना आप होकर जो सरब में प्राप्त है। तिसका नाम काल है। अथवा ब्रह्मादिक देवन को स्रिस्टि पालनादि व्यवहारों हेत गिणै। तिसका नाम ~~कलन~~ काल है। अथवा कल धातु षेप अरथ में है। षेप नाम फेंकने का है याते जो संपूरण सत्रु वरग को युध विषे फेंके। तिसका नाम काल है। अथवा ~~कल~~ काल धातु का अरथ उपदेस है। याते जो वैराग्य से बिना किसे को सुष नहीं होवेगा। ऐसे नगन होकर उपदेस करे तिसका नाम काल है। अथवा कल धातु सबद औ संतापन दो अरथों विषे है। याते अपनी रष्या हेत निषलजन सबद करे। जिसे विषे वा परमपद के लाभहेत ~~क~~ इंद्रियों का निग्रह करना रूप संतापन नाम तप करे जिस विषे तिसका नाम काल है। अथवा का नाम सुष का है अल नाम भूषित करने का है। याते जो अपने भक्तों को सुष साथ भूषित करे तिसका नाम काल है। अथवा कै नाम प्रजापति का है अ नाम विष्णु का है लै नाम जिसमें सम लै होवे महादेव का है-- वही पृ० ५८०-५८१

महाकाल

नरोत्तम के अनुसार गुरु गोबिन्द सिंह जी के इष्ट देव महाकाल हुए। सभी लोग सर्वरुपों में इसकी उपासना करते हैं। महाकाल ही सर्व का ईश्वर है, अन्तर्यामी है, मंगल-अमंगल रुप भूमि है।

नरोत्तम ने महाकाल की काव्य की दृष्टि से भी व्याख्या की है। काव्य में महाकाल की उपासना वीभत्स रस के रुप में होती है।[1] पौराणिक सन्दर्भ के द्वारा भी नरोत्तम ने महाकाल के स्वरुप का विवरण दिया है। इतिहास पुराण में भी इसके स्वरुप का वर्णन हुआ है।

अकाल

काल नाम मृत्यु जिसकी हो उसका नाम अकाल है। काल मृत्यु का भी नाश करे इस लिए उसकी मृत्यु नहीं होती वह काल का काल अकाल है।

सर्वकाल

सभी काल से लेकर अकाशादि वस्तु जिससे उत्पन्न हो उसका नाम सर्वकाल है।[2]

१- महाकाल ही सरब का ईश्वर है सरब का अंतर्यामी है। सरब के जनम थिति लय का करता है। संपूरण मंगल और अमंगल रुप मूरतीआं है। सरब लोक सरब रुपों से उसी की उपासना करे है उसी को काव्य सासत्र वाले बीभतस रस का देवता निरणै करे है। इतिहास पुराणों में सपस्ट ही इसके असे स्वरुप का बरणन लिखिआ है। सोई दिखावे है। महाभारत इतिहास मे भीखम पितामा ने अपने 'भीखम सतवराज' में इस देवता का सिरो के कपालों की माला वाला औ हसती चरम के बसत्र वाला क्रिस सरीर असा स्वरुप लिखा है। वसिष्ट पुराण के उपराम प्रकरण के नोमे सरग के बाईसमें सलोक में यह लिखा है। इस ब्रह्मांड मे जिस बिसनु ने ब्रह्मादिक देवता रचे हैं बहु बिसनु खेलने की गेंद है। जिनकी असे जो महादेव तिनके ग्रसने वाले महाकाल के आगे हे मेरी आसा तू क्या नाच रही है और पुराण में लिखा है। जिसकी आग्या से जगत के रचने वाला ब्रह्मा है पालना करने वाला बिस्नु है। पुना जिसकी आग्या से जगत् का संघार करने वाला काला रुद्र महादेव है। - - -

सर्व को जो प्रेरित करे उस का नाम सर्व काल है।

सर्व लोह

सर्व पद के आगे ला पद है जिसका अर्थ ग्रहण करना है। ला के आगे ऊह पद है जिसका अर्थ है विचार करना अर्थात् सर्व को परमात्मा रूप मानकर ग्रहण करने का नाम सर्व लोह है।[१] नरोत्तम का कहना है कि लोह शब्द तेज रूप धातु का वाचक भी है। तेजस पदार्थ सूर्यादि है सूर्यादि जिस तेज से तेज वाले होते हैं उसका नाम सर्वलोह है। निश्चय ही यह कु व्युत्पत्ति संतोष जनक नहीं है।

(पिछले पृष्ठ से)

बेदांत शास्त्र के मूल सूत्रों में। जिनका नाम ब्रह्मसूत्र है। तिन में व्यास जी ने जो अता लिखा है सो यही देवता है काहे ते ब्राह्मण षत्री आदिक चराचर इसका भात है मृत्यु इसकी कड़ी है। यही बारता व्यास सूत्र के मूलवेद में सपष्ट है। - - - जो ग्यान स्वरूप है काल का काल है निषल गुणों वाला है सरब का बेता है-- कालादि शब्दार्थ पृ० ३-४

२- याते समीकाल से लेकर आकासादिक वसतु जिससे उतपत होवे तिस का नाम सरब काल है। वेद भी बैसे कहे हैं। आतमा से आकास भया। आकास ते वायु वायु ते अग्नी अग्नि तेजल जल से पृथवी इत्यादि। भदवा सरब ही जो होवे काल सो कहावे सरब काल। -- वही, पृ० ६

१- सरब पद के आगे ला पद है। तिसका अरथ ग्रहण करना है। ला के आगे ऊह पद है तिसका अरथ विचार करना है। ला के कंने साथ अड़ा मेल के लोह बने हैं। अरथ तिसका यह है। सरब को परमातम रूप कर ग्रहण करने की अहां नाम विचार प्रापत होवे। जिसकी क्रिपा से तिसका नाम सरब लोह है।

वही, पृ० ७

महालोह

सर्वलोह के समान ही महालोह का शब्दार्थ किया है। आ सर्व और से लोह नाम तेज रुप जो सूर्योदय है उनका नाम आलोह है। महा का अर्थ बड़ा है।[1] लोह यहां खड्ग् रुप में ले सकते हैं उस खड्ग रुप लोहे वाले का नाम महालोह है।

नरोत्तम ने इन सब का विवरण महां काल देवता के सन्दर्भ में किया है। महाकाल देवता ब्रह्मा, विष्णु और[2] शिव से भिन्न चौथा स्वरुप है। नरोत्तम के अनुसार यह तीनों महाकाल की आज्ञा में हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि नरोत्तम के काल शब्द का विस्तृत शब्दार्थ किया है। काल को ही सभी कुछ माना है। ब्रह्म, विष्णु, और शिव तीनों को ही काल के अन्तर्गत माना है। काल, अकाल, महालोह, सर्वलोह, और सर्वकाल का वर्णन नरोत्तम ने महाकाल के अन्तर्गत किया है। नरोत्तम ने गुरु विचारधारा से प्रेरित होकर कालादि का शब्दार्थ किया है क्योंकि नरोत्तम पर गुरुमत सिद्धांतों का काफी प्रभाव पड़ा हुआ था।

गुरु

नरोत्तम के अनुसार व्याकरण में गुरु शब्द की सिद्धि 'गृ' धातु से है।

१- आ सरब उर ते लोह नाम तेज रुप जो सूरयादिक तिन का नाम आलोह है। महा का अरथ बड़े है। याते महां कहीये बड़े आलोह सूरयादिक उपजे है जिससे। तिस सरब जोतियों के जनक जोती का नाम महालोह है।
वही, पृ० ५६०-५६१

२- ~~इस महाकाल देवता~~
यह महाकाल देवता ब्रह्मा विष्णु सिव से भिंन चौथा स्वरुप है। बहु तीनों इस की आग्या में है। यह तीनों को सिष्या देने वाला औ रचने वाला है। यही अरथ महाकाल के असतोत्र में दसम गुरु जीने स्पष्ट लिषिआ है।
वही, पृ० ६

गृ' धातु चार है। चारों में एक धातु शब्द अर्थ में है। जिससे गुरु शब्द सिद्ध होता है। दूसरा धर्मादि में-- धर्मादि का शिष्यों को उपदेश करे उसका नाम गुरु है। तीसरा धातु संचय अर्थ में-- अर्थात् शिष्य हृदय रुप में उपदेश रुप जल का संचय करे। चौथा विज्ञान अर्थ है में -- शिष्य निज स्वरुप अज्ञान निद्रा से जाग उठे।

इसके अतिरिक्त नरोत्तम ने अक्षर अनुसार भी अर्थ किया है। 'गु' नाम अंधेरे का है। 'रु' नाम प्रकाश का है। अज्ञान अंधेरे के ज्ञान रुप प्रकाश से दूर करने वाला महात्मा गुरु है।[१] इन सब के उपरान्त नरोत्तम ने गुरु शब्द के अनेक अर्थ भी बताए हैं:-

उपदेश कर्ता, षट्अंगों सहित वेद पढाने वाला, माता-पिता आचार्यादि, शास्त्र का उपदेशक, सम्प्रदाय चलाने वाला, गर्भाधानादि कर्मों को कराने वाला ब्राह्मण, शमदम वान कुलीन, श्रेष्ठा चार वाला, श्रेष्ठ प्रतिष्ठा वाला, पवित्र, चतुर, श्रेष्ठ बुद्धि वाला, ध्यानकारी, मंत्र-तंत्र में चतुर, ब्रहस्पति, द्रोणाचार्य, दो मात्रा वाला अक्षर, (S) दीर्घ अक्षर गंभीर अर्थवाला, बलवाला, पूज्य महान आदि शब्दार्थ गुरु के नरोत्तम ने बताए हैं।

इस रचना के मूल में कोश व्याकरण के आधार पर शब्द-अर्थ की व्यवस्था है। यद्यपि इस व्यवस्था में शास्त्रीय प्रमाण-वचन कम नहीं है। पर इस व्यवस्था का आधार संतोषजनक नहीं है।

१- गु नाम अंधेरे का है। रु नाम प्रकास का है। अग्यान अंधेरे को ग्यान रुप प्रकास से दूर करने वाले महातमा का नाम गुरु है। अन्य ग्रंथ में यह कहिआ है। गु नाम अंधेरे का है रु नाम तेज का है गुरु के उपदेस से उपजे। ग्यान मै बैठ के अग्यान अंधेरे के दूर करने वाले परमातमा का नाम गुरु है। - - - गु नाम भ्रम का बिनास करने वाले ब्रह्म का है। यह गुरु सबद और सम में योग सकती से वरते हैं। गुरु नानक जी में इस को रूढी है। इसी लिए उनका नाम गुरु नानक प्रसिध है।

वही, पृ० ५६०-५६१

क्रोड पत्र- तीन

परीक्षा प्रकरण

नरोत्तम की यह कृति गुरुमत निर्णय सागर में पृष्ठ ५६२ से लेकर ६३६ तक संकलित है। इस रचना में नरोत्तम ने गुरुवाणी सम्बन्धी रचनाओं की प्रामाणिकता तथा अप्रामाणिकता पर विचार किया है:-

> 'गुरु जी के मत में जो प्रमाण बाणी है औ अप्रमाण बाणी है तिसकी परीष्या का प्रकरण लिषते हैं। संपूरण पंथों में सभी विद्यावान लोक धरम के औ ब्रह्म के निरणै हेत सदा प्रमाणक अप्रमाणक ग्रंथों की परीष्या करते हैं जो निज निजमत में प्रमाणक ग्रंथ सिध होते हैं उनसे अपने अपने बरन आस्रम के धरम निरणै करते हैं। - - - गुरुमत में भी प्रमाण रुप अर अप्रमाण रुप बाणीका निरणै करणा आवष्यक हुआ किउंकि यह भी भारी पंथ है। इस में भी प्रमाण रुप बाणी से ही धरम का करना अर प्रमेस्वर का ग्यान होना चाहीये।'[1]

नरोत्तम ने गुरु बाणी की परीक्षा के लिए एक रीति[2] का उल्लेख किया है।

१- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० ५६८-५६६

२- परीषा करने की उतम यह रीति है जिसके आदि विषै या अंत विषै एक गुरु के दसतषत होवे। वा मोहर होवे। या उनके समे से उसका सभी जिलद में रहना प्रसिध होवे। जो उनके समे में बांधी गई है। जैसे हुकमनामे। ऐसे आदि ग्रंथ जी है। अथवा जो पूरी परीषकों की द्रिस्टि में उनकी रचना साथ मिले अर उसमें किसी तरा का आगे पीछे अपने लिषने में बिरोध ना होवे। जैसा सरबलोह में आगे कहेंगे। अर और निरणै करी हुई बाणी से विरुध भी ना हो। जैसे चरित्रों के आदि के सवैये में कहे स्वरुप से सारे सरबलोह में कह्या स्वरुप विरध दिषावेंगे। जिसमें ये बातें आवे सो बाणी गुरु की जानणी। जो इन बातों से रहित गुरु को प्रसिद्ध हो बहु मायावी पुरुषों की बनाई जानणी जैसे आगे सरब लोहादिक कहे जावेंगे। इस प्रकार

नरोत्तम के अनुसार जिस रचना के आरम्भ में तथा अन्त में गुरु के हस्ताक्षर हों अथवा मोहर होगी अथवा उनके समय से बंधी हुई जिल्द होगी ताकि जिससे किसी भीतरह उसमें आगे या पीछे प्रक्षिप्त अंश न डाल सके जिसमें इन सभी बातों का विवरण हो उसे गुरु जी की वाणी समझनी चाहिए। तथा जिन रचनाओं में यह विवरण उपलब्ध न हो वह मायावी व्यक्तियों की बनी हुई समझ लेनी चाहिए।

गुरु नानक के नाम पर आज अनेक रचनाएं मिलती हैं। इन रचनाओं में से कई रचनाएं नरोत्तम के समय में भी प्रचलित थीं। नरोत्तम ने इन रचनाओं के कर्तृत्व पर विस्तार से विचार किया है। इस प्रकार की कुछ रचनाएं ये हैं:-

१- ग्रंथ साहिब की प्रामाणिकता के लिए तारा सिंह नरोत्तम ने तीन बीड़ों (प्रतियों) का विवरण किया है। भाई गुरुदास, भाईबन्नों की और दमदमे वाली बीड़। तारा सिंह नरोत्तम का कहना है कि गुरु अर्जुन देव के समय में ही गुरुवाणी भाई गुरुदास और बन्नों के स हाथ से लिखी होने के कारण जिल्द में आ चुकी थी। तथा नवम गुरु के शब्द मिलाकर दसम गुरु जी के समय में दमदमे वाली बीड़ में आ चुकी बाणीको प्रामाणिक माना है।[1]

२- **जन्मसाखी:-** जन्मसाखी पंजाबी गद्य का प्रारंभिक रुप प्रस्तुत करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से गुरु नानक जीवन घटनाओं का संकलन, गुरुमत सिद्धान्त गुरु नानक वाणी का परमारथ, गोष्ठी, जीवनी आदि के बारे में साहित्य प्रस्तुत करती हैं। अत: गुरु नानक जीवनी जनम साखी के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार की 'जन्म साखियां' बहुत प्रचलित हैं।[2]

(पिछले पृष्ठ से)

प्रतिपादन करी यह परीष्या की रीति अब दिखावते हैं। वही, पृ० ६००

१- आदि ग्रंथ साहिब जी का निरनै करतार पुर वाले से और जो गुरु जीने दमदमे बीड़ लिखाई उससे करना चाहिए।

गुरुमत निर्णय सागर, पृ० ६३४

२- पुरातन जन्म साखी- भाषा विभाग- पंजाब पटियाला, - १६७०, पृ० ४

१- पुरातन जन्म साखी।

२- भाई ल बाले वाली जन्म साखी।

३- भाई विधिचन्द वाली जन्मसाखी।

४- सोढी मिहिरवानु वालीजन्मसाखी।

५- भाई मनी सिंह वाली जन्म साखी।

यहां नरोत्तम ने भाई बाले की जन्मसाखी, भाई मनी सिंह की तथा गुरुबख्श सिंह की जन्मसाखी का उल्लेख किया है। तारा सिंह नरोत्तम का कहना[1] है कि भाई बाले वाली जन्मसाखी में निरंजनी सम्प्रदाय द्वारा चार बातें गलत हैं। एक सतनामादि गुरु मंत्र को छोड़कर सतकारतार लिखना, दूसरा ख्वाजा गुरु लिखना, तीसरा कबीर को निरंकार पर चोरी करता लिखना, तथा गुरु नानक का रंघड़ी के साथ विवाह लिखना गलत है। यह बात सही है कि भाई बाले वाली ~~जन्मसाख~~ जन्मसाखी गुरु अर्जुन देव के समय तक अपना एक विशिष्ट रुप धारण कर चुकी थी तथा विधिचन्द ने उसी में क्षेपक डालने का प्रयत्न किया।[2] बाकी सामग्री की प्रामाणिकता को अर्थात् जन्मसाखी

१- साषी भाई बाले की मै ये चार बातां निरंजनीयों की लिषीआं विरुध है। जिन में पहली सतनामादि गुरुमंत्र छोड़ गुरु जी की सतकरतार अवाज लिषनी जिससे कई ग्यानी इसको गुरु अरजन जी का बनाइआ मंगलाचरन कहने लगे। दूजी ख्वाजा गुरु लिषना- जिससे रबाबी मुसलमानों पै अली का ख्वाजा स्वाज को चेला गुरु नानक ऐसे सुणावने लगे। तीजी कबीर का निरंकार पर चोरी करना लिषना। जिस बजुरगी को सुन के कबीर का चेला गुरु नानक ऐसा लिष के बनारस वासी सिव प्रसाद का अपने इतिहास का तिमर नासक नाम रषना। - - - चोथा गुरु नानक जी का रंगड़ी साथ विवाह लिषना जिसको सुन के सिष सुधा दूर करे। इनसे बिना और अंस में गुरुदास की बाणी बार मनी सिंघ की साषी साथ मिलने से प्रमाण है।

गुरु निर्णय सागर- पृ० ६०१-६०२

२- पुरातन जन्म साखी- भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, १९७०, भूमिका

के बाकी अंशों को भाई गुरुदास और मनी सिंह की साखी से जाना जा सकता है तथा वे प्रामाणिक है।

तारा सिंह नरोत्तम ने गुरुबख्श सिंह की जन्म साखी को प्रामाणिक माना है। इनका कहना है कि उन पर अधिक आलोचना नहीं हुई। इस लिए वे प्रामाणिक रचना है।

१- गोसट मक्के तथा प्राण संगली:- हठ योग के अनुसार प्राणायाम को बताने वाली 'प्राण संगली' है। जिसे नरोत्तम ने 'प्राण संगली' और गोसट मक्के की।' को[1] गुरु नानक की रचनाएं माना है और प्रामाणिक माना है। परन्तु नरोत्तम का यह कहना गलत है। भाई कान्ह सिंह के अनुसार मक्के की गोसट' और प्राण-संगली उतरकालीन रचनाएं हैं।[2] प्राण-संगली की प्रामाणिकता के बारे में आज भी वाद विवाद चल रहा है।

दशम ग्रंथ:- नरोत्तम का कहना है कि कुछ विद्वान दसम गुरु जी की बाणी को नहीं मानते। अर्थात् दशम ग्रंथ की प्रामाणिकता पर उन्हें शंका है। अत: इस बात का निर्णय भाई मनी सिंह को ग्यारह बारों की टीका को देखने से ही सकता है। भाई मनी सिंह के अनुसार गुरु गोविन्द सिंह जी ने युद्ध के लिए, चरित्र के लिए, देवी की स्तुति के लिए तथा ज्ञान के लिए बाणी का उच्चारण किया। अत: नरोत्तम के अनुसार ग्रंथ की बाणी[3] की प्रामाणिकता को मनी सिंह तथा दीपसिंह की बीड़' (प्रति) से करनी चाहिए।

१- गोसट मके की अर प्राण संगली बहरत बील गुरु औ गुरु के सिखों की बाणी से बिरुध ना होने से सम अंस में प्रमाण है। अर गुरु नानक जी की है। --

गुरु मत निर्णय सागर- पृ० ६०२

२- महान कोश- भाईकान्ह सिंह- पृ० ७०३ तथा ६०२ देखें।

३- और दसमी पातशाही का निरणै मनी सिंह अर दीप सिंह की बीड़ से ~~करना~~ चाहीए। - वही, पृ० ६३४

सर्व लोह:- नरोत्तम के अनुसार सर्व लोह को किसी मायावी सिक्ख ने बनाया है।[1] जिसमें अधिकतर देवी की स्तुति है। देवताओं की प्रार्थना से महाकाल का प्रकट होना लिखा है। परन्तु बहुत से लोग इसे गुरु गोबिन्द सिंह की मानते हैं। आज भी इसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के बारे में वाद विवाद चल रहा है। निश्चय रुप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

हुक्मनामा:- नरोत्तम का कहना है कि जिस जिस हुक्मनामे में गुरु साहिब के हस्ताक्षर जहां- जहां मिलते हैं वही प्रामाणिक रचना है।[2]

पैंतीस अक्षरी:- किसी प्रेमी सिक्ख ने गुरु नानक देव जी के नाम से रचना की है।[3] इसका समर्थन भाई काह्न सिंह ने भी किया है।

१- इसी तरां किसे बड़े निसफल परिश्रम वाले मायावी सिष का बनाया हुआ प्रवलोह ग्रंथ है। जिसमें आदि विषे बहुत सी देवी की उसतति लिषी। आगे बीरजनाद राषस की उतपति औ तिसका चौदा भवन से राज होना। औ देवतिआं को दुषी करना लिषा। आगे देवतिआं की प्रारथना से महां काल का प्रगट होना-- इतनी सम तिसमें कथा अनेक मन कहे कंदों से लिषी अरनाम गुरु महाराज का पाया जिससे बहुत अनपढ़ लोग इसको गुरु का मानते हैं। वही पृ० ६१४
सही कृति से सन्दर्भ लेकर स्वयं शंका उठाई तथा शंका का समाधान कर अपने मत की पुष्टि की।

२- जो सम सिष यथा सकति इनको माने जिनमें दसतषत है बहु बहुत हु हुमनामे गुरु जी के सही है। परन्तु बहुत से बनावटी लोकों ने बनवा लीए हैं। बहुत से जिन मै देग तेगो फतह नसृत बेदरंग या फतह नामक गुरु गोबिन्द सिंह यह मोहर मै लिष्या है वहु अब चल नगर साहिब मै अब लिष देते है। बहुत से केसगढ़ अर पटनेजी से लिष देते हैं यह सम सही है।- पृ०६१३

३- ऐसे ही प्रेमी की बनाई पैंतीस अषरी है जिसमें बाला सुदरी का मंत्र लिष्या है गुरु जी बनावते तो महाकाली का और दुरगा का मंत्र छोड़ कर बाला सुंदरीका मंत्र क्यों लिषते - - - गुरु जी ग्रंथ साहिब में काली की और दुरगा की उपासना लिषते हैं।

घवकः :- यह भी किसी प्रेमी की रचना है जिसमें दुर्गा की रचना के ६ छंद हैं। इस बात का समर्थन भाई काह्न सिंह भी करते हैं।

प्रेम सुमार्ग:- यह भी किसीमायावी प्रेमी का बनाया हुआ है।[1]

गुरु पद्धति:- यह रचना किसी प्रेमी सिक्ख ने बनाई है जिसमें निर्मलों की उत्पत्ति के बारे में लिखा है।

बहिरत बील:- नरोत्तम का कहना है कि यह रचना भी गुरु और गुरु के सिक्खों की बाणी के विरुद्ध न होने पर अंशों में प्रामाणिक है तथा गुरु नानक जी की है। महान कोश में इस रचना को गुरु नानक कृत नहीं माना।

नसीहतनामा:- यह रचना गुरु नानक की होने में सन्देह है। यह मत ठीक है। गुरु नानक साहिब के नाम पर किसी श्रद्धालु ने इसकी रचना की है। इसकी रचना गुरु बाणी अनुसार भी नहीं।

१- इसी तरह प्रेम सुमारग भी मायावी प्रेमी का है। किस वासते प्रेम सुमारग के चौथे अध्याय के चौथे बचन की पंद्रवीं पौड़ी में लिखा है। मुसलमानी को हिंदुनी बना लेना अर आनंद पढ़ के मुसलमानीऔरत साथ भोग कर लेना अर पंजवें अध्याय के चौथे बचन की गिआरवीं पौड़ी में लिखिआ है। करद भेद करके हलाल खा लेना इस लिखने की उरमत की मरयादा याद करके देखा तो यह कैसी बुरी बातें लिखी हैं। किउंकि इस मत में तमाकू वरतना, केस मुंडाने, मुसलमानी से संग करना, 'कुठाखाना' यही बड़ी तनखाह है। उनही भेदों ग्रहण करवानी करी सो अनुचित कीआ ऐसे लिखने को उचित माने कुछ दिनों में कोई ऐसी भी लिखना जाहर कर देवेगा जो अमुक मंत्र से सुधकर रहदीआं दीवे सुध कर लेनीआं ऐसे क्यामत की मरयादा ही आकास का फूल बन जावेगी। उस ग्रंथ का निवास निहंगों सिंघों के है अर उसमें ऐसे और कई तरह कीआ नेजे गड के विवाह करनादिक बातां लिखीआं है। जिनका सिवाइ निहंगा सिंघा के और गुरु के सिखां मे प्रचार नहीं इन

मुक्तमार्ग:- नरोत्तम का कहना है कि यह किसी प्रेमी सिक्ख सेवक ने बनाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरोत्तम का परीक्षा प्रकरण लिखने का उद्देश्य गुरुवाणी सम्बन्धी रचनाओं तथा गुरु सिक्ख प्रेमियों की रचनाओंकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के बारे मेंविवरण देना था।

प्रामाणिकता की कसौटी का पूर्ण विस्तार जो नरोत्तम ने किया है वह इतना उचित नहीं जान पड़ता फिर भी प्रामाणिकता अप्रामाणिकता पर विचार करने वाले प्रबुद्ध विद्वान के रुप में नरोत्तम का व्यक्तित्व महिमामय है।

इस कटु परंतु यथार्थ दृष्टि के कारण नरोत्तम निंदा के पात्र हो सकते थे। इस आशंका का भी इन्होंने उल्लेख किया है।

> 'कुल के पिआरे गुरु नानक जी को कुराही कहते रहे मेरे को कहे तो किआ आसचरय है। क्रिपा कर निंदा साबत से धोवे बसतर मेरी बंदना लेवे।'

इतना साहसपूर्ण वक्तव्य देकर नरोत्तम ने हमारे सामने स्वतंत्र चिन्तन का मार्ग खोल दिया।

अकाल मूरत प्रदर्शन-

(पिछले पृष्ठ से)

> बातों से अरमोहर दसतखत ना होने से गुरु बानी को जिलद मे ना होने से गुरु की रचना साथ ना मिलने से किसे नेहायत भले प्रेमी का है।

- वही, पृ० ६१०

क्रीड पत्र- चार

अकाल मूरत प्रदर्शन

२५ पृष्ठों की छोटी सी रचना अकाल मूरत प्रदर्शन गुरुमत निर्णय सागर[1] के पृष्ठ ६३७ से लेकर ६६० तक संकलित है। इसका रचना काल संमत १६३५ है। नरोत्तम ने इस कृति में अकाल पुरुष के स्वरुप का वर्णन किया है।

नरोत्तम ने स्वयं कहा है कि अकाल पुरुष के दो स्वरुप कोप्रकाश में लाने के हेतु इसका रचना[2] की है। सभी ~~नरोत्तम के~~ पदार्थों के लाभ हेतु लोग इसकी पूजा कर सकें। नरोत्तम के अनुसार यही अकाल परम सिव है। यही अकाल पुरुष अपने आपको प्रलय के समय लय करता है और उत्पत्ति के समय ब्रह्मा का रुप धारण कर जगत की उत्पत्ति और उसकी पालना करता है।

नरोत्तम ने गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा रचित अकाल उसतुति में अकाल के स्वरुप की व्याख्या की है। दशम गुरु जी ने अपने ग्रंथ में अकाल की उपासना की है तथा अकाल की बहुत महिमा गाई है। अकाल की काल का काल कहा गया है।

नरोत्तम ने अकाल के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरुपों का वर्णन किया है। अकाल का सगुण स्वरुप २ प्रकार का है। एक बड़ा भयंकर दूसरा बड़ा मनोहर। अकाल का मनोहर स्वरुप शंकर की मूर्ति जैसा रुप है। सिर पर करीट, देह में चंदन का तिलक, माथे में चन्द्रमा, भूषण, ~~बस्~~ वस्त्र, पहने हुए कमल के समान नेत्र, कंबु, ग्रीव के हरसा कटि अति सुन्दर स्वरुप जिसको देखकर कामदेव भीलज्जित हो जाए। ऊपर नीचे के दाहिने हाथ में ~~भय~~ अभयदान और वरदान बाएं हाथ में खड़्ग और धन है।

१- गुरु तीर्थ संग्रह- पृ० २७४

२- 'तिस सगुण अकाल के दो स्वरुप प्रकास करने हेत मैंने अकाल मूरति प्रदरसन बनाया तिस के आदि मे दूसरे ग्रंथ साहिब जी के पाठ लिखे है। अंत में शास्त्री अषरों में शास्त्री बोली में इतिहास पुराण वेद सूत्रों के पाठ लिखे हैं जिससे सब लोकोंको इस देव के स्वरुप का ग्यान होवे अर सरब पदारथों के लाभ हेत इसका पूजन करे यह अकाल परम सिव है।'--
अकाल मूरत प्रदरसन गुरुमत निर्णय नागर में संकलित
पृष्ठ 637

अकाल का भयंकर स्वरुप यह है जिसके गले में मुंडों की मालादि युद्ध भूमि में राक्षसों के सम्मुख खड़ा, नीचे के हाथ में धनुष, अपर खड़ी हुई भुजा में सिर से ऊपर निकला हुआ खड्ग, दाहिनी तरफ की ~~ऊ~~ ऊपर वाली भुजा में गदा नीचे गुरुज, महा भयंकर बिखरे हुए केश, मुख से अग्नि की लाट निकलती हुई, हाथों में सर्प के भूषण, युद्ध भूमि में राक्षसों को पकड़कर चबा रखा और पांवों से मसलरहा, भयंकर नाद, और भय से युक्त शंख की आवाज़ हास्य करता हुआ प्रलय का स्वरुप है। अकाल का यह स्वरुप विचित्र नाटके के अनुसार है। अन्तत: नरोत्तम ने अकाल के निर्गुण और सगुण दोनों स्वरुप को लेने का प्रयास किया है। वस्तुत: यह कालादि स्वरुप विवेचन का ही विस्तार है।

१- अकाल का मनोहर बहु है जिस मै सिर पै किरीट देह मै चंदन के तिलक मथे में चंद्रमा सेत छत्र भूषान वसत्र पहिरे हुये कमलों से नैत्र कंबू ग्रीव के हरसा कटी हस्तती सा गमन अति सुंद्र स्वरुप जिस को देषकर कामदेव लजत होवे सुमस्या मरंग तंत्र सामस्र की रीति से ऊपर तले के दाहने हाथों में अभयदान औ बरदान बायें हाथों में षड्ग औ धनसकार है। - - - अकाल का भयंकर स्वरुप बहु है जिसमें गल में मुंडी की माला दिसा बसत्र युध भूमी में राषसो के सनमुष षड़ा बामें पासे के दो हाथों मे से तले के हाथ मे धनष अपर के मै षड़ी करी हुई भुजा में सिर से ऊपर निकसा हुआ षड्ग ~~दहन~~ दाहने पासे की भुजा में ऊपर की में गदा तले की में गुरज महा भयंकर षिड़े हुए केस मुष से आनि की लाट निकसती हाथोंमें सर्पों के भूषान युद्ध भूमी में राषसों को पकड़के चबय रहिया। अर पायो से मसल रह्या। भयंकर नाद औ भयकारी संष की अवाज। और बड़ा हास्य करता यदि प्रलय का स्वरुप है। अकाल का यह स्वरुप बिचित्र नाटक मै अठारां के अंग से लेकर लिषा है।--

वही, पृ० ६५१

अध्याय- चतुर्थ

पंडित तारा सिंह नरोत्तम: कृतित्व

खण्ड- दो

गुरु तीर्थ संग्रह

(क)- तीर्थ स्थान

(ख)- तीर्थ स्वरूप

(ग)- नई व्याख्या

(घ)- विशुद्ध विवरण

(ङ)- यथार्थ परक दृष्टि- निष्कर्ष

੧ੳ ਸਤਿਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ॥

[illegible]

गुरु तीरथ संग्रह

एक उअंकार सतिगुर प्रसादि।

दोहरा। भवतारण को तरणि वर तरणि अंध महाना। दस गुरु दस दिसां दिंपत यस पग पंक जनम ठाना(१)। गुरु तीरथ संग्रह सुभग सभ देसन से माला। भलो रटै यनरटन हित करोसु सुखद बिसाला।२। तीरथ सेवा स्री गुरु मुख से भाखी आया। ना हरि भजिउ न तीरथ सेविउ कैसे पाया।३। तीरथ सेवा रीति सुभ लिखि। पुराण न माहि। सभ इट्रय बस चाहीये जे जग तीरथ ज हा।४। उठ प्रभात गुर वाक को पड़तो कहे सुगीन। व्यरथ बात के बकन से मुख भी राखे मीना।५। कथा कीरत गुरु बचन के अरथ न चरचा तीत करे भली बिध जह बसे नान दान सप्रीता।६। दान न लेवै इस्ट को मंत्र जपै चित लाइ। बाहर। अंदर इंद्रीअन जय भी राखे चाइ। ७। ना खावे मद मास लै ब्रत राखे कर प्रेमा। ब्रह्मचरय वसयन को सदा करे सुभ नेमा।८। करे सवा एक नहि यात्रा निसफल होइ। जो न सके चल।

ਬੈਸਾਖ ਕੀ ਅਮਾਵਸ ਤਰ੍ਰਿਬੀਸਤ ਰਬਪਨ ਸੋਹਾਏ ਸੰਬਤ ੧੮
੩੫ ਮੇ ਸਮਾਪਤ ਕੀਏ॥ ਅਪਰੰਚ ਸਾਰ ਗੀਤੀ ਸੋਹਸਾਰ
ਸਾਰੋ ਤਬਦੇ ਕੀ ਟੀਕਾ ਛੰਦ ਸਾਰ ਕੀ ਸੈ ਤੋਲਾਂ ਸਲੋਕ ਸੰਖਿਆ ੩ ਸੰ
ਬਤ ੧੮੩੭ ਜੇਠ ਸੁਦੀ ੧੦ ਦਸਮੀ ਕੋ ਸਮਾਪਤ ਕਰੀ॥ ਪਸਚਾਤ
ਅਰਬਾਂਗਣ ਕੈ ਸੈ ਸਾਦੇ ਸਤ ਹਜਾਰ ਸਲੋਕ ਸੰਖ੍ਯਾ ਭਗਵਤ ਬਾਂਣੀ
ਕੀ ਟੀਕਾ ਸੰਬਤ ੧੮੩੮ ਕੀ ਫਾਗਨ ਵਦੀ ਸਿਵਰਾਤਰ ਸਮੀ ਕੋ ਸ
ਮਾਪਤ ਕਰੀ॥ ਪਸਚਾਤ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਜੀ ਰਬ ਸੰਗ੍ਰਹ ਚਾਰ ਸਹੰਸ੍ਰ
ਸਲੋਕ ਸੰਖ੍ਯਾ ਸੰਬਤ ੧੮੪੦ ਕੀ ਪੋਹ ਸੁਦੀ ਸਪਤਮੀ ਕੋ ਸਮਾ
ਪਤ ਕਰੀ॥ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਬ ਜੀ ਕੇ ਨਾਮੇ ਕਾ ਕੋਸ ਤਥਾ ਟੀਕਾ ਭੀ ਅਲ
ਪ ਰਚੇ ਸੋ ਪ੍ਰਮੇਸ੍ਵਰ ਕ੍ਰਿਪਾ ਸੇ ਪੂਰਨ ਹੋਏ ਸੰਖ੍ਯਾ ਸਹਿਤ ਪ੍ਰਕਾਸਤ
ਹੋਂਗੇ॥ ਪੂਰਬ ਲਿਖਾ ਸਮਸ੍ਤ ਪ੍ਰਸੰਗ ਸ੍ਰਿਸ਼ਟਿ ਕਰਤਾ ਕ੍ਰਿਤ ਅਨੁਗ੍ਰਹ ਪਟ
ਯਾਲੇ ਮਹਾਰਾਜ ਕੇ ਮਕਾਨ ਕੋਠੀ ਪਰ ਮਗ੍ਯਾ ਮੇ ਹੂਆ॥
॥ਗੁਰ ਮੰਦਰ ਰਚਨਾ ਕੀ ਲਾਗਤ ਐਅਜੀਦ ਕਾ ਮਾਹਿ ਭਤਿ ਨ ਕੇਬ
ਹਨ ਕੇ ਸੰਬਤ ਤਦ੍ਵਾਰੀ ਖਖਾਲਸਾ ਮੇ ਪੰਥ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਕਰਤਾ ਆਦੇ
ਅਨੁਸਾਰੀ ਗ੍ਯਾਨੀ ਜੀ ਲਿਖੇ ਹੈਂਗੇ॥ ॥ਦੋਹਰਾ॥ ॥ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ
ਨਾਨਕ ਨਿਖਲ ਕੇ ਨਾਯਕ ਨਰ ਨਿਰਧਾਰ॥ ਨਿਜ ਤੀਰਥ ਪ੍ਰਸਨ
ਨਨ ਕੋ ਹੇਤੁ ਪਦਾਰਥ ਚਾਰ॥ ੧॥ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਸਾਹਬ ਪ੍ਰਭੁ ਹੀ ਬਿਨ
ਯਸੰਖ੍ਯ ਏਹਾ ਨਿਜ ਤੀਰਥ ਪ੍ਰਸਨ ਨ ਕੋ ਮੁਖ ਮਾਰਗ ਏਹੁ
॥੨॥ ॥ਇਤਿ ਸ੍ਰੀ ਮਦ ਗੁਲਾਬ ਸਿੰਘ ਬਰਨਣ ਸੰਖ੍ਯਤ
ਗਾਹਕ ਨੋ ਬੇਤ ਮਰਾਰਿ ਤੇ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਤੀਰਤ ਸੰਗ੍ਰਹੇ ਤੀਰਥ ਗਾਮ
ਨ ਬ੍ਰਿਧਾਨ ਦੀਅ ਸਿਤ ਰਚਨਾ ਸਮਾਪਤਾ॥ ੧੬॥ ੧

अरथात गुरु बंस तरु दरपण ये चारों संबत १६३५
मों समापत कीए। जप रहरास आरती सोहला हजारे
सबदां की टीका छह हजार छी सै सोलां सलोक संष्या
संबत १६३७ जैठ सुदी त्रौदसी को समापत करी। पसचात
अठारा हजार नौ सौ साढे सतवंजा सलोक संष्या भगत बाणी
की टीका संबत १६३६ की फागन वदी सिव चतर दसी की
समापत करी। पसचात स्री गुरु तीरथ संग्रह चार सहस्र सलोक
संष्या सबंत १६४० को पोह सुदी सपतमी को समापत करी।
ग्रंथ साहब जी के नामों का कोस तथा टीका भी अलप
रहै। सो परमेश्वर की किरपा सै पूरन हो संष्या सहित प्रकासत
होंगे। पूरब लिषा समस्त प्रसस्त स्वस्ति कर कित्य नगर
पटयाले महाराज के मकान कोठी धरमगढ़ मै हूआ।
गुरु मंदर रचना की लागत औ अजीवका सहित तिन के
बणन के संबत तवारीष षालसा से पंथ प्रकास करता हमारे
अनुसारी ग्यानी जी लिषेगे। दोहरा। स्री गुरु नानक
निषाल के नायक नरक निवारा। निज तीरथ प्रिय जनन
को देहु पदारथ चार।१। स्री गुरु साहब प्रब ही बिनय सुंन
बे हौर हा। निज तीरथ प्रिय जनन को मुष मागे सो ह देहु।२।
इतिस्री मद गुलाब सिंह चरण सिष्यत ताराहरि
नरोत्तम रचिते स्री गुरु तीरथ संग्रहे तीरथ गमन
सिध्यादि मिस्रित रचना समापता। १६।

पंडित तारा सिंह नरोत्तम : कृतित्व

तीर्थ संग्रह

तारा सिंह नरोत्तम की गुरुमत सम्बन्धी यह कृति दसों गुरुओं के गुरु स्थानों का उल्लेख करती है। इसका रचना काल संमत श्री नानक शाही ४१५ अर्थात् संमत १६४१ (१८८४ ई०) है। इसमें २७५ पृष्ठ हैं और अन्त में शुद्धि पत्र दिए गए हैं।

सिक्ख परम्पराओं के सन्दर्भमें नरोत्तम ने इस कृति को तैयार किया। नरोत्तम की विचारधारा यद्यपि गुरुवाणी की व्याख्या की ओर थी परन्तु वह सिक्ख इतिहास के अन्वेषक के रूप में ही हमारे सामने उपस्थित होते हैं।

नरोत्तम ने प्रथम गुरु से लेकर दशम गुरु पर्यन्त, जहां जहां उन्होंने जन्म लिए, या जहां जहां धर्मोपदेश दिए जहां कहीं भी गुरु गए उन सभी पवित्र स्थानों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। यद्यपि आज यह कृति हमारे सम्मुख उपलब्ध न होती तो हो सकता है बहुत से गुरु कुल सम्बन्धी गुरुद्वारों का उल्लेख हमें न मिल पाता। इस दृष्टि से नरोत्तम का कार्य बड़ा प्रशंसनीय है जिसके कारण आज सिक्ख विद्वानों, शोधकों को गुरुओं के पवित्र स्थानों का वर्णन करने में कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ी।

प्राचीन काल से ही तीर्थ यात्रा को महत्व दिया जा रहा है। संसार के सभी सम्प्रदायों ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार अनेक पवित्र स्थानों को तीर्थ माना है जोकि महात्माओं के उत्तम चरित्र और तपस्वियों की तपस्याओं से पवित्र हो चुके हैं। सभी धर्म के अनुयायियों ने तीर्थ की परिभाषा अपने अपने ढंग से की है।

तीर्थ शब्द का शाब्दिक अर्थ है धार्मिक स्थान। तीर्थ शब्द की व्युत्पत्ति √तॄ + थक, से मानी है।[1] हिन्दी विश्व कोश में तीर्थ की परिभाषा इस प्रकार दी है 'तरति पापादिकं यस्मात्।'[2] ज्ञान शब्द कोश में तीर्थ की परिभाषा इस प्रकार दी है, 'वह पुण्य स्थान जहां[3] विशेष धर्म के अनुयायी पूजा स्नान आदि के लिए जाते हैं, जैसे काशी प्रयाग आदि।' डा० काणे के अनुसार, 'भारत में पवित्र स्थान[4] बहुत महत्व रखते हैं जैसे बड़ी नदियां, पर्वत, जंगल आदि सभी पवित्र माने गए हैं।

यदि देखा जाए तो तीर्थ यात्रा की पृष्ठ-भूमि में वैदिक, पौराणिक विचारधारा का संबल है अर्थात् पौराणिक धर्म में प्रमुख स्थान वैदिक धर्म की अपेक्षा तीर्थों को दिया गया है।

डा० काणे के अनुसार पौराणिक वाङमय में ऐसी अनेक उक्तियां मिलती हैं जिसमें इस बात को स्पष्ट किया[5] गया है कि तीर्थ यात्रा से वही फल प्राप्त होता है जो अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन से। अर्थात् यज्ञ की अपेक्षा तीर्थों को अधिक महत्वपूर्ण मानने की प्रवृत्ति महाभारत और पुराणों में ही प्राप्त होती है।

श्याम सुन्दर शुक्ल के अनुसार ;धर्म भावना को प्रगाढ़ बनाने एवं संप्रदाय विशेष के संघटनात्मक आवश्यकता की पूर्ति के लिए तीर्थ-व्रतादि की स्वीकृति उपयोगी सिद्ध होती है। प्राय: किसी पौराणिक महत्व के पवित्र स्थल तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध होते हैं और उनमें पुण्य अर्जित करने तथा पाप कर्मों[6] से बचने की एक सामान्य प्रेरणा स्वाभावत: धर्मभीरु जनता को प्राप्त होती है।

१- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ- पृ० ५००

२- हिन्दी विश्व कोश- वॉल्यूम ६, पृ० ६२०

३- ज्ञान शब्द कोश- पृ० ३३१

४- In India holy places have played a very important part large river mountain and forests have always been venerated and sacred and as the abods of Gods."--

History of Dharamsatra- P.v. Kane, page.552

५- धर्मशास्त्र का इतिहास, डा० काणे, पृ० १२३

६- हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति- श्याम सुन्दर शुक्ल, पृ० ४२१

अत: हम देखते हैं कि हिन्दू-धर्म में प्राचीन काल से ही तीर्थ के महत्व को स्वीकार किया गया है। न केवल हिन्दू धर्म में ही अपितु सिक्ख धर्म में भी तीर्थ स्थानों को अधिक महत्व दिया है।

गुरु ग्रंथ साहिब में सिक्ख गुरुओं ने अपने विचार प्रकट किए हैं। गुरु नानक की दृष्टि स्थूल से सूक्ष्म की ओर है। गुरु नानक का स्थूल तीर्थों पर विश्वास नहीं था। हरिद्वार तथा जगन्नाथ पुरी जैसे तीर्थ स्थानों पर जाकर उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को बार बार प्रतिष्ठित किया है। परन्तु गुरु नानक के पश्चात् गुरु नानक अथवा अन्य गुरुओं से सम्बन्धित कितने ही नगर अथवा कुछ विशेष स्थल तीर्थ मान लिए गए।

संतगुरुओं के अनुसार धर्म की शिक्षा के लिए या स्नान करने के लिए तीर्थों पर जाना अच्छा है।[1] परन्तु कुछ लोग मन में यह धारणा कर लेते हैं कि वहां स्नान या दर्शन करने से भी मोक्ष की प्राप्ति होगी परन्तु गुरुकुल का कहना है कि तीर्थ में स्नान करने से क्या लाभ जब मन की मैल ही न उतरी हो या मन से अहंकार न हटा हो।[2] तीर्थ पर शुद्ध मन से जाना चाहिए जिससे आपके चित्त को शुद्धि और मन को शान्ति मिल सके। अर्थात् गुरुकुल ने स्थूल तीर्थों जल वन आदि का खण्डन तथा चित्तवृत्तियों के शोधन पर अधिक बल दिया है। गुरु अर्जुन देव कर्म-धर्म-तीर्थ स्नान आदि को अहं का प्रसार ही समझते हैं। उन्होंने[3] लाखों तीर्थों-व्रतों और संयमों की अपेक्षा 'साधु की धूलि' को महत्व दिया है।

१- अठसठि तीरथ नाता- बारह मासा- महल्ला, १

अथवा- तीरथ नावण जाउ, तीरथु नाम है

तीरथ सबद बीचर अंतरि गिआनु है-- धनासरी महल्ला, १

अथवा- गुरु समानि तीरथ नहीं कोइ सतु संतोखु तास गुरु होइ।

प्रभाती राम म०१

२- अंतरि मैल तीरथ भरमीजै

मनु नहीं सूचा किआ सोच करीजै। रामकली, म० १

अथवा- तीरथ नाइन उतरसि मैलु- करम धरम सभि हउमै फैलु

अथवा- तीरथ न्हाता किआ करे मन महि मैल गुमान-आसा म०१

अथवा- अनेक तीरथ जे जतन करै ता अन्तर की हउमैं कदे न जाए।-

३- तीरथ बरत लख संजमा पाइऐ साधू धूरि-

महान् कोश के कर्ता भाई कान्ह सिंह के अनुसार वह[1] पवित्र स्थान जहां पर लोग धार्मिक भाव के साथ पाप को दूर करने के लिए जाएं।

तीर्थ यात्रा का वास्तविक उद्देश्य चित्त का शुद्धि पाना है। यदि अन्त:करण शुद्ध न हो तो दान-तप-यज्ञ-तीर्थ गमन करने का कोई फल नहीं होता। तीर्थ गमन करते समय व्यक्ति के मन में उच्च विचार अपना स्थान बना लेते हैं और वहां का वातावरण इतना प्रभावित होता है कि मनुष्य जिसने कभी दान आदि नहीं दिए होते वे स्वार्थी लोग भी वहां जाकर ऐसा करने लगते हैं। धर्मोपदेश होने पर तीर्थ यात्री आध्यात्मिकता के स्तर पर पहुंच जाता है और अपने जीवन को सफल बनाने का प्रयास करने लगता है।

पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने उथान का में ही तीर्थ की परिभाषा बताकर अपने भाव को उद्धृत किया है, 'तीरथ गुरु[2] का रिषि लोगों के सेवन करे जल का अवतारों के जनमादि थानों का नाम है।' अर्थात् जहां गुरुओं ने, ऋषियों ने अवतार लिए हैं अथवा उनके जन्म स्थानों का नाम तीर्थ है।

इस पृथ्वी पर कितने तीर्थ हैं। इसका निर्णय करना दु:साध्य है। जहां कहीं भी महापुरुष आविर्भूत हुए अर्थात् जहां कहीं भी उन्होंने लीला की, धर्मप्राण व्यक्तियों ने उस स्थान को तीर्थ मान लिया।

तारा सिंह नरोत्तम ने भी प्रथम गुरु से लेकर अन्तिम गुरु गोबिन्द सिंह पर्यन्त जीवन सम्बन्धी स्थानों का वर्णन कर अपनी श्रद्धा को अर्पित किया है। नरोत्तम ने भी उन सभी स्थानों को लिया है जहां जहां उन्होंने जन्म लिया, सिंहासन पर बैठे, ~~विवाहि~~ विवाहादि किए, जहां पर धर्मोपदेश, युद्धादि से भूमि को पवित्र किया, देह का त्याग किया उन सभी स्थलों का वर्णन कर गुरुओं के जीवन सम्बन्धी सिक्ख इतिहास का सम्पूर्ण वृतान्त देना चाहता है। नरोत्तम के अनुसार गुरु मंदिरों का नाम गुरुद्वारे है।[3]

१- जिस द्वारा पाप तो बच जाइए पवित्र ~~अ~~स्थान जिथे धरम भाव नाल लोक पाप दूर करन लई जाण।' -- महानकोश- पृ० ४४५

२- तीर्थ संग्रह- पृ० २

३- 'तीरथ गुरु का रिषि लोगों के सेवन करे जल का अवतारों के जनमादि थाने। का नाम है। याने निजमत के सभ लोक जान लेवे। गुरु नानक साहिब जी से ले गुरु गोबिंद सिंघ जी प्रयंत दस गुरों ने जहां- जहां जनम धारे हैं,जहां जहां

तीर्थ महिमा

तारा सिंह नरोत्तम ने तीर्थ महिमा का उल्लेख किया है। इन्होंने तीर्थ यात्रा को ज्ञान की पहली भूमिका बताया है। सकामी व्यक्तियों को धर्म अर्थ काम की प्राप्ति होती है और निष्कामी व्यक्तियों को मोक्ष की प्राप्ति तथा तीर्थ यात्रा पर जाने से कामना हीनों को मुक्ति मिलती है। नरोत्तम के अनुसार तीर्थ पर निवास करना अच्छा है।

नरोत्तम ने मोक्ष प्राप्ति का साधन तीर्थ यात्रा माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि नरोत्तम अपने समय की प्रचलित परम्पराओं से अछूता नहीं रहा। एक तरफ तीर्थ यात्रा को ज्ञान की पहली भूमिका बताया है और दूसरी तरफ मुक्ति का साधन माना है। नरोत्तम की यह भी विचारधारा है कि तीर्थ-गमन करते हुए उत्तम लोगों का दर्शन होता है और जिन का दर्शन भी मुक्ति का साधन है।[1]

इस प्रकार की विचारधारा को बहुत से विद्वानों ने भी अपनाया हुआ है कि तीर्थ-स्थानों के दर्शन और स्पर्श मात्र से मुक्ति उपलब्ध हो सकती है। महाभारत में भी वर्णित है कि तीर्थ स्नान के कारण जन्म बन्धन से मुक्ति मिलती है तथा चित्त के अचंचल रहने पर तीर्थ का अभीप्सित फल मिलता है।[2]

(पिछले पृष्ठ से)

> और कोई विवाहादि कीये हैं। जहां जहां उपदेस बर स्राप युधादि क्रित से भूमी पावन करी है। देह त्याग जोतीजोत समाए है। उन थानों में कही कहीं मंदर कूप बावली आदि को की रचना जगत की कल्याण हेत गुरों ने आप कराई है। और यानी मैं सिषों ने कराई है। नाम गुरुमंदरों का गुरद्वारे है। --
>
> ती संग्रह - पृ० २

१- 'तीरथ मों अनेक उतम लोगों का दरशन होता है। जिनका दरशन मुकती का साधन है। -- वही, पृ० ३

२- धर्मशास्त्र का इतिहास, डा० काणे, पृ० १३०६

तीर्थों में मन वचन एवं कर्म से धर्मपालन का आदेश होता है। जिससे तीर्थ में स्नान करने का मुख्य फल चित्त शोधन का मिलता है। अर्थात् आन्तरिक मलिनता के दूर होने पर हृदय पवित्र हो जाता है।

तीर्थ-दान

तारा सिंह नरोत्तम ने जीवन को सफल बनाने के लिए तीर्थ-दान का उल्लेख किया है कि तीर्थ में जाकर कभी किसी को न देने वाला व्यक्ति भी देखा-देखी कुछ न कुछ दे देता है। तीर्थ स्थानों पर जाकर तन-मन और धन से सेवा करनी चाहिए। धनी व्यक्तियों को ऐसे स्थलों पर जाकर अपनी कमाई का दसम हिस्सा मंदिर, तालाब आदि बनवाने के लिए पुजारियों को देना चाहिए। जो व्यक्ति धन का दान देने में असमर्थ है उन्हें तन से या मन से कार्य करना चाहिए जिससे अपना जीवन सफल बना ले।[१]

तीर्थ-तप

नरोत्तम ने तीर्थ-तप का तात्पर्य वाणप्रस्थ आश्रम के धर्म को माना है। नरोत्तम के अनुसार यदि कोई पुरुष अनात्म पदार्थों के माध्यम से गुरु के उपदेश रूप प्रमाण से आत्मज्ञान को प्राप्त करता है वह तीर्थ तप है। तीर्थादि ज्ञान के बहिरंग साधन दान, दया, तप, दत है।[२] इन साधनों के द्वारा शुद्ध मन के व्यक्तियों में ज्ञान की इच्छा का जन्म होता है।

१- अर तीरथों में पहुंच धनी पुरष अपनी कमाई का दसमा हिसा मंदर तलाब नदी के घाटों की रछ्या हेत पुजारीयों को देवै। अर पुजारीयों को आजीवका हेत जुदा देवै-- तीर्थ संग्रह

२- 'इहां तीरथ तप पद बानप्रसथ आस्रम के धरमों को कहते हुये और आस्रमों के धरमों कोबक बोधन करे है। दया तप दान पाठ निषल वरणास्रमों के धरमों को लषावे है याते जे कोई पुरुष संपूरण अनातम पदारथों के मध्य में मान नाम गुरु के उपदेस रूप प्रमाण से। तिल को नाम तिलक रूप आतम ग्यान पावे नाम पाइआचा है सो तीरथ तप कहीये।'

- गुरु भाव दीपिका- तारा सिंह नरोत्तम, पृ० १३१-३२

तारा सिंह नरोत्तम मिथ्या विश्वासी बातों से भी ग्रस्त है क्योंकि वह प्रत्येक स्थान के दर्शन से फल की प्राप्ति की इच्छा अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक रखता है। इन स्थानों पर जाने से स्नान आदि करने से पापों का नाश होता ही है और कुल का भवसागर से पार होना फल माना है। गुरु तीर्थ स्थानों को इतनी महानता नरोत्तम ने दी है कि जहां पर गुरुकुल ने दुष्ट जीव जन को छुटकारा[१] दिलवाया है वहां की सेवा करने से मनुष्य के अपने दु:खों का नाश हो जाता है।

केवल स्नान कर लेने से ही तीर्थ स्नान नहीं होता। तीर्थ स्नानी वही है जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है। जो लोग सैंकड़ों बार तीर्थ स्नान करते हैं। वे कभी भी पापों से मुक्त नहींहोते। आधुनिक युग में तीर्थ का महत्व कम होता जा रहा है। मध्यकाल में तीर्थ का इतना महत्व था कि जो लोग तीर्थ गमन कर के वापिस लौटते उनके दर्शन मात्र से भी लोग अपने को धन्य मानते। आज भी कई व्यक्तियों की मन: स्थिति इस विचारधारा से भी ग्रसित है।

तीर्थ यात्रा की शास्त्रीय विधि

प्राचीन काल से तीर्थ-यात्रियों के लिए कुछ नियम बनाए गए हैं जिनका पालन तीर्थ-यात्री के लिए आवश्यक होता है। डा० काणे के अनुसार तीर्थ यात्रा की भावना के परिपक्व हो जाने के उपरान्त किसी एक निश्चित दिन व्यक्ति को केवल एक बार भोजन करना चाहिए। दूसरे दिन उसे वपन कराकर उपवास करना चाहिए, उपवास के दूसरे दिन उसे दैनिक धर्मों का पालन करना चाहिए, 'अमुक अमुक स्थान की मैं तीर्थ यात्रा

१- जहां गुरों के विवाहादि हू हए हैं। तहां की सेवा का विवाहादि मंगल होना फल है। जहां तषतों पै विराजे हैं। तहां की सेवा का उतम दरजा मिलना फल है।---विचार वान बातू भी उहां पहुंच उसी उपदेस को याद करें। जिन मकानों में थोड़ी देर ठहर के आराम कीआ हे। उनकी सेवा का चित की प्रसनता फल है। जिन थानों के फल गुरों ने आप कहे हैं उन के वही फल है। जैसे ~~बाउली~~ बाउली साहिब के इस्नान का चौरासी का नास होना फल गुरु अमर जी ने कहया है। अम्रितसर अस्नान का हरि हां नानक कस मल जांहि नाइऔ। इवै रामदास सरों तथा रामदास सरोवर नाते सम उतरे पाप कमाते। संतों रामदास जी का जो नावे सो कुल तरावे उधार ~~हस~~ होआ है जी-तीर्थ संग्रह,पृ०५

करूंगा एवं तीर्थ यात्रा की निर्विघ्न समाप्ति के लिए गणेश, नवग्रहों एवं अपने प्रिय देवों की पूजा करनी चाहिए तथा उन्हें धनदान करना चाहिए। इसके उपरान्त उसे यात्री का परिधान धारण करना चाहिए। तब ग्राम की प्रदक्षिणा करनी चाहिए, तब दूसरे ग्राम में, जो एक कोस से अधिक दूर न हो पहुंचना चाहिए। - - - अन्य तीर्थों की यात्रा में वह अपने घर में भी उपवास तोड़ सकता है। इसके उपरान्त उसे प्रस्थान कर देना चाहिए। दूसरे दिन उसे नए वस्त्र के सहित स्नान करके यात्री परिधान पहनाना चाहिए और पूर्वाभिमुख हो, अपराह्ण में, यथा सम्भव नंगे पैर प्रस्थान करना चाहिए।[1]

तीर्थ यात्रा की शास्त्रीय विधिका उल्लेख पं० तारा सिंह नरोत्तम ने तीर्थ संग्रह में किया है। नरोत्तम के अनुसार जब कोई पुरुष तीर्थ यात्रा करनी चाहे तो पहले दिन वस्त्रादि शुद्ध करने चाहिए। दूसरे दिन भजन पाठादि नित्य कर्म के उपरान्त ब्राह्मणों, अतिथियों को प्रसाद छकाकर मन में तीर्थ के स्वामी गुरु जी का ध्यान कर यात्रा के समय प्रसाद लेकर गुरु साहब जी के सम्मुख खड़ा हो जाए और फिर प्रथम गुरु से ले दसम गुरु पर्यन्त अरदास में इनकी स्तुति करे और दोनों हाथ जोड़कर कहे कि आप की यात्रा को जा रहा हूं रास्ते में गुरुमुखों का मेल, स्वास-सुवास चरणों में ध्यान कर, गुरु ग्रंथ साहब जी के आगे डंडोत वन्दना अनेक बार कर मुह से तीन बार वाहिगुरु शब्द का उच्चारण कर चला जाए।[2]

१- धर्म शास्त्र का इतिहास- डा० काणे, पृ० १३१६
विशेष विवरण के लिए कल्याण संमत २०१३-१४ के पृष्ठ २६ पर देखें।

२- जब कोई पुरष तीरथ यात्रा करनी चाहे पहिले दिन वस्त्रादि सुधी करे। दूसरे दिन भजन पाठादि नित्य करम कर पीछे सिखों को ब्राह्मणों अतिथियों को प्रसाद छकाय धन धान इसतरी पुत्रादिकों से चित का प्रेम उठाया। मन मो तीरथ के स्वामी गुरु जीका ध्यान करता हुआ यात्रा समे पतासे मिस्री मेवे प्रसाद औ भेटा लेकर गुरु साहब जी के सनमुष षड़ा हो। एक ओंकार वाहिगुरु जी की फते। स्री भगउती जी सहाइ। वार स्री भगउती जी की पातसाही। प्रिथम भगौती सिमर के गुरु नानक लइ धिआइ। - - - हाथ जोड़ अरदास कराय आप के तीरथों की यात्रा को जाता है--- गुरुमुष का मेल सनमुष का दिदार करवाणा। स्वास-स्वास अपने चरणों में ध्यान बषसणा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीर्थ यात्रा पर जाने वाले के लिए, वेद, पुराणों, उपनिषदों आदि में भी तीर्थ यात्रा की विधि बताई गई है। प्रत्येक धर्म ने अपने नियमों के आधार पर यात्रा विधि बनाई है। जिसका समर्थन नरोत्तम में भी मिलता है।

शैली

तारा सिंह नरोत्तम ने प्रथम गुरु से लेकर गुरु गोबिन्द सिंह तक प्रचलित ५०२ गुरुधामोंका उल्लेख किया है। गुरु तीर्थ-स्थानों का वर्णन एक क्रम से किया है। तारा सिंह नरोत्तम ने तीर्थ पर नई दृष्टि से विचार किया है। अर्थात् तीर्थ का पूरा विवरण दिया है जैसे आरम्भ में जिस गुरुद्वारे का वर्णन करने जा रहा है उसका उल्लेख तथा वह गुरुद्वारा जिस ज़िला, शहर, ग्राम, कोस[१], कोण-दिशा में है उन सब का उल्लेख यात्रियों की सुविधा के लिए किया है।

(पिछले पृष्ठ से)

> ऐसे अरदास कर गुरु ग्रंथ साहिब जीके आगे डंडौत-वंदना अनिक बार सरब कला समरथ - - - मथा टेक मुख से तीन वार वाहुगुरु कहता चल देवै। --
>
> गुरु तीर्थ संग्रह- पृ० २५१-२५२

१- थांते इस्ट के तीरथों में जो पुरुष यात्रा करनी चाहे उनको सुगमता से गुर तीरथों के जानने वासते जिस अंग्रेजी जिले वा राजसी के प्रसिध शहर वा ग्राम में है वहु सहर औ ग्राम-औ सहर ग्राम से जिस दिसा कोण में है अर जेते कोस हे वह दिसा कोण कोस पहले थान में लिषागे। जहां एक सहर ग्राम में ही एक गुरु के थान बहुत होवेंगे तहां एक थान में सहर का या ग्राम का नाम और थानों मे बिंदी होवेगी। ऐसे ही जहां पुजारी जिला एक होगा तहां भी बिंदी होवेगी। आगा पीछा गुरुद्वारे बनने का संबतों से तथा सूरय प्रकास की कथा से पुना गुरुद्वारों लोगों से जाना सो लिषा जावेगा। प्रसिध नगरवासी भी दूर देस के छोटे ग्राम का पता यात्रा वाले को बताय नहीं सकते। इस लीए कहीं कहीं प्रसिद्ध नगर से आगे गुरुद्वारे वाले ग्राम से ही अगले गुरुद्वारे वाले ग्राम के कोस दिशा भी पहले थान में लिषा जावेगा। - - - अर जो उहां साहबज़ादा उदासी निरमला निहंग सुथरा दिवाना या और कोई पुजारी होगा सो तीसरे थान में लिषा जावेगा। और जो उहां गुरु थान बनने का जनम लेने आदि कारन हैं

यदि एक से अधिक गुरु धाम एक शहर में है तो बार बार उस शहर का नाम न लिख कर संकेत अर्थात् बिन्दी डाल दी गई होगी और दूसरे नम्बर पर गुरुद्वारे का नाम, तीसरे स्थान पर जिस सम्प्रदाय के पुजारी उस समय महन्त रहे होंगे अर्थात् सिक्ख धर्म से सम्बन्धित उदासी, निर्मला, निहंग आदि पुजारियों का उल्लेख, गुरुद्वारा बनने का कारण तथा जो धर्मोपदेश दिया होगा। इन सब का विवरण इतने सुन्दर ढंग से किया है जिससे यात्रियों को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना न पड़े। इन के तीर्थ वर्णन का एक उदाहरण नीचे देखें।[१]

(पिछले पृष्ठ से)

और जो तहां गुरु जी की ग्रंथ साहब पोथी माला ससत्र हुकमनामा आसे जोड़े आदिक वसतु है अरजो किह जिस गुरुद्वारे के दरसन का फल है तथा जो कुछ उहा जुध बर साफ बचन बिलास हुये यह सब चौथे ब्रितांत के थान में लिषा जावेंगे। अथवा कारन औ फल सब के एक थान मों ही लिषा देते हैं।

तीर्थ संग्रह- पृ० ३-४

(१)-(क)- तलवंडी ग्राम लहौर से तीस कोस पछम (१)- जनमथान नानक्याणा साहिब। मेले दो कात की पुन्यां निरजला एकादसी (२)- पुजारी उदासी, (३)- माता त्रिपता पिता कालू जी के घर बेदी बंस मो संबत १६२६ में कातक सुदी पुन्या कातक प्रविश्टे तेरा गुरबार आधी रात को गुरु नानक जी का अवतार हूआ पिता ने सात बरस की अवस्था में पांधे पास बैठाए उसको जाल मोह घसमसि कर' इत्यादि उपदेस कीआ। काजी पास बैठा तिस को 'यक अरज' इत्यादि प्रारथना सिषाई। वैद को 'वैदा बैद सुवैद तूं' इत्यादि उपदेस कीआ। स्याणा मगवाइआं। तिस को कोई आषे भूतना इत्यादि उपदेस की आ। जनेऊ समै ब्राह्मण को दया कपाह इत्यादि उपदेस कीआ। अवतार होने का अधिक ब्रितांत अंत को लिषेंगे। (४)- वही, पृ० ६-१०

(ख)- (१)- बेर साहिब, (२)- सिषा उदासी दोनों, (३)- बेर की दातन करके गुरु जी ने बेईं नदी के किनारे गाडी उसका बड़ा ब्रिछ हो गया है। बेर साहब सहर से चार से कदम पछम है।(४) वही, पृ० १०

इसे देख कर नरोत्तम की वर्णन शक्ति की उत्कृष्टता समझी जा सकती है। क्रम संख्या का पूरा ध्यान रखते हुए इतिहास, भूगोल तथा समाजशास्त्र, की दृष्टि से विचार किया है। इसी प्रकार अन्य गुरुओं के तीर्थ स्थानों का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया है ताकि यात्री को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े। प्रत्येक गुरु तीर्थ-स्थान का वर्णन करने के उपरान्त उनका संक्षिप्त रूप दे देना नरोत्तम का प्रशंसनीय कार्य है।

नरोत्तम ने इस संग्रह में ५०२ गुरुधामों का वर्णन किया है, जिसमें ६४ गुरु नानक देव जी के, ७ गुरु अंगद देव जी के, ११ गुरु अमरदास जी के, ६ गुरु रामदास जी के, ३३ गुरु अर्जुन साहब जी के, ७६ गुरु-हरिगोबिन्द साहब जी के २६ गुरु हरि राय जी के, ५ गुरु हरिकृष्ण जी के, १०० गुरु तेग बहादुर जी के, और १६७ गुरु गोबिन्द सिंह के गुरु धामोंका वर्णन मिलता है। इसमें नरोत्तम ने सिक्ख धर्म में प्रचलित सभी सम्प्रदायों के पुजारियों का भी उल्लेख किया है अर्थात् उस समय गुरुद्वारों में कौन से पुजारी का आधिपत्य था। देखा जाएतो ३०८ गुरुद्वारों में सिक्ख पुजारी का, ३१ गुरुद्वारों में निर्मलों का, ५६ पर उदासी, २४ पर निहंग, एक गुरुद्वारे में सुथरे, एक में कूके एक में दीवानों का, १४ भले तथा ५६ पर अन्य पुजारियों का आधिपत्य था।

१० गुरुओं के तीर्थ स्थानों के वर्णन के उपरान्त नरोत्तम ने उनकी पुत्र-परम्परा का भी वर्णन किया है। उन साहबजादों के जन्म-स्थान, ~~विवाह-तिथि, तथा उनके~~ गुरुद्वारोंका और सम्प्रदायों का वर्णन किया है जैसे गुरु नानक देव जी का पुत्र श्री चन्द ने (वि० १५५१) में सुल्तान पुर में जन्म लिया और इन्हीं के द्वारा उदासी सम्प्रदाय ~~विकसि~~ विकसित हुआ।[१] १५६० में लक्ष्मी चन्द जी का विवाह सुल्तानपुर में हुआ। गुरु अंगद साहब जी के घर १५८१ संमत में खडूर ग्राम में दासू जी जन्मे। इसी प्रकार नरोत्तम ने अन्य सभी गुरुओं की पुत्र-परम्परा का पूरा वृतान्त लिखा है।

१- १५५१ में सावणवदी एकम सावण प्रविश्टे पांच को गुरु नानक जी के बड़े पुत्र श्री चन्द जी सुल्तान पुर जनमे।' वही, पृ० १७१

नरोत्तम ने पुत्र-परम्परा के पश्चात् गुरुओं की महलों[१] का उल्लेख भी किया है और गोत्र-जाति आदि पर भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। नरोत्तम के अनुसार दस गुरु चार कुल जातियों में हुए। इनका बेदी, भैल्ला, मल्ले तथा सोढ़ी वंश से सम्बन्ध था। नरोत्तम ने इस कृति में इन जातियों का विवरण भी विस्तार से दिया है। नरोत्तम का कहना है कि इन सब की जानकारी मनुष्यों के लिए आवश्यक है।

गोत्र विचार

गोत्र विचार करते समय नरोत्तम ने लिखा है कि यह प्रकरण अनुपयोगी होगा। इसमें उन्होंने पौराणिक सन्दर्भ और व्यक्तियों के नामों का उल्लेख कर अपने विचार दिए हैं। इनके अनुसार व्यक्ति आपस में मिलकर खाए तो उनकी जाति नहीं बिगड़ेगी अपितु उनमें समन्वय की भावना जन्म लेगी। नरोत्तम ने जाति-का विचार कर्म से माना जिस प्रकार का कार्य व्यक्ति करेगा उसी प्रकार की उसकी जाति होगी। जैसे जो वेद पढाते हैं वे वेदी कहलाते हैं, जो भंडार का काम करते हैं भंडारी कहलाते हैं। तथा भेद भाव को नरोत्तम ने नहीं माना तथा गोत्र आदि को कर्म से संघटित माना है।

यद्यपि आर्यों के समय से वर्ण के भेदों में वृद्धि होती गई और इस वर्गीकरण से वर्ग-समाज विकासोन्मुख हो रहा था परन्तु ऋग्वैदिक काल में एक ही कुटुम्ब में पुत्र ऋषि, वैद्य, दास-पुत्र भी ऋषि मुनि वैदिक मंत्रों की रचना कर सकते थे। इससे प्रतीत होता है कि पूर्व वैदिक काल में वर्ण भेद के जटिल बंधन नहीं थे परन्तु आगे चलकर वर्ण व्यवस्था के बन्धन दृढ़ होते गए।

वैदिक काल में ही मनुष्यों का वर्ण भेद हो गया। प्रत्येक मनुष्य का अपनी जाति के आधार पर उसका वर्णभेद माना गया। पं० तारा सिंह नरोत्तम के अनुसार वर्ण व्यवस्था में वर्ण चार ही हैं। पांचवा वर्ण नहीं है। नरोत्तम ने इन चार[२] वर्णों को दो प्रकार के कार्यों में बांटा है एक निर्वाह हेतु तथा दूसरा धर्म हेतु।

१- महलों - पत्नियां

२- 'काम चारों वरणों के दो प्रकार के हैं। एक निरबाह हेत दूसरे धरम हेत।'-

- तीर्थ संग्रह, पृ० २१६

नरोत्तम ने कार्यों को भी वर्णों में बांटा है। कई कर्म चारों वर्णों के तुल्य हैं जैसे परमेश्वर भक्ति, दया, क्षमा और सत्य भाषणादि। कई कर्म तीन वर्ण के तुल्य हैं जैसे पढ़ना, भजन दानादि।

नरोत्तम ने ब्राह्मण के ६ प्रकार के कार्य कहे हैं, पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पढ़ाना, यज्ञ करवाना और दान लेना। इनमें पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना धर्म हेतु कर्म है और पढ़ाना, यज्ञ कराना तथा दान लेना निर्वाह हेतु कर्म है।

क्षत्री के लिए शास्त्रों को धारण करना और प्रजा पालन करना कर्म है। यहां शास्त्रों को धारण करना निर्वाह हेतु है और प्रजापालन धर्म हेतु।

इसी प्रकार वैश्य के लिए कृषि, पशु पालन और वाणिज्य कर्म है। यह तीनों निर्वाह हेतु है। धर्म हेतु, पठन, भजन तथा दान आदि है। और शूद्र का धर्म सेवा कर्म है जो निर्वाह हेतु है।

नरोत्तम ने सम्पूर्ण वर्ण व्यवस्था को निर्वाह और धर्म हेतु कर्म में विभाजित कर दिया है। इसके अतिरिक्त नरोत्तम ने वर्ण संकट में अनुलोम और प्रतिलोम विवाह का भी उल्लेख किया है।

नरोत्तम ने पौराणिक सन्दर्भ देकर अपने भाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि प्राचीनतम समय में एक जाति दूसरी जाति के साथ अर्थात् उच्चवर्ण का निम्नवर्ण के साथ विवाह हो जाया करते थे।[१]

१- सिम्रितीयों में बरण संकरों के ही करणे लिषे है। वास्तव से रिषीऊं का भी दोष नहीं। सुनने वाले लोगों की बुधी में हीदोष है। जिनहुने पुराणों के वेस्या से बसिस्ट चंडाली से तिस के पोते परासर स्री वरी परासर के पुत्र व्यास देव जी की उतपती सुना। पुना क्षत्राणियों में व्यास से घ्रितरास्टर पंड क्षत्रीयोंकी अर सूद्री में बिदर सूद्र की। तथा कुंती में सूरय यम वायु इंद्र षत्रीयों से करण युधिस्टर भीम अरजन कीओं माद्री में आसुनी कुमारों से नकुल सहदेव की। द्रोपती में युधिस्टरादि पाचों पतीयों से विंध्यादि पांच क्षत्री पुत्रों की उतपती सुन ऐसा विचार ना कीआ ना करने है। इन पीछे लिषे ब्राह्मण षत्रीयों के समान हम भी जैसे कैसे अपना बंस चलावें-तीर्थ संग्रह, २०४

अनुलोम विवाह

नरोत्तम के अनुसार अपने अपने बरण की विवाही इस्त्रीयों से उपजी संतान सुद्ध वरण कहाती है। जैसे ब्राह्मणी से ब्राह्मण की संतान। क्षत्राणी से क्षत्री की संतान, बणिआणी से बणीए की संतान सूद्री से सूद्र की संतान। ये अनुलोमज है।[1] अर्थात् दाम्री वंश का दात्रीवंश के साथ विवाह होना अनुलोम रीति है।

प्रतिलोम विवाह

वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्य पुराणों में प्रतिलोम विवाह श्रद्धेय नहीं है। प्रतिलोम जन्य सन्तति धर्म-च्युत होती है। यह अनुलोम विवाह के विपरीत है। नरोत्तम के अनुसार क्षत्री से ब्राह्मणी औ वैश्य से दात्राणी ब्राह्मणी में शूद्र से, बणिआणी दात्राणी ब्राह्मणी में उपजे प्रतिलोमज है।[2] नरोत्तम के अनुसार प्रतिलोम अश्रेष्ठ है।

वर्ण व्यवस्था, गोत्र-जाति आदि के उपरान्त नरोत्तम ने गुरुओं के समय उपस्थित गुरु सेवकों का भी उल्लेख किया है। भाई बाला, मरदाना, प्रेमी सेवक बुढा, भाई लहणा, हंदाल, सालो, भाई गुरुदास, भाई बहलोक, भाई भगत, गंगाराम ब्राह्मण, बिधीचंद, पिराणा, जेठे तोते, तिलोके, गोरा जीवन मंगलु के पुत्र अरकाला, सुथराशाह, जयसिंह,घनईया, दयासिंह, धर्म सिंह, साहब सिंह, हिम्मत सिंह और मोहकम सिंह प्रमुख सेवक गुरु कुल के समय में उपस्थित थे और निष्काम भाव से सेवा में संलग्न रहा करते।

पंजाब में मुगल बादशाहों की पातशाही हटाने के लिए सिक्खों में भंगी, कनई, नकई, रामगढ़ीए, सुकुंच, डलेवालों की मिसल, निशानवाली मिसल, शहीद वालीमिसल, करोड़ीओं की मिसल, फरजुला पुरीओं की मिसल, आलू वालीया की मिसल तथा फूल की मिसल प्रचलित हो गई। इन सब सिक्खों में सबसे अधिक प्रबल और प्रतापी

१- तीर्थ संग्रह, पृ० २१०

२- वही, पृ० २११

रणजीत सिंह अम्र हुआ। इन्होंने खालसे पंथ का बड़ा नाम बढ़ाया और गुरुस्थानों की सेवा की तथा गुरु वंश के लोगोंको बड़ा मान दिया।

तदन्तर नरोत्तम ने गुरु सिक्खों के समय से प्रचलित उन सभी बादशाहों का भी वर्णन किया है वे किस समय गद्दी पर बैठे और कब उनकी मृत्यु हुई। इन सब के उपरान्त गुरुओं के शस्त्र वस्त्रादि का भी वर्णन बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

निष्कर्ष यह है कि तीर्थ संग्रह नरोत्तम के गुरुमत विचारधारा सम्बन्धी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि गुरुवाणी की व्याख्या ही उनके जीवन का मन्तव्य था परन्तु नरोत्तम धार्मिक तत्व के सच्चे खोजी के रुप में भी हमारे सामने आते हैं। जनसमूह के मार्ग प्रदर्शन करने के लिए गुरु तीर्थ संग्रह लिखा क्योंकि इनका विचार क्षेत्र गुरुवाणी और सिक्ख इतिहास से रहा है। इस लिए इन्होंने गुरु तीर्थ संग्रह में ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा सिक्खों के गुरुओं के पवित्र स्थान, जीवन सम्बन्धी घटना, नाम, पता, पूरा वृतान्त १० गुरुओं का लिखा है।

तारा सिंह नरोत्तम ने इस कृति में तीर्थ महिमा, तीर्थ दान, तीर्थ यात्रा लाभ तीर्थ यात्रा विधि का उल्लेख भी किया है। नरोत्तम की ग्रंथ योजना बड़ी प्रभावित है अर्थात् गुरु तीर्थ स्थान के वर्णन करने के उपरान्त उनका संक्षिप्त रुप दे दिया है। जिससे नरोत्तम की गुरुओं के प्रति अटूट श्रद्धा दिखाई देती है।

नरोत्तम की प्राचीनतावादी प्रवृत्ति और नई दृष्टि का सूचक ग्रंथ है। इसमें नरोत्तम ने 'तीर्थ' पर नई दृष्टि से विचार किया है। सिक्ख इतिहास में प्रसिद्ध अथवा अप्रसिद्ध गुरु धामों की आवश्यक जानकारी नरोत्तम ने दी है। इस पुस्तक को देखने से ज्ञात होता है कि नरोत्तम ने स्वयं घूम-घूम कर तीर्थों का यह विवरण दिया है। यद्यपि यह ग्रंथ आज उपलब्ध न होता तो सिक्खों को सभी गुरुद्वारों के बारे में जानकारी प्राप्त करना मुश्किल हो जाता। निश्चय ही इस क्षेत्र में नरोत्तम की देन बड़ी प्रशंसनीय है। इस प्रकार की रचना पंजाब में दूसरी नहीं है। अन्ततः इस रचना में इतिहास भूगोल और श्रद्धा का अद्भुत समन्वय हुआ है।

अध्याय- चतुर्थ

पंडित तारा सिंह नरोत्तम: कृतित्व

खण्ड तीन

गुरु गिरारथ कोश

- कोश परिभाषा, कोश महत्व, कोशकार, कोश का प्राचीनतम रुप, कोश रचना, तीन काल (प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक)
- तारा सिंह नरोत्तम कोशकार, कृति परिचय: नरोत्तम कोश: दृष्टिकोण, कोश रीति, शब्दार्थ विवेचन कोशकारिता की कसौटी पर

कोश, कोश शैली, शब्दार्थ विवेचन, कोश कारिता की कसौटी पर

कोश किसी भी भाषा के इतिहास में 'मील-पत्थर' का काम देते हैं। शब्द के अर्थका ज्ञान कोशों द्वारा ही सुलभ हो सकता है। भाषा की प्रवृत्ति विकास की ओर जाने की है। एक देश का दूसरे देशों के सम्पर्क में आने से विदेशी शब्दों के अर्थ जानने के लिए, उनकी व्युत्पत्ति, उच्चारण, प्रयोग आदि के लिए कोशों का निर्माण किया जाने लगा क्योंकि कोश विविध ग्रंथों में बिखरी हुई विशाल सामग्री का संकलित रुप है।

यद्यपि कोशों की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही थी और प्राचीन कोश रचना प्रक्रिया आधुनिक कोश शैली से भिन्न थी। आधुनिक कोशों का उचित निर्माण और विकास पाश्चात्य विद्वानों के सम्पर्क मेंआने के उपरान्त ही हुआ। कोश शब्द का आधुनिक प्रयोग साधारण शब्द संग्रह करने तक ही सीमित नहीं अपितु पारिभाषिक और दूसरे विषयों तक बढ़ गया है जिसमें वर्णमाला क्रम है।

कोश परिभाषा

कोश का साधारण लक्षण है'कोश: शब्दस्य संग्रह।' शब्दों के संग्रह को[१] कोश कहते हैं। कोश दो रुपों में लिखा मिलता है। (१)- कोश, (२)- कोष। संस्कृत और हिन्दी में कोश शब्द के बहुत अर्थ देखने को मिलते हैं। कोश के तीन अर्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। एक ख़ज़ाना, दूसरा म्यान तथा तीसरा शब्दों और अर्थों का संग्रह। यहां हमारा अभिप्राय शब्दों और अर्थों के संग्रह मात्र से है। शब्दों और अर्थों का संग्रह, उनकी व्युत्पत्ति, लिंग भेद आदि कोश में ही देखने को मिल सकते हैं। कोश कार्य सब प्रकार के साहित्यिक कार्यों से दुष्कर और परिश्रम साध्य है।

१- कुछ लोग तालव्य'श' से और कुछ मूर्द्धन्य'ष' से लिखते हैं। भिन्नता नाम की इनमें कोई वस्तु नहीं।

इसकी उपयुक्त परिभाषा रामचन्द्र वर्मा अपनी पुस्तक 'कोश-कला' में इस प्रकार देते हैं:-

'शब्द कोश का वास्तविक महत्व उसमें दिए हुए अर्थों और व्याख्याओं पर आश्रित है, क्योंकि उसका मुख्य उपयोग अर्थ और परिभाषा या व्याख्या जानने के लिए ही होता है। कभी कभी लोग शब्दों के शुद्ध रूप, अक्षरों, निरुक्ति लिंग, शब्द भेद आदि जानने के लिए भी कोशों का सहारा लेते हैं अत: हम कह सकते हैं कि शब्द वस्तुत: शब्द कोश के शरीर मात्र के रूप में होते हैं उसके प्राण या आत्मा का स्थान अर्थों और व्याख्याओं को ही प्राप्त है।[१]'

सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो शब्द और अर्थ आपस में इस प्रकार सिमटे रहते हैं। जिस प्रकार शरीर से आत्मा। और कोश के माध्यम से भाषा सम्बन्धी अनेक गूढ़ रहस्यों का उचित ज्ञान प्राप्त हो सकता है। शब्द के अर्थ का ज्ञान मुख्यत: हमें कोश के द्वारा ही सुलभ हो सकता है। यदि हम शब्द का व्याकरणिक रूप देखना चाहे तो वह हमें उत्तम कोश में ही उपलब्ध हो सकता है। इसी बात का समर्थन हिन्दी के अज्ञात कोशकार पं० तारा सिंह नरोत्तम भी करते हैं कि 'कोश अर्थ बोधक ग्रंथ को कहते हैं अर्थों का पूर्ण ज्ञान जो कराए वही कोश है। और वह कोश में, व्याकरण को भी उतना ही महत्व देते हैं जितना अर्थ को। कोश में शब्दों का अर्थ अभिधा के माध्यम से उचित मानते हैं।[२]

कोश महत्व

भाषा और साहित्य के प्रचार, प्रसार आदि के लिए कोश की अनिवार्यता अपेक्षित है। भाषाओं की प्रवृत्ति परिवर्तन और अर्जन की है जिससे वे जहां तक हो सके अपना रूप बदलती रहती है और इस बदलते हुए स्वरूप के लिए नित्य नए कोशों

१- कोश कला- रामचन्द्र वर्मा- पृ० ११३

२- देखिए: गुरु गिरारथ कोश- पं० तारा सिंह नरोत्तम, पृ० १-२।

का निर्माण हो रहा है क्योंकि साहित्यकार नए अर्थको जन्म देता है और कोशकार को उस नए अर्थको कोश में स्थान देकर मान्यता देनी पड़ती है। अत: एक शब्द के अनेक अर्थ बन जाते हैं और अनेक अर्थों में कितने नए भाव स्थान ले लेते हैं अत: अर्थ भी एक प्रकार से शब्द हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कोश एक ऐसे विषम ~~विषय~~ का भाषा वैज्ञानिक विवेचन है। इसके लिए बहुत ही विद्वान, बहुज्ञ, सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्न कोशकार की आवश्यकता होती है जो कोश सम्बन्धी समस्याओं का उचित समाधान कर शब्द-अर्थ की मीमांसा कर सके।

कोश कार

रामचन्द्र वर्मा ने कोश कला सम्बन्धी सिद्धान्तों को निर्धारित[१] करते समय कोश कार के कुछ गुणों का उल्लेख करते हैं जो संक्षेप में इस प्रकार है।

१- कोश रचना के समय अच्छे कोशकार को बहुत सी बातोंका ध्यान रखना पड़ता है। उसे 'मधुकर वृत्ति' धारण करनी पड़ती है।

२- उसे अनेक भाषाओंका तो ज्ञान रखना पड़ता ही है-- उनके शब्दों के रूपों और बनावट का भी अर्थात् भाषाओं[२] की भिन्न भिन्न प्रकृतियों का भी ज्ञान और ध्यान रखना पड़ता है।

३- कोशकार की धारणा ~~श~~ शक्ति भी यथेष्ट प्रबल होनी चाहिए। उसमें सूक्ष्म विवेचन की भी प्रबल शक्ति होनी चाहिए।

४- शब्दों के अर्थ या व्याख्याएं देने के समय वह इस बात का ध्यान रखता है कि कहीं अव्याप्ति या अतिव्याप्ति का दोष न आने पावे। - - -

---

१- कोश कला- रामचन्द्र वर्मा- पृ० १२-१५

२- अनेक भाषाओंका ज्ञान तो लगभग असंभव है। परन्तु एक से अधिक भाषाओं का ज्ञान कोशकार के लिए अपेक्षित है। हिन्दी के कोशकार के लिए संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। अंग्रेजी तथा अरबी फारसी भाषाओंका भी व्यावहारिक ज्ञान अपेक्षित है।

अपने क्षेत्र तथा विस्तार का ध्यान रखते हुए थोड़े में बहुत सी जानकारी करानी पड़ती है। इन सब बातों के लिए उसमें प्रबल शक्ति होनी चाहिए और भाषा पर उसका पूरा और निर्भ्रान्त अधिकार होना चाहिए।

५- उसे व्याकरण, भाषा विज्ञान और साहित्य के सभी अंगों, उपांगों से भी परिचित होना पड़ता है। सारांश यह है कि उसका बहुज्ञ, बहुदर्शी, बहुश्रुत तथा परम अध्ययनशील होना आवश्यक है।

कोश का प्राचीनतम रूप

कोशों की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। यद्यपि प्राचीन काल में कोश रचना प्रक्रिया आधुनिक काल से भिन्न थी परन्तु फिर भी हमें कोश सम्बन्धी पूरी जानकारी वहां से उपलब्ध हो सकती है। प्राचीनतम कोश आज अप्राप्य है परन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर कोशों के प्राचीनतम रूप के बारे में थोड़ा बहुत अनुमान किया जा सकता है।

(क)- निघंटु

विद्वानों की ऐसी धारणा है कि वैदिक वांग्मय का सबसे प्राचीन कोश 'निघण्टु' है। 'निघण्टु' कोश का ही पर्याय है। 'निघण्टु' का रचयिता कौन है यह आज भी विवादास्पद है परन्तु यास्क इसके व्याख्याता हैं निरुक्त[१] इनकी व्याख्या कानाम है। भारतीय कोश विधा का आरम्भिक रूप इसी में ही देखा जा सकता है। इसमें वैदिक संहिताओं के कठिन शब्दों का संकलन किया गया है। निघंटु पर्यायवाची शब्द एक स्थान पर संकलित कर दिए गए हैं।

निघंट गद्य में है छंदोबद्ध नहीं है। शब्द संकलन पद्धति की दृष्टि से इसमें पर्यायवाची अनेकार्थक और विरल शब्दों का संग्रह मिलता है। इन्हें हम चार भागों में बांट सकते है --

---

१- विस्तार के लिए देखें- Etymology of Yaska डा० सिद्धेश्वर वर्मा

एक समानार्थक शब्द, दूसरा एकार्थक अथवा पर्यायवाची भिन्न भिन्न शब्दों का संग्रह; तीसरा अनेकार्थक शब्दों का संग्रह और चौथा देवताओं के प्रमुख और अप्रमुख नामों का संग्रह।[१]

निघंटु की शैली शब्द संकलन, तथा वर्गीकरण आदि को देखते हुए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किन्हीं प्राचीन रचनाओं को निघुंट का आधार बनाया गया है।

कोश रचना: तीन काल

कुछ विद्वानों ने कोशों का वर्गीकरण अमर कोश को माध्यम मानकर किया है। कोशों को अमर कोश से पूर्व, अमर कोश काल और इससे परवर्ती तीन वर्गों में बांटा है। अर्थात् अमरकोश को केन्द्र में रख कर सम्पूर्ण संस्कृत कोशों का अध्ययन किया गया है। अमरकोश से पूर्ववर्ती कोशों का उल्लेख नहीं मिलता।

कुछ विद्वानों ने ऐतिहासिक वर्णनात्मक आदि की अपेक्षा सामान्य मिला-जुला वर्गीकरण किया है। इनमें से मुख्य भोलानाथ तिवारी हैं। आपने 'भाषा' में कोशों की परम्परा के बारे में बताया है। इनके अनुसार कोशों की रचना या कोश बारह तेरह प्रकार से लिखे गए हैं जिन्हें इन्होंने पर्यायवाची कोश अथवा शब्दार्थ की दृष्टि से इस कोश का अर्थ है शब्द और उनके अर्थ तथा उनका लिंग विधान, अनेकार्थी कोश अथवा एक एक शब्द के अनेक अनेक अर्थ किए गए, हिन्दी-हिन्दी कोश, हिन्दी-अन्य भाषा कोश, पारिभाषिक शब्द कोश, व्यक्ति तथा कृति कोश, बोली कोश, मुहावरा कोश, चरित्र कोश, विषय कोश, विश्व कोश आदि शीर्षकों में कोशों को विभक्त किया है।[२]

सुविधा के लिए कोशों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:-

१- विस्तार के लिए हिन्दी शब्द सागर की प्रस्तावना देखें।

२- विशेष विवरण के लिए भाषा- ६७-६८ देखें।

प्राचीन काल

कोश परम्परा में सब से प्राचीन कोश `निघण्टु` है। `निघण्टु` का प्रभाव परवर्ती कोशकारों पर पड़ा और संस्कृत के अमरकोश, मेदिनी, हेम, वैजयन्ती आदि कोशों द्वारा हिन्दी कोश बहुत प्रभावित हुए।

अमर कोश

संस्कृत का अमरकोश कृत अमर सिंह का सर्वाधिक लोक प्रिय था। अमरकोश का दूसरा नाम `लिंगानुशासन` है क्योंकि इसमें लिंग विवेचन पर प्रकाश डाला गया है। अमर कोश में शब्दों का संकलन पर्यायवाची क्रम से है। अर्थात् समान अर्थ वाले शब्दों को एक साथ रखा गया है। इस कोश की रचना पद्यात्मक है।

अमर कोश के अतिरिक्त संस्कृत में व्याडि का `समानार्थी` कोश` भागुरि का `म`त्रिकांड`, अमरदत्त की `अमरमाला`, वाचस्पति का `शब्दार्णव` `हलायुध का `अभिधान रत्नमाला`, मेदिनी कोश- नानार्थ कोश, यादव प्रकाश का `वैजयन्ती कोश` आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

पाइय लच्छी नाम माला

संस्कृत की यह कोश परम्परा हिन्दी में प्राकृत और अपभ्रंशों कोशों के माध्यम से चली आई। प्राकृत में `पाइय लच्छी नाम माला` प्राकृत का प्रसिद्ध निरुक्त और कोश ग्रन्थ है। इसमें तत्सम् तद्भव और देश्य शब्दों का महत्वपूर्ण संग्रह है।[1] `धनपाल` ने यह ग्रन्थ सन् ९७२ ई० में लिखा।

देशीनाम माला

इसी प्रकार अपभ्रंश में सबसे प्रसिद्ध `हेमचन्द्र का देशी नाम माला है`। इसमें अनेक ऐसे शब्द हैं जो उपलब्ध प्राकृत-साहित्य में नहीं मिलते। धनपाल के कोश की तरह इसमें भी प्राकृत शब्दों के अर्थ संस्कृत में दिए गए हैं।

१- प्राकृत और उसका साहित्य- हरदेव बाहरी,- पृ० १४०

इस प्रकार परवर्ती भारतीय साहित्य पर प्राकृत का विशेष प्रभाव रहा है। संस्कृत की कोश परम्परा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं से होती हुई आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में आई। हिन्दी में अंग्रेजी से प्रभावित साहित्य से पहले का सम्पूर्ण साहित्य कई शताब्दियों तक प्राकृत से प्रेरणा पाकर विकसित होतारहा।

मध्यकालीन

मध्यकालीन कोश संस्कृत के अमर कोश से ही प्रभावित है। मध्यकालीन कोशों के अन्तर्गत पर्यायवाची कोश, अनेकार्थी कोश, एकाक्षरी कोश आते हैं। इनमें मुख्य कोश `डिंगल नाम माला- १५६१ ई०, छन्दोबद्ध रचना, २७ छन्दों का छोटा सा ग्रंथ है। `मानमंजरी नाममाला १५६८ ई० अमरकोश का आधार, गंगादास नामक व्यक्ति ने इस कोश के सभी शब्दों को १० वर्गों में विभाजित किया था। `अनेकार्थ मंजरी` १५६८ ई०, गरीबदास की 'अनभै प्रबोध' १६१५ ई०, भीखजन का `भारती नाम माला- १६२६ ई० नंददास की नाम माला पर आधारित बद्री- बद्रीदास का मानमंजरी नाम माला १६६८ ई० अनेकार्थ नाम माला, १६३०, प्रकाश नाम माला १६६७ ई०, नागराज पिंगल का १७०० ई० `नागराज डिंगलकोष`, धातुओं का प्रथम कोश रत्नजित का `भाषा धातुमाला` - १७१३ ई०, भिखारी दास का `नामप्रकाश`, हरीराम जौहरी का १०२ छंदों का कोश `लघुनामावली` कुमाण कवि का १७८० में `अमर प्रकाश`, हरिश्चन्द्र हरि चरण दास का १७८१ ई० में `कर्णाभरण नाम माला`, `अमर कोष[1] पर `आधारित` उमराव कोष १८०५ ई० ` धनजी नाम माला १८२० ई० आदि मध्यकालीन कोश परम्परा के अन्तर्गत है आते हैं। मुख्यत: यह अमरकोश आदि से प्रभावित छन्दोबद्ध कोश है।

आधुनिक कोश कला

भारत में आधुनिक कोश परम्परा का प्रादुर्भाव यूरोपीय सम्पर्क के बाद हुआ। हिन्दी में ऐसे कोशों की परम्परा १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई। १८-१६ वीं शताब्दी कोश-निर्माण के लिए उपयोगी रही। कोश परम्परा का आधुनिक रूप

१- विशेष विवरण के लिए भाषा- ६७-६८ देखें।

बहुत विस्तृत है। अत: कोश विद्या का उचित आरंभिक बीजवपन पाश्चात्य कोशों से हुआ। प्राचीन कोशों में नाम, अव्यय और धातु आदि का संग्रह होता था और उस समय कोशों का प्रयोग कवि साहित्य, काव्यशास्त्रादि के पाठकों के शब्दभंडार की वृद्धि के लिए होता था। उस समय का रुप पद्यात्मक था क्योंकि इन्हें कंठस्थ करना सरल होता था। परन्तु आज इसका रुप कुछ और हो गया है।

आधुनिक कोश कला[1] अकारादि क्रम से आरम्भ हुई।[2] पद्यात्मक की अपेक्षा गद्यात्मक कोश लिखे गए।[3] कोशों में व्युत्पत्ति, [illegible] दी जाने लगी।[4] संदर्भों को महत्व दिया जाने लगा।[5] एक शब्द के प्रत्येक संभव अर्थ का विवेचन किया जाने लगा। अर्थात् कोशोंका भाषा वैज्ञानिक अध्ययन आधुनिक कोशों में किया जाने लगा। आधुनिक कोशों में ज्ञान कोश के रुप में नई धारा विकसित हुई जिसका उत्कृष्ट रुप विश्व कोश है। इस समय के अन्तर्गत आने वाले हिन्दी-हिन्दी कोश, हिन्दी अन्य भाषा कोश, पारिभाषिक शब्दकोश, व्यक्ति तथा कृति कोश, बोली, मुहावरा, चरित्र आदि कोश आते हैं।

१- हिन्दी शब्द सागर इतिहास

अच्छे और व्यवस्थित कोश बनाने का निर्णय सर्वप्रथम नागरी प्रचारिणी सभा ने १८९३ ई० में किया परन्तु १९०४ ई० में कलकत्ते में हिन्दी साहित्य सभा ने एक बड़े कोश बनाने का कार्य आरम्भ भी कर दिया था किन्तु वहाँ सफलता न मिलने पर नये सिरे से १९०८ में नागरी प्रचारिणी सभा ने फिर से कार्यआरम्भ किया और अन्त में 'हिन्दी शब्द सागर' श्याम सुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, रामचन्द्र वर्मा आदि विद्वानों के सहयोग और संपादकत्व से १९१६, १९२०, १९२५, १९२८ में प्रकाशित हुआ। भारतीय भाषाओं में यह पहला ही कोश था जो आधुनिक कोश कला की कसौटी पर पूरा उतरता था। पीछे इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए।

२- प्रमाणिक कोश

हिन्दी शब्द सागर के पश्चात् जितने भी कोश प्रकाशित हुए उन सब में से मुख्य रामचन्द्र वर्मा का 'प्रामाणिक कोश', शब्द सागर से अधिक अच्छा है। इसके उपरान्त थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ कोश प्रकाशित होकर सामने आए। उनमें से मुख्य 'भाषा' शब्द कोश', 'प्रामाणिक शब्द कोश,' हिन्दी राष्ट्र भाषा कोश, 'आदर्श हिन्दी शब्द कोश,' बृहत हिन्दी कोश आदि में से राम चन्द्र वर्मा का 'प्रामाणिक शब्द कोश' अधिक महत्वपूर्ण है। इन सब के अतिरिक्त एक 'मानक-हिन्दी कोश' पाँच भागों में हमारे सम्मुख आया जिसमें अन्य कोशों की अपेक्षा सामग्री अधिक है।

भारत की कोशकारिता की इस विशाल परम्परा में एक नया अध्याय पं० तारा सिंह नरोत्तम ने जोड़ा है। पं० तारा सिंह नरोत्तम ने यद्यपि एक विषय पर ही अपनी दृष्टि रखते हुए गुरुवाणी व्याख्या सम्बन्धी हिन्दी भाषा के दो कोशों का निर्माण १८६६ ई० अर्थात् संमत १९२३ और संमत १९५१, १९५३ में किया।

१- सुरत कोश (१८६६ ई०):- हिन्दी में नरोत्तम का यह पहला कोश है जो आज अप्राप्य है। इसमें चार हजार श्लोक हैं।

२- गुरु गिरारथ कोश:- संमत १९५१, १९५३- यह हिन्दी भाषा में दो भागों में उपलब्ध है। तारा सिंह नरोत्तम का यह कोश प्रौढावस्था की रचना है। इस कोश में भाषा शास्त्रीय दृष्टिकोण रखा गया है। जिसका अनुसरण परवर्ती युग के कोशकारों ने किया है।

डा० भोला नाथ तिवारी ने हिन्दी कोश-परम्परा का विवेचन करते समय गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी भाषा के इन कोशों की ओर ध्यान ही नहीं डाला। जिससे आज हमारे से पूर्व पं० तारा सिंह नरोत्तम अछूते रहे और यह हिन्दी के प्रथम अज्ञात कोशकार के रूप में हमारे सामने आते हैं क्योंकि हिन्दी भाषा में इससे पुराना कोश आधुनिक कोश शैली का कोई नहीं है। भारत में हिन्दी भाषा-भाषियों

द्वारा आधुनिक युग का सर्वप्रथम कोश मुंशी राधा लाल माथुर का १८७३ ई० में तैयार 'शब्द कोश' को बताया गया है।[1]

जिस प्रकार पंजाबी भाषा में गुरुवाणी या आदि ग्रंथ को लेकर गुरुवाणी के शब्दार्थ के लिए गुरुवाणी कोश बने। हिन्दी में भी विभिन्न कृतियों पर अलग से कोश लिखे गए। तुलसी की विनय पत्रिका के मुख्य शब्दों का 'विनय कोश', 'ब्रज भाषा सूर कोश,' 'जिसमें सूरदास के सम्पूर्ण शब्दों के अतिरिक्त अन्य शब्द भी डाले गए हैं। इसी प्रकार हरदेव बाहरी का प्रसाद साहित्य कोश। हिन्दी साहित्य कोश आदि प्रमुख है। फलत: इसी प्रकार 'गुरु ग्रंथ साहिब कोश,' गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश' कुछ शब्द कोश न होकर ज्ञान कोश बन गए हैं। जर्मन विद्वान[2] डा० ट्रम्प गुरु ग्रंथ साहिब को 'प्राचीन हिन्दुई बोलियों का कोश कहते हैं।

तारा सिंह नरोत्तम: कोशकार: पंजाबी शब्दकोश

हिन्दी के समान पंजाब में भी कुछ कोशों ने प्राचीनतम कोश शैली को अपना लिया था परन्तु अधिकतर कोशकारों ने नवीनतम कोश रचना प्रक्रिया को अपना लिया है। इस कार्य का श्रेय पाश्चात्य विद्वानों को है। पंजाबी में भी अन्य भाषाओं की तरह एक भाषी कोश, दो भाषी कोश, भाषा कोश, पारिभाषिक कोश, लोकोक्ति मुहावरा कोश आदि से देखने को मिलते हैं। ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया में पंजाबी भाषा में उपलब्ध डिक्शनरी के बारे में चर्चा की है। उसके अनुसार पंजाब में इसाइयों के सम्पर्क में आने से पंजाबी द्विभाषी कोश और व्याकरण सर्वप्रथम ~~१८३७~~ १८४६ से आरम्भ हुए।[3] इसके पश्चात् लुधियाना प्रेस, ब्रिटिश मिशन की तरफ से रोमन अक्षरों में पंजाबी का पहला कोश सन् १८५४ ई० में प्रकाशित हुआ। जो आधुनिक कोश प्रणाली से प्रभावित था। इसी बात का समर्थन ~~हम~~ शमशेर सिंह अशोक 'पंजाबी शब्द कोश' के

१- धर्मयुग- १७ मार्च, १९६३

२- आदि ग्रंथ- अंग्रेजी विद्वान- डा० ट्रम्प- भूमिका, पृ० ७

के बारे में बताते हुये कहते हैं कि पंजाबी-इंगलिश की पहली डिक्शनरी जो नई प्रणाली के अनुसार थी सन् १८५४ में पंजाबी के प्रसिद्ध यूरोपियन विद्वान डाक्टर न्यूटन और जानवीयर के प्रयत्नों का फल थी।[1] इसी बात का समर्थन ग्रियर्सन द्वारा खोज की हुई कोश में देखते हैं।[2] ग्रियर्सन ने 'डिक्शनरी आफ दी पंजाबी लैंग्वैज (१८५४)' ए कम्पलीट डिक्शनरी आफ दा टर्म्स १८७६ ई० 'पंजाबी कोश भाया सिंह कृत १८६५, 'अंग्लो गुरुमुखी डिक्शनरी' १८६७ ई० कृत सालिग्राम लाला और अंग्लो गुरुमुखी बोलचाल लाहौर १६०० ई० के नाम बताए हैं परन्तु इनके अतिरिक्त कुछ और महत्वपूर्ण कोश भी पंजाबी में उपलब्ध है जिन्हें हम प्रामाणिक मान सकते हैं जो पंजाबी अंग्रेजी और अंग्रेजी पंजाबी कोशों में महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है। पंजाबी भाषा के कोशकारों में भी नरोत्तम का स्थान सर्वोपरि है। पंजाबी के प्राचीनतम कोशों की सूची से यह तथ्य

(पिछले २८० से)

3- A dictionary, English and Punjabee outlines of grammer also dialogues, English and Punjabee with grammer and explanatory notes by Captain Starkey assisted by Bussawa Singh." Calcutta, 1849.
-Linguistic Survey of India-by G.A.Grierson, Vol.IX, Part I, p.622.

२- पंजाबी दुनिया- जनवरी १६६०, 'पंजाबी शब्द क्रम कोश' - शमशेर सिंह अशोक, पृ० ११०

1. (a)- A dictionary of Panjabee language prepared by a committee of the Lodiana Mission. Lodiana 1854. This dictionary was founded on a collection by Newton. Rev.J. and was completed by Janvier and others. The Panjabi words are printed in the Gurmukhi and Roman characters in the order of the Gurmukhi alphabets.

(b)- Muhammad Abdul Ghafur- A complete dictionary of of the terms used by the criminal tribes of the Panjab, together with a short History of each tribe and names and places of Residence of individual members. Lahore 1879.

(c)- Bhai Maya Singh- The Panjabee dictionary prepared by Munshi Gulab Singh and ~~she~~ sons, under the patronage of the Panjab Governments compiled and edited by Bhai Maya Singh, member Khalsa college, Council. And passed by Dr.H.M.Clark, of Amritsar- In behalf of the Panjab Text Book committee Lahore, 1895. The Panjabi words are printed in the Roman and in the Gurmukhi character, and are arranged in the order of the English alphabet.

(d)- Saligram Lala- Anglo Gurmukhi dictionary-Lahore, 1897. Anglo Gurmukhi Bolchal- Sentence in English and in Panjabi Lahore, 1910.

-Linguistic Survey of India,- by G.A.Grierson, vol.IX, Part-I.

स्पष्ट हो जाएगा।[१]

तारा सिंह नरोत्तम की कोश-कारिता पर विचार करने से पूर्व पंजाब (पंजाबी) की कोश-परम्परा पर थोड़ा सा विचार कर लेना चाहिए। गुरुबाणी से सम्बन्धित एक भाषा कोश-

आदि ग्रंथ श्री गुरुग्रंथ साहिब जी दे पर्याय- सुते प्रकाश	१८६८ (१८६८ ई०)
पर्याय श्री गुरु ग्रंथ जी	चन्दा सिंह सिंह १६०२
पर्याय श्री ग्रंथ साहिब जी आदि ३ भाग-	हरी सिंह गुरदित्त सिंह, १६०७
पर्याय श्री ग्रन्थ साहिब जी आदि-	गोबिन्द दास, १६२६
पर्याय श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी	शाम सिंह, १६३६
पर्याय श्री दसम ग्रन्थ	बाबा ठाकुर सिंह —— ?

इसी प्रकार भाषा कोश-

कोश आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब-	बिसन दास उदासी, १८६२
श्री गुरु ग्रंथ कोश दो भाग-	हजारा सिंह, १८६६
गुरुस्वामी अद्भुती कोश	महिताब सिंह, १६२३
श्री गुरु शब्द प्रकाश	कौर सिंह, १६२६
गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश	काहन सिंह, १६३०
गुरु ग्रंथ कोश	वीर सिंह, १६३६
कोश श्री दशम ग्रन्थ	लाल सिंह, १६४६
गुरुवाणी कोश	प्यारा सिंह पदम, १६६०

ऊपर वर्णित सूचि जो हमें पंजाबी कोश सम्बन्धी देखने को मिली है वह सम्पूर्ण नहीं। उसमें न तो कवि बिसनदास उदासी कृत कोश आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिब, १८६२ का उल्लेख है और न ही भोला नाथ तिवारी ने पं० तारा सिंह नरोत्तम हिन्दी के अज्ञात कोशकार का उल्लेख हिन्दी-कोश परम्परा में कहीं किया है। पं० तारा सिंह

१- भारतीय भाषा विज्ञान की भूमिका- सम्पादक डा० भोला नाथ तिवारी, पृ० ४२० पर देखें।

ਗੁਰੁਗਿਰਾਰਥਕੋਸ਼

ਉਟਉ. ਕ੍ਰਿ. ਉਟੇ ਸ. ਡਾਈਕਰੀਦ
ਉਹੋਇ

ਉਪਾਉ. ਏ. ਜਤਨ ਸ. ਪ੍ਰਾਨੀਕਉ
ਨਉਪਾਉਕਰੋ।ਪੁਨ ਚਹੂੰਉਪਾਉ
ਮੁਕਤਿਕਾਕਰਣੋ।ਰਾਮਭਗਤੀਤੁ
ਪਭਗਜਤਨਮੁਕਤਿ ਕਾਕਰੈ, ਸ
ਤ੍ਰੂਵਸਕਰਨੇਕੇਸਾਧਨ ਸਾ। ੧
ਦਾਨ ੨ ਦੰਡ ੩ ਭੇਦ ੪ ਉਪਰਾਜ
ਨੀਤਿਕੇਉਪਾਯ।ਸਾਮ ਅਧੀਨ
ਗੀਕੇਬਚਨਕਹਨੇ। ਦਾਨ ਪਸੂ
ਧਨਪੁਤ੍ਰੀਆਦਿਕਦੇਨੇ। ਦੰਡ
ਮੁੰਡਕਰ ਸਤ੍ਰੂਕੋਸਜਾਦੇਣੀ। ਭੇ
ਦ ਸਤ੍ਰੂਕੇਸੰਬੰਧੀਓਂਤਥਾਮਿਤ੍ਰੋਂ
ਕੋਧਨਦੇਕਰਸਤ੍ਰੂਕੇਪਾਸੋਂਫੂਟ
ਪਾਦੇਨੀ, ਪੁਰਖਾਰਥ ਉਪਾਯਸੰ.

ਉਮਰਾਉ. ਏ. ਸਰਦਾਰੋਂ ਔਰ ਰਾ
ਜੋਕਿਨਾਮ ਅਰਬੀਮੇਂ ਅਮੀਰ
ਹੈ ਜਿਸਕਾ ਬਹੁਬਚਨਉਮਰਾਉ
ਹੈ।ਸਤ੍ਰਕਰਤੇਤਦੇਅਰਥੀਕਰਨ
ਜਾਂਦੇਹੈ ਉਮਰਾਅ.

ਉਸਾਰਉ. ਏ. ਪ੍ਰਕਾਸ ਸ. ਤਕਣਾ
ਸ਼ੀਘ੍ਰਤਉਸਾਰਉਲੈ

ਉਮਾਹਿਓ. ਏ. ਉਤਸਾਹਵਾਲੇ
ਭਏ ਹੈ ਸ. ਸਤ੍ਰਦੇਖੇਉਤਸਾਹਉਨੇ
ਦਕਉਮਾਹਿਓ

ਉਮਾਹਿਓ. ਏ. ਪੰ. ਉਤਸਾਹਵਾਨ
ਹੂਆ ਸ. ਉਮਾਹਿਓਹੀਓਮਿਲਨ
ਪ੍ਰਭਤਾਈ

ਉਪਾਰਿਓ. ਏ. ਪ੍ਰਗਟਹੂਆ ਸ. ਉ
ਪਾਰਿਓਸਭੁਸੰਸਾਰ

ਉਦਾਰਿਓ. ਕ੍ਰਿ. ਪ੍ਰਗਟਹੋਵਣੇ
ਸ. ਆਪੇਉਦਾਰਿਓਪੂਰਖ
ਪੂਰਨ

ਉਗਾਰਿਓ. ਪੰ. ਫਸਿਆਸ. ਪ੍ਰ

गुरु गिरारथ कोस:

उदउ० गु० उदै या भागै का उदउ होइ

उपाउ० दै० यतन य० प्रानी कौन उपाउ करै। पुना कछु उपाउ मुकति का करै। रटान भक्ति रुप कुछ यतन मुकति का करे, सत्रु वस करने के साधन साम? दान दान दन्ड ३ भेद ४ रुप राज नीति के उपाया। साम अधीनगी के बचन कहनै। दान पशु घ धन पुत्री आदिक देनै। दन्ड युध कर सत्रु को सजा देनी। भे द सत्रु के संबंधीउ तथा मंत्रीउ को धन देकर सत्रु के घर मो फूट पा देनी, पुरषारथ उपाय सं०

उमराउ० दै० सरदारों और राज्यों का नाम अरबी में अमीर। है जिसका बहु बचन उमराउ है। सतकार हेत एक मैं भी कह्य जावे है उमरा अ०

उजारउ० दै० प्रकास य० तबजाइ जीत उजार उल है।

उमाहिउ० दै० उतसाह वाला होता है य० जउ देषै छिद्रतउ निंदक उमाहिउ

उमकिउ० दै० प० उतसाह वाला हूआ य० उमकिउ ही उमिलन प्रम ताई

उधारिओ० दै० मुक्त हूआ य० ३ धारित सब संसार

उदरिओ० गु० प्रगट हो रहा है या० आसम्भव उदकिउ पुरष पूरन

उरभिउ०पं०फासिआ य० पुंज।

ੜ·

ੜਾ੦ ਗੁ· ਨਹੀ ਛੁਟੇਗਾ ਯ·ਣ
ਛੁਟੇ ਨਿਕਟ ਨਜਾਈਅਹੁਭੂਤ
—ਮੇਤੂਟੇਨੌ ਨਹੀਂ ਮੈਸ੍ਰਕੇਦੀ
ਤੁਸੇਛੁਟੇਰੇ ਯਾਤੇ ਹੋ ਭੂਤਉਸ
ਬਾਟਕੇ ਸਮੀਪ ਨਾ ਜਾਨਾ

ੜਾ੦ ਗੁ· ਨਾ ਸੀ· ਯ· ੜਾਕੋਮੇਰਾ
ਕਿਸਗਾਹੀ

ੜਾੜਾ੦ ਗੁ· ਇਸਨਾਮ ਵਾਲੇਅ
ਖਰਸੇ ਉਪਦੇਸਕਰੀਹੈ ਯ·ੜਾ
ੜਾਰਤਤੇ ਸੀਖੀਏ

ੜਾਮ੦ ਗੁ· ਨਾਮਸੇ ਯ· ੜਾਮਰਿ
ਹੂਏ ਆਦਮੀ ਨਾ ਸੀ·

ੜਿ·

ੜਿਆ੦ ਗੁ· ਦਾਲਿਆ ਯ·ਹ
ਰਿਹਰਿਨਾਮਜਪਾਵਣਿਆ—
ਹੇਹਰਿਕਾਨਾਮਜਪਾਵਣੇਵਾਲਿ
ਆ

॥ਇਤਿਸ੍ਰੀਮਤ ਭਾਰਾਹਰਿ ਨੌ
ਮਸੀਗ੍ਰਿਹੀਤੇ ਗੁਰੁਗਿਰਾਰਥਕੋ
ਸੇ ਣਕਾਰਾਦਿਸਬਦਾਰਥ ਰਚ
ਨਾਸਮਾਪਤੁ

॥ਮਿਤੀ ਫਾਗਣਸੁਦੀ ੧੩
ਫਾਗਣਪ੍ਰਵਿਸ੍ਟੇ ੨੭

ਸੰਮਤ ੧੯੫੧

॥ਪੁਸਤਕਲਿਖਕੇ ਸਮਾਪਤਿ
ਕਰੀ ਸਾਧੂਕੁਸਾਲਸਿੰਘਨੇ

॥ਸੁਭਮਸਤੁ ਲੇਖਕਪਾਠਕਾਂ
ਨਾਂ॥

णा

णाह० गु० नहीं छुटेगा या णा
हछुटै निकट न जाई अहु दूत
-मैतू दोनौं नहीं परमैस्वर के दं
डसै छुटैगै या तै ही दूत उस
थान कै समीप जाना

णाा० गु० ना सं० य० णाा कौ मैरा
किस गही

णाणाा० गु० इस नाम वाले अ षट
सै उपदेश करै है या णाा णाा
णाा तै सीभीए

णाम० गु० नाम सै य० णा म
छूणा आदमीनाम सं०

णि

णिआ० गु० वालिआ य० ह
रिहरि नाम जपावणिआ
हे हरि का नाम जपावनै वालिआ

'इति सिरी मत तारा हरि नरोत्त
म संगृहीतै गुरु गिरारथ कौ
सै णा कारा सबदारथ रच
ना समाप्त

' मिती फागुन सुदी १३
फागुन प्रविस्टै २७

संमत १६५७

'पुसतक लिषा कै समापति
कर्रि करी साधू कुसाल सि नै

' सुभ मसतु लैषक पाठ का
नां ।।

੧ੴ ਸਤਿਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ॥

॥ ॥ਅਥ ਸੁਧਿਪਤ੍ਰ ਭੂਮਿਕਾ॥ ॥ਸਫੇ ਖਾਨੇ ਪੰਕ੍ਤਿ ਕੇ ਅੰਕਾਂ ਨੂੰ ਦੇਖਕਰ ਸੀਘ੍ਰ
ਹੀ ਪੁਸਤਕ ਨੂੰ ਸੁਧ ਕਰ ਲੈਣਾ॥ ॥ਸੁਧ ਕਰਨੇ ਕੀ ਰੀਤਿ ਯਹ ਹੈ॥ ॥ਜਹਾਂ ਅਸੁਧ
ਮੇਂ ਪਾਠ ਯਾ ਪਦ ਔਰ ਹੋ ਸੁਧ ਮੇਂ ਔਰ ਹੋ। ਤਹਾਂ ਅਸੁਧ ਪਾਠ ਤਥਾ ਪਦ ਨੂੰ ਬਦਲਕਰ
ਠੀਕ ਕਰ ਦੇਣਾ। ਔ ਜਹਾਂ ਅਸੁਧ ਘਰ ਮੇਂ ਪਾਠ ਯਾ ਪਦ ਲਿਖਾ ਹੂਆ ਹੈ। ਸੁਧ
ਘਰ ਮੇਂ ਬਿੰਦੀਆਂ ਲਿਖੀਆਂ ਹੈਂ ਸੋ ਪਾਠ ਔਰ ਪਦ ਬੀ ਅਧਿਕ ਸਮਝਕਰ ਮੇਟ ਦੇਣਾ।
॥ਔ ਜਹਾਂ ਅਸੁਧ ਘਰ ਮੇਂ ਬਿੰਦੀਆਂ ਹੈਂ ਸੁਧ ਮੇਂ ਪਾਠ ਯਾ ਪਦ ਲਿਖਾ ਹੂਆ ਹੈ। ਸੋ
ਪਾਠ ਤਥਾ ਪਦ ਬੀਚ ਮਤੀ ... ਸਮਝਕਰ ਲਿਖ ਦੇਣਾ। ਸੋ ਜਿਸ ... ਅੱਛਰ ਕੇ ਪੀਛੇ ਲਿਖ
ਨਾ ਹੋਵਣਾ ਸੋ ਦੋ ਚਾਰ ਅੱਛਰ ਪਹਲੇ ਔਰ ਪਿਛਲੇ ਇਖ ਕਰ ਤਿਨ ਪਰ ਬਿੰਦੀਆਂ
ਲਿਖੀ ਹੈਂ ਗੀ। ਜਾਂ ਤੈਂ ਬਿੰਦੀ ਵਿਚਾਲੇ ਅਛਰ ਕੋ ਛਡਕਰ ਬੀਚ ਕੇ ਬਿੰਦੀਆਂ ਰਹਿਤ ਪਾਠ
ਤਥਾ ਪਦ ਲਿਖ ਦੇਣੇ। ਇਸ ਰੀਤਿ ਸੇ ਸੰਪੂਰਨ ਰੀਤਿ ਬਹੁ ਜੋ ਪਰਕਾਰ ਫਿਰ ਵਿਚਾਰਨਾ
ਉਚਿਤ ਹੈ। ਇਤਿ ਸੁਧਿਪਤ੍ਰ ਭੂਮਿਕਾ॥ ॥ਅਥ ਸੁਧਿਪਤ੍ਰ ਪ੍ਰਾਰੰਭ:॥

ਸਫਾ॥	॥ਖਾਨਾ॥	॥ਪੰਕ੍ਤਿ॥	॥ਅਸੁਧ॥	॥ਸੁਧ॥
੩		੧੮	ਜੁਦੇ	ਜੁਦੇ ਜੁਦੇ
੯		੪	ਉਸ੍ਤੁਰ	ਉਸ੍ਤੁਰ
੫੪	੧	੧੧	ਢਹਿਆਂ	ਢਸਿਗਇਆਂਹੈ
੦	੨	੧੧	ਹੋਇਆ	ਹੋਗਿਆ
੧੮	੨	੨੦	ਸੰਪ੍ਰਦਾਯ	ਗੁਰਸੰਪ੍ਰਦਾਯ
੨੦	੧	੬	ਤੋ	ਓਹ

---

१ उंअकार सतिगुर प्रसादि।।

।। अथ सुधि पत्र भूमिका।। सफे षाने पंक्ति के अंक कू देष कर संपू रणा ग्रंथ को सुध कर लेना।। ।। सुध करने की रीति यह है।। जहा असुध घ र मैं पाठ या पद और है सुध मैं और है।। तहां असुध पाठ तथा पद कूं बदल कर लिष देना।। औ जहा असुध घर मैं पाठ या पद लिषा हूआ है। सुध घर मैं बिंदीआ लिष्री है सो पाठ अर पद बी अधिक समझ कर मैट देना।। ।। औ जहा असुध घर मैं बिंदीआ है सुध मैं पाठ या पद लिषा हूआ है।। सो पाठ तथा पद बी कमती समझ कर लिष देना।। सो जिन अक्षरो के बीच लिषा ना होगा।। सो दो चार अक्षर पहले अर पिछले लिष कर तिना पर बिंदीआ लिष्री होगी। थाते बिंदीउ वाले अक्षर छोड़ कर बीच के बिंदीआ रहित पाठ तथा पद लिष दैनै। इस रीति से संपूरन ग्रंथ कूं सोध कर फिर विचार कर ना उचित है।। इति सुध सुधि पत्र भूमिका।। अथ। सुधि पत्र प्रारम्भः।।

सफा ।।	।। षाना।।	पंक्ति।।	असुधा।	सुधा।
३		१८	जुदे	जुदे जुदे
६		४	उस्तर	उस्तर
१४	६	६६(१७)	फासिआ है	फासि रहिता है
०	२	००(१७)	होइया	हो गिआ
१८	२	२०	संप्रदाय	गुरसंप्रदाय
२०	६	६	उ	उह

नरोत्तम के दोनों कोश इन सबसे पुराने हैं। न केवल पंजाबी कोशों में अपितु हिन्दी में भी आधुनिक कोश शैली को अपनाने वाले सर्वप्रथम पं० तारा सिंह नरोत्तम को मुर्धन्य स्थान दिया जा सकता है। नरोत्तम का प्रभाव परवर्ती कोशकार- भाई चन्दा सिंह, किसनदास उदासी तथा सन्त सुते प्रकाश साधु पर बहुत अधिक पड़ा। नरोत्तम के कोशों को कोशकारिता के सन्दर्भ में कोश का विश्लेषण किया जाता है।

कृति परिचय

तारा सिंह नरोत्तम ने गुरु तीर्थ संग्रह में स्वयं अपने कोश सम्बन्धी रचनाओं का उल्लेख किया है कि सुरतरु कोश में अमर, मेदनी कोशों में से १० हज़ार नामों का संग्रह कर १८२३ संमत को चार हज़ार श्लोक का कोश बनाया।[१]

ऐसा लगता है अमर कोश तथा मेदिनी कोश के महत्वपूर्ण ४००० संस्कृत पद्यों का गुरुमुखी लिपि में लिप्यंतरण किया होगा। 'सलोक' संग्रह आदि शब्द इस अनुमान की पुष्टि करते हैं। कोश के आज अपर्याप्त होने पर इसका उचित रुप से निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता। क्या यह वास्तव में ही अमरकोश तथा मेदिनी कोशों के आधार पर लिखा गया होगा? क्या इस कोश में केवल नामों का संग्रह कर उन्हें चार हज़ार सलोक में डाला गया होगा? इन सब प्रश्नों का समाधान नहीं किया जा सकता परन्तु फिर भी नरोत्तम की विचारधारा को देखें तो ऐसा प्रतीत होता है कि सुरतरु- कोश ने अमरादि कोशों को आरम्भ में अपना केन्द्र बनाया होगा।

तारा सिंह नरोत्तम का दूसरा कोश गुरु गिरारथ कोश दो भागों में उपलब्ध है। गुरु गिरारथ कोश का पूर्वार्द्ध पृष्ठ एक से लेकर ७०२ तक है। वर्णमाला क्रम उ, आ, ई, से लेकर 'ण' तक दिया है और अन्त में शुद्धि पत्र है। गुरु गिरारथ कोश का उत्तरार्द्ध जो आरचिफ लाइब्रेरी पटियाला में उपलब्ध है, पृष्ठ एक से लेकर ७०६ तक है। वर्णमाला क्रम 'त' से लेकर 'ह' तक दिया गया है। नाम संख्या अन्त में १४५०२ है। इसे तारा सिंह नरोत्तम ने संमत १८५३ में समाप्त किया।

१- 'पश्चात अमर मेदीनी कोसों से दस सहस्र नाम संग्रह कर १८२३ की कातक सुदी पुन्या को चार सहस्र 'सलोक' का सब्द सुरतरु कोश बना'- तीर्थ संग्रह, २७४

तारा सिंह नरोत्तम में जहां एक ओर दर्शन का प्रकांड पंडित रुप, दूसरी ओर वाणी मर्मज्ञ तथा टीकाकारिता का सर्वोत्कृष्ट रुप उपलब्ध है, वहां वे महान् कोशकार के रुप में भी हमारे सामने आते हैं। जहां एक ओर नाना शास्त्र पारंगत आचार्य थे। वहां दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ थे। नरोत्तम का भाषा ~~शास्त्रीय अध्ययन और भाषा मर्मज्ञता कोशों को देखने पर~~ ही उपलब्ध हो सकती है। नरोत्तम ने कोश की भूमिका में कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाया है। जिनका उल्लेख आगे जा कर किया जाएगा।

नरोत्तम कोश: दृष्टिकोण

अंग्रेजी, फारसी, अरबी, हिन्दी आदि भाषाओं के कोश लिखे जा चुके थे। परन्तु पंजाबी भाषा में कोई भी ऐसा कोश उपलब्ध नहीं था जो गुरुवाणी के कठिन पदों का सरलार्थ बता सकता हो। गुरुवाणी की व्याख्या तथा उसके शब्दों को समझने के लिए एक भंडार की आवश्यकता थी जिससे साधारण लोगों को गुरुवाणी का अर्थ स्पष्ट हो सके। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम कार्य पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने किया। चाहे इसकी रचना प्रक्रिया को अंग्रेजी कोशों के प्रभाव से अपनाया हो परन्तु नरोत्तम की यह योजना पंजाबी में ही नहीं भारत की कोश कला के इतिहास में एक नया मोड़ पेश करती है। तारा सिंह नरोत्तम का इस क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य है।

गुरुवाणी व्याख्या करना नरोत्तम का मुख्य प्रतिपाद्य था और इसी सन्दर्भ मेंही गुरुवाणी कोशों की रचना की गई। इन्हीं कोशोंके आधार पर ही भाई कान्ह सिंह को प्रेरणा मिली और गुरु शब्द रत्नाकर महान् कोश हमारे सामने आया। स्वयं इस बात का समर्थन भाईकान्ह सिंह ने भूमिका में किया है कि पंडित तारा सिंह नरोत्तम और भाई हजारा सिंह के कोशों को देखकर उनके मन में भी एक विस्तृत-विशाल उत्तम कोश लिखने के प्रयास ने जन्म लिया।[१]

१- संमत १९५५ विच पंडित तारा सिंघ जी दा 'गुरु गिरारथ कोस' अते संमत १९५७ विच भाई हजारा सिंघ जी दा 'श्री गुरु ग्रंथ कोस' पढ़ के मैंनू संकलप फुरिआ कि इन्हां कोशों विच जो सबद श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी दे नहीं आए, उह शामिल करके अर अक्षर तथा मात्रा क्रम अनुसार शब्द जोड़ के, इक उतम कोस

੧ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ॥

ਦੋਹਰਾ॥ ॥ਗੁਰ [illegible] ਅਪਰ ਗੁਰੂ [illegible] ਪਦ [illegible] ਕਿਜਾ ਨਿਰਦੋਸ ਬਿੰਦ
ਛੋਹਿ ਤਮ [illegible] ਥਕੇ ਗੁਰੂ [illegible] ਸਾ॥੧॥ ॥ਟੀਕਾ॥ ॥ਸ੍ਰੀ ਗੁ
[illegible] ਕਰਕੇ ਉਪਦੇਸ [illegible] ਵਾਲੇ ਗੁਰੂ ਪਰ [illegible] ਗੁਰੂ [illegible] ਆਤਮ [illegible]
ਨਿਕਾ [illegible] ਉਪਦੇਸ ਕੇ [illegible] ਦ੍ਵਾਰਾ ਪ੍ਰਕਾ
ਸ਼ਕ [illegible] ਅਪਰ [illegible] ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਜੀ [illegible] ਦੋਸੋਂ [illegible] ਕੀ
ਟਕਾ [illegible] ਕੇ [illegible] ਬੰਦਨ ਕਰ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ
ਕੇ ਪਦ [illegible] ਮਤ [illegible] ਤਾਹੂ॥
ਨੂੰ [illegible] ਨਾਮ [illegible] ਪਰੀਖ੍ਯਾ॥
॥ [illegible] ਹੈਂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰ
[illegible] ਲੋਗ
[illegible] ਅਰਥ
[illegible] ਕੇ ਬਜ
[illegible] ਨਹੀਂ [illegible] ਸਕਤਾ। ਕੋ
ਪ [illegible] ਨਹੀਂ [illegible]
[illegible] ਤੇ [illegible] ਅਰਥੋਂ [illegible]
[illegible] ਸਕ੍ਤੀ ਹੈ। [illegible]

एक उअंकार सतिगुर प्रसादि।

दोहरा। गुरु पर अपर गुरु न के पद पकंज निरदोसा
बंदोय हित सरब के गुरु गिरारथ कोसा।१। टीका

ब्रह्मादिकों को उपदेस करने वाले गुरु पर गुरु परमातमा के
चरन कमलों को। तथा ताके कीए उपदेस को ग्रंथ जी रचना द्वारा
प्रकास करने वाले अपर श्री परम गुरु नानक जी से ले दसों गुरु के
कंटकादि दोष रहत चरन कमलों को बारंबार बंदन कर गुरु
गिरारथ के पदारथ जानने की इछा वाले। सरब सजनों के हेत
रचता हूं। गुरु जी की बाणी के पदों के अरथों का कोस नाम खजाना
रुप ग्रंथा। कोस नामों के अरथ बोधक ग्रंथों को कहते हैं। ओ
भी व्याकरण वत यवद्या के अभ्यास के मूल है। इसी लिए जो लोग
ला के सीखने की इछा करते हैं। पहले उस के अरथ
ते तिस के कोस अर व्याकरण को पड़ते हैं। किउंकि व्याकरण
पदों के यौगक अरथों का ग्यान नहीं हो सकता। कोस
पदों का वा योग रुढ़ पदों का अरथ ग्यान नहीं हो सके
कोसों से भी पदों के बहु अरथ जाने जाते हैं। जिन
अरथों में पदों की ब्रिति है जैसे उलू पद की उलूक पखी में
सकती है कोस में।

ਇਹਨਾਮਵੇਖਣੇਸੇਉਸੀਕਾਗਜ਼ਨਹੋਤਾਹੈ।ਜਿਨਅਰਥੋਂਮੇਪਦੋਂਕੀਵ
ਖਣਾਹੈਵਾਬਣੀਜਨਾਹੈ।ਵਿਤੁਅਗਥੋਂਕੇਸਮੇਨਹੀਂਲਿਖੇਜਾਤੇ।ਜੈਸੇ
ਸੂਪਦਕੀਗੁਰਮੁਖਪੁਰਖਮੇਂਲਖਣਾਹੈ।ਯਾਂਤੇਕੋਸਮੇਗੁਰਮੁਖਕਾਨਾਮ
ਨਹੀਂਲਿਖਾਜਾਤਾ।[illegible]ਗੁਰਯਾਸ਼ਗੁਰੂਆਵਾਕਮੇਂ।ਅਤੁਇਸਪਰ
ਸੂਕਸੰਯਜ਼ਾਕਾਨੇ[illegible]ਸੇਅਕਰਨੇਤੋਹੈ।ਸਾ[illegible]ਪਰਾਗੁਮਮੇਜਾਕੇ
ਜਾਤਾਹਾਂਜਾਵੇਹੈ।ਹੋਸੇਟੀਕਰਨੇਵਾਲੇਹੋਸੇਈਰਹੇਹੈ।ਇਸਨਸੇਆ
ਵਕੀਸਿਯਜ਼ਾਰਹਨੇਵਾਲੇਸਾਧਿਪਰਾਮਜਾਵੇਵਾਲੇਹੋਸੇਟੀਕਰਨੇਵਾ
ਹੇਤਰਚੀਜਨਾਹੈ।ਯਾਂਤੇਅਸ੍ਰੁਪਦਕੇਅਰਥਕੇਸੇਮੇਇਸਕਾਸ੍ਰੁਕਾਹਿ
ਇਤਨੇਸੇਆਨਸੀਯਜ਼ਾਕਰੇਆਵਿਨਹੀਲਿਖੇਜਾਤੇ।ਯਾਂਹੀਤੇਕਾਸ੍ਰੁਕ
ਜਕਪਦੋਂਕੇਕੋਸ਼ਕੇਕੋਸੇਮੇਵਿਸਤਾਰਵੀਨਾ।ਲਿਖੇਗਏਹੈਂ।ਕੋਸਮਸ੍ਰੁਤੀ
ਸੇਵਸ੍ਰੁਸੇਂਕੇਵਾਚਕਹੈਂ।ਏਤਾਬਿਸੇਸ਼ਹੈਸੀਸਾਹਿਤਯਾਸਟੀਕਵੇਕੋਸੇਮੇਲਕੋਂ
ਜੇਪਰਇਸਕੀਮੁਖਨਯੂਸ,ਕਕੇਤੇਨਾਲਿਖੇਜਾਵੇਹੈਂ।ਜਿਸਕਾਤਾਯਾਬ
ਈਮੇਨਯੂਸਕਥਾ[illegible]ਨਯੂਸ.ਵਸਹੀ।ਤਿਸਮੇਇਸਕੀਯੂਰਥਕੇਏ
ਯਾਲਿਖੇਜਾਵੇ,ਹੈਂ।ਅਰਤਤੁਯਾਵੇਕੇਸੇਮੇਕਿਸਕਾਕਿਸਕੇਬੋਲੀਕੇਰਾਬਾ

੪ ਤਿਨਕੇਆਗੇਉਨਤਾਯਾਕਾਸੂਚਕਏਸ਼ਕਾ,ਕਾਕਿਯਾਜਾਵੇ।
ਸਹਿਤਯਾਸਹਿਤਯਾਣੀਕੋਸਿਥੋਂਕੇਸੇਮੇਸੀਸਹਿਤਕਾਸੰ.ਸੋ
ਯਾ.ਲਿਖਤੇਹੈਂ।ਏਵੇਂਅਰਬੀਫਾਰਸੀਪਦੋਕੇਸੇਮੇਅਰਬੀਅ
ਤਫਾਰਸੀਕੇਆਗੇਫ਼ਲਿਖਤੇਹੈਂ।ਤੇਸੇਯਗੁਰੂਜੀਕੀਵਾ
[illegible]ਜਾਕੇਨਾਮੇਂਕੇਕੇਸਬਲਯਾਜਾਤਾਹੈ।ਇਸਕਾਬਿਰਤਾ
ਯਾ.ਲਿਖੇਜਾਵੇਂਹੈ।ਕਾਹੇਤੇਗੁਰੂਜੀਨੇਆਪਣੀਬਾਣੀਮੇ
ਤਅਰਬੀਫਾਰਸੀਆਦਿਸੁਖਨਕੇਕਈਏਕੋਂਕੀਭਾਖਾਲਿ

इह नाम देषनै से उसी का ग्यान होता है। जिन अरथों मैं पदों की लषणा है वा व्यंजना है। बहु अरथ कोस मैं नहीं लिषे जाते। जैसे उलू पद की मूरष पुरष मैं लषणा है। यातै कोस मैं मूरष का नाम उलू नहीं लिषा जाता। तथा सूरय अस्त हूआ वाक्य मैं। अस्त इस पद सुण संध्या का नेमी संध्या करने लगे हैं। समीप ग्राम मो जाने वाला तहां जावे है। रसोई करने वाला रसोई करे है। इस से की संध्या करने वाले समीप ग्राम जाने वाले रसोई करने वाले हेत व्यंजना है। यांते अस्त पद के अरथ कोसों मैं बिना सूरय छिपे इतने से आन संध्या करो आदि नहीं लिषे जाते। यांही ते लष्यक व्यंजक पदों को छोड़ के कोसो मैं केवल वही नाम लिषे गए हैं। जो नाम सक्ती से वसूतूर्यो के वाचक है। एता बिसेष है। संसक्रित बाणीके कोसों मैं नामों से परे इसत्री पुरष नपुंसक के चिंन लिषे जावेंगें। जिस भाषा बाणी मैं नपुंसक का चिंन प्रसिध नहीं। तिस मैं इसत्रीपुरष दोनों लिषे जावैगे। अनेक भाषा के कोसों मैं जिस जिस बोलीके वहु सबुद तिन के आगे उस भाषा का सूचक एक अषर लिषा जावे है।

संसक्रित प्राक्रित बाणीके मिस्रित कोसों मै संसक्रित का सं औ प्राक्रित का प्रा० लिषते है। एवं अरबी फारसी के कोसों मैं अरबी पद का अ० फारसी के आगे के लिषते हैं। तैसे यह गुरुमुखी विद्या के नामोंका कोस बनाया जाता है। इसमें बहुत भाषा भाषा के अषर लिषे जावैंगे। कोह ते गुरु जी ने आपणी बाणी मैं अरबी फारसी अर हिंदुस्तान के कई देसों की भाषा लि

तारा सिंह नरोत्तम ने कोश की भूमिका में कोश की व्याख्या अर्थात् परिभाषा दी है।[१] उनके अनुसार कोश नामों के अर्थ बोधक ग्रंथ को कहते हैं। नरोत्तम जि के अनुसार बोली को सीखने के समय उसके अर्थज्ञान के लिए कोश और व्याकरण को पढ़ते हैं।

(पिछले पृष्ठ से)

> लिषिआ जावे, जिस तो विशेष लाभ हो सके। इस मनोरथ दी सफलता लई मैं विचार नाल श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी दा पाठ आरंभिआ, जिसदी समापती पंजा बरिहआं विच होई जद मैं सबदा नूं क्रम अनुसार जोड़न लगा तां Encyclopaedia Britannia नूं वेष के चित विच आई कि सिष ~~सहित्य~~ साहित दा भी इक अजेहा कोश होणा चाहीए, जिस विच सारे सिष मत संबंधी ग्रंथों दे सरब प्रकार दे सबदा दा योग्य रीतिकाल निरणा कीता जावे।
>
> महान कोश, भाई कान्ह सिंह, भूमिका

१- 'कोस नामों के अरथ बोधक ग्रंथों को कहते हैं। सो भी व्याकरणावत विदुया के अभ्यास के मूल हैं। इसी लीए जो लोग जिस बोली के सीषने की इछा करते हैं। पहले उसके अरथ ग्यान वासते तिसके कोस अर व्याकरण को पड़ते हैं। किउं कि व्याकरण बिना पदों के यौगिक अरथों का ग्यान नहीं हो सकता। कोस बिना गूढ़ पदों का वा योग रूढ़ पदों का अरथ ग्यान नहीं हो सके। प्राचीन कोसों से भी पदों के बहु अरथ जाने जाते हैं। जिन अरथों में पदों की सकती (शक्ति) ब्रित है। जैसे उलू पद की उलूक पंषी में सकती है कोस में उसका इह नाम देषने से उसी का ग्यान होता है। जिन अरथों में पदों की लषणा है वा व्यंजना है बहु अरथ कोस में नहीं लिषे जाते जैसे उलू पद की मूरष पुरष में लषणा है। यति कोस में मूरष का नाम उलू नहीं लिषा जाता।'

गुरु गिरंथ कोश- भूमिका।

भाषा को सीखने और उसके अर्थ ज्ञान के लिए ही उस भाषा सम्बन्धी कोश और व्याकरण का निर्माण होता है। गुरुवाणी कोश में नरोत्तम ने अभिप्रायें ढंग से शब्द की व्याख्या की है। नरोत्तम ने स्वयं[1] भूमिका में कहा है कि गुरुमुखी लिपि में गुरुवाणी सम्बन्धी कोश उसने लिखे हैं।

कोश: रीति

भारत के प्राचीन निघण्टु, वैजन्ती तथा अमर आदि कोश ग्रन्थों में शब्दों की योजना वर्णमाला क्रम से नहीं की गई। इन कोशों की शब्द संकलन की रीति आधुनिक कोश रचना प्रक्रिया से भिन्न थी। तारा सिंह ने नरोत्तम ने अपने कोशों[2] में आधुनिक कोश शैली का वर्णन किया है जो वर्णमाला क्रम को लिए हुए है।

१- 'तैसे यह गुरु जी की गुरुमुखी विद्या के नामों का कोस बनाया जाता है। इसमें बहुत भाषा के अषर लिषे जावेंगे। काहे ते गुरुजी ने आपनी बाणी में संसक्रित अरबी फारसी अर हिंदुस्तान के कई देसों की भाषा लिषी है। जिनमें सभ से अधिक लहौर अम्रितसर मुलतान के समीप की पंजाबी और सिंधी भाषा है अर संसक्रित अरबी फारसी के नाम बहुत कर सुद्ध कहीं कहीं की बोलचाल के अनुसार असुद्ध भी लिषे हैं। इस वासते इस कोस में इन सब भाषा के नामों आगे सम भाषा बोधक अषर लिषे जावेंगे।- वही, भूमिका, २

२- बरण क्रम के कोसों में नाम षोजने की दो रीति है एक तो जिस अषर वाला नाम षोजना होवे। उस अषर से अगले अषर के मेल से नाम षोजा जाता है। जैसे अगनी अगम अगाध अगोचर नामों के अरथ षोजने होवें तो आदि में ऊड़ा आगे गकार षोज के नाम मिलता है। सो रीति इस कोस में नहीं रषी गई। दूसरी जिस अषर वाला नाम षोजना होवे उसके अन्त का अषर देष के नाम मिलता है जैसे सुत, सुता सुरति सुमति सुरुपि नामों के अरथ षोजने होवें तो आदि में औकड़ वाला सस षोज के पीछे तता देषने से नाम मिलता है। सो रीति इस कोस में है। जहां ( ) चिंन होवेगा। तहां संसक्रित पदों के करता करणादि अरथों का सूचक होवेगा जहां " " ऐसा चिंन होवेगा तहां प्रमाण वाक्य का सूचक होवेगा। वही, भूमिका।

नरोत्तम के अनुसार वर्णक्रम के कोशों में अक्षर देखने की दो रीति हैं। एक तो जिस शब्द का अर्थ ढूंढना हो उसे शब्द के अगले अक्षर के जोड़ से अक्षर देखा जाता है जैसे अगनि, अगम, अगाध, अगोचर नामों के अर्थ ढूंढते हैं तो आदि में 'अ' आगे गकार ढूंढकर अक्षर मिलता है इस प्रकार की रीति को तारा सिंह नरोत्तम ने अपने कोश में नहीं अपनाया।

दूसरे प्रकार की कोश पद्धति को नरोत्तम ने कोश निर्माण में लिया है। इस पद्धति में जिस अक्षर का शब्दार्थ देखना है वे वर्णमाला के प्रथम अक्षर के साथ उसके अन्त के अक्षर के साथ देखते हैं जैसे सुत, सुता, सुरति, सुरपति नाम के अर्थ देखने हों तो आदि में 'स' देखकर पीछे तकार देखने पर शब्दार्थ मिलेगा। अर्थात् प्रथम अक्षर के साथ अन्त वाला अक्षर लगाने पर शब्दार्थ मिल सकता है। नरोत्तम ने इस पद्धति के साथ 'बारांखड़ी'[1] या मुहारनी[2] रीति को अपनाया है।[3] अर्थात् एक अक्षर

१- बारांखड़ी- बारह अक्षर १२ स्वरों के साथ व्यंजन अक्षर लगाने के साथ बनी हुई बारह अक्षरों की पंक्ति जैसे अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः को क, का, कि की, कु कू, के कै, को कौ, कं कः।

२- मुहारनी- पंजाबी की १२ अक्षरों मात्रों के सहित वर्णमाला उकारादि क्रम वर्णमाला।

३- इस कोस में पराचीन कोसों वत एक एक थान में एक एक वस्त्र के सभी नाम नहीं लिखे जावेंगे। किंतू पहले अड़े आदि अखरों के क्रम से पंती में भरे जावेंगे। पीछे मुहारनी अरथात बाराखड़ी की रीति सें एक एक अखर नामों के आदि मों बारां बारां जगा लिखा जावेगा। इस क्रम बिना पूरब बने बड़े प्रसिद्ध। हैम अमरादि कोसों से भी यह उपकार नहीं हो सका। इसी लीए वरतमान समे सभी विद्वान। नाम के सीघ्र खोज हेत बरण क्रम से बनावे हैं जिस रचना का कंठ तुल्य महातम है। वास्तव में कंठ से भी अधिक महातम है। किउंकि कंठ करी वस्तु कबी बुधी कुंठित होने से सीघ्र सफुरण नहीं होती। लिखी सीघ्र सफुरण होती है अर सीघ्र खोजने हेत आदि में जो अखर चलेगा। उसके अंत के ऊड़े आदि अखर नामों में क्रम से बदलते जावेंगे। जैसे जहां अंत पासे उड़ा पूरा हुआ अंत को 'आडा' चलेगा। वह पूरा हुए ईड़ी आदिक चलेंगे।

को वर्णमाला क्रम के अनुसार लेकर दूसरे अक्षर को आरम्भ करने से पूर्व उसमें मात्राओं सहित वर्णमाला क्रम को अपनाया है। जैसे ककार अक्षर को लें। यहां आरम्भ में सिर्फ क + अ के 'क' अक्षर को ही लेकर अर्थ किए हैं। इसके उपरान्त क के पश्चात् ख तथा ग आने चाहिए परन्तु नरोत्तम ने गुरुमुखी लिपि वर्णमाला के अनुसार उकारादि क्रम को अपनाया है।

उकारादिक्रम

नरोत्तम ने काफी समय पूर्व आधुनिक ढंग के अकारादि क्रम से बनने वाले शब्द कोशों की रचना का सूत्रपात पंजाबी में किया। गुरु गिरारथ कोश की भूमिका में कई भाषा शास्त्रीय महत्वपूर्ण प्रश्नों का उल्लेख किया। जहां तक हो सका इन्होंने भाषा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 100 वर्ष से भी पूर्व इस प्रकार के कोश निर्माण करना बड़ा प्रशंसनीय कार्य था। इसी पद्धति पर नरोत्तम ने कुछ फारसी, अरबी, अंग्रेज़ी और भारतीय भाषाओं पर विचार किया है।

नरोत्तम ने अकारादि क्रम को पश्चिम या पश्चिमी लेखकों से लिया है। शब्दों का क्रम केवल अक्षरों के अनुसार ही नहीं अपितु मात्राओं का क्रम भी साथ रखा है। अर्थात् वर्णमाला क्रम को अपना कर मात्राओं का क्रम भी साथ साथ रखा है जैसे:-

१- कउ, कउउ, कऊआ, कड़िआ, कषाई, कहुकीस, कसुंभ का, कछ, कथना, कला।

२- काउ, कागउ, काठीआ, कालूषी, कालपुरष, काचे, काज, काती, कादर।

३- किउ, किआ, किरिआ, किरस, किछु, कृपणा, किथे, किरपाधि, किंकरी, किरतकरम।

(पिछले पृष्ठ से)

जैसे जहां अंत पासे उड़ा पूरा हूआ अंत को 'आड़ा' चलेगा। वह पूरा हुए ईड़ी आदिक चलेंगी। नाम की म्रजादा एक अखर नाम से ले सात अखर प्रयंत मेदनी आदिक कोसों में बांधी है। याते क्रम से एक अखरे दुअखरे आदि नाम लिखे जावेंगे। -- वही, पृ भूमिका पृ० ५

४- कोउ, कोजहु, को, कोन, कोतीअन, कोरे, कोचड़।

५- कुमोउ, कुंडलीआंन, कुथाइ, कुसा, कुदस, कुलहा, कुफराणे, कुरबाणी, कुबुधि, कुरान, कुसलन, कुरुप।

६- कूकीअै, कूपारीआ, कूच, कूजा, कू, कूड़, कूप, कूरम, कूकरी।

७- कैसाइउ, कैरिआ, कैसी, कैहा, कैहु, कैरी, कैहा, कैसवा, कैवड़ा, कैसिउ, कैरउ, कै, कैसर, कैली।

कोऊ, कोफिउ, कोटवरीआ, कोस, को, कोटि, कोटतारी, कोली, कोसाल।

कौसै, कौतक, कौन, कौतरुहार।

कंनिआ, कंनहु, कबंह, कटंक, कंत, कंबु, कंम, कंनगोपाल आदि।

इन शब्दों को देखने से हम कह सकते हैं कि कउ, काउ, किंउ, कीउ, कुमेंउ, कूच, कैसाइउ, कैसर, कोअ, कैौ, कनहुं। इन अक्षरों के प्रथम अक्षर के बाद न तो उकारादि क्रम है और न ही अकारादि क्रम की रक्षा हुई। मात्राओं की दृष्टि से भी यह विधान ठीक नहीं है। यद्यपि नरोत्तम शब्दों का स्थान वर्णमाला क्रम से रखता है परन्तु उन्हें सिर्फ प्रथम अक्षर से ही किया है उसके पश्चात् आने वाले द्वितीय अक्षर का स्थानापन्न वर्णमाला ढंग से नहींहुआ।

अभिधार्थ

तारा सिंह नरोत्तम ने अपने कोश में शब्द शक्ति के अभिधार्थको ही स्वीकृत मानाहै।[१]

१- 'जिन अर्थों में पदों की सकती वृति है। जैसे उलू पद की उलूक पषी में सकती है। कोस में इसका इह नाम देषने से उसी का ग्यान होता है। जिन अर्थों में पदों की लषणा है वा व्यंजना है वह अरथ कोस में नहीं लिषे जाते। जैसे उलू पद कीमूरष पुरुष में लषणा है। याते कोस में मूरष का नाम उलू नहीं लिषा जाता तथा सूरय अस्त हूआ वाक्य में अस्त पद को सुन संधया का नेमी संधया करने लो है। समीप ग्राम मों जाने वाला तहां जावे हैं।

लक्ष्यार्थ व्यंग्यार्थ से उन्होंने कोई अर्थ नहीं किया। यह असंगत लगता है क्योंकि कुछ विशेष प्रकार के शब्द कुछ विशिष्ट क्षेत्रों या स्थानों, प्रसंगों में अपना कुछ विशिष्ट सन्दर्भ रखते हैं। अत: आज कल कोशों में न केवल व्यंग्यार्थ बताए जाते हैं अपितु लक्षणार्थ और अभिधार्थ तीनों प्रकार से अर्थ पर विचार किया जाता है ताकि जो शब्द का अर्थ उचित लगे वही अपना लिया जाये।

तारा सिंह नरोत्तम कोश में शब्द के अर्थ करते समय उस अर्थ के आगे अनेक अर्थ और फिर उन अर्थों की व्याख्या करते हैं। जैसे 'उपाय' शब्द का अर्थ 'यत्न' बताया है उसका उदाहरण गुरुबाणी में से देते हैं 'प्रानी कउन उपाउ करै' पुन: कछु उपाउ मुकति का कर रे।' ग्यान भक्ती रूप कुछ यत्न करो, सत्रु वस करने के साधन साम[1] दान[2] दण्ड[3] भेद[4] रूप राजनीति के उपाय। साम अधीनगी के बचन कहने। दान पसुधन पुत्री आदिक देशों। दण्ड युध कर सतु को सजादेणी। भेद सतु के संबंधीउ तथा मंत्रीउ को धन देकर सतु के घर मो फूट पा देनी, पुरुषारथ उपाय स।'[1]

यहां पर 'उपाय' की व्याख्या करते समय अनेक दृष्टियों से शब्दों के अनेक अर्थ किए गए हैं। अर्थात् यहां पर सर्वप्रथम उपाय का अर्थ बताकर फिर उसका उदाहरण देकर उसकी व्याख्या कर राजनीति में शत्रु बस करने के चार साधन बताकर उनकी व्याख्या की है। इस प्रकार की शैली को भाई कान्ह सिंह ने भी अपनाया है।

(पिछले पृष्ठ से)

> रसोई करने वाला रसोई करे है। इस से अस्त पद की संध्या करने वाले समीप ग्राम जाने वाले रसोई करने वाले हेत व्यंजना है। याते अस्त पद के अरथ कोसों में बिना सूरय छिप इतने से आन संध्या करो आदि नहीं लिखे जाते। याही ते लैष्यक व्यंजक पदों को छोड़ के कोसों में केवल वही नाम लिखे गए हैं जो नाम सक्ति से वस्तुओं के वाचक है---
>
> वही, भूमिका, प्रथम पृष्ठ।

१- वही, पृ० १३

यदि एक शब्द अनेक अर्थ रखता है तो तारा सिंह नरोत्तम उस शब्द के अनेकार्थ कर अपनी बहुज्ञता का परिचय देते हैं। उदाहरणात: सारंग शब्द देखें।[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि नरोत्तम ने एक सारंग शब्द की इतनी विस्तृत व्याख्या या शब्दार्थ किया है। इसमें न केवल अभिधार्थ को ही लिया है अपितु लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ को योजना यहां की गई है।

परन्तु शब्द के अनेकार्थ करते समय संख्या न देकर केवल अर्धविराम का चिह्न दिया है। क्रम संख्या दे देने पर अर्थ सरलता से स्पष्ट हो जाते हैं। कहीं कहीं पर शब्द क्रम संख्या देखने को मिलती है। जैसे `तरक' शब्द का उल्लेख करते समय बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। इन शब्दों का साधारण अर्थन से देखते हुए बड़ी गहराई से इनका अध्ययन करने पर हमें सफलता मिल सकती है। `तरक' शब्द संस्कृत में कोई

१- सारंग- सं० चातक पंछी जो बरषा रितु में बोलता है, य० सारंग सबद सुहाई चातक का सबद सुंदर लो है अन्योक्ती से ईहां सिष्य लैना गुरु रुप बदल आगे उक्त अधिकारी का सबुद सुंदर लो है चातक अरथ मों सारंग अमर में है- हरिण, गज, इन दो अरथों में मेदनी है, म्रिग षंजरीट मो विश्व कोस है सारंग जिउ पद धरे ठुम ठुम ईहां षंजरीट सम चरण धरे है अरथ है छत्र राजहंस, चित्र, म्रिग, बाद्य विसेष, भाव सारंगी बाजा प्रसिध, बस्त्र, सबद रत्न मों लिषा हैं। इन अरथों में राजहंस बत पत्र धरे भी अरथ बन सके हैं, नाना वरण, नाना रंत्र, मयूर, कामदेव, धनुष, केस, स्वरण, आभरण, पदम, चंदन, कपूर, पुसप, कोकिल पषी, मेघ, सिंह, शेर, रात्रि, भूमी, दीपती, इन अरथों में नानारथ कोस है सारग जिउ पग धरे ठुम ठुम नाचते मोख्त भी अरथ संभवे है यह सारग पद संसक्रित के दंती सरक सकार से पूरब कहे अरथों में लिषा है। सारंग राग मेघ राग का पुत्र है। सरिगमपधनिस संपूरण है। मध्यान् समे गाना।

वही, पृ० २४३

अर्थ रखता है और अरबी में दूसरा अर्थ रखता है।[१] और संस्कृत में तर्क का अर्थ 'आकांक्षा' या 'इच्छा' बताया है और अन्त में अरबी भाषा में इसे 'वैराग्य' का अर्थ दे दिया है। इस प्रकार एक शब्द कई बार विभिन्न भाषाओं में भिन्न अर्थ रखते हैं।

जैसे शरीर नाम संस्कृत में देह का है, फारसी में 'शैतान' का है। इसी प्रकार 'पाक' नाम संस्कृत में भोजन का है। फारसी में पवित्र का है। अत: यहाँ एक शब्द दो भाषाओं में तुल्य है परन्तु अर्थ में अन्तर है। इसके अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं में कई बार एक शब्द समान अर्थ वाला होता है वहाँ नरोत्तम ने अर्थ दूसरी बार नहीं किया। नरोत्तम के कोश में अर्थ सम्बन्धी कई भ्रान्तियाँ भी हैं जैसे नरोत्तम ने बंदा शब्द का अर्थ संस्कृत में नमस्कार और लता किया जबकि बदन संस्कृत में मिलता

१- तरक:- सं० आकांक्षा, इच्छा।
ना जाने हुए अर्थों में कारणों के कथन से ऊहा करनी। आगमों के सहकारि न्याय। (३)- आगम के अरथ की परीक्षा। (४)- मन में उपजा काहूं अरथ का विचार। (५)- अपनी बुधी के बल से ऊहा करनी जिस ~~काहूं अरथ~~ ऊहा के कहने का स्रेस्ट सास्त्रों में निषेध लिषा है जो अति सूक्षम अचिंतनीय पदारथ हैं। तिन का सास्त्र की सराइता बिना। अपनी बुधी बल से उपजी तरक से सिध करना औं षंडन करना ना करे। किउ के बुधिबल से उपजी तरकों ते गंभीर अरथ का निरणै नहीं होवै। मनु भी कहे है वेद में कहे धरमों को जो धरम सास्त्रों के अनुसारी तरकों से चिंतन करता है। वही धरम के स्वरूप को जानता है। और नहीं जाने। ऐसे ही जो पुरुष स्रुतिउ के अनुसारी तरकों से ब्रह्म का चिंतन करता है वहु ब्रह्म को जाने है। याही भाव से व्यास मुनीश्वर अपने सूत्रों में कहते हैं स्रुती की सहायता बिना केवल युक्ति की कुछ प्रतिशठा नहीं। किउ कै न्यून बुधी वालों की तरफ को उससे अधिक बुधीमान षंड देता है। याते केवल तरक की थिरता नहीं इसी भाव को मन में रष गृंथ साहिब जी भी केवल तरक करने का निषेध कीआ है। या तरक नचा। (६)- न्याय सासत्र। (७)- मीमांसा सासत्र। (८)- बिचार स्वरूप मीमांसा। (९)- अनुमान का सहकारी तरक जैसे जो परबत में धूम मान के भी अगनि नहीं माने तिस प्रति कहा जाता है जो परबत में अगनि ना रहै, तब धूम भी न रहै। किउ के कारण बिना कारज धारहना नहीं बने। (१०)- अ बैराग्य या उपजी तरक दिगंबर होआ। दे० मरम बोधक दुषादाई बचन जैसे कोई तेजसु भाव विरक्त संत तरका कहते हैं।-
वही, पृ० ६०

है । बंदा शब्द नहीं।[१] एक और उदाहरण देखें 'अस्त' शब्द संस्कृत में समाप्त होना नहीं, डूबना नहीं। अस्त- अस्ति फारसी में है। परन्तु यहां एक और शब्द 'जनक' देशी भाषा का नरोत्तम ने बताया है उसका अर्थ 'मानी' के सन्दर्भ मे किया है। जनक शब्द का अर्थ मानी में नहीं किया जाता। जन' (ब्रज) भाषा का है और 'जनक' शब्द देशी भाषा का नहीं। 'देशीनाम माला'[२] हेमचन्द्रकृत में यह सन्दर्भ नहीं दिया। देखें जनक की व्याख्या किस प्रकार की है।

व्युत्पत्ति: निरुक्ति

इसमें सन्देह नहीं कि व्याकरण और भाषा वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से नरोत्तम का कार्य बहुत सन्तोष जनक नहीं है। और नहीं विस्तृत रूप से इसका उल्लेख है। साधारणत: कोशों में शब्दों की व्युत्पत्ति, लिंग आदि बताए जाते हैं उनकी विस्तृत ढंग से व्याख्या की जाती है परन्तु नरोत्तम ने बहुत कम का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन दिया है जैसे अब शब्द का अर्थ बताते हुए कहते हैं कि अब अद्य से है अद्य

१- अरबी भाषा का ज्ञान प्रकट होता है । तर्क छोड़ना तरीकत।' बदन नाम संसक्रित में पुष्प का है। फारसी में देह का है। बंदा नाम संसक्रित में नमसकार का और बिछ पै उपजी लता का है। फारसी में घर का है। गीर नाम संसक्रित में बाणी का है फारसी में पकड़ने का है। अस्त नाम संसक्रित में समापती का है। फारसी में है का है। दीन नाम संसक्रित में गरीब का है। फारसी में धरम का है। तरक संसक्रित में युक्ती का नाम है। फारसी में त्याग का नाम है। ऐसे पदों के अरथ दोनों जुदे लिखे जावेंगे। एवं देस भाषा पद का स्वरूप मी जहां गुरुबाणी में संसक्रित पद के वा आन भाषा के पद के समान होगा। तहां प्रकास कीआ जावेगा। जैसे जनक पद जनक राज इहां संसक्रित है। और जनक मोती इहां जनक मोनी के अरथ में देस भाषा है।' - वही, भूमिका
इस अवतरण में संस्कृत फारसी तथा देशी आदि का ज्ञान प्रकट होता है।

२- जनक- दे० मानी- य- तारका मंडल। जनक मोती, सं० जनक राजा तुल्य या इह जनकराज गुरु रामदास तुम ही बन आवे- व्यवहार करना। हे गुरु रामदास जी आपको ही बन आवता है सम को नहीं बने। इस बचन विषे

सै है अद्य संस्कृत है।[1]

सर्व नाम व्याख्या

नरोत्तम के अनुसार सर्वनाम शब्दों का अपना कोई अर्थ नहीं। इसका वही अर्थ होता है जिसे वक्ता अपने साथ रखकर कहता है। सर्वनाम की व्याख्या के अन्तर्गत वह`जो``सो` जैसे` कैसे` `एह`, `उह`, `क्या`, `कौने`, ज्यु, `क्यु` इत्यादि को लेता है।[2] यह अपने साथ जुड़ कर ही प्रयुक्त होते हैं।

(पिछले पृष्ठ से)

जो जनक की मदो ने गुरो के उपमादई। तिसका अरथ ना समझने वाले प्रेमी सिषनी ने दूसरी पात साही के सवैयों में तूतो जनक राज अवतार पाठा देष है गुरु जी तुम जनक राजा के अवतार हो। ऐसे अरथ लिष दीआ। जिस को देष कर आप आपनी गुरु नानक जी को जनक राजा का अवतार कहने लिषने सुनाने लगे। वास्तव से पाठ का अरथ यह है। हे गुरु अंगद जी तुम गुरु नानक जी का स्वरुप होने से जनक सरब का पिता जो राज दीपती मान प्रमेश्वर तिसका ~~रब~~ अवतार हो। कारण गु० जानने वाला या जनक सोई जिन जाणिउ- जानने वाला पूरा वही है जिसने जाणाया है। वही, पृ० ६२३

१- अब दे० इस काल में- आज य- अठ करता सुइताल।
इहा ~~अब~~ अद्य से है अद्य स० इताल इस वेले।` वही, पृ० १०५

२- याही ते ना तिस एह न उहा। ईहां एह सबद का अरथ लोक अर उहा सबद का अरथ परलोक है। एह किने ही चाकरी इहा एह सबद। यह कैसी चाकरी है। इस अरथ का वाचक है। लोक का वाचक नहीं। उहने हुन वेला पाठ में उह पद वहु नेह नया है। ऐसे वहु अरथ का वाचक है परलोक का वाचक नहीं। याते इनके वो ही अरथ है जिनको वक्ता कह्या चाहे। इसी अभिप्राय से इनका सरब नाम रषा है। जो ये जिसको कहना चाहे उन सभ के नाम बन जाते है।

भूमिका।

सर्वनाम की यह व्याख्या आधुनिक दृष्टि के अनुकूल है।

भाषा शुद्ध। अशुद्ध

नरोत्तम ने कुछ शब्द शुद्ध अशुद्ध बताए हैं। उसके अनुसार कुछ लोगों के उच्चारण से शुद्ध शब्द अशुद्ध बन जाते हैं। मूल शुद्ध शब्दों का आगे फिर अशुद्धीकरण होता है। जैसे शुद्ध मनुष्य, अशुद्ध मानुस, अशुद्ध का अशुद्ध माणास--।[1] इसी प्रकार मध्य और क्रिया को देखें। मध्य > मह > महीउ > महीए > महीअल, इसी प्रकार आधार > अधोरी > अधीर प्रसिद्ध है। भाषा का विकास जैसे होता गया उसी प्रकार भाषा के शब्दों की ध्वनियां निरंतर परिवर्तित होती चली गई।

उपसर्गप्रयोग

भाषाओं में शब्द कई तरह से बनते हैं। उपसर्गों के आधार पर शब्दों के निर्माण पर नरोत्तम ने विस्तार से विचार किया है। नरोत्तम ने २२ उपसर्गों की संख्या बताई है। जैसे प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निर, निस, दुस, वि, आङ, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत, अभि, प्रति, परि, उप। परन्तु यहां २१ उपसर्गों के नाम आए हैं। इन प्राचीन २२ उपसर्गों के आधार पर नरोत्तम ने शब्दों की निरुक्ति की है जैसे 'भु' के पीछे 'प्र' जोड़ने से प्रभु बन जाता है। हार के पीछे 'परि' लगाने से परिहार, 'आ' लगाने से आहार, 'वि' लगाने से 'विहार'। इसी प्रकार प्रारब्ध की वे शब्द के पीछे परा जोड़ कर बना लेते हैं तथा 'पति' के पूर्व 'उत' जोड़ कर 'उतपति' शब्द बनाया गया है। फलत: निरुक्ति के क्षेत्र में इन भ्रान्त धारणाओं के साथ साथ नरोत्तम का यह कार्य श्लाघनीय है।

१-
भाषा
|
शुद्ध | अशुद्ध

जो सुध पदों के लोगों के मुष चढ़ बिगड़े असुध पद प्रसिध है। पुना तिन असुधों के असुध प्रसिद्ध है। जैसे मध्य सुध का मह असुधा और मह असुध का महीउ वा महीए असुधा। पुना तिन का महीअल असुध प्रसिध है तथा आधार सुध का अधोरी और अधरि प्रसिध है तथा क्रिपा सुध के क्रिपधे क्रिपैन क्रिपंगना असुध प्रसिध है। वही, भूमिका।

प्राचीन सन्दर्भ: कोश

आधुनिक युग में कोश निर्माण करते समय एक नियम सा बन गया है कि शब्दार्थ करते समय आधार ग्रंथों को संदर्भित करना आवश्यक हो गया है। कई बार शब्दों का अर्थ प्रसंग के द्वारा भी स्पष्ट होता है। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक शब्द का अर्थ बताते समय प्राचीन संदर्भ उद्धृत किए है।

जैसे 'उत' का अर्थ बताते समय गुरुवाणी का सन्दर्भ दिया है, 'इत उत की उह सोफी जाने।' 'जानी' साधारण से शब्द के साथ भी 'जानी रे राजा राम की कहानी।' पुन: सतन अवरन काहू जानी' सन्दर्भ दिया है। इसी प्रकार 'त्रैपाल' का शब्दार्थ देखते बनता है 'त्रैपाल लिहाल बिचरि।' इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी स्थानों पर नरोत्तम ने उचित सन्दर्भ देकर शब्दार्थ को सरल बनाने का प्रयत्न किया है।

वेद पुराण

यदि कोई नाम वेद, पुराण, स्मृति और शास्त्र के साथ सम्बन्ध रखता है तो उसका पूरा निर्णय-वर्णन किया गया है। जितनी विस्तृत व्याख्या हो सकती है उतनी की गई है। इतनी विस्तृत व्याख्या देखकर ऐसा लगता है[१] कि यह साधारण कोश न होकर ज्ञान कोश बन गया है जैसे दान की व्याख्या देखें।

१- दान- सं० दानपद ध्यन- देन- षडंन- सोधन, अरथों का वाचक है, इस लीए इसके सभी अरथ कोसों में लिखे हैं। ध्यन, सुधी पालन, त्याग हाथी, का मद जो कान के समीप से पानी निकसे है उत्तम देसकाल भी धरम से इकत्र की आपदारथ सुधा से देना। 'अरथात अपनी मेर छोड़ के दूसरे की मेर करावनी दान है।' जिस दान के षट अंग हैं। दाता, ग्रिहीता, सुधा, दान योग्य वस्तु, देस काल दान की यह रीति है। दान पहले गीतीउं को देना। गीती ना मिले तब अपने आन संबंधीयों को देना। संप्रदाई ना मिले तब जल में गेर देना। यह गुरु दसम जी की उपदेसी मरयादा है। सनान करके सुध बस्त्र पहरा पवित्र देसकाल में देने योग्य दान चार प्रकार का है। एक नित्य दूजा नैमितक तीजा काम्य चौथा बिमल चारों में जो दिन दिन भी। अपने पे उपकार ना करने वाले ~~सनन~~-- जनो को। फल की चाह बिना दीआ जावे। उसका नाम नित्य दान है जो पाप को दूर करने हेत। मत की मरयादा को। पूरा जानने वाले ग्यानी

यहाँ दान की व्याख्या इतनी सुन्दर बन पड़ी है कि नरोत्तम ने 'दान' के पारिभाषिक वैधानिक तथा व्यावहारिक रुप को पूरी तरह प्रकट किया है। 'दान' का पारिभाषिक अर्थ कितना सुन्दर है 'अपनी मेर छोड़ के दूसरे की मेर करावनी दान है।' धर्मशास्त्रकारों ने स्वत्व की निवृत्ति और दूसरे के स्वामित्व की प्रतिष्ठा दान का प्रमुख लक्षण बताया है।

(पिछले पृष्ठ से)

जनों को दीआ जावै। उसका नाम नैमितक दान है। जो संतान जय की धन की स्वरग की इछा कर दीआ जावै। उसका नाम काम्यदान है। जो परम्पर परमेश्वर की प्रसनता हेत ब्रह्म वेता जनो को। सुध चित से दीआ जावे उसका नाम बिमल दान है। पूरब कहे नित्यादि दानों के और भी सात्विक राजस तामस तीन भेद हैं जैसे जो देने योग्य वस्तू। उत्तम देस उतम काल मे। उपकार का बदला ना चाह कर सत पात्र को दई जावै। वहु सात्विक दान है। जो प्रति उपकार अरथात पीछे करार काम का वा आगे जो कराना है। उसके बदले वासते वा फल हेत देइए उसका नाम राजस दान है। जो मंद देस मंद काल मो। असत कर भी जन केताई, असत करा कर अनादर से दीआ जावे बहु तामस दान है। दान पद का पूरा अरथ यह है जो वसतु मेरी है ऐसे सम्यक जान के। उसको दूसरे वा स्वत्व कराने हेत स्वामी देवै। लेने वाला अछी तरह अपनी मेर कर लेवै ऐसी क्रिया का नाम दान है। पुराने धरम सास्त्रों में इसकी यह रीति लिषी है। असनान करके नित्य नेम का पाठ पड़। आचमन करके नारायण का। नव ग्रहों का निज गुरों का पूजन कर देने योग्य वस्तु को वामे हाथ मे रषा। दाहे हाथ से तीन बार जल छिड़का उस धन के अधिपति देवता का औ जिस को देना है उसका पूजन कर संकल्प करके कुसा तिल जल सहित दान लेने वाले के हाथ में देवै। इसका नाम दान है- गुरुमत में यही विधि। अरदास समे परमेश्वर का परम गुरों का निज गुरु का पूजन करके। सनान ध्यान पाठ कर सुध होके करे।

गुरु गिरारथ कोश- भाग दो- पृ० ६९-७०

नरोत्तम के अनुसार दान चार प्रकार का है। नित्य, नैमित्तिक, काम्य और विमल। भाई कान्ह सिंह ने दान के सम्बन्ध में चलती सी बातें कहीं हैं। नरोत्तम जैसी गम्भीरता उनमें नहीं है।[१] भाई कान्ह सिंह की इस व्याख्या में दान की पूरी परिभाषा या वैधानिक स्वरूप स्पष्ट नहीं है। साधारण सी चर्चा कान्ह सिंह ने की है।

धर्म शास्त्र के इतिहास में डा० काणे ने 'दान के सम्बन्ध में नरोत्तम के समान पूरे विस्तार से चर्चा की है।[२] डा० काणे ने भी नरोत्तम के समान दान को नित्य, नैमित्तिक, काम्य और बिमल चार प्रकार का बताया है। श्री मद् भगवद गीता में भी दान के तीन प्रकार बताए गए हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नरोत्तम को 'दान' सम्बन्धी व्याख्या धर्मशास्त्र की सभी परम्पराओं से समर्थित और इसमें नरोत्तम का गुरु गंभीर ज्ञान निहित है।

१- दान- सं०. संग्या- देणा दा करम षैरात दान दातारा अपर अपारा' (राम कद म० ५) घरि घरि फिरहिं तूं मूढे। ददै दान न तुधु लाइआ।' (आसा पटी म० ३) दान करन दा गुणा तैं अंगीकार नहीं कीता। उह वसतु जो दान विच दिती जावे। --

गुरु शब्द रत्नाकर महानकोश- पृ० ४७१

२- Dana consists in the eessation of one's ownership over a thing and creating the owership of another over that thing and this last occurs when the other accepts the thing which acceptance may be mental or vocal or physical- p.841.

Therefore, Devala defines dana as that is described as dana when wealth is given according to satric rites so as to reach a receiver who is a fit recipient as defined in the sastra. p.842.

There are six anges of dana, as stated by devala viz. the donor, the donee, sraddha (charitable attitude), the subject of gifts which must have been acquired by the donar in a proper way, a proper time and a proper place.p.843.

परन्तु 'दान' की यह पूरी प्रक्रिया पौराणिक दृष्टि से आच्छादित है। गुरु नानक की दृष्टि से दान सात्त्विक दान की महिमा भाई लाली की कहानी से प्रकट होती है। जिसका उल्लेख नरोत्तम ने नहीं किया।

शास्त्रीय संदर्भ

नरोत्तम ने जहां तक हो सका है शब्दार्थ[१] करते समय भिन्न भिन्न शास्त्रों से संदर्भ देकर शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया है। शक्ति का शब्दार्थ करते समय वेदान्त मत, नैयायिक, व्याकरण और मीमांसा शास्त्रों का सन्दर्भ बड़ी प्रामाणिकता के साथ दिया है। सकति शब्द पर उनके विचार माननीय हैं। प्रसंग लेकर अर्थ समझाना निश्चय ही नरोत्तम की सर्वोत्तम उपलब्धि है।

Donas are divided into Nitya, Maimitlika and Kamya, Whatever is given everyday is Nitya, what is given at certain specified times or on account of doing certain acts is called Naimitika; what is given through the desire of security progeny, Victory, prosperity, heaven or a wipe is called Kamya. Dedication of a garden or of a well and is called dharuvadana by Derala, while the Kurma Purana adds to the well known three a fourth division called vimla (pure) defined by it as what is given to those who know brahma for securing the grace of God with a mind full of devotion..... the Bhagvad Gita divided danas into Sattrika, Rajasa and temasa-

-History of Dharam sastra-Pandurung Voman Kane, vol.III, p.841-49.

१- सकति- दे बल जोर। कुबत (कुव्वत) य० मान महत। मेरी सकति न काई पद का अपना बल जैसे अगनि में जलाने, जल में गलाने का जोर है। ऐसे पदों में अपने अरथ बोधन का जोर है तिस का नाम भी सकती है। यह वेदांत मत है इस पद से यह अरथ मान होवे। ऐसी ईस्वर की इछा का नाम सकती है। यह नैयायिक मत है। पद भी अरथ ग्यान की कारणता का नाम सकती है ऐसे वैयाकरण कहे हैं। पद का अरथ का आपस भी भेदाभेद रूप तदातम (तादात्म्य) संबंध सकती है। यह भी भासक मौन है।

- गुरु गिरारथ कोस- पृ० २११

शिक्षा ग्रंथ: संदर्भ

नरोत्तम ने व्याकरण शास्त्र के सन्दर्भ भी कई स्थानों पर दिए हैं। 'शिक्षा' (सिषिआ) का शब्दार्थ इस प्रकार दिया है।[१] स्थान और प्रयत्न के प्रभाव से ८ और २ और भेद इसी के अन्तर्गत बताए हैं। स्थान में उर, कंठ, सिर, जिह्वा का मूल, दांत, नासिका, अष्ट और तालू तथा प्रयत्न के बाह्य और आभ्यंतर भेद किए हैं। आगे जाकर स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ भेद बताए हैं। पाणिनि तथा नारद के शिक्षा ग्रन्थों से वचन-सामग्री को उद्धृत करना नरोत्तम की प्रतिभा का सूचक है।

इसी प्रकार 'गुरु हाई' की व्याख्या व्याकरण की दृष्टि से की है। गुरु हाई शब्द का अर्थ किस प्रकार भंग करके किया है कि 'हा' शब्द फारसी में बहुवचन के लिए प्रयुक्त होता है। और संस्कृत में 'हा' पद हनन करने वाले के लिए

१- सिषिआ (शिक्षा ग्रंथ) दे० जिसमें अषरों की उतपती योग्य (१)-उर, (२)- कंठ, (३)- सिर, (४)- जिह्वा का मूल, (५)- दांत (६)- नासका (७)- अष्ट (औष्ठ), (८)- तालू, ये आठ स्थान दिषाए हैं और बाह्य अभ्यत्र भेद से दो प्रकार के प्रयतन बताए हैं। इन स्थान प्रयतनों के प्रभाव से ही पाणिनी रिषि ने त्रेहट अथवा चौहट अषार कहे हैं। सो अषार बावन अषारी इस नाम के अरथ भी दिषाए जावेंगे अहा ही प्रकरण से स्थान प्रयतन दिषाए जावेंगे।

नारद रिषी की सिष्या भी स्वरों के हस्व दीरघ पलुत भेद औ हस्वादिकों के उदात अनुदात स्वरित भेद और उदातादिकों में षड़ज रिषभ गंधार मध्यम पंचम धैवत स्वरों का प्रवेस। और स्वरों के मुरछना ग्रामादि बिसेषा। सामवेद के गायन हेत दिषाए हैं याते बरण स्वरादिकों के उचारण का प्रकार जिसमों उपदेस कीआ गया सो सिष्या अंग दे अभ्यास कीआ है य। सिषी सिषिआ गुरु बीचारु सिषों ने गुरों से उपदेस ग्रहण कर अभ्यास कीआ है सभ से बड़े परमातम विचार का। उसी का कथन उसी का चिंतन उसी का परसपर बोधन करना अभ्यास कहावे है सो नाक ब्रिह्म।' - गुरु गिरारथ कोस प्रथम भाग, पृ० २६६

प्रयुक्त होता है।[१] नरोत्तम के अनुसार बड़े ऋषि मुनि का वाचक शब्द गुरु है और 'गुरुहा' राक्षस का नाम है। गुरुहा से गुरुहाई भाव वाचक शब्द है।

छन्द शास्त्र

नरोत्तम ने शब्दार्थ करते समय छन्द की भी सहायता ली है। छन्द के सम्बन्ध में उसके विचार महत्वपूर्ण हैं।[२] वर्णं छन्दों में तीन तीन मात्राओं के आठ गण होते हैं। ~~ममगनगिदिक-है~~ नाम इनके भगणादिक हैं। इसके साथ ही त्रैपाल का शब्दार्थ

१- गुरुहाई- दे० हा पद फारसी मों बहुत का वाचक है। जैसे सैंकड़े के ठिकाने सदहा। हजार के ठिकाने हजारहा। तैसे गुरुउ के ठिकाने गुरुहा बनता से गुरुहाई बन गया है। जिसका अरथ गुरु गुरुहाई बड़े बहुते गुरों सेवा।

संसक्रित मों हा पद हनन करने वाले का। गुरु सबद बड़े रिषि मुनीउं का वाचक है। याते तिन रिषि मुनीउ के हनन करने वाले राक्षसों का नाम गरुहा है। गुरुहा से गुरुहाई बना है।

प्रकरण मीं बिभीषण, बलि, प्रहलाद, गृह्य कर प्रहलाद आदि राक्षस भक्तों से भी आप की बड़िआई नहीं कही जाती।

वा भमे (भकाट) का हाआ हो गुरुभाई से गुरुहाई बन गया है। याते ग्यानीउं से ध्यानीयों से गुरों से गुरों के उपदेसे भाईउं से भाव गुरु के चेलिउं से। कही नहीं जाती स्वेक मात्र है प्रमेस्वर तेरी बडिआई- वही, प्रथम भाग पृ० ५२२

२- छन्द- 'मात्रा वरण भेद से दो प्रकार के पिंगलों में लिखे हैं। बरण छंदों में। एक से ले छबाई अषर तारे। छंदों की जातीउ की गिनती है। एक अषरे पाद वाले का नाम उक्ता है दुअषरे पाद वाले का नाम अत्युक्ता है। तीन अषरे पाद वाले का नाम मध्या है। चुअषरे पाद वाला प्रतिश्टा है पांच अषरे पाद वाला सुप्रतिश्ता है। छी अषरे पाद वाला गायत्री है। सात अषरे पाद वाला उश्निक है। आठ अषरे पाद वाला अनुश्टप है। ऐसे औरों के नाम हैं। बरण छंदों में तीन तीन अषर के आठ गण होते हैं। नाम उनके भगणादिक है। मात्रा छंदों में आरयादि अनेक छंद है। गण जिनके षट पांच आदि मात्रा वाले पांच है। नाम उनके टगन-ठगनादिक है। स्वैराचार षुयी अनुसार विचारना । इत्ता। छंदस स०।' वही, पृ० ७ ६१८

करते हुए नरोत्तम ने गायत्री छन्द पर विस्तार से विचार किया है।[1] नरोत्तम के अनुसार वेद में गायत्री का नाम त्रिपदा लिखा है। गायत्री की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है गायंत + त्रायती इती गायत्री (गायंतंत्रायति इति गायत्री) अर्थात् जाप करने वालों की रक्षा ~~करने बस्करें~~ करने वाला मंत्र है।[2] एक अन्य स्थान पर भी 'सलोक' का शब्दार्थ करते हुए छन्द का उल्लेख किया है। सलोक को चार प्रकार की मुक्ति के साधन में से सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, तथा सालोक्य में से एक मानते हैं। इसके उपरान्त यहां छन्द

१- त्रैपाल:- गु० त्रिपाद रुप गायत्रीय त्रैपाल तिहाल बिचरि तीन पाद रुप गायत्री का। तीन संध्या कालों में विचार करना। मंत्र जाप समै मंत्र के अरथ विचार का विधान है। धरम सासत्रों मैं। इस लीए गुरों ने विचार लिषा है। पिंगलो में गायत्री चारो पादों में। षठ ष षठ अषरों वाले छंद का नाम है। वेद के गायत्री मंत्र को। वही छंद माने। तब चार छ:के। चौबीस के हिसाब से चारों पाद पूरे हैं तीन नहीं। गायन करने वाले की रष्या करता मंत्र। अरथमान के। इस को गायत्री छिंद कहिना कोइ। अनुशष्ठ छंद माने। तब अनुशष्ठ के एक एक पाद मो आठ आठ अषर होते हैं। याते तीन अठे चौबीस के हिसाब से तीन पाद बनते हैं। जिनके होने से वेद मो गायत्री का नाम त्रिपदा लिषा है। त्रिपदा का त्रिपाद बन त्रैपाल बना है। वासतव से गायंत त्रायती इती गायत्री इस व्युतपति से गायत्री नाम का अरथ अपना गायन अरथात जाप करने वाले की रष्या करने वाला मंत्र है। इस लीए पिंगलोक्त गायत्री छंद के चारों पादों में लष्यणा बनने से इसका गायत्री कहना बने है। आठ आठ अषरो वाले, अनुशष्ठ के तीन पादों के संभव से त्रिपदा कहना बने है। एक पाद का भंगमान त्रिपदानाम कहना अन जानो को समझ है इसी वासते लागत लागत जाती थी। इहां पाठ ~~रकैन~~ का भंग अरथ नहीं कीआ स्राप थल से फल देने की सक्ती का रोक मात्र अरथ कीआ है। सो इस सबद की टीका मो देषनी।

वही, पृ० २८-२६ भाग दो।

२- सलोक- सं०। चार मुक्तीउ में एक मुक्ति य अते मुकति सलोक (सालोक्य) यस (यश)। जैसे भगतों का बड़ा सलोक है। भाव बड़ा जस है। छंद मात्र। या 'उतम सलोक साध के बचन'- उतम छंद संतों के बचन है। जो छंद पिंगल में लिषे जाते हैं सो छंद मात्रा गण बरण छंद भेद से तीन प्रकार के होते हैं।

भेद तीन प्रकार का कहा है जबकि पीछे दो प्रकार का बताया है। मात्रा, गण और वर्ण। यहां त्रुटि दिखाई पड़ती है। उनके अनुसार सहसकृति सलोकों को छोड़कर सभी स्थानों पर सलोक दोहे छंद का नाम है। सुखमनी की अष्टपदीयां चौपाई छन्द में है। गुरु ग्रंथ साहब जी के शब्द गाथा छंद में है। छन्द सम्बन्धी इस विवेचन को देखकर कहा जा सकता है कि नरोत्तम की छन्द शास्त्र सम्बन्धी शास्त्रीय तथा व्यावहारिक ज्ञान भरपूर मात्रा में है। सलोक, छंद, दोहा, चौपाई आदि विभिन्न छंदों का विवेचन नरोत्तम ने कोश में किया है।

अलंकार

नरोत्तम ने अवसर आने पर अलंकारों की चर्चा की है। उदाहरण के लिए समाधि का शब्दार्थ बताते समय अलंकार के रुप का भी उल्लेख किया है।[१] समाधि शब्द को अर्थालंकार बताया है। 'समाधि' का योगशास्त्र की दृष्टि से अन्तर किया है और अन्त में काव्य गुण बता दिया है। इसी प्रकार झंडरियां का अर्थ करते समय उत्प्रेक्षा अलंकार का उल्लेख किया है।[२] इस प्रकार 'उपमा' की व्याख्या देखें कितने सुन्दर शब्दों से

(पिछले पृष्ठ से)

आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु। इस सलोक बिना अर सहसक्रिति सलोकों के बिना बहुत कर और सभ थानों में सलोक नाम दोहे छंद का है। पौड़ीउं के आदि के सलोक औ कबीरादिकों के सलोक सपस्ट दोहरे हैं। सुखमनी की असट पदीआं चौपई छंद है। ग्रंथ साहिब जी के सबद गाथा छंद है। जिनका प्रसिध नाम बिषम पद है। लोकों में 'विषम पद' का बिगड़ के बिसन पदे बन गया है। जेकर बिसन पदा बिसनु के गुण करम जस प्रतिपादक बाणी का हीनाम होवै। तब सिव दुरगादिकों के गुणादिक प्रतिपादकों का नाम सिव पदा सक्ती पदा होनाचाहिए। कहते सभ को बिसन पदा है। यातें 'विषम पदे' से बिगड़ा नाम है।' वही पृ० १६६, 'बिसन पद को' विषम पद' बताकर एक नया विचार दिया है। 'बिसन पद' नाम से अनेक छंदोबद्ध कृतियां पंजाब में मिलती हैं।

१- ~~समाधि~~ समाधि सा ध्येय बसत्र में एकागर कर चित का थित करना। य० सहज

शब्दार्थ किया है।[1] जान पड़ता है कि साहित्य शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान नरोत्तम को है।

इन सब के अतिरिक्त नरोत्तम ने शब्दों की इतनी विस्तृत चर्चा की है कि वे न तो साधारण कोश के अन्तर्गत आते हैं वे एक प्रकार से ज्ञान, कोश अथवा साहित्य कोश की वस्तु बन जाते हैं। उदाहरणत: हम 'नवनवक' शब्द को देख सकते हैं। इसके लिए नरोत्तम ने शास्त्र और नीति ग्रंथों में जो गृहस्थी को अपने प्रतिदिन या जीवन भर नियमों को अपनाना चाहिए उनका उल्लेख किया है मुख्य रूप से 'नव नव के' शब्द का शब्दार्थ नव सुधा रूप, नव अल्पदान, नव कर्म, नव विकर्म, नव गोपनीय, नव प्रकाश योग्य, नव सफल, नव निसफल, नव आपत्ति के समय देने योग्य इन सब का वर्णन किया है।

(पिछले पृष्ठ से)

समाधि उपाधि रहित। युक्ती सहित पदारथ का निरणाय करणा रूप समाधान। भाव उत्तर। बचन का अभाव। नियम। अरथालंकार बिसेषा। इंद्र्यो का निरोध। काव्य का गुण बिसेष। दे० मुरदे का मंदर। देहरा। धरती।

-- गुरु गिरराथ कोस- पृ० २१८

१- उड्यिरा- पं० उड़िया य 'धरम पंष कर उड़िरिया' मानो धरम पष लगाकर उड़ गइआ यह उत्प्रेष्या लंकार है।-- वही, प्रथम भाग पृ० १५

१- उपमा- सं० उसतति य० उपमा जा तन कही मेरे प्रभ की उपमा जातन कही पुना किआ उपमा तेरी आषिजाइ, समानता य० कौन उपमा दे देउ कौन सेवा सरेउ, किस की आप को समानता देवा कैसी आप की सेवा सेवों भाव सरब की समानता नहीं दे सकता औ निराकार स्वरूप की पाद सेवनादि रूप कोई सेवा नहीं करसकता उपमान दे सकती स्पष्ट है है। उपमालंकार भी समानता रूप साधारण धरम उपमान उपमेय वाचक ये चार अंग होते हैं जैसे मेघ सम स्याम विसनु उपमा में मेघ उपमान है। विसनु उपमेय है। सम वाचक है। स्याम उपमान उपमेय का साधारण धरम है उपमा रहित सचिदानंद स्वरूप को सरब की समानता से रहित होने कर काहू की उपमा नहीं कही जाती। किउ के जब परमातमा आकास समान सरबगत कहें तब उपमा बन सके सो आकास की व्यापकता को माया से भी अलप होने से परमातमा में सरबथा तिस का अभाव निसचे कर कोई उपमा नहीं दे सके जहां चारे बाता पूरन होवें तहां पूरन उपमा

इस प्रकार का उल्लेख विश्व कोश में हमें देखने को मिलता है। वहां नव नवक की व्याख्या इस प्रकारमिलती है। नवनवक (सं० की) नवगुणित नवकम। दत्तसंहितोत ज्ञातव्य एकाशीति पदार्थ। दत्त संहिता के अनुसार जानने योग्य इक्यासी पदार्थ।[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नरोत्तम ने जिस वस्तु या शब्द का शब्दार्थ किया है वह बड़े ठोस रुप में, प्रमाण युक्त कहा है। नरोत्तम की दृष्टि विमल है। उसमें परम्परा प्राप्त सभी तथ्यों को बरीक से पकड़ पाने की पूर्ण क्षमता है। इसके साथ ही अपने अंतहीन ज्ञान की विशाल प्रदर्शनी लगाने की उनमें एक दुर्दम लालसा भी है। परन्तु इस पूरी ज्ञान राशि को बौद्धिक कसौटी पर वे प्राय: नहीं परखते। लगता है उनका स्वतन्त्र चिन्तन ज्ञान के इस भार के नीचे दब गया है।

नरोत्तम: भाषा: ज्ञान

विभिन्न भाषाओं अरबी, फारसी, पूर्वी, दक्षिणी पंजाबी तथा विशेषत: पंजाबी कीकितनी ही बोलियों उपबोलियां जैसे माफी, दुआबी, पोठोहारी, मारवाड़ी, मुलतानी आदि के सम्बन्ध में नरोत्तम की जानकारी बहुत अधिक है। नरोत्तम ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों का f अर्थ बताया है और भूमिका में इन भाषाओं के संकेत

(पिछले पृष्ठ से)

होती है। जहां एक दो तीन न्यून होवें तहां लुपतोपमा होती है। अधिक विचार अलंकार ग्रंथों में है।

-स- वही, पृ० ३५

१- विवेचन के लिए गुरु गिरथ कोस पर पृ० १४०-१४२ पर देखें।

२- विश्व कोश वोल्यूम ११, पृ० ३८४

दे दिए हैं।[१] अर्थात् जो शब्द जिस भाषा का है उस शब्द के आगे भाषा का नाम लिख दिया है जैसे संस्कृत भाषा के शब्द के आगे सं०, पूर्वी भाषा शब्द के आगे पू० अरबी के आगे अ० फ़ारसी के आगे फ, दक्षिणी के आगे 'द', 'बांगरु के आगे बा, मारवाड़ी के आगे मा, पोठोहारी के आगे पो, माफे के आगे मा, दुआबे के आगे द० लिख दिया गया है।

१- नाम की मूल भाषा का यह संकेत है संसकृत नाम के अन्त में स० होवैगा जैसे अमर देवता का नाम है तहां अमर 'स' होवैगा। पाक पवित्र का नाम फारसी है तहां पाक 'फा' होवैगा। उमी अनपढ़का का नाम अरबी है तहां उमी 'अ' होवैगा। जहां अरबी फारसी नाम का ठीक निरनै नहीं तहां संदेहवाले पद आगे यवन भाषा का 'य' होवैगा। मनई मनुष्य का नाम पूरबी है तहां मनई दे 'पू' होवैगा। हंडे फिरे का नाम पंजाबी है तहां हड़े दे 'प' ऐसा होवैगा। थाके रहे का नाम बंगाली है तथा 'था' के दे बां होवैगा। उलीआ पहचान का नाम दषणी है तहां उलीआ। दे० द० से होवैगा। 'हबे' है अरथ मों मारवाड़ी है तहां हबें दे 'मा' होवैगा। लवे समीप का नाम जंगली है तहां लवे दे० जै 'ज' होवैगा। पिरान पहचान अरथ में बंग बांगरु है तहां पिरान दे 'बा' होगा। नढ़ी छोटी का नाम सिंधी है तहां नढ़ी दे सिं होगा। - - - - याते जहां मुलतानी पंजाबी होगी तहां 'पं० मु' होगा जहां पोठोहारी होगी तहां पं पो' होगा। जहां माफे की होगी तहां 'पं मा' होगा। जहां दुआबे की होगी तहां 'प० दु० होगा।

-- वही, भूमिका, पृ० ६

संकेत सूचक चिन्ह

	पद	अर्थ	पद	अर्थ
अमर	स०	देवता	पाक फा०	पवित्र
उमी	अ०	अनपढ़	कलंदर यव	अवधूत
मनई	पू०	मनुष्य	हंढे पं०	फिरे
थाके	ब०	रहे	उलगीआ प०	पहिचान
हवै	मारु	है	लवै ज०	समीप
पिरान	बा०	पहचान	नहीं सि०	कोटी

भाषाओं के इस विशाल ज्ञान के साथ साथ उनकी विनम्रता भी लक्षणीय है। फारसी अरबी के अस्पष्ट शब्दों को नरोत्तम ने मात्र 'यव' संकेत देकर संदर्भित किया है।

त्रुटियाँ

नरोत्तम ने शब्दों का शब्दार्थ करते समय दूसरी भाषाओं के जो शब्द बताए हैं उनमें कुछ त्रुटियाँ भी हैं जैसे:-

१- थाके - शब्द 'स्थगित' से विकसित है तथा ब्रजभाषा, अवधी राजस्थानी में प्रचलित है।

२-'उलगी- अनिश्चित है। व्युत्पत्ति के अभाव में इस अर्थ की समीक्षा नहीं हो सकती।

३-'हवै - नरोत्तम के अनुसार मारवाड़ी शब्द है परन्तु यह ब्रज तथा अरबी में प्राय: प्रचलित है।

४- लवै- (समीप) नरोत्तम के अनुसार जंगली शब्द है परन्तु यह शब्द मालवा प्रदेश फिरोजपुर बठिंडा में प्रचलित है। जंगल प्रदेश के अर्थ में अनिश्चित प्रदेश है पंजाब के कितने ही प्रदेश 'जंगल' नाम से प्रसिद्ध रहे हैं।

(क)- कुरु जंगल' नाम से हरियाणा का कुछ भाग प्रसिद्ध रहा है।
(ख)- लायलपुर ज़िला (अब पाकिस्तान) के कितने ही क्षेत्र जंगल

ਅਨੇਕਪ੍ਰਕਾਰਕਾਬਰਤਾਉਹੈ।ਜੈਸੇਸੰਸਕ੍ਰਿਤਕੇਇਹ ਪਦਕਾ ਦ
ਖਣਮੇ ਈਕਰੇ ਕਾਸੀਮੇ ਏਹਰ ਬ੍ਰਿਜਮੇ ਈਹਾਂ ਹਰੀਦ੍ਵਾਰਸਮੀਪ ਈਂਧੇ
ਕੁਰਖੇਤ੍ਰਮੇ ਅਣੇ ਮਾਰਵਾੜਮੇ ਅਠੇ ਪੰਜਾਬਮੇ ਏਥੇ।ਤਤ੍ਰ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤ
ਕਾ ਦਖਣਮੇ ਤੀਕਰੇ ਕਾਸੀਮੇ ਓਹਰ ਬ੍ਰਿਜਮੇ ਊਹਾਂ ਹਰੀਦ੍ਵਾਰਸਮੀਪ
ਤੈਂਧੇ ਕੁਰਖੇਤ੍ਰ ਮਾਰਵਾੜਮੇ ਉਠੇ ਪੰਜਾਬਮੇ ਓਥੇ ਬਨੇਹੈਂ।ਐਸੇਔਰ
ਭੀ ਬਹੁਤ ਬਨੇਹੈਂ।ਤਿਨਸਭ ਅਨੇਕਰੂਪੋਂਕਾਮੂਲ ਏਕਕੋਜਾਨੋ।
ਜੋਮੂਲਪਦਕਾਅਰਥਹੈ।ਸੋਈਇਨਸਭਕੇਅਰਥਜਾਨਨੇ।ਜੋਇਨਕੇਅਰ
ਥੋਂਮੇਂਭੇਦਨਹੀਂਰਹਾ।ਇਸਲੀਏਸਭਕੇਮੂਲਬਤਾਏਜਾਵੈਂਗੇ।ਕੋਈ
ਹਾਂਗਲੀਜਾਨੋ।ਜੈਸੇਏਕਏਕਮੂਲਕੇਬਿਗੜਕਰ।ਦੀਦਦੇਸਮੇਅ
ਨੇਕਪ੍ਰਕਾਰਕੇਨਾਮਰਖੇਗਏਹੈਂ।ਵੈਸੇਸਭਬੋਲੀਓਂਕੀਮਾਤਾਸੰਸਕ੍ਰਿ
ਤਕੋਜਾਨੋ।ਆਨਦੇਸ਼ਕੀਬੋਲੀਓਂਮੇਂਔਰਔਰਪ੍ਰਕਾਰਕੇਨਾਮਬਨੇਹੈਂ
ਜੈਸੇਸੰਸਕ੍ਰਿਤਮਾਤਾ ਪਦਕਾ ਮਾਂ ਭਾਖਾ।ਮਾਦਰਔਰ ਮਾਮ ਫਾਰਸੀ।
ਮਦਰਅੰਗ੍ਰੇਜ਼ੀ।ਪਿਤਾ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤਕਾਪਿਉ ਭਾਖਾ ਪਿਦਰ ਫਾਰਸੀ।ਫਾ
ਦਰ ਅੰਗ੍ਰੇਜ਼ੀ।ਪੀਟਰ ਯੂਨਾਨੀ।ਪਦ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤਕਾ ਪਾਇ ਭਾਖਾ।
ਪਾ ਫਾਰਸੀ।ਪਾਡ੍ਰਾਸ ਯੂਨਾਨੀ।ਨਾਸ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤਕਾ ਨਕ ਭਾਖਾ।ਨੀ
ਸ ਅੰਗ੍ਰੇਜ਼ੀ।ਨੇਜ਼ ਲੈਟਨ ਬਨਗਏਹੈਂ।ਫਾਰਸੀ ਅਰਬੀ ਮੇਂਤੋ ਸੰਸ
ਕ੍ਰਿਤਸੇਬਿਗੜਕੇਬਹੁਤਹੀਬਨੇਹੈਂ।ਸੋਜੈਸੇਬਨੇਹੈਂ ਤੈਸੇ ਤਲੇਕੇ ਚਕ੍ਰ
ਮੇਂਦਿਖਾਏਜਾਤੇਹੈਂ।   ਚਕ੍ਰਯਹਹੈ

ਸੰਸਕ੍ਰਿਤਪਦ	ਫਾਰਸੀਪਦ	ਸੰਸਕ੍ਰਿਤਪਦ	ਫਾਰਸੀਪਦ
ਆਮ੍ਰ	ਆਂਬ	ਆਦਿਮ	ਆਦਮ
ਅਪ	ਆਬ	ਆਸਕ੍ਤ	ਆਸ਼ਿਕ

अनेक प्रकार का बन जाता है जैसे संसक्रित के इह पद का दषण मैं इकट्ठे कासी मै एहर ब्रिज मै ईहां हरीद्वार समीप ईंथे कुरषेत्र मैं अड्डे मारवाड़ मै अठे पंजाब मैं एथे। तत्र संसक्रित का दषण मै तीकड कासी मै उहर ब्रिज मै अहां हरीद्वार समीप अंथे कुरषेत्र मारवाड़ मै उठे पंजाब मैं उथे बने हैं। अैसे औ र भीबहुत बने हैं। तिस सभ अनेक रुपोंका मुल एक को जाने। जो मुल पद का अरथ। सो उन सभ के अरथ जानने से उनके अर थो मैं संदेह नहीं रहे। इस लीए सभ के मुल बताए जावेंगे। ई हां यह भी जानी। जैसे एक एक मुल के बिगड़ कर हिंद देस मैं अ नेक प्रकार के नाम बन गए हैं। वैसे सभ बोलिंड की माता संसक्रित बोली के। आन बलाइतों मैं और और प्रकार के नाम बन गए हैं· जैसे संसक्रित माता पद का मां भाषा। 'मादर' औ माम फारसी। माडर अंग्रेजी। पिता संसक्रित का पिउ भाषा। 'पिदर' फारसी। फा डर अंग्रेजी। 'पीटर' यूनानी। पद संसक्रित का 'पाइ' भाषा। पा फारसी। 'पाडास' यूनानी। नास संसक्रित का नाम भाषा। नी स अंग्रेजी। नोज लैटन बन गए हैं। फारसी अरबी मैं तो संस क्रित से बिगड़ के बहुत ही बने हैं। सो जैसे बने हैं तैसे तले कैक के चक्र भी दिषाए जाते हैं।

संसक्रित पद	फारसी पद	संसक्रित पद	फारसी पद
आम्र	आंब	आदिम	आदम
अप	आब	आसक्त	आसिक

ਸੰਸਕ੍ਰਿਤਪਦ	ਫਾਰਸੀਪਦ	ਸੰਸਕ੍ਰਿਤਪਦ	ਫਾਰਸੀਪਦ
ਅਸ਼੍ਵ	ਅਸਪ	ਅੰਤ	ਇੰਤਹਾ
ਅਸ਼੍ਰੁ	ਅਸ਼ਤਰ	ਭ੍ਰੂ	ਅਬਰੂ
ਉਸ਼੍ਟ੍ਰ	ਉਸ਼ਤੁਰ	ਆਕ੍ਰਿਤਿ	[illegible]
ਅਸ਼੍ਵਾਰ	ਅਸਵਾਰ	ਅਸ੍ਥਿ	ਉਸਤੂ
ਸ਼੍ਵਸ਼ੁਰ	ਖ਼ੁਸਰ	ਸ਼੍ਵਸ੍ਰੂ	ਖ਼ੁਸ਼ੂ
ਦੁਹਿਤ੍ਰ	ਦੁਖ਼ਤਰ	ਦੁਰ੍ਮਨ	ਦੁਸ਼ਮਨ
ਲੋਮਪਾਲ	ਲੋਮੜਕ	ਕ੍ਰਿਮਿਕ	ਕਿਰਮਕ
ਭੂਮੀ	ਬੂਮ	ਕਪੋਤ	ਕਬੂਤਰ
ਸਪ੍ਤ	ਹਫ਼ਤ	[illegible]	[illegible]
ਖਰਤਰ	ਸਿਤਰਗ	ਸ਼ਰਕਰੀ	ਸ਼ਕਰ
ਨਾਮ	ਨਾਮ	ਸ਼ਰਕਰੀ	ਸ਼ੁਕਰਗੀ
ਸ੍ਵਪ੍ਨ	ਖ਼ੁਆਬ	ਪੰਜਰ	ਪਿੰਜਰ

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

संसक्रित पद	फारसी पद	संसक्रित पद	फारसी पद
अस्व	असप	अन्त	इन्तहा
अभ्र	अबर	भ्रू	आबरु
उस्टर	उस्तर	आपत्ति	आफत
आगमन	आमदन	अ	
बरणान	बयान	सुस्क	षुसक
दुहिता	दुष्तर	दुसमन	दुशमन
कोट्ययाल	कोतवाल	बादित्र	बरबत
भूमी	बूम	चतुर	चहाट
सप्त	हफत	ब षीर	सीर
महततर	मिहतर	सरबरी	शब
जालम	यालम	सुरबानी	सुरयानी
बाल्हीक	बलष	गांधार	कन्धार

नाम की मूल भाषा का यह संकेत है। संसक्रत नाम को अन्त नैं सं० होवैगा जैसे अमर देवता का नाम है तहां अमर सं० होवैगा। पाक पवित्र का नाम फारसी है तहां पाक फ० होवैगा। उसम उमी अनपढ़ का नाम अरबी है तहां उमी अ० होवैगा जहां अरबी फारसी नाम ठीक निरणाय नहीं तहां संदेह वाले पद आगै यवन भाषा का यव होवैगा। मनई मनुष का नाम पूरबी है तहांमनईदे० पू० होवैगा। इन्दै फिरै का नाम पंजाबी है तहां इंदै दे पं० ऐसा होवैगा। बाके रहे का नाम बंगाली है तहां बा।

कहलाते रहे हैं।

५- नढ़ी- नढ़ी को नरोत्तम ने सिन्धी का बताया है जो गलत जान पड़ता है। नढ़ी शब्द पोठोहारी का है।

संस्कृत: फारसी वंशक्रम

इन सब के अतिरिक्त नरोत्तम को संस्कृत-फारसी का वंश क्रम न भी ज्ञात है जैसे: -

संसक्रित पद	फारसी पद	संसक्रित पद	फारसी पद
आम्र	आंब	आदिम	आदम
अप	आब व	अंत	इंतहा
अश्व	असप	आसक्त	आसिक
अभ्र	अबर (अब्र)	भ्रू	अबरू
उस्ट्र	उस्तर	आपत्ति	आफता
आगमन	आमदन	अस्ट	हस्त
बरणान	बयान	सुष्क	षुष्क
दुहिता	दुख्तर	दुरस्टमन	दुश्मन
कोट्यपाल	कोतवाल	बादित	बरबत
भूमी	बूम	चतुर	चहार
सप्त	हफत	षीर	सीर
महत्तर	मिहतर	सुरषी	सुब
जालम	चालम	सुरबानी	सुरयानी
बाल्हीक	बूलष	गांधार	कंधार[१]

१- गुरु गिरारथ कोश- भूमिका- पृ० ८६।

नरोत्तम ने जो ऊपर संस्कृत-फारसी की वंश-क्रम को बताया है इसमें कुछ अपवाद भी है कुछ असंभव व्युत्पत्ति है कुछ शब्द अस्पष्ट है जैसे:-

'आगमन'- आमदन,' असम्भव व्युत्पति, इसी प्रकार , 'बरणान' का'व्यान', 'अंत' का'इंतहा' यह सब असम्भव व्युत्पत्ति है। इसी प्रकार आम्र- आबं, आसक्त आसिक, सरथरी- सुब,'सुरबानी' - सुरयानी ,'अस्त- हस्त', आदि अस्पष्ट शब्द हैं।

इसी प्रकार'जालम' का'घालम' भ्रांत व्युत्पत्ति है इसके लिए जालिम या जुल्म ही सकता था। इस प्रकार नरोत्तम के एक दो अपवादों को छोड़कर उसकी व्युत्पत्ति निरुक्ति ठीक है।

नरोत्तम: अन्य कोश कार

नरोत्तम का स्थान पंजाब के कोशकारों में महत्वपूर्ण है। इससे पूर्व पंजाबी भाषा में हमें कोई कोश देखने को नहीं मिलते। ✓

(१)- पंजाबी शब्द भंडार

पंजाबी भाषा के कोशकार बिसनदास पुरी का १६२२ ई० में प्रकाशित पंजाबी शब्द भंडार देखने को मिला। यह कोश गुरुवाणी का न होकर सम्पूर्ण पंजाबी भाषा को लिए हुए है। बिसनदास पुरी ने गुरुमुखी लिपि की वर्णमाला के क्रम को ही अपनाया है। इसके साथ मात्रा क्रम को भी अपनाया है। एक शब्द के अनेकार्थ दिए हैं परन्तु बहुत कम स्थानों पर ऐसा देखने को मिलता है। सबसे बड़ी बात देखने में यह मिली कि एक शब्द के कई मुहावरे जो बोलने और लिखने के समय उपयुक्त होते थे उन्हें उसी शब्द के अन्तर्गत लिया गया है। जैसे हाथ शब्द के अन्तर्गत जितने मुहावरे आते हैं उन सभी का वर्णन किया है।

(२)- गुरु ग्रंथ कोश

इसके अतिरिक्त खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी की तरफ से गुरु ग्रंथ कोश १६५६ ई० में छपा। इसकी भूमिका में लिखा है कि इसका पहला एडीशन १८६८ ई० में है जिसे ज्ञानी हजारा सिंह द्वारा निर्मित हुआ बताया जाता था। हजारा सिंह ज्ञानी पंजाबी,

उर्दू, फारसी, अंग्रेज़ी, हिन्दी और संस्कृत के पंडित हुए। और इन्होंने गुरु ग्रंथ साहब का कोश बनाना आरम्भ किया। इनके पास उस समय पंडित तारा सिंह नरोत्तम का कोश नहीं था।

गुरु ग्रंथ कोश में गुरुमुखी की वर्णमाला क्रम की अपेक्षा नागरी वर्णक्रम को अपनाया गया है। मूल शब्द के आगे व्याकरण और व्युत्पत्ति बताई गई है। जैसे अजपा शब्द को देखें।[१]

इस प्रकार यहां पर शब्द की व्युत्पत्ति, उसका सन्दर्भ और उसकी व्याख्या की है। शब्द के अनेकार्थ करते समय संख्या और प्रत्येक के साथ सन्दर्भ दिया है।

(३)- महान कोश

माई कान्ह सिंह ने इन सब के अतिरिक्त महान् कोश को वास्तव में उसे महान् बनाने के प्रयत्न में शब्दों की व्याख्या की है। प्रत्येक शब्द का क्रम गुरुमुखी वर्णमाला है। माई कान्ह सिंह को महान् कोश लिखने की प्रेरणा पं० तारा सिंह नरोत्तम और माई हजारा सिंह के कोश देखने से मिली। तभी इनके मन में कोश निर्माण का संकल्प हुआ। इस महान् कोश में सभी विषयों से सम्बन्धित शब्दों को लिया गया है। इतिहास वेद पुराण, स्मृति, जुगरा फीए सम्बन्धी वनस्पति के नामों की व्याख्या, विज्ञान सम्बन्धी, धर्म-साहित्य सम्बन्धी आदि सभी विषयों से शब्द का संकलन किया है। इसके अतिरिक्त संस्कृत-अरबी फारसी आदि शब्दों को मूल अक्षरों में लिख कर उच्चारण स्पष्ट किया है। इनका अभिप्राय तो गुरुवाणी सम्बन्धी शब्द जो पूर्व के कोशों में नहीं आए थे उन सब को लेकर शब्दार्थ करना था, परन्तु इसके साथ अन्य विषयों ने भी अपना स्थान बना लिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंडित तारा सिंह नरोत्तम गुरुवाणी के प्रथम कोशकार के रुप में आते हैं और आपने आधुनिक कोश-शैली को अपनाकर अपने परवर्ती

१- अजपा गुरु संस्कृत आ+ जप- उचार तों बिना जो जपि ना जाए। अथवा जो सुआस दे आएा जाणा नाल जपिआ जावे उसनूं ई० अजपा कहिंदे हन। मूल मंत्र दा पाठ जो उचारे बिना हुंदा जाए। (२)- सिमरन कर दिआं जो आतमा विच इक रस भाव ते संगीत वत इक रस दी लहर मात्र दी प्रतीती हुंदी, जो ध्येय

कोशकारों को प्रेरणा प्रदान की। कोशकारिता के क्षेत्र में नरोत्तम की देन प्रशंसनीय है। न केवल पंजाबी में ही अपितु हिन्दी के कोशों में भी आपका मूर्द्धन्य स्थान है। क्योंकि इससे पूर्व आधुनिक शैली से युक्त इस प्रकार का कोश देखने को नहीं मिला।

नरोत्तम महान कोशकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। परन्तु कुछेक अपवादों को छोड़कर इनका कोश-सम्बन्धी कार्य बड़ा प्रशंसनीय कार्य बनपड़ा है। इन्होंने शब्दों की व्युत्पत्ति पर अधिक विचार न करके, व्याकरण के ढंग से कोश के शब्दों की व्याख्या न करके तथा आधुनिक भाषिकी की दृष्टि से बहुत सन्तोषजनक कार्य नहीं है परन्तु फिर भी पंडित तारा सिंह नरोत्तम की कुछ उपलब्धियां ऐसी स्तुत्य और अभिनंदनीय है।

इसके अतिरिक्त उत्तरवर्ती कोशकारों पर नरोत्तम का प्रभाव गम्भीर रूप से पड़ा। गुरु ग्रंथ साहिब के बने छोटे-बड़े कोशों का यह व्यौरा उपजीव्य और आधार रहा होगा क्योंकि परवर्ती कोशकारों ने इन्हीं से ही प्रेरणा प्रदान की थी। तारा सिंह नरोत्तम को आरम्भ में इसे व्यवस्थित करने में काफी श्रम करना पड़ा होगा।

अर्थ निर्धारण में पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने व्याख्यात्मक पद्धति अपनाई है क्योंकि इनकी प्रवृत्ति मुख्यत: गुरुवाणी की व्याख्या करने की ओर रही। जिससे एक और इनके पास विस्तृत ज्ञान होने के कारण, दूसरा भाषाशास्त्र में पारंगत होने के कारण इनका विवेचन प्राय: शुद्ध है।

निष्कर्ष यह है कि कोश निर्माण का कार्य बड़ा सफलता के साथ किया है। पौराणिक, ऐतिहासिक, शास्त्रीय और परम्परागत अनेक प्रकार के विषयों का अद्भुत संकलन नरोत्तम ने अपने कोश में किया है। उन पौराणिक तथा शास्त्रीय ग्रंथों से तुलना करने पर भी कोशकारिता की कसौटी पर सही उतरते हैं। इसका कारण यह कोश विश्व कोश, ज्ञान कोश और पारिभाषिक कोश के परिवेश का भी यत्र-तत्र स्पर्श करना दिखाई देता है।

(पिछले पृष्ठ से)

वसतू विच लीन होणा तों पहिलां अनुभव हुंदी है नाम अभ्यासी उसनूं अजपा जाप दी अवसथा आखदे हन, जिस विच सिमरन दा सहिज सुभाव होणा जारी हुंदा है। रस आउंदा है। यथा अजपा जाप नूं वीसरै आदि जुगादि समाई

नरोत्तम ने कोश में शब्दों के अभिप्रायों को साहित्यिक उदाहरण देकर परिपुष्ट किया है। कोश की यह मुख्य विशेषता थी कि एक ओर तो आधुनिक कोश शैली को अपनाया और दूसरी ओर शब्दों का संकलन और उनके अभिप्रायों को सोदाहरण प्रदर्शित किया।

उपयोग कीदृष्टि से नरोत्तम ने कोश अधिकारी के बारे में लिखा है।[१] यहां नरोत्तम स्वयं उल्लेख करते हैं कि गुरु गिरारथ कोश में वेद-वेदांग, उपवेद, पुराण, इतिहास, स्मृति शास्त्रादि के पदों के अर्थों का वर्णन है। इसे देखने के लिए पाठक को न केवल गुरुवाणी के पाठ का अपितु बाणी के अर्थ और दूसरे प्रसिद्ध शास्त्रोंका भी ज्ञान अपेक्षित है।

नरोत्तम कोशकार के रूप में बहुत प्रभावित करते हैं। उनका विशाल ज्ञान, उनकी कल्पना शक्ति की ऊंची उड़ान तथा विविध भाषाओं का उनका अद्भुत ज्ञान देखने की चीज़ है। काल क्रम की दृष्टि से नरोत्तम हिन्दी के प्राचीनतम कोशकारों में से है। केवल पंजाब में ही नहीं पंजाब से दूर दूर हिन्दी के क्षेत्र में भी नरोत्तम से पुराना कोशकार शायद ही मिले।

(पिछले पृष्ठसे)

(परमेशर दे नाम दा उह) जप जो अजपा है। आदि जुगादि । सदीव समाइआ। रहे सानूंना मुल।' -- गुरु ग्रंथ कोश- पृ० ३३

१- गुरु गिरारथ कोस भी। वेद वेदांग। उपवेद पुराण इतिहास सूत्र संहिता सिम्रिती सासत्रादी पदों के अरथों के बरणन में। तिन तिन मतों में माने किंचत पदारथ भी दिखाए जावेंगे। इस लीए इस के विचारने की योग्यता अपने में पैती सुहारनी सीष पंज ग्रंथी दस ग्रंथी पोथी पढ़। ग्रंथ साहिब जी की पाठ सीष कर ही ना समझै किंतू किंचत बाणी के अरथों के अर मतों के पदारथों के भी ग्याता होवें। सो निसंक बिचारें। किउके गुरु आप ही लिखते हैं। पड़िआ नाही भेद बुझै पावणा। पुना। सहेज गाविआ थाइ पवै बिन सहेज कथनी बाद। जेकर इस कोस को पढ़ के ही कहने योग्य पदारथों के ग्यान को पूरा जमा करना चाहें तब पूरे जानने वाले स्रेस्टों से इसी को सुन कर कर लेवें।

- गुरु गिरारथ कोश- भूमिका, पृ० १२

अध्याय- पंचम

(क)- बाणी व्याख्या की परम्परा, जन्मसाखी, परमारथ तथा टीका कारों की परम्परा।

(ख)- तारा सिंह टीका लक्ष्य, टीका प्रकार, टीका शैली, टीका महत्व

(ग)- गुरु भाव दीपिका- कृति परिचय

(घ)- टीका सिरी राग- कृति परिचय

(ङ)- भक्तों की बाणी - कृति परिचय, निष्कर्ष

व्याख्यात्मक साहित्य

पंजाबी साहित्य-विधा का आरम्भ गुरु नानक देव के जीवन वृतान्त से ही हुआ है। इससे पूर्व पंजाबी साहित्य की कोई रुप-रेखा नहीं थी। गुरु नानक देव के आने के पश्चात् गुरुवाणी आई और पंजाब के व्यक्तियों का दृष्टिकोण बदल गया। आज जितना भी पंजाबी साहित्य, संस्कृति, भाषा आदि का विकास हुआ है, वह गुरु नानक देव और उनके उत्तराधिकारी गुरुओं के कारण ही हुआ है। गुरुकुल के समय से ही पंजाबी साहित्य विविधता को लिए हुए है। पंजाबी साहित्य के गद्य की उत्पत्ति और विकास के बारे में मोहन सिंह दीवाना[१] के अनुसार १६वीं सदी के बाद एक साहित्यिक परम्परा देखने को मिलती है।

पंजाबी इतिहासकारों के अनुसार पंजाबी साहित्य का भंडार आरम्भ में जन्म साखी, गोसटी, रहतनामे, हुकमनामे, परचीआं आदि से भरपूर था। उस समय के गद्य साहित्य में धर्म सम्बन्धी ग्रंथों की बहुलता थी।

जन्म साखी पंजाबी गद्य का प्रारंभिक रुप प्रस्तुत करती है। यह अपने आप में पूर्ण साहित्य है। इसमें गुरु नानक जीवन सम्बन्धी घटनाओं का विवरण, उपदेश आदि को लिया गया है। डा० ~~नरेन्द्र~~ तरलोचन सिंह बेदी के अनुसार तीन प्रकार की जन्मसाखी १६-१७वीं सदी में देखने को मिलती हैं।

१- However, this much is beyond the pale of doubt that the stylistic variety and adequacy revealed in the earliest Janam Sakhis must have taken a long time and continued practice in the hands of numerous writers lost to us, to have evolved into that consummate shape about the middle of the 16th century.

-A History of Panjabi Literature by Dr.Mohan Singh Dewana, p.51.

(१)- **गुरु नानक देव की जन्म साखी**- इसमें दो रचनाएं गिनी जा सकती हैं-

(क)- भाई गुरुदास की पहली वार पर आधारित मनी सिंह की ज्ञान रत्नावली।

(ख)- १७वीं सदी के पहले आध में लिखी जनमपत्री बाबे जी के आधार पर लिखी गई जनम साखी गुरु बाबे जी के।

पूर्वार्ध

(२)- **दूसरे धर्मों के सन्तों कीजीवनी**:- इसमें हजरत मुहम्मद, कबीर, रविदास की जीवनी आती है।

(३)- **गुरुघर के श्रद्धालु सिक्ख कीजीवनी**- भाईसहज राम सेवा पंथी की लिखी भाई कनइआ जी की परची आती है।

डा० प्यारा सिंह ने A critical survey of 17th Century Panjabi Prose नामक शोध प्रबन्ध में जन्म साखी के साहित्यिक पक्ष का बड़ी गंभीरता के साथ विवेचन किया है।

हम देखते हैं कि जन्म साखी के द्वारा अनेक साहित्य रुपों तथा विधाओं का विकास हुआ। गद्य-पद्य दोनों शैलियों में साहित्य लिखा जाने लगा। धीरे धीरे गुरुवाणि का रुप टीका के रुप में परिवर्तित होने लगा अर्थात् साहित्य का विकास टीका व्याख्या या परमारथ की ओर जाने लगा। पंजाबी साहित्य का आरंभ से टीका से होता है।

टीका

ऐसा लगता है कि जब से गुरु नानक देव ने वाणि का उच्चारण किया है तभी से उस वाणि को गहराई से समझने के लिए इसकी विभिन्न रुपों से व्याख्या

१- १८वीं सदी के पहले आध की पंजाबी वारतक- आलोचनात्मक अधिअन डा० तरलोचन सिंघ बेदी- पृ० ६७

की जाने लगी है। और जब से गुरु अर्जुन देव ने आदि ग्रंथ का संकलन किया है तभी से गुरुवाणी पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाने लगा। पंजाबी में गुरुवाणी के सम्बन्ध में इतना अधिक विचार विमर्श और अर्थ सम्बन्धी चिन्तन हुआ कि गुरुवाणी के सन्दर्भ में इस टीका साहित्य का अध्ययन एक आवश्यक अध्ययन बन गया है।

वाणी के भाव को समझने के लिए लोग साधु-महात्माओं और गुरुमुखों के पास जाया करते। इस प्रकार धीरे धीरे बाणी की व्याख्या चलती रही। कई विद्वानों तथा साहित्यकारों ने विद्वता का चमत्कार दिखाने के लिए तुलनात्मक आलोचनाएं कर वाणी की विभिन्न व्याख्याएं की। टीकाकारों ने गुरुवाणी के एक-एक शब्द की टीका इतने विस्तार के साथ की है, कि उनमें उनकी प्रतिभा, सूक्ष्म दृष्टि प्रभावित करती है।

कई विद्वानों ने टीका करते समय अर्थ का अनर्थ कर डाला। उनमें प्रसिद्ध जर्मन विद्वान अरनेस्ट ट्रम्प हुए जिन्होंने आदि ग्रंथ को अंग्रेजी में अनुवाद किया। जब इस प्रकार की व्याख्या सिक्ख विद्वानों के सामने आई तो उनके मन रोष से भर गए तथा गुरुवाणी के श्रद्धालुओं ने यह विचार किया कि गुरुवाणी की प्रामाणिक अर्थों के साथ व्याख्या करनी आवश्यक है तभी वाणी के गहरे भावों को सही रूप में समझा जा सकेगा।

टीका परम्परा

हरि जी ने गुरुवाणी व्याख्या की एक प्राचीन परंपरा की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार दूसरे गुरु अंगद देव ने स्वयं गुरु नानक से पूछा था कि आपकी वाणी का सही सही अर्थ जानने की इच्छा है।[१] तब गुरु नानक जी ने गुरु अंगद जी को कहा:-

---

१- गोसटि गुरु मिहरिवानु- गोसटि- १

'बाणी बिरलउ बीचारसी जे को गुरमुखि होइ।
इह बाणी महापुरख की निज घरि वासा होइ। [१]

कोई विरला गुरमुख होगा जो वाणी की सही व्याख्या कर सकेगा। क्योंकि वाणी का अर्थ करना कोई सहज कार्य नहीं है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो टीका व्याख्या का प्रारंभिक रूप जन्म साखी में मिलता है। जब गुरु नानक किसी स्थान पर धर्मोपदेश को पद्य के द्वारा प्रस्तुत करते हैं तो साथ साथ उसके विशिष्ट अर्थों की व्याख्या भी करते हैं। रत्न सिंह जग्गी ने पुरातन जन्म साखी की भूमिका में पट्टी, पांधा वाली साखी को उदाहरणत: प्रस्तुत कर यह बतलाने की कोशिश की है कि यहां पर गुरु नानक परमात्म-चिंतन के अतिरिक्त शेष सब प्रकार के पठन-पाठन को व्यर्थ बतलाते हुए पांधा के प्रति निम्नांकित[२] पद्यांश को उचारते हैं फिर उसकी व्याख्या अथवा परमार्थ प्रस्तुत करते हैं।

१- आदि ग्रंथ- पृ० ६३५

२- जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु
भाउ कलम करि चितु लीखारी गुर पुछि लिखु बीचारु।
लिख नामु सालाह लिखु लिखु अंतु न पारावारु
बाबा एहु लेखा लिखि जापु।
जिथै लेखा मंगीए तिथै होइ सचा नीसाणु। १।

तब गुरु बाबे कहिआ, 'हे पंडित होरि जितना पड़ना सुणिना समु बादि है बिना परमेसुरि के नामि समु बादि है। तब पांधे कहिआ, 'नानक होरु पढिणा मेरे ताई बताई विश्वा जितु पढ़िऐ छुटिदा है।' तबि नानक कहिआ, 'सुणु हो सुआमी: इह जु संसारि का पड़िआ है ऐसा है जो मसु दीवे की अरु कागदु सणी का, अर कलम काने की अरु मनु लिखणा हारु अर लिखिआ सो किआ लिखिआ? माइआ का जंजालु लिखिआ। जित लिखिऐ समु विकारु होवनि। ओहु जि लिखणु समु सचिका है। सो ऐसा है: जो माइआ का मोह, जालि करि मसु करीऐ अरु तपसिआ कागदु करीऐ। अरु जो कछु इछिआ अंग कुछु भाउ है तिसकी कलम करीए। अरि

मिहरिवानु

टीका परम्परा मिहरिवानु के टीकाओं (परमारथ) के साथ ही पढ़ चुकी ह थी। 'मीणा शाखा' में मिहरिवानु तथा हरि जी गुरुवाणी की व्याख्या बड़ी सरल, सहज तथा बोधगम्य बन पड़ी है। मिहरिवानु ने 'टीका' के लिए 'परमारथ' शब्द का प्रयोग किया है। इन परमारथों में सर्वप्रथम उत्थानिका दी गई है, फिर वाणी का मूल पाठ है तथा फिर उसकी व्याख्या की गई।[1] मिहरिवानु गुरुघर से सम्बन्धित होने के कारण गुरुवाणी के साम्प्रदायिक तथा पारम्परिक अर्थों से पूर्णतः परिचित थे।

(पिछले पृष्ठ से)

जो कछु इछिआ अंग कछु भाउ है तिसकी कलम करीए। अरि चितु लिखणिहार करहु अरु लिखीऐ सो किआ लिखिऐ? परमेसर का नामु लिखीऐ, सलाह लिखीऐ, जितु लिखे सम विकार मिटि जाहि। बेअंत सोभा लिखे जितु लिखे तब सुखी होइ। तिसका अंतु पारावारु किछु पाया नही जाता।'

-पुरातन जन्म साखी- भूमिका पृ० रत्न सिंह जग्गी।

१- सिध सभा करि आसणि बैठे संत सभा जै कारो
तिस आगे रहरासि हमारी साचा अपर अपारो
मसतकु काटि धरी तिसु आगे तनु मनु आगे दोउ
नानक संतु मिले सचु पाईऐ सहजि भाइ जसु लेउ
किआ भवीऐ सचि सूचा होइ। सच सबद बिनु मुकति न कोइ। रहाउ।

तिसका परमारथ

जितने सिध थे, से सभि निहचलु होइ के टिकि बैठे। जिनी आसणी वरजसी बहदे से, तिनी तिनी बैस की सिध टिकि बैठे। तिनां की बैठक कउ, साधा सिधां संता की, सभना कउ मेरा जैकार है, दुआइ है, सुलामु है, असीरवादु है। जैकार का अरथ, जु जि इह रहरासि मेरी मेरी तिसु आगे है, जि सच अलखु अपारु है परमेसुर, रहरासि मेरी तिस के आगे है। अरु संत जि परमेसुरु के नाम के भाजी, सु इह माथा काटि करि मै उन के आगे राखउ। तनु मनु मेरा उन के आगे है, जिना संता दे मिलिआं सहज नालि परमेसुर का जसु कीजीऐ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिहरिवानु के परमारथ में प्रत्येक शब्द का पृथक-पृथक अर्थ नहीं किया जाता। और न ही एक-एक पंक्ति को लेकर व्याख्या की गई है अपितु सम्पूर्ण पद्य को प्रश्नोत्तर शैली के द्वारा कथा के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। और कहीं कहीं पर ऐतिहासिक मिथिहास संकेत आए भी तो उन कथाओं को भी व्याख्या करते समय साथ जोड़ा गया है। अत: व्याख्या एक गोसट का रूप धारण कर लेते हैं क्योंकि प्रश्नोत्तर होते होते वहां पर बाणी की व्याख्या आध्यात्मिक बन जाती है।

इस प्रकार मिहरिवानु गुरु घर के व्यक्ति होने पर बाणी को बड़ी अच्छी तरह समझ सके और अपने परमारथ में बाणी की व्याख्या करने की अपूर्व क्षमता रखते हैं।

भाई गुरुदास

मिहरिवानु के साथ टीका परम्परा में भाई गुरुदास भी उतना महत्व रखते हैं। भाई गुरुदास गुरु अर्जुन के समय हुए और इनकी बाणी को गुरुवाणी की कुंजी कहा गया है। गुरुवाणी को समझने से पूर्व हमें इनकी बाणी को पहले पढ़ना होगा तभी गुरुवाणी का सही अर्थ हम जान सकेंगे। भाई गुरुदास ने गुरु साहिब की महिमा और उनके जीवन सम्बन्धी घटनाओं के उल्लेख के साथ गुरुवाणी के अनेक शब्दों का पद्यात्मक ढंग से टीका की है। उनकी टीका भी बड़ी सुन्दर बन पड़ी है क्योंकि गुरु घर के सच्चे सेवक होने के कारण गुरु सिद्धान्त, नियम अच्छी तरह जानते थे। निश्चय ही बाणी का अर्थ उन्होंने विधिवत् गुरुमुख से पढ़े होंगे।

भाई मनी सिंह जी की टीका का नाम परमारथ है। इसमें बहुत सा मूल पाठ लिख कर अक्षरार्थ के बिना भावार्थ लिख दिया गया है जबकि टीका में इन दोनों का होना आवश्यक है।

(पिछले पृष्ठ से)

साहिब का नामु लीजीऐ। भावै तहां कोई जावै, भावै तहां कोई भवदा फिरै, बिना परमेसुर के सच नाम बस कीए तै, सु जीआं की मुकति नाही।'

- जनमसाखी श्री गुरु नानक देव जी- मिहरिवानु-वोल्यूम २,पृ० ८०

आनन्द घन (१७५० ई०)

टीका परम्परा का विकास पूर्ण रुप से १८वीं सदी में हुआ। इस समय के गद्य साहित्य में धार्मिक ग्रंथ या उनके अनुवाद या टीका आदि की बहुलता मिलती है। टीका परम्परा और लेखकों में आनन्दघन का नाम सर्वोपरि है। आनन्दघन हमारे सामने एक व्याख्यता के रुप में आते हैं। व्याख्या करते समय प्रत्येक शब्द का शब्दार्थ न कर कोश व्याकरण संमत अर्थ स्पष्ट किया है। जैसे 'करता के भाव को स्पष्ट करना इसी का नाम तो अरथ है।' -- जपु।

आनन्दघन ने व्याख्या के क्षेत्र में बौद्धिकता और रुढ़िता दोनों को अपनाए गुए हैं। तथा इनकी[1] विचारधारा पर पौराणिक प्रभाव के साथ युग-बोध वातावरण का भी प्रभाव है। व्याख्या करते समय आनन्दघन ने प्रश्नोत्तर शैली के साथ कई महत्वपूर्ण प्रश्नों का उल्लेख भी किया है जैसे 'गुरु नानक के गुरु कौन है?' आनन्दघन की व्याख्या शैली बड़ी सरल, सहज तथा बोधगम्य है और टीका परम्परा में यह अपना एक विशेष स्थान बनाए हुए हैं।

सन्तोख सिंह (१७८८ ई०)

टीका परम्परा के अन्तर्गत बहुमुखी प्रतिभा के भाई सन्तोख सिंह भी आते हैं। इन्होंने जपुजी की टीका 'गरबगंजनी' के नाम से लिखी। भाई सन्तोख सिंह भी पौराणिक परम्परा से अछूते नहीं रहे। तथा बौद्धिकता का सहारा नहीं लिया।

१- जपुटीका:-'सति जु नाम है सो करता पुरुष परमेसर का है और सभी नाम झूठे हैं। काहे ते जो नामु सति है तबी तो जापक को सति पदवी प्रापत करता है। और नामु जैठे हैं। तबि तो झूठे जगत में डराते है। सो करता पुरुष के दो रुपु। एक सरगुण। जदप विदांती के मति विषै निरगुण पुरु का नाम नहीं। तथाप जगिआसी के जणावणे नमित निराकार नरहि निरंजन गुणातीत माइआतीत चिदातमा इत आदिक नामु निरगुण के भी तो कहे ही हैं। सो सभी नाम पतत पावनि मुकति के दाता ही तो हैं। अर सरगुण के तीन रुप उतपन करता ब्रह्मा पालन करता विस्न संघार करता रुद्र। आगे इन तीनों के अनेक अवतारो संजुगत जेते इनके नामु है सो सभी पतत पावन है। मुकति के दाता है। इन पर अनेक प्रमाण कहते हैं। (पत्र-३)- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य- पृ० २८३

(ख)- तारा सिंह नरोत्तम

व्याख्या ग्रंथों की इस विशाल परम्परा में तारा सिंह नरोत्तम का नाम इस क्षेत्र में अविस्मरणीय है। नरोत्तम की व्याख्याकारिता अपनी मार्मिकता तथा अपनी विशेष दृष्टि के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तारा सिंह नरोत्तम के जीवन का मन्तव्य ही गुरुवाणी की व्याख्या करना था। जब इन्होंने गुरुवाणी कीअशुद्ध व्याख्या देखी तो इन्होंने अपना अध्ययन और साधना का क्षेत्र गुरुवाणी को ही अपना लिया। नरोत्तम की व्याख्या सम्बन्धी दृष्टिकोण का विवेचन आगे जा कर किया जाएगा।

फरीद कोटी टीका

इसी परम्परा के अन्तर्गत तारा सिंह नरोत्तम के समकालीन ज्ञानी बदन सिंह हुए हैं जिन्होंने आदि ग्रंथ की फरीदकोटी नाम से टीका की। इन्हें इस ओर प्रेरित करने का श्रेय महाराजा विक्रम सिंह को है जिन्होंने गुरुवाणी को अशुद्ध टीका देखी तो इन्होंने सिक्ख विद्वानों को एकत्रित कर विचार किया कि गुरुवाणी की प्रामाणिक अर्थों के साथ व्याख्या करनी आवश्यक है। इस विचार को सामने रखते हुए फरीदकोट दरबार ने ज्ञानी बदन सिंह से टीका लिखवानी आरम्भ करवाई। तथा व्याख्या की शुद्धता के लिए इन्होंने हरभजन सिंह, सत सिंह ज्ञानी, फंडा सिंह ज्ञानी, शब्बु सिंह ज्ञानी, धिआन सिंह ज्ञानी, हमीर सिंह, बालक राम उदासी तथा बाबा बखतावर सिंह ज्ञानी को बुलाया जो उस समय गुरुवाणी को अच्छी तरह से जानते थे।

आधुनिक टीका कार

इन सब के उपरान्त आधुनिक युग में गुरुबाणी के व्याख्याकारों की परम्परा में सब से प्रसिद्ध भाई वीर सिंह, साहिब सिंह ने उल्लेखनीय कार्य किया है। यद्यपि यह साहित्यकार तारा सिंह नरोत्तम के समान तो व्याख्या न कर सके। परन्तु फिर भी इन्होंने काफी कुछ नरोत्तम का अनुसरण किया है। इन्होंने गुरुवाणी की व्याख्या को आधुनिक ढंग से किया है। तथा इनकी गुरुवाणी व्याख्या बड़ी सरल, सहज, तथा बोधगम्य है जिससेसाधारण पाठक इनकी व्याख्या से लाभ प्राप्त कर सकता है।

टीका लक्ष्य

हिन्दी साहित्य कोश में टीका की परिभाषा इस प्रकार दी है। (टीकाती (भ्वादि) + अ + स्त्री प्रत्यय व टाप- टीक्यते गम्यतेऽर्थो यथा सा)।
(क)- सामान्य अर्थ- व्याख्यान ग्रन्थ, व्याख्या, विवृत्ति
(ख)- विशेष अर्थ- विषम पद व्याख्यान रूपा वृत्ति। इस अर्थ के अनुसार टीका भी वृत्ति की ही भांति संक्षिप्त होनी चाहिए, क्योंकि उसमें केवल कठिन और दुरुह पदों का ही व्याख्यान होता है। परन्तु इसके विरोधी मत भी है, जिसके अनुसार टीका विषमपदों की ही व्याख्या नहीं, अपितु मूल के सुगम और दुगर्म समस्त पदों की निरन्तर व्याख्या है।[1] (टीका निरन्तर व्याख्य:- सुगमाना विषमाणां च निरन्तरं व्याख्यां - हैम)।

पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने गुरुमत निर्णय सागर में टीका की परिभाषा इस प्रकार दी है, "टीका नाम एक पद का दूसरे पदों से अरथ औ तातपर्याश्य कथन का है।"[2] अर्थात् नरोत्तम के अनुसार केवल शबदार्थ ही टीका व्याख्या नहीं बल्कि शब्द का भावार्थ प्रकट करना भी टीका का उद्देश्य है।

टीका प्रकार

तारा सिंह नरोत्तम ने टीका के दो प्रकार बताए हैं। एक पिंजका दूसरी अपिंजका। नरोत्तम ने टीका का यह वर्गीकरण प्राचीन संदर्भ ग्रंथों के आधार पर किया है।

पिंजका:- ग्रंथ के सब पदों की व्याख्या ही पिंजका टीका है और कहीं कहीं पर व्याख्या को अपिजंका कहा है। इनके भी आगे भेद किए हैं।

पिंजका और अपिंजका आगे दोनों दो दो प्रकार की हैं। एक अवतरणवाली दूसरी प्रतीक वाली। नरोत्तम के अनुसार अवतरण नाम उथानका का हैऔर प्रतीक नाम

१- हिन्दी साहित्य कोश- वोल्यूम I, पृ० ३११
२- गुरुमत निर्णय सागर- पं० तारा सिंह नरोत्तम, पृ० ३६

मूल के अन्वय का है। यह आगे जाकर बहुत प्रकार की होती है[१]। इसके आगे ६ भेद कर दिए हैं। इन भेदों में से कुछ की व्याख्या भी की है।

नरोत्तम ने आगे ६ प्रकार की टीका का उल्लेख किया है। (१)- पदच्छेद, (२)- पदार्थोक्ति; (३)- विग्रह; (४)- वाक्ययोजना, (५)- आक्षेप तथा समाधान।[२] नरोत्तम ने सभी प्रकार की टीकाओं को इन छ: प्रकारों के अन्तर्गत रखा है।

---

(१)- एक पिंजका एक अपिंजका - - - - वह दोनों आगे दो दो प्रकार की होवे है। एक अवतरणावाली दूसरी प्रतीकवाली। अवतारणा वाली में अवतरणा नाम उथानका का है। सो कहीं कहै। कहीं यह कहै। कहीं याते कहै। कही यामै कहैं। कही यह असंका कर कहै। कहीं तहां कहै। कहीं यह सुन कर कहै। कहीं या भाव से कहै। कहीं सोई कहै। औ औसे बहुत प्रकार होवे हैं।

- निर्णय सागर - पृ० ३६

(२)- सभी टीका षट प्रकार की होवे है। पदच्छेद। पदारथोक्ति। विग्रह। वाक्य योजना। आक्षेप। समाधान। जैसे सतनाम करता पुरष इत्यादि वाक्य है इसमें सतनाम करता पुरुषा और औसे पदों को पृथक पृथक करन का नाम पदच्छेद कहीये है। पदों के अरथों का कहना पदारथोक्ति कहीये है। सोई दिषावै है। गुरमंत्र का अर वेद बचनों का। अरथ सरबत्र समान है। याते बेद बचनों साथ अरथ समानता के लीये। सतनाम पाठ में सत पद ग्यानादिकों का उपलषणा है। उपलक्षणा नाम नमूने का है वा सत पद के आगे आदि पद का अध्याहार है। जितने की अरथ पूरणता हेत इछा होवै। उता पाठ ला लेना अध्याहार कहीये है। - - - पदों के अरथों का कहना रुप पदारथोक्ती है। काके आदि मेल के पदों का अरथ कहना विग्रह कहीये है। जैसे सत्यादि है नाम जिसके सो कहीये सत नाम ईहा जिसके मेल के अरथ कहिआ। भिनं भिनं वाक्यन के अरथों का मिलाप रुप योजना करनी वाक्य योजना है कहीये है। चीज के नाम को पद कहे है। पदों का समुदाय वाक्य कहीये है। याते सात औ नाम। तथा करता औ पुरष पदों के समुदाय होने ते दोनों वाक्य है। औ जिस पुरुष के स्वरुप बोधक सतनामादि वाक्य है। वही जगत के जनमादिकों का करता पुरष है। यह योजना से मिला वाक्यारथ है। वाक्य योजना से सिध भए अरथ में आसंका

टीका भाष्य

'मूल ग्रंथ के पदों की पुन: कठन कठन अपनी टीका के पदों की टीका भाष्य कहीये है।'[1]

टीका उपपति

आक्षेप से बिना भी उक्ति युक्ति से अरथ सिघ कीया जावे। उस टीका को उपपति कहते हैं।[2] अर्थात् बाणी या पदों को, बिना आक्षेप किए या उनका समाधान किए बिना ही यदि व्याख्या की जाती है, तो वह टीका उपपति कहलाती है। एक शब्द के अनेक अर्थ भी इसी के अन्तर्गत आते हैं।

टीका भाषांतर

साबत मूल उलटा के और बोली में करना टीका नहीं होती। उसका नाम भाषांतर है।

टीका शैली

नरोत्तम ने टीका शैली का वर्णन टीका सिरी राग में किया है। वृत्ति की अपेक्षा शब्द शक्ति द्वारा टीका[3] को अपनाया है। अत: नरोत्तम के अनुसार बाणी का सीधा अर्थ करना चाहिए।

(पिछले पृष्ठ से)

आक्षेप कहीये है।---- आसका का परिहार समाधान कहीये है।

- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० ३६-४१

१- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० ३६

२- वही, पृ० ४२

३- सेष रहे बाणी के अरथ तिनके विचार में बहुत लोक कहते हैं। बाणी का सीधा अरथ करना ही सार है। जो सबद की सक्ति से प्रतीत होवै हैं जो और ब्रितीयों से प्रतीत होवै सो सार नहीं। इसी लिये बहुत लोक तरजमह व टीका

इस प्रकार हम देखते हैं कि टीका शब्द के अर्थ, व्युत्पत्ति, निरुक्ति, भेद, उपभेद, शैलीआदि का उल्लेख पं० तारा सिंह नरोत्तम ने इतने विस्तार से किया है कि मेरे ध्यान में उस युग में इतनी अच्छी विचारधारा कहीं उपलब्ध नहीं है। अर्थात् किसी भीलेखक ने शायदही टीका सम्बन्धी इन विषयों की चर्चा कीहो। गुरुवाणी के व्याख्याकारों में इतनी प्रतिभा और इतने ज्ञान का संभार लेकर कोई और व्यक्ति अवतरित नहीं हुआ।

टीका महत्व

टीका अपना महत्व दीर्घकाल से रखती चली आ रही है। प्राचीन काल से ही टीका का जन्म हो चुका था क्योंकि संस्कृत में उपलब्ध वेदादिशास्त्र को समझ पाना साधारण व्यक्ति के लिए हीनहीं अपितु विद्वत् वर्ग के लिए भी प्राय: कठिन था। अत: जब तक शब्द के अर्थ का ज्ञान न हो जाएतब तक शब्द के वास्तविक रुप का पता नहीं चल सकता। कठिन शब्दों को समझने के लिए प्राचीन काल से ही विद्वानों ने टीका-टिप्पणी और भाष्य लिखे हैं।

(पिछले पृष्ठ से)

वैसी करते हैं। जिनमें केवल मूल के पाठों के दूसरे नाम ही आवें। मूल का भाव नास ही होवे। परतूं यह रीती भली नहीं। काहे ते जेकर सीधा अरथ करना ही सार होवे तब जो लोग संसक्रित में भावारथ कहते हैं। पर पारसी में मुरादी माथने कहते हैं तो सो न करने होगें और करे हैं। याते जहां सीधा संभवे करो जहां सीधे से वकता का वांछित अरथ ना निकसे तहां भावारथ करो। कोई लोक केवल भावारथ हीलिखते हैं। जैसे गुरुवाणी की ~~परम्परा~~ परमारथ टीका है। सयाणे पुरुषों के पदों के अरथों का लाभ उनसे भीनहीं होवे है। काहते परमारथ भावारथ का नाम है। भावारथ में अक्षरथ होवे नहीं। चाहीए पहिले अक्षरों का अरथ याते उभे टीका सार है। केवल भाव केवल सीधी टीका सार नहीं। --- टीका सिरी राग- पृ० ७

पंजाबी साहित्य में उपलब्ध गुरुवाणी की ठीक-ठीक व्याख्या तथा उसमें प्रयुक्त अनेक शब्दों का व्याकरणिक तथा कोशादि अर्थ सन्दर्भ आज तक नहीं दिए जा सके। कई विद्वानों ने इस ओर प्रयास भी किया है तथा उन्हें इस क्षेत्र में सफलता भी प्राप्त हुई है। उदाहरणत: तारा सिंह नरोत्तम, ज्ञानी बदन सिंह, पं० साधु सिंह, आधुनिक विद्वान भाई वीर सिंह, साहब सिंह आदि व्याख्याकारों ने टीका लिखने की आवश्यकता को महसूस किया। इन विद्वानों ने कठिन शब्दों की व्याख्या बड़े सुन्दर ढंग से की है।

तारा सिंह नरोत्तम ने तो यहांतक कह डाला है कि वाणी का अर्थ करना या व्याख्या करनी सतिगुरु के प्रति हमारा उत्तरदायित्व है। गुरुवाणी को गलत पढ़ने से पाप लगता है। नरोत्तम के अनुसार अर्थ को जान लेने पर ही हमें शुद्ध पढ़ने का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि तारा सिंह नरोत्तम ने टीका के महत्त्व के साथ साथ बाणी के शुद्ध पाठ पर अधिक जोर दिया है और शुद्ध पाठ पढ़ने को अर्थ ज्ञान के अधीन माना है। जब तक उस संक्षिप्त वस्तु को विस्तार से और सरल रूप में प्रस्तुत किया जाये तब तक उसे सही अर्थ में समझ पाना बहुत कठिन है।

१- 'जब प्रयंत अरथ नाही जाने तब प्रयंत अपने चित से सुध पढ़ने का ग्यान नहीं होवे याते सुध पड़ना अरथ ग्यान के अधीन है। औ अरथ गृयान अरथ सीखने के अधीन है। इसते अवश्य अरथ सीखने चाहीये। जो अरथ सीखने पड़ने से गुरु की बाणी का पेट फटता है। बाणी की पेट नहीं फटेगा। किआ जेकर ईश्वरों की बाणी का जीवों को अरथ करना बुरा है। तब पाठ पढ़ना भी क्यों भला होगा। इससे मालूम हुआ कहने वालयों का यह भाव है अरथ सीखने से सिआणा होकर टहल नहीं करेगा। इस वासते रोकते हैं सो यह गुरु के आगे देनदारी है। किउंकि अपनी टहल के लोभ कर दूसरे को व्यकल रखना चाहया।'
- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० २१-२२

17211

ੴ ਸਤਿਨਾਮੁਕਰਤਾਪੁਰਖੁਨਿਰਭਉਨਿਰਵੈਰੁ
ਅਕਾਲਮੂਰਤਿਅਜੂਨੀਸੈਭੰਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ॥

ਕਬਿਤੁ॥ ॥ਸਤੋਸਿੰਪਸੁੰਧਉਂਧਾਨਿੱਤਜਾਨਿਗਦਿਦਾਰਰੂਪਾਨਿਰ
ਗੁਨਿਰੀਹਨਿਰਦੋਖਨਿਰਾਕਾਰਹੈ॥ਅਜੈਅਬਿਨਾਸੀਆਦਿਅ
ਤਸੋਬਿਹੀਨਰੂਪਅਲਖਅਪਾਰਪਾਰਨਿਖਲਪਸਾਰਹੈ॥ਏਕਰੂ
ਪਏਕਜੋਤਿਏਕਮੁਖਏਕਚਿਤਏਕਨਿਧੀਏਕਦੇਵਏਕਾਏਕੰਕਾਰਹੈ
॥ਵਹੀਨਿਜਮਾਯਾਮੈਪਸਾਰਜੋਤਿਤੀਨਰੂਪਧਾਰਕੇਕਹ ਯੋਗੇਸ
ਸਾਰਉਕਾਰਹੈ॥੧॥ਤਾਂਕੇਵਰਚੇਮਾਯਕ ਪ੍ਰਿਥਵੁਪੁਭੂਲਮਾਹਜ
ਜੀਜਬੀਏਕਪ੍ਰਕਾਰਹੋਤਹਾਨੀਆ॥ਤਬੀਤਬਸੁਨੂਤਰੂ
ਪਕੇਧਨਾਯਸੁਭਆਦੇਜਗਾਰਛਕਾਜਾਪ੍ਰਸੂਮੇਦਗਜਾਨੀਆ॥
ਜਾਤੇਕਲੂਕਾਲੁਮੁਦਬਾਈਧਰਾਸੋਤਨ੍ਹਨਪਾਰਜੋਗਤਿਨਕਗੁ
ਰੂਦੇਵਪ੍ਰਜਾਨੀਆ॥ਆਇਜਾਏਪ੍ਰਭੁਛੇਪਰਕੀਨੋਉਪਦੇਸਬੇਸਕ
ਟਕਕਲੇਸਦੁਖਸੁਖਦਮਹਾਨੀਆ॥੨॥ਤਾਹੀਉਪਦੇਸਪਕੋਅਸੇ
ਜਸੇਪ੍ਰਕਾਸਹੇਤਰਚੇਐਕਰੂਜੇਗੁਰੂਗੁਰੂਮੁਖੀ॥ਨਾਮਹੈਦੀਨੋ
ਉਪਦੇਸਲੋਸਕਟਕਕਲੇਸਬੇਸਜਾਹਕੇਨਪ੍ਰੇਮਹਿਤਮਾਹਧਨਪ
ਮਹੈ॥ਕੀਨੀਆਤਿਮੈਦਦੇਵਤੇਦਧਾਪ੍ਰਕਾਸਹੇਤਨੇਤਗੁਰੂਈਮੁਨ
ਛੇਡਆਨਕਾਮਹੈ॥ਨੇਤਪਛਾਤਤਪਜੀਕੇਮਿਟਾਨਦਾਗੇਧ
ਮਾਕੇਪਹਾਰਗੁਰੂਅਛਾਦਸੁਨਾਮਹੈ॥੩॥ਵਹੀਉਪਦੇਸਰੇਸਦੇਸ
ਸੇਪ੍ਰਕਾਸਹੇਤਦੀਨੋਗੁਰੂਤੀਜੋਸਾਖਬਖਸਾਸਿਪਸਿਕਜਾਨੋਪ

एक उअंकार सतिनामु करता पुरुषु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सै भंगुर प्रसादि।

कबितु। स्वतै सिध सुध बुध नित्य निर विकार रुप निर
जुर निरीह निरदौष निराकार है। अजै अबिनासी आदि अंत
सै बिहीन रुप अलष अपार पार निषल पसार है। एक रुप
एक जौति एक सुष एक सत उत एक निधी एक दैव एक एंकार है।
वही निज माय मैं पसार जौति तीन रुप धार कै कहायौ गिरासार।
उंकार है।१। तांकै रचै मायक प्रपंच वपु थूल माह जबी जबी
वैदक प्रचार हौत हानीआ। तबीं तब कांहू कांहू रुप
कौ बनाय सुभ आवैं जग रक्ष काज बिरुनु सिव ग्यानीआ।
यातै कुलु का लष दबाईं धरा सौभ सुन धारयौ हरि नानक
गुरु कौ वपु जानीआ। आइ जाइ पूछै पर कीनौ उपदेस बैस
कारक कलैस दुष सुष दम हानीआ।२। ताही उपदेस
कै असेष मै प्रकास हैत रचै अंक दूजे गुरु गुरुमुषि सुनाम है।
दीनौ उपदेस लैस कारक कलैस बैस जाह कीन प्रैम रंच माहधन
धाम है। कीनी अति सैवदेव मैव की पछान हैत नैत गुरु ईश्वर
न छौड़ आन काम है। कीनौ तप भारी तप भारी कौ मिटान
वार षिमा कै पहार गुरु अंगद सनाम है।३। वही उपदेस दैस दैस
मैं प्रकास हैत दीनौं गुरु तीजै साथ बषस सिधान कौ। जा की

ਬਨਾਕਰੇਜਹਅਰਦਾਸੇਕਹਨੇਸੇਸੂਚਾਹੈ ॥ ੪॥ ੭॥

ਇਤਿਸ੍ਰੀਨਰਬੋਧਰਸ੍ਰੀਮਤ

ਸਗੁਰੂਨਾਨਕਪੋਤ੍ਰ ਬਾਣੀਤ੍ਰਾਤਪਰਾਜਪ੍ਰਕਾਸਕਾਰ੍ਜਾਂਸ੍ਰੀ

ਸਦਗੁਲਾਬਸਿੰਘਚਰਨਸਿਖਤਤਾਰਾਹਰਿਨਰੋਤਮਹਿ

ਤਾਜਾਂਗ੍ਰਾਨੁਭਾਵਦੀਪਕਾਜਾਂਹਜਾਰੇਸਬਦਬਿਦਰਕੈ

ਸਮਾਪਤੈ

ਸੰਪੂਰਨ

੧

ਸੰਮਤਸ੍ਰੀਨਾਨਕਸਾਹੀ੪੨੨

ਚੌਪਈ

ਦੇਗਆਕਦਾਗੁਰਕੀਕਾਸੀ
ਸੁਖਦਦੋਅਦਮਾਸਾਰਿਬਣੀ
ਸ੍ਰੀਬਘੇਲਸਿੰਘਕਿਆਸੁਧਾਰੀ
ਸੀਰਸਿੰਘਕਿਪੌਸੁਭਕਾਰੀ

੧

ਬਕਲਮਭਾਈਹੀਰਾਸਿੰਘਕਾਧੀਨਦੀਸਾ
ਚਰਨਸੇਵਕਸ੍ਰੀਮਹਾਰਾਜਭਾਈਬਘੇਲਸਿੰਘਜੀਕਾ

टीका

बना करै यह अरदासै कहनै सै सूचा है। ४। ७।
इति स्री सरबेश्वर स्री मत

गुरुनानक प्रोक्त बाणी तातपरय प्रकास कायां स्री
मद गुलाब सिंघ चरण सिषात तारा हरि नरोतम क्रितायां
गुरु भाव दीपकायां ह्यौर सबद बिवरणां

समापतं
संपूरण

१

समत स्री नानक साही ४२२

चौपई

दैस माल वा गुर की कासी
सुषद दमदमा साहिब वासी
स्री बधेल सिंघ क्रिपा सुधारी
हीरा सिंघ लिष्यौ सुभकारी

१

बकलम भाई हीरा सिंघ का पीन वीसा
चरन सैवक स्री महाराज भाई बधेल सिंघ जी का।

(ग)- गुरु भाव दीपिका

कृति परिचय

इस कृति का रचना काल संमत १६३६ है। इसमें ४२६ पृष्ठ हैं। इस कृति में पं० तारा सिंह नरोत्तम ने गुरुवाणी की प्रथम बाणी जुपुजी साहिब, रहरास साहिब, कीर्तन सोहिला और शब्द हजारे की टीका विस्तार से की है।

जपुजी साहिब

पंजाबी में गुरुवाणी के सम्बन्ध में इतना अधिक विचार, विमर्श और मथन हुआ है कि उसे लेकर एक पृथक वाङ्गमय ही खड़ा हो गया है। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो प्रतीत होता है कि जितनी अधिक टीका 'जपुजी साहिब' की लिखी गई उतनी किसी एक पुस्तक की भी नहीं। न केवल पंजाबी में ही अपितु हिन्दी, अंग्रेजी संस्कृत आदि भाषाओं में भी गुरुवाणी पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया।

गुरुवाणी का सार अथवा मूल मंत्र जपुजी साहिब को माना गया है। जपुजी साहिब का मूल सूत्र इसका प्रथम श्लोक 'एक ओंकार सतिनामु करता पुरख निरभउ निरवैर अकालमूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि' तक है। जपुजी साहिब का आरम्भ 'आदि सचु' से होता है। इससे पूर्व एक ओंकार से लेकर गुर प्रसादि तक गुरुनानक द्वारा उस परम पुरुष परमात्मा का गायन मंगलाचरण के रूप में मिलता है।

सम्पूर्ण जपुजी साहिब गुरु नानक की विचारधारा का मूल मंत्र है। जपुजी साहिब में एक ओर परमात्मा की स्तुति, उसकी महिमा का गायन है। दूसरी ओर परमात्मा को प्राप्त कर सही जीवन व्यतीत करने की शिक्षा है। परमात्मा क्या है? उसके साथ हमारा कैसा सम्बन्ध है? उसे कैसे पाया जा सकता है? इन सब प्रश्नों का समाधान इसमें मिल सकता है। परमात्मा के गुणों का वर्णन जपुजी साहिब में किया गया है- परमात्मा एक है, जीव-ईश भिन्न नहीं, अद्वैतपरक दृष्टिकोण गुरु नानक का है, जन्म मरण से दूर, काल से परे, कर्ता पुरुष स्वप्रकाशमय तथा परमात्मा को गुरु की कृपा से पाया जा सकता है। इन सब का उल्लेख गुरु नानक देव जी ने 'जपु जी साहिब' में किया है।

इन सब गूढ़-भावों को समझने के लिए इनकी व्याख्या आवश्यक जान पड़ती है। अत: गुरुबाणीको समझने-समझाने के लिए परमारथ, शब्दार्थ, भावार्थ, भाष्य, पर्याय और टीका लिखने आरम्भ हुए।

जपुजी साहिब की प्रथम टीका मिहरिवानु सोढ़ी ने परमारथ के नाम से की है। जिनका प्रभाव परवर्ती व्याख्याकारों पर भी पड़ा।

इस क्षेत्र में 'जपुजी साहिब' के व्याख्याता पं०तारा सिंह नरोत्तम का नाम महत्वपूर्ण है। नरोत्तम ने जपुजी साहिब की व्याख्या इतनी सुन्दर की है कि हमें आधुनिक काल में किसी भी गुरुवाणी व्याख्याताओं में देखने को नहीं मिली। गुरुवाणी व्याख्या करते समय एक-एक प्रसंग को लेकर इतने विस्तार से व्याख्या की है जिससे पाठक चमत्कृत हो जाता है।

पं० तारा सिंह नरोत्तम ने इस कृति का आरम्भ मंगलाचरण से किया है। गुरु भाव दीपिका में नरोत्तम ने प्रथम गुरु से लेकर दशम गुरु तक इनकी स्तुति[१] की है। इन सबसे बढ़ कर तारा सिंह नरोत्तम ने एक ओंकार की स्तुति भी की है। एक ओंकार की स्तुति हमें किसी भी व्याख्या कृति में देखने को नहीं मिली। नरोत्तम ने अकाल पुरुष के स्थान पर ईश्वर की स्थापना की है।

तारा सिंह नरोत्तम ने एक ओंकार अर्थात् ईश्वर तथा दस गुरुओं की स्तुति के पश्चात गुरु ग्रंथ साहिब तथा पंथ की भी स्तुति की है। नरोत्तम ने इन्हें १२वां[२] तथा पंथ को १३वां गुरु माना है। ईश्वर + दस गुरु + ग्रंथ + पंथ- १३।

१- कबित्त-

स्वतै सिध सुध बुध नित्य निरविकार रुप निरजुर निरीह निरदोष निराकार है।
अजै अबिनासी आदि अंत सै बिहीन रुप अलष अपार पार निषल पसार है।
एक रुप एक जोति एक सुष एक उत एक निधी एक दैव एका एकंकार है।
वही निज माय मै पसार जीति तीन रुप धार कै कहायो गिरासार उकार है।

- गुरु भाव दीपिका, पृ० २

२- ताही उपदेस को प्रकास पुंज ग्रंथ गुरु बोधक त्रिकांडन मैं भगति ग्यान अति ही।
साधन समूह और मोह भासत समत की इस भकति गुरु अकति सासस मन सत ही।

तारा सिंह नरोत्तम ने जुपजी साहिब के प्रथम श्लोक की इतनी सुन्दर और बड़े विस्तार के साथ व्याख्या की है। व्याख्या करते समय नरोत्तम ने अपने सामने अद्वैत परक दृष्टिकोण को रखा है। नरोत्तम की व्याख्या शैली का एक उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है।

' ---- इस लीए भगवान के सीघ्र उपदेस करावने हेत अपने अवतार को याद कीआ तब गुरु जी अपने अवतारी विषनु भगवान के याद करने से नदी में सनान करने के मिस सरजू में प्रवेस कर रामचंद्र जीवन निजधाम षीर सागर मै बिसनु परमेश्वर के समीप गए जैसे अरजन क्रिसन जी गए थे। उस काल मैं निज रूप भगवान ने आग्या दई तुम जनो को उपदेस करो जिस ग्यान भगती के उपदेस हेत मैंने तुमारा स्वरूप धारन कीआ है गुरु जी ने कह्या है भगवान गुरो से उपदेस लेकर आगे सिष्यन को उपदेस करन की पुरातन मरयादा है याते जैसे आपने पूरब काल में ब्रह्म को उपदेस कीआ व्यास जी ने इतिहास पुराण रच के निषल भारत षंड में कीआ तैसे हम भी जिस उपदेस को आगे संप्रदाय चलाकर प्रब्रित करो ऐसा निषल वेदकार हस्य रूप उपदेस करो सुन कर बिसनु भगवान ने एक ओंकार से लै प्रसादि प्रयत उपदेस कीआ। एक-

> एक ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैर
> अकाल मूरति अजूनी सै भं गुर प्रसादि। जपु।

यह जपन की आग्या को सुन कर स्री गुरु नानक जी निषल को जपावने हेत आप उस जाप को जपते हुये इस भारत भूमी में सुलतान पुर नगर विषै आए आकर उसका बिसतार कीआ वेद रूप उपदेस मै उंकार के आदि मै एक अंक नहीं कह्या अर इहां कह्या है तिस का यह तातपरय है सम को प्रतीत हो जावे

(पछले पृष्ठ से)

> मानुष जनम दुरलभ सम जीवन मै पाइ मत षोवो मन लाइ जत कत ही।
> एक ईस दसो गुर बाणी ग्रंथ पंथ तेरो विसेष बंदो सभी दाय गति ही।
> -- गुरु भाव दीपिका- पृ० ४-५

जो सिधांत वसतु अद्वैत है द्वैत नहीं याते जीव ईस एक रुप है वैरागीयों के मत वत दो नहीं कोई एक अंग आदि में कहने का बीज यह कहते हैं जो यह उपदेस पुरष इसत्री मात्र को सांझा है अर वेद में तीन वरणों के पुरषों बिना निषल वरणो। की इसतरीआ अर पुरषों को उंकार के मुष से उचारण करन की आग्या नहीं याते सांझा उपदेस भी करना औ पूरब वेद में कही अपनी आग्या भी सही रषनी यह विचार के परमेश्वर ने उकार के आदि मे पडदा रष दीआ है। जो पडदे से सभी बोले पडदे से बोलने मे दोष नहीं जैसे उलटा बोलने से दोष नहीं यही बात समझ के बालमीक को रिषीयों ने राममंत्र का उलटा मरा उपदेस कीआ अरथ इस पष में भी एक का तहि हैं जो पीछे बताया है। उंकार का अरथ व्याकरण वाले नाम लेने मात्र से रषा करने वाला परमेश्वर कहते हैं। अवधातु से इस को बनावते है अब का अरथ रष्या है याते रछा करने वाले का नाम उकार कहे है और ग्रंथ वाले अ। उ। म। इन तीन अषरों के मेल के इस बनावे हैं। अ। उ। का उंकार मम की बिंदी होकर उंकार बने है। अकार उकार मकार मात्रा इन तीनों का नाम है मात्रा नाम अवयव का है याते उकार समुदाय के ये तीन अवयव है अकार मात्रा का अरथ बिराट ईश्वर औ बिश्व जीव है---- पंज सथूल भूतों के अंस मिलाकर बने चार षाण के सरीर सथूल सरीर कहीये है। जिस काल मै दस इंद्रे चार अंताकरण चौदा इन के विषय चौदा इंद्रियों के सहाई देवता विद्यमान होवें नर तिस काल का नाम जाग्रत अवसथा है। जो प्रसिध जागरण समा है इस जाग्रत अवस्था और स्थूल सरीर के अभिमानी का नाम विश्व जीव है सो बिश्व जीव विराट स्वरुप है कहे ते जीवन के सरीरों का नाम पिंड है और निषल पिंडों के समुदाय की नाम ब्रह्मांड है जैसे भिन भिनं जाति वाले अनेक ब्रिछों के समुदाय का नाम ब्रह्मांड हैं और ब्रह्मांड कर के स्वामी ईश्वर का नाम बिराट है पिंड के स्वामी जीव का नाम विश्व है पिंड ब्रह्मांड से जुदा नहीं याते पिंड का स्वामी विश्व ब्रह्मांड के स्वामी विराट से जुदा नहीं दोनों एक रुप है इनके एक रुप होने में बीज यह है जो पीछे एक अंक का अरथ एक परमातमा कहा वही अपनी माया साथ मिल कर जीव ईस दो रुप धार लेवे है जैसे एक ही अकास घट मठ मे मिल के दो रुप हो जावे है सो दो रुप भी तब प्रयंत रहे है जब प्रयंत दो रुप करने वाले चीज भिंन भिनं देसों मे रहे जब एक देस में होवे तब वहु एक रुप हो जावे है जैसे जब घट को मठ में रष देवे तब दो रुप करने वाले घट मठ के एक स्थान मै होने से अकास एक रुप होवे है। तैसे पिंड ब्रह्मांड को एक रुप होकर एक देस मै होने से तिन के स्वामी विश्व बिराट भी एक रुप होवे है इस रीति

से तिन के स्वामी विश्व विराट भी एक रुप होवै है इस रीति से स्थूल सरीर जाग्रत अवस्था का स्वामी विश्व जीव विराट स्वरुप है ऐसे उंकार की पहली मात्रा उकार है। तिस का अरथ हिरन्य गरभ ईश्वर औ तैजस जीव है सूषम सरीर औ स्वपन अवस्था के स्वामी जीव का नाम तैजस है पांच ग्यान इंद्रे पांच करम इंद्रिय पांच प्राण मनबुध दो अंतहकरण इन सूक्ष सूषम भूतो के कारण सतारा तता का नाम सूषम सरीर है जाग्रत काल मे अनुभव कीये पदारथों की वासना से अंतहकरण ने म ही संपूरण इंद्रिय और तिन के विषाय रुप होकर भान होना स्वप्न अवस्था कहीये है जिसका नाम प्रसिध सुफन सभा है इस स्वप्न अवस्था और सूषम सरीर के स्वामी का नाम तैजस जीवन है तैजस जीवन के सूषम सरीरों का समुदाय ही बनवाजी हिरणायगरभ ईश्वर का सरीर है कहे सरीरों को एक रुप होकर एक देस में होने ते तिन के स्वामी भी एक रुप है याते तैजस जीव हिरण्यगरभ ईस रुप है ऐसे उंकार की दूसरी म्र मात्रा का अरथ ग्यान वाला पुरष चितवै उकार से आगे तीसरी मात्रा मकार है तिस का अरथ माया पति ईश्वर और प्राग्य जीव है कारण सरीर औ सुषुपती अवसथा के स्वामीजीव का नाम प्राग्य है माया के मलिन अंस अविदिया है तिन का नाम कारण सरीर है जैसे बीज में ब्रिक्ष लीन होवै है तैसे जाग्रत सुपन के संपूरण ग्यांनो के सहित अंतहकरण का अविद्या मे लीन होना सुषुपती अवसथा है जो प्रसिध सोना है। इस सुषाती अवस्था औ कारण सरीर के स्वामी का नाम प्राग्य जीव है प्राग्य जीवों के कारण सरीर अविद्या माया रुप है वहु माया ईश्वर का सरीर है इस प्रकार माया अविद्या रुप कारण सरीरों सर को एक रुप होकर एक देस में होने से तिन के स्वामी भी एक रुप है याते प्राग्य जीव माया पती ईस रुप है। एक परमातमा मे विश्वादिक तीन नाम औ विराटादिक तीन नाम एक अग्यान से बने है औ जुदे-भासे है वासतव से एक रुप है और वाच्य वाचक का भेदन ही याते ये सभी उंकार रुप है। विश्व अकार रुप है तैजस उकार रुप है प्राग्य मकार रुप है। समाधि से पूरब ऐसा चिंतन करे तासे पीछे अकार रुप विश्व का उकार मे तैजस

रुप उकार का मकार मै प्राग्य रुप मकार का तुरी चैतन मै लय कर कै
असे चिंतन करै जो मै सुध बुध पर नित्य मुक्त चैतन हो मैरे मैं कोई विकार
नहीं यह सुध बुध रुप परमात्मा ग्रंथो में उस उकार की अरध मात्रा लिषी है
अरध मात्रा लिषानै का भाव यह है पूरब कहे अकारादिक उकार समुदाय कै
पूरे तीन अवयव है उन अवयवों को जब अवस्था औ सरीर माग दूर कीयै तब उन
का आधा माग परमातमा सैष रहे है आधा भाग अवसथा औ सरीर दूर हो जावै
है। इस वासतै आधा अवयव चैतन सैष रहिया अरध मात्रा कहिआ जावै है इसी
को तुरीआ कहै है वैदांती महावाक्यन में मी आधा भाग छोड़ कै आधा लैवै
है यातै अहां मी उकार कै समान अरध मात्रा का ही ग्रहण होवै है अरध मात्रा
मी इस का नाम कल्न मात्र है वासतव सै यह अमात्र स्वरुप है ऐता अरथ गुरु नानक
जी को परमेश्वर नै एकड़े अंग सहित उंकार सै कहिआ गुरु नानक जी नै समसिष्यन
को उपदैस कीआ इस वारता मैं गुरुदास बचन प्रमाण है एकं कार एकांग लिषा
ऊड़ा अकार दिषाइआ इस प्रकार जो एकड़े का अरथ अदुती निरगण परमातमा है
वही अपनी माया सकती साथ मिलकर अकार उकार मकार तीन रुप हुआ उकार
का वाच्य अरथ है मात्रा भाग त्याग कै सघु स्वरुप अरध मात्रा लष्य अरथ है।
असे संषेप सै एक अंग सहित अकार का अरथ कहिआ अब आगै स्वरुप लषण औ
तटस्थ लषणो सै विसतार सहित कै अरथ का निरुपण करनै हैत परमेश्वर
गुरु नानक जी को पुना सतिनामु करता पुरषु इत्यादि पाठ सै उपदेस करै है
सत सै लै गुर प्रसाद प्रयंत पाठ मै जेतै नाम है। सो सम एक अंक कै अरथ एक
परमातमा कै विसैषण है एकड़े का अरथ सम का विसैष्य है जुदा करनै वाली वसतु
को विसैषण कहै हैं जुदा होनै वाली वसतु का नाम विसैष्य हैं विसैषण का दूजा
नाम लषण है सो लषण दो प्रकार का होवै है एक स्वरुप लषण दूजे तटसथ
लषण जिस वसतु को जनावना है उस का स्वरुप होकर जो ताको सम सै जुदा
होकर जनावनै जोग्य वसतु कोसम सै जुदा कर जना देवै उसका नाम तटसथ लषण है
इहां सत नाम करता पुरष एतै पाठ मै सतनाम स्वरुप लषण है। वा नाम का
आगै मैल है सत एता स्वरुप लषण है नाम करता एता तत्सथ लषण है।
वैद मो सत पदचित औ आनंद कै बहुत कर साथ सुनिआ जावै है यातै इहां

मी तिन का लषायक है सतिनाम पाठ का अरथ असै है सत चित आनद नाम कहीये स्वरुप के बौधक पद है जिस एक परमातमा के तिस परमातमा का नाउ ईहां सतनाम है इसी अरथ में यह एक का विसेषणा है सत का नाम सतनाम वासत जो होवे नाम सो कहीए सतनाम इन अरथों में. बिसेषणा नहीं बने ना बनने में यह हेतु है बिसेष्य विसेषणा के वाचक पद दोनों एक अरथ कौ कहे तब नहीं होवे ईहां पहले अरथ मै सतनाम विसेषणा एक को कहे है अगले दो अरथों मैं नहीं कहे काहे ते एकहे का अरथ एक परमातमा है सतनाम का अरथ सत का नाम वा सचा नाम है नाम वाणी रुप है। परमातमा मन बाणी से अतीत अरथ रुप है याते भिंन भिंन अरथोंके कहने से इनका विसेष्य बिसेषणा भाव नहीं बने नाम को छोड़ के सतमात्र स विसेषणा करे तब सीधा हीबन जावे है जो कैसा एक है सत है चित है आनंद है करता साथ जुड़ कर नाम पद रुप का लषायक है नाम वाचक को कहे है रुप वाच्य को कहे है नाम से निषल वाणी का ग्रहणा है रुप से तिस बाणी के संपूरणा अरथ का ग्रहणा है याते कैसा एक है वाच्य वाचक रुप निषल ससार की उतपती पालना नासका करता कहीए निमित कारणा है पुन: मकड़ी वत उपादान कारणा है इस प्रकार परमेश्वर के अपना स्वरुप जनावना हेत कहे पाठ का संषेप से अरथ कहिआ बिसतार से असै है जैसे कोई पुरषा काहू का मंदर जानने की इछा कर काहू दयालु पुरषा को पूछे जो उसका मंदर कौन है तब बतावने वाला दयालू पुरषा उसको मदर कीदोनों निसानीयों से बतावे है कि जो उसका मंदर वहु है जो कलीके लेप वाला है पुना कऊएवाला है ईट चूना के समुदाय को मंदर होने से कली का लेप स्वरुप लषाणा है कऊआ किनारे होकर बौधन करने से तत्सथ लषाणा है असै परमेश्वर दयालू ने सतनाम एता स्वरुप लषाणा कह्या वासत मात्र कह्या करता वा नाम करता एता तत्सथ लषाणा कहिआ सतपद जो वसतु संसार रचना से पहले अर संसार रचना काल मै अर रचना के बिनास काल मै रहे भाव कबी जिस का नाम न होवे तिस को कहे है ग्यान पद जिस के चानणे से सूरयादि को मैं चानणा होवे है तिस प्रकार को कहे है उस प्रकास का अनुभव स्वपन मै होवे है अर अत्यंत अंधेरे जाग्रत काल विषे मीहोवे है। काहे ते जेता कुछ वसतुओं का जानना नाम लेना ग्रहणा त्याग करनादिक व्यवहार है सो सम प्रकास के अधीन है अर स्वपन अवस्था विषे जेते प्रसिध प्रकास सूरय चंद अगनि बाणी रुप है सो कोई रहे नहीं ऊहां केवल एक

पुरुष पुरष का प्रकास है। पुना जहां अत्यंत अंधेरे में थित हुआ कोई उजाला नहीं अब बड़ा अंधेरा है, अैसा अंधेरे की सिधी करे है वही एक पुरष का प्रकास है। तिसी प्रकास के चित चेतन ग्यान ज्योति इत्यादि का नाम है जिस आनद को चाहता हुआ पुरष अेक रंग तमास्यो को छोड़ के सोना चाहते हैं पुना जिस आनद को सयन से उठ कर मै बड़ा सुषी होया अैसे याद करे है अर जिस सुष की रक्षा हेत ग्रिरादिकों की आग लगे सम को छोड़ कर इकेला भागे है अर जिस आनंद के मेल से समी पदारथ आनद देने वाले मान होवे है तिस का नाम आनंद है ये तीनों नाम एक वसतु के कहे हैं अर और नामों से इन स्वरुप नामों मैं यह विसेष है और वसतुओं का दूसरा नाम एक नाम से ना कहे अरथ को नहीं कहता कहे कोही कहे है अर थे स्वरुप नाम एक वस्तु में ही दूसरे नाम से ना कहे अरथ को कहे है जैसे अगनि के स्वरुप को कहने वाले दाहक उसन पद दाहक पद से ना कहे स्वरुप को कहे है। प्रकास पद इन दोनों से ना कहे स्वरुप को कहे है तैसे सत चित आनंद पदों में भी सतपद चित पद औ आनंद पदों से न कहे तीनों कालों में ना नास होने वाले स्वरुप को कहे है चितापद सत पद औ आनंद से ना कहे सरब प्रकास को प्रकासने वाले प्रकास को कहे है आनंद दसतपद औ चित पद से ना कहे परम आनंद स्वरुप को कहे है याते सरबत्र यह नेम सिध हुआ जो जो वसतुओं के स्वरुप को कहने वाले अनेक नाम है सो समी एक नाम से ना कहे स्वरुप को ही कहने वाले होते हैं अर जो काहू निमित से नहीं बना हुआ अैसे वसतुओं के वासतव स्वरुप को कहते हं जिस स्वरुप का नाम अक्रितम है अक्रितम स्वरुप को कहने वाले नामों को अक्रितम नाम कहते हैं जैसे परमेश्वर का सत नाउ काहू कारणा से ना बने हुये तीनों कालों मै ना नास होने वाले स्वरुप को कहे है चितनाउ अपने चानने मै और चानना ना चाहने वाले चानने को कहे ही है आनंद नाउ अपने स्वरुप मै काहू और ना सुष चाहने वाले सुष को कहे हैं अैसे ही और स्वरुप बोधक नामों में रीति जान लेनी इसी वारता के समझावने हेत मारु सोलहे मैं गुरु अरजन जी ने एक ~~सतन्म~~ सतनाम को अक्रितम कहिआ है क्रितम नाम कथे तेरे जिहवा सत नाम तेरा परापूरबला परा का अरथ प्रधान है पूरबला पहला याते है परमेश्वर मधुसूदन दामोदरादि क्रितम स्वरुप को कहने वाले तो क्रितम नाम जिह्वा से बहुत कहे हैं जो --- अक्रितम स्वरुप को

कहने वाला तरा अक्रितम नाम है सो सरब की अपेषा कर मुष्य पहला है तिस का भकत सदा आसरा लैवे है अर सरबदा जपै है मुष्य जान कर ही सदा जपन का उपदेस है जप मन सत नाम सदा सतनाम इत्यादि जो वसतुओं के स्वरुप काहू निमित से बने होवे उनका नाम क्रितम है क्रितम स्वरुप को कहने वाले पदों का नाम क्रितम नाम है। अरकरम नाम है जैसे मधु राषस के मारने से परमेश्वर का मधुसूदन नाम है। पुर के मारने से मुरारी नाम है दाम नाम रजु का है तिस साथय सो दाने क्रिसन का उदर बाधिआ इसते दामोदर नाम है नार नाम जल का है। तिस मै घर बनावते से नारायण नाम है असे और भी जो जो ईस्वर ने ईश्वर ने बराम कीये उन से तिस के अनेक क्रितम नाम पड़े कहने मै बहुत कर ये हीआवे हे याही ते जाप बाणी मै गुरु गोबिद सिंह जी ने तब सरब नाम कथै कवन करम नाम बरनत सुमत असे करम नामो के कथन को प्रतिग्या करी है अक्रितम नामो के कहन की नहीं करी पूरब लिषा समग्र पाठ का यह भाव है जो वसतुओं के अक्रितम नाम होते है वहु वसतुयों के वासतव स्वरुप को कहते हैं जो क्रितम नाम होते हैं वहु बनावटी स्वरुप को कहते हैं याते पहले नामों को स्वरुप लषणा बोधक नाम कहते हैं दूसरे नामों को तटस्थ लषणा बोधक नाम कहते हैं तटस्थ लषणा बोधक नामो से सरब को ही सीघ्र उस वसतु की पहचान होवे है स्वरुप लषणा बोधक नामो से सूषम बुधी बालियों को सीघ्र होवे है औरों को सहज सहज सत संग करने से होवे हे उपाय वसतु की पहचान के दोनो है याही ते परमेश्वर ने वसतु की पहचान हेत आदि विसे दोनों का बोधक करने वाला सतनाम करता पुरखु पाठ कह्या है स्वरुप बोधक सत नाम पाठ का अरथ पूरब विसतार से कह्या परंतु एक का विसेषण सतनाम पाठ सत है नाम जिसका इस अरथ मैं बन्या और मैं नहीं बन्या नाम पद को करता साथ मेले तब सुगम हीसत एक का विसेषण बने है जो कैसा एक है सत कहीये तीनों कालो मैं ना नास होने वाला है पुन: सत को उपलषणा मान के ग्यान रुप औ आनंद रुप है नाम साथ रुप का मेल है। नाम वसतुओं के नामों को कहेहै रुप वसतुओं के अधारों का कहे है याते नाम रुप पदों से निषल वाच्य वाचक रुप संसार की उतपती का पालन का प्रलय का वहु एक करता कहीए निमित्त कारण है पुना जगत का परमेश्वर साथ अभेद सुणने से वही निषल का उपादान कारण है इस प्रकार इस मंत्र मैं दोनों लषणों के बोधक पदों से दोनों लषणा

बताये जा जिन दोनों को सुन कर स्रोता को अैसा ग्यान होवे है जो सत रुप है चेतन रुप है आनंद रुप है सो परमेश्वर है पुना जो निषल जगत की उतपती पालना प्रलय के करने वाला निमित कारण है और उपादान कारण है सो परमेश्वर है सत चित आनंद यह उसका स्वेत सिध अक्रितम रुप है। उतपती पालना प्रलय का निमित पना औ उपदान पना उसका बनावटी क्रितम रुप है। परमेश्वर मे करतापन निषाल कारयो की उतपती प्रलय किती का कारण ग्यान रुप है। जिस ग्यान से परमेश्वर इछा से लेकर ब्रह्मांड प्रयत संपूरण कारयो को रचे है वहु ग्यान परमेश्वर का स्वरुप भूत ग्यान नहीं जो पीछे स्वरुप लषण मे कह्या है किंतु माया की ब्रिती रुप ग्यान है आकार उसका यह है एक मै बहुत रुप हूं यह ग्यान परमेश्वर मे जब प्रयत संसार रहेगा सदा रहे है इसकी न्याय सम्प्र सास्त्र वाले नित्य माने है। इसी ग्यान से परमेश्वर सरबग औ संपूरण विद्या वाला कह्या जावे है इस ग्यान की उतपती के परमेश्वर साथ माया को अनादी मेल कारण है-- यह --- ग्यान आगे सरब की उतपती मे कारण है सरब कारयों से प्रथम परमेश्वर में एक मै बहुत होवे यह इछा उपजे है। इसका नाम साषी महतत्व कहे है वेदांती इसके कारण ग्यान को महतत्व कहे है इछा से आगे तिछा हंकारता से पंच तन मात्रा द्वारा निषल संसार होवे है जिसकी रचना से परमेश्वर जगत करता कहीये है करता पन परमेश्वर मे माया ब्रिती रुप कह्या है उपादान पना अपने कारयों साथ अपनी अभेदता रुप है अथवा अपनी माया के प्रताप से एकाकार का अनेकाकार होना रुप है जैसे नीद के प्रताप से एक ही स्वपने वाला पुरष अनेक हाथी सेर नदी सुमुदादि कारयों के आकार होवे है कारयों के आकार भी परमेश्वर अपने वासतव स्वरुप को छोड़ के नहीं होवे जैसे दूध अपने वासतव स्वरुप को छोड़ के दही के आकार हो जावे है किंतु अपने वासतव रुप को न छोड़ के कारयों के आधार होवे है जैसे सिपी जेवरी अपने वासतव रुप को ना छोड़ के भ्रमी पुरुषों की द्रिसटि मै रुपा और सरप बना जावे है। अैसे परमेस्वर भी अपने अक्रितम स्वरुप सचिदानंद को ना छोड़ के ही जगत के आकार हो जावे है यही उस मै उपादान पना है यह उपादानपना तामै माया के मेल से बना है याते बासतव ते दूधवत बदल के कारणों के आकार होना रुप उपादान पना माया में है अवासतव ते बदल के कारणों के अकार होना रुप उपादान पना चेतन मे है। इस प्रकार माया अर

माया परमेश्वर दोनों कारणों के उपादान है परमेश्वर का नाम बिबरती उपादान है माया का नाम परिणामी उपादान है बिबरत वाले का नाम बिबरती है परिणाम वाले का नाम परिणामी है झूठे बदल जाने का बिबरत है सचे बदल जाने का नाम परिणाम है याते परमातमा अपने वासतव रुप कौ ना छोड़ के झूठा बदल के जगत के आकार होवै है माया वासतव ते बदल के जमव के आधार होवै है याते परमातमा जगत का निमित औ उपादान दो परकार का कारण है माया जगत का उपादान मात्र एक प्रकार का कारण है इस बारता मैं प्रमाण ये बचन है अपनी माया आप पसारी आपे पेषनहारा। नाना रुप धरे बहुरंगीसमैत रहे निआरा। माया मायी त्रिगुण प्रसूत जमाइआ निरंकार आकार उपाइआ तथा प्रथम काल सम जग को ताता। ताते भयो तेज विष्याता। सोई भवानी नाम कहाई जिन सरीर यह स्रिसटि उपाई इत्यादि इनका अरथ न बिनती वसतु कौ बना देने वाली वसतु का नाम माया है जैसे मदारी की लाग पंषादिकों मैं ना बनते प्रतीत होते कबूतरादि कौ के बना देवै है याते माया है तैसे यह है याते निराकार मैं साकार रुप निरगुण मैं सगुण रुप एक मैं अनेक रुप ना बनती कौ बना देने वाली अपनी माया सकती परमातमा ने मदारी की मायावत आप पसारी एक मैं बहुत होवों ऐसी इछा से लेकर सथूल ततों के कारण चार षाणी चौदा भवन रुप ब्रह्मांड रचना प्रयंत आप फैलाई है अर आप ही उस रचना कौ रष्या हेत देषने वाला है अर माया साथ मिलके आप भी ट देव नरतिरयगादी नाना रुप धरे कहीये आकारों कौ धार के बहुरंगी नाना आकारों वाला हो रह्या है पुना वासतव ते सम आकारों कौ धारता हूआ भी स्वरुप से ना बदलने से सरप रजतादि कौ सैर सी सिपीवत आप सरब तें प्रिथक रहे है ऐसे ही माई माया वाल परमेश्वर ने माया से एक मै बहुता होवै इछा कर त्रिगुण प्रसूत त्रिछा हंकार से लेकर निषल राजसतामस सातक रुप प्रपंच रचिआ औ आप निराकार कारण से बन्या यह कहे निरंकार इति निरंकार कहीये मायक आकारों क से रहित सुध एकाकार परमेश्वर ने माया आदिक निषल अपने साथ अभिंन प्रतीत होते आकार रचे ऐसा ही दसम गुरु के बचन का अरथ है अधिक बिसतार निरणे सागर के अठारवें अध्याय में देष लेना इस प्रकार पूरब बचनों से कही माया की उपादानता कौ औ माया के संबध से परमातमा मै बनी जगत की निमितता औ उपादानता कौ एक काल मैं ही गंगा मैं मीन घोषा

है इस वाक्यवत करता पद बौधन करै है अथवा निरकार आधार उपाया पहल पुराए पुंडर कथना इत्यादिक बचनौ मैं निराकार पूरण कौ जगत की ~~करणल~~- कारणता कही है। अरपुलष पद का अरथ पूरण है यति पुरष पद ईहां उपादानता का बौधक है सत्य नामादि वाक्य का यह अरथ है जिस पुरष के सत्यादिक नाम स्वरूप के बौधक है वही परमेश्वर जगत के जनमादिकौ का करता नाम निमित कारण औ पुरुष कहीए उपादान कारण है उपादान कारण के साथ कारय अभिनं होवै है याते निषल प्रपंच उस साथ अभिन है। इसी बात के सूचक गुरु बचन है इह जगत हरि का रुप है। हरि रुप नदरी आया बनत्रिन परबत है पार ब्रहम लैकर जगत का उपादान कारण परमातमा ना होवै तब जगत कौ हरि रुप कहता अरबन त्रिण परबतौं का पार ब्रहम कहना नहीं बनैगा औ कह्या है याते परमातमा निमित्त वन सारे जगत का उपादान भी सूचक कीआ है ताते सतनाम करता पुरष इहा सत्यनाम इतने पाठ से पीछै कही रीति से ब्रह्मा का स्वरुप लषण कहिआ है। करता पुरष इतने पाठ से पीछै कही रीति से तटस्थ लषण कहिआ है लष वसतु साथ अभिन होकर तिस का इतरौं से भेद करे तिस का नाम स्वरूप लषण है और लष से भिनं होकर तिस का इतरौं से भेद करे तिस का नाम तटस्थ लषण है। सतिनाम पाठ मे भाषा के अनुरोध से तते मे सिआरी लिषी है अगत बिध अगन आदिक अनेक भाषा के अनुरोध से सिआरी छोड़ मुकते लिषे है अरथ के समे मैं अरथ उनका सिआरी अर मुकतापन बिसार के हीकीआ जाता है। ससक्रिति मैं बिसनु सिव के ~~बनबक~~ वाचक हरिहर औ पवन अगनि के वाचक अनिल अनलवत सिआरी मुकतापन याद रष के नही कीआ जाता अनेक सथानौं मैं अरथ की योग्यता से सिआरी वाले कौ मुकतापन के औ मुकते कौ सिआरी वाला मान के अरथ करैगे सो भी सम्यक जानने रही यह बिचार प्रकरण मैं कहे है तटस्थ लषण के बौधन संपूरण पदौं का सत्यादि स्वरुप लषण के बौधक पदौं के कहे ~~सत~~ सचिदानंद सुध निराकार के बौधन मैं ही तातपरय है उतपती बिती प्रलय के कहने मे तातपरय नहीं काहे ते निसानीयौं का जिस के जनावन हेत कही जाती है उसके जनावत मैं तातपरय होवै है अपने जनावन मैं नहीं होवै याते उतपती आदिक बौधक पदौका भी एक बौधन मै तातपरय है वासतव ते सरब वाक्यन का एक के बौधन मे तातपरय है ते सोई दिषावे है जो ~~नै~~ नैति कर निषेधक बचनौं नै प्रपंच निषेधना है तिस को

उतपती बोधक बचन परमातमा मै सिध करे हैं जो अवतार बचनो ने सुध स्वरूप कहना है तिस को प्रपंच का निषेध करते हुए निषेधक बचन सिध करे है जो महावाक्य ने अभेद कह कर एक सिध करना है तिस की सिधी हित जीव ईस के स्वरूप को ~~अवतार~~ अवतार बचन सचिदानन्द सिध करे है यति उतपती बोधक बचन निषेध बचनों में निषेधने योग्य अरथ को सिध करने से निषेधन बचनों को सहाई है निषेधक बचन अवातर बचनो में सिध करने योग्य सुध स्वरूप को सिध करने से अवांतर बचनों को सहाई है। अवांतर वाक्य महावाक्यन में कहनी एकता के योग्य जीव ईस के सचिदानंद स्वरूप को सिध करने से महावाक्यन के सहाई है इस रीति से सपूरण बचनों का एक मे तातपरय है इसी वारता को इस अवांतर बचन के सतनाम करता पुरष एते पाठ से बतायके और पदों से भी पुना कहे अरथ का ही परमेश्वर म गुरु नानक जी निरणे करते हैं निरभउ इति। निरभउ पद निरभउ अर निरभउ दो से बने हैं याते पहिले पाठ मे निर कहीए दूर हूया है भव कहीये सथूल सूषम रुप कारय संसार और तिस का कारण माया जिससे ऐसा सुध रुप पुरष है जिसको तुरीआ पद कहते हैं दूसरे निरभय पाठ मै निर कहीये दूर दूया है अज अबिनासी होने ते जनम मरणादि भय जिससे ऐसा बहु पर पुरष है वा एक होने से दूसरे के भय से रहित है याही ते निरवैर कहीये एक अद्विती स्वरुप होने से दूसरे साथ होने वाले वैर से रहित है यह प्रसिध बात है भय दूसरे से होवे है वैर दूसरे साथ होवे है जो एक है उसको काहू का भय नहीं होवे यात निरभय है। औ उसका काहू साथ वैर नहीं होवे याते निरवैर है वा आप प्रकास रुप है अर अपने मे रहने वाला अग्यान अंधेरा रुप है अंधेरे प्रकास का विरोध होवे है। अर यह पर पुरुष बिना ब्रिति में चड़े वाको दूर करे नहीं यांते निरवैर है पुना कैसा बहु पुरुष है अकालमूरति कहीये सभ को मारने वाले काल से भिनं औ काल का भी सघांर करने वाला है मूरती कहीये स्वरुप जिसका ऐसा बहु पुरष है इसका विसेष बिचार अकाल सबद के अरथ मे देष लेना पुना कैसा बहु पुरुष है अजूनी से कहीये माया ते रहित सुध स्वरुप बहु अकारण है से सबद बांगर देस मे है की जगा कहते है जैसे देव दत से राम से किसन से तैसे अजूनी से कहिआ है। पुना वहु कैसा है कहीये स्व प्रकास रुप है अथवा अजूनी से मं अजूनी संभउ से क्या है। ग्रंथ साहिब में अजूनी संभव पाठ अजोनी संभविउ जगतगुरु बचन तराइउ ऐसे चोथे पंजवे गुरु के सवैयों में

लि लिषा है औ अजूनी संभउ पाठ अमोघ दरसन अजोनी संभउ असै मारु के सोलहे
मै लिषा है अजूनी सै मं ईहा लिषा है अरथ इसका यह है अजूनी कहीये
अकारण पने का संभव बणाना है जिस पर स्वरुप विषै असा बहु पुरष है
भाव इस का यह है जो परमेश्वर माया साथ मिल्या है तिसी मै जगत का कारणापना
बनै है जो माया के संबध रहित सुध स्वरुप है तिसै विषै नही बनै याते सुध
स्वरुप अकारण है जूनी पद उपादान कारण का वाचक होवै है याते अजूनी
पद सै अकारण जान लैना जिस प्रकार सुध परमातमा सरब का अकारण है असै
काहू का कारय ना होनै ते सरब का अकारय भी है ताते जूनी से
संभव बनना होवै जिसका तिस का नाम जूनी संभव है असा कोनै कारय ना
जो होवै जोनी संभव सो कहीये अजूनी संभव असा अज होनै ते अकारय स्वरुप बहु
पुरुष है याते अजूनी सै मं पाठ सै ही पुरष को अकारय रुप भी कह्या पुना
कैसा बहु पर है गुर कहीये ब्रह्मा को रच के सक सकल जगत को सिष्या देने हेत
तिस को बेद पडावने वाला है याते सकल जगत को सिष्या करने वाले ब्रह्मादिको
को भी सिष्या करनै वाला गुरु है इसी बात को अरथ सै गुरु कहते हैं माइँ
रे गुरु बिन ग्यान न होइ। पूछो ब्रह्मे नारदै बेद बिआसै कोइ। अथवा कैसा
बहु पर पुरष है गुरु कहीये परमेश्वर के स्वरुप का उपदेस करने मै चतुर जो
तत्ववेता जन है तिनका रुप धार के वही उतम सिषन को वासतव वसतु का
उपदेस करे है इसी वासते गुरु लिषाते हैं आपे वैषाले राह अर गीता मै अरजन कहे
है तूही चराचर जगत का पिता है अर पूज्य है अर वड़ा गुरु है याते सिध हुआ
पर पुरष ही गुरु रुप धार के सभ को मुकती के मारग का उपदेस करता है
पुना कैसा वहु पर है प्रसादि कहीये सपूरण चक्र चिहन बरण जात पातादी कारय
मल और अग्यान रुप कारण मलेत रहित होनै ते सुध है लोक मै प्रसाद वत
का किरपा वा षुसी अरथ प्रसिध है इसी वासते एक जो माया के मेल सेउ
रुप हो रहिआ है बहु जाणीये कैसे प्रसन सुन सतगुर प्रसाद सतगुरों की क्रिपा
से जाणीये असा उतर रुप अरथ ग्यानी कहते हैं मंत्र के आदि से सत इतना लेकर
और अंत से गुरु प्रसाद एता लेकर गुर अरजन जी ने रागों के बीच सबदों के आदि

मै मंगल लिषिआ है अर स्री गणेसायम: इत्यादि लिषने वत जो कुछ लिषै उसके आदि
मैं लिषना यह सूचन धीआ है याते एक ओकार सतिगुरु प्रसादि का यह
अरथ है जो एकाकार माया के मेल से उं रुप हो रोहआ है वहु सत तीन काल
मै नास रहित है औ गुरु सरब को सिषा करने वाला है प्रसाद सरब बसतुओं से
रहित सुघ है इस प्रकार परमैश्वर ने प्रथम स्वरुप औ तटस्थ लषणा बोधक पदों
से सतनाम करता पुरष एता उपदेस कीआ पीछे उसी सत का स्वरुप बोधक और
तटस्थ बोधक विसेषणों से उपदेस कीआ औ उपदेस कर जैसे मैंने आगे वेद
मै गाइत्री मंत्रादिक सपूरण पापी के नास कर सुघो के हेत कहे है तैसा यह
सपूरण अग्यान और तिस के कारय प्रपंच पाप के दूर करने से परम सुघी का कारण
तेरी को उपदेस कीआ है याते सरब को आगे यही उपदेस करने हेत तू इस को जप
यह उपदेस कीआ जिसकी प्रीत को सुन के गुरु रामदास जी के पोते मिहरवान
ने आपणी बाणी मैं लिख्या है इह जप करते पुरष का सच नानक धीआ।
बषण जगत उधारण धारणै घुरहु होया फुरमाण इत्यादि मन का सतोष।
सरीर की सुधी। (३)- वाणीकीमौन , (४)- मन मै मंत्र के अरथ का
चितन। (५)- जप मैं मन की सावधानता, (६)- दीरघ काल निरंतर
सतकार से मन मैं जप का प्रेम। ~~(७)~~- ये जप की सिधी के कारण है
ये ना होवे तब जप सम्यक नहीं होवै यह जपने वाला याद रषै इस प्रकार इस
इस मंत्र की व्याख्या कार अब जिन को जान के इस मै प्रब्रिती होवै वहु अनुबध भी
इस मै सूचक कीये दिषावै है लोक मे यह प्रसिध है जिस विदया का पुरष आप
को अधिकारी देष देषता है अर जिससे अवांतर औ परम दोनों प्रयोजन
देषता है अर जिस मैं अधिकारी प्रयोजनादि को के परसपर मेल देषता है अर
जिस से प्रयोजन के मूल वसतु का जानना देषता है उस विदिआ के पढ़ने मैं प्रब्रित
होता है जिस मै आप को अधिकारीनहीं देषता अर जिससे दोनों प्रयोजन नहीं
देषता अर जिसमैं अधिकारी प्रयोजनादिकों का परसपर मेल नहीं दषता
अर जिस से प्रयोजन मूल वसतु का जानना नहीं दषता तिस विदया के पढने मैं
~~कने~~ कोई नहीं प्रब्रित होता याते प्रतीत हूआ सरब विद्या के पठन की प्रब्रिती
मै प्रथम उस विद्या मै इन चारों का सिघ होना बीज है सास्त्र मैं उन चारों के
अधिकारी (२)- प्रयोजन, (३)- संबंध, (४)- विषाय, ये जुदे जुदे नाम है।

अनुबंध चारोंका एक नाम है अधिकार वाले का नाम अधिकारी है। अधिकार नाम जिससे पुरष किसे काम योग्य हो जावे उस वसतु का है इस विद्या मैं विवेकादिक चार साधनों से पुरष सुवणादिक काम के योग्य हो जावे है याते विवेकादिकों का नाम ईहा अधिकार है तिनो वाले पुरष का नाम अधिकारी है विवेकादिको के स्वरुपों का निरणै गुरमत निरणै मे देष लेना। जिस के लाभ हेत विद्या मै. प्रब्रित होईये उसका नाम प्रयोजन है सो आगे दो प्रकार का होवे है एक अवांतर दूसरा परम जिस द्वारा परम प्रयोजन की प्रापती होवे उसका नाम ~~अवतम्र~~ अवांतर दूसरा परम जिस द्वारा परम प्रयोजन की प्रापती होवे उसका नाम अवांतर प्रयोजन है वहु इस विद्या में जीव ईस का एक जानना रुप है जिस का नाम जीवे सका अभेद ग्यान है। इस ग्यान का सूचन ईहां जीव ईस दोनों मे अनुगत एकाकार चेतन के बोधक सतनाम करता पुरुष वाक ने कीआ है जिस का आगे और फलना होवे वहु आपही फल होवे उसका नाम परम प्रयोजन है वहु इस विद्या में दो अंस रुप है जिन में पहला अंस जनम मरणा के प्रवाह रुप संसार का फेर कबी जीव को ना होना रुप है जिसका नाम सासत्र में अग्यान ततकारय की निब्रिती कहते हैं तथा प्रपंच का अत्यंता भाव कहते हैं तथा दुष का अत्यंत नास कहते हैं दूसरा अंस जिस आनद को आगे सभी कु आनंद तुछ है असे परम सुष का लाभ रुप है जिसका नाम परमानंद की प्रापती है इस परम प्रयोजन का सूचन ईहां क्रम से जनम मरणादि रुप संसार के भय से हीन स्वरुप के बोधक निरभय पाठ ने ~~कीअम~~ कीआ है वा जाग्रत स्वपन सुषुपति रुप भाव से हीन स्वरुप के बोधक निरभव पाठ ने कीआ है जो अधिकारी प्रयोजनादिकों के आपस में मेल है तिन का नाम संबंध है सो अनेक प्रकार के है जिनमें अधिकारी प्रयोजन का प्रापय प्रापक भाव संबंध हैं जो वसतु प्रापत होनी है उसका नाम प्राप्य है जिसको प्रापत होनी है उसका नाम प्रापक है असे इस मंत्र का बोध्य बोधक भाव संबंध है पड़ने वाले का इस मंत्र साथ पाठ्य-पाठक भाव संबंध है विद्या असे और मीजान लेने इसका सूचन ईहां इस मंत्र में सपसट ही है जिस विद्या से जिस वसतु को जाणीये सो वसतु तिस विद्या का विषय कहीये है वसतु मात्र को दो स्वरुप होवे है एक अग्यात दूसरा

दूसरा ग्यात ना जाने हुये स्वरुप को अग्यात कहे है औ अग्यात के ग्यान हेत विद्या होवे है सो अग्यात स्वरुप अनेक है जीव का ईस का ईस की भक्ती का जीव ईस के अभेद का और अनेक है जिन स्वरुपों का इसी विद्या से ग्यान होकर तिन ग्याती से प्रयोजन सिध होने हैं परंतु इन सभ में अत्यंत अग्यात जीव ईस का अभेद है जिस के ग्यात से जोति में जोति का संभावना रुप मुक्ती सिध होवे है याते वही अग्यात हुआ इस मंत्र का विषाय है ईहां इस विषाय का सूचन अपने अस्रित रहने वाले अग्यान साथ विरोध के अभाव बोधक निरवैर पद ने कीआ है अर इस अग्यात रुप अभेद विषाय का स्वरुप परमानंद है औ परमानंद की समजन चाह करे है याते भक्ती पूरवक ग्यान से ग्यात हुआ यह परमानंद स्वरुप अभेद इस मंत्र का परम प्रयोजन है इसका सूचन निरभउ पद से पूरब कीआ है स्रवणा कीरतन समरणा भक्तीयों के योग्य नाम इस मंत्र में सतआदिक अनेक कहे है याते ईश्वर की भक्ती इसका अवांतर प्रयोजन है वा गुरुमत निरणै में लिषी रीति से मुष प्रयोजन है परंतु जीव ईस का एक ग्यान ते इसका मुष अवांतर प्रयोजन है औ इस अवांतर प्रयोजन के साधन निसकाम धरम हरि भगति चितासुधी विवेक वैराग्य सब समदम उपरिति तितिष्या सुधा समाधानता मुकती की इसका इछा गुरु के समीप जाना उपदेस का स्रवणा मनन निदिध्यासन ये सभी है परंतु ईश्वर की भक्ती इन सभ में ग्यान के मुष्य साधन ईश्वर की दया का हेतु है। यांते भकती पूरबक ग्यान इस मंत्र का अवांतर प्रयोजन है यह पीछे सूचक मै सूचन कीआ है इस प्रकार संषेप से अनबंध चतुश्टे का निष्पणा सूचन कर जपनो हेत उपदेस कीये जप पद से इस बाणी का नाम सूचन कर गुरु नानक क जी विसेषा कर इसमें विषाय आदिक अनुबंधों का निरुपणा करनो हेत पूरब सतनामादि मंत्र मै कहे करतापद के अरथ सतस्वरुप उपादान मै सरब का अभेद सिध करते हैं।[१]

नरोत्तम के अनुसार विष्णु भगवान ने एक ओंकार से लेकर गुरु प्रसादि पर्यंत

१- गुरु भाव दीपिका पु० १२-३४

उपदेश किया। और गुरु नानक देव को जगत में इस उपदेश का प्रचार करने को कहा।

१- नरोत्तम की यह धारणा भ्रान्त है। नरोत्तम ने विष्णु का वर्णन केवल इस लिए किया कि नरोत्तम पर पौराणिक प्रभाव बहुत गहरा था। यही कारण है कि नरोत्तम ने जपुजी साहब के प्रथम श्लोक को विष्णु द्वारा उच्चरित माना है।

२- नरोत्तम ने एक ओंकार की व्याकरण की दृष्टि से व्याख्या की है। अ + उ + म - ॐ, अकार उकार तथा मकार से बना ओंकार रूप है। अकार मायाविष्ट ईश्वर और विश्व जीव है, उकार तैजस जीव है तथा मकार का अर्थ माया पति ईश्वर और प्राज्ञ जीव है।

३- जाग्रत, स्वपन तथा सुषुप्त अवस्था का उल्लेख किया है। परमात्मा माया के साथ मिलकर अकार, उकार तथा मकार तीन रूप हुआ है। माया अविद्या रूप कारण है। माया के साथ मिलकर जीव ईश्वर दो रूप बनते हैं।

४- एक अंक का अर्थ नरोत्तम ने एक परमात्मा बताया है और नरोत्तम के अनुसार सतिनामु से लेकर गुरु प्रसादि तक परमात्मा के नाम के विशेषण है जो स्वरूप और तटस्थ लक्षण में विभक्त है।

५- सतिनामु, को सत चित, आनंद रूप माना है। तथा सतिनामु बाणी रूप है। यह स्वरूप लक्षण है। वस्तु की पहचान हेतु सतिनामु का पाठ है।

६- निमित्त कारण और उपादान कारण-वाच्य बाचक रूप निमित्त कारण है। अकृत्रिम और कृत्रिम स्वरूप के द्वारा नरोत्तम ने सतिनामु का शब्दार्थ करने का प्रयास किया है। अकृत्रिम स्वरूप लक्षण के अन्तर्गत और कृत्रिम तटस्थ लक्षण के अन्तर्गत आता है। सत्‌चित आनंद रूप परमेश्वर अकृत्रिम रूप है और उत्पत्ति, पालन, प्रलय का निमित्तपना कृत्रिम रूप है।

७- नरोत्तम के अनुसार माया और माया परमेश्वर दोनों कार्यों के उपादान है। परमेश्वर विवर्त उपादान और माया परिणामी उपादान है।

८- नरोत्तम ने परमेश्वर को जगत का निमित्त और उपादान दो प्रकार का कारण बताया है। परमेश्वर माया से रहित शुद्ध स्वरुप अकारणपना है तथा माया के साथ मिलकर जगत का कारण है। वह स्वप्रकाश रुप है। अकार्य स्वरुप है।

तारा सिंह नरोत्तम ने प्राप्य-प्रापक, वाच्य-वाचक, बोध्य-बोधक तथा पाठ्य पाठक सम्बन्ध द्वारा इसकी व्याख्या ~~की~~ को सुन्दर बनाने का प्रयास किया है।

नरोत्तम ने अपनी विचारधारा के स्पष्टीकरण के लिए पौराणिक प्रसंग को अपना आधार बनाया है। न्यायशास्त्र, वेदान्त गुरुवाणी आदि से उद्धरण लेकर अपने मत की पुष्टि की है।

नरोत्तम की व्याख्या में कथात्मक उत्थानिकाएं जन्म साखियों से ली गई हैं। निश्चय ही ये उत्थानिकाएं नरोत्तम की अपनी नहीं हैं क्योंकि इस प्रकार की उत्थानिकाएं गुरुवाणी आदि व्याख्याता मिहरिवानु'सगु षड्पोथी' , में मिलती है। प्राय: सभी उपलब्ध जन्मसाखियों में इस प्रकार की उत्थानिकाएं मिल जाती हैं। वाणी का समुचित सन्दर्भ इन उत्थानिकाओं में दिया गया है।

निष्कर्ष यह है कि तारा सिंह नरोत्तम ने बड़े विस्तार के साथ विभिन्न प्रसंगो द्वारा, अद्वैत परक दृष्टिकोण द्वारा जपुजी साहिब की व्याख्या की है। उसमें निमित्त उपादान कारण, कृत्रिम-अकृत्रिम रुप, अवान्तर निषेध वचन, कारण-अकारण, स्वरुप और तटस्थ लक्षण के द्वारा जपुजी साहिब के प्रथम श्लोक की व्याख्या कर परमेश्वर के गुणों का गायन किया है। परन्तु आरम्भ में यह कहा कि विष्णु ने इस श्लोक का उच्चारण किया है तो हमें खेद होता है कि तारा सिंह नरोत्तम ने इतनी सुन्दर काव्यात्मक व्याख्या कर यह भ्रान्त धारणा क्यों की। यद्यपि इस श्लोक का उच्चारण विष्णु, ने किया होता तो श्लोक के पूर्व एक अंक नहीं होता। जैसे पौराणिक ग्रन्थों में कहीं भी एक अंक देखने को नहीं मिलता। वहां केवल ॐ ही मिलता है। यह गुरु नानक देव जी की अपनी देन है। एक अंक का प्रयोग कर उन्होंने उस सर्वशक्तिमान, विराट, विशाल परमात्मा को एक माना है। उसे अद्वैत कहा है। परमात्मा को अलग से नाम न देकर उसे एक ओंकार कहा है।

अन्तत: हम इतना ही कह सकते हैं कि नरोत्तम द्वारा की गई व्याख्या जिज्ञासुओं के निमित्त बड़ी उपयोगी है। नरोत्तम ने शब्दार्थ और भावार्थ दोनों के माध्यम से अर्थ को स्पष्ट करने की पूरी चेष्टा की है। यद्यपि कहीं कहीं पर शब्दों का अंग भंग कर अर्थों में खींचातानी की है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि नरोत्तम की व्याख्या शैली द्वारा गुरुवाणी को समझने में बड़ी सहायता मिलती है।

तारा सिंह नरोत्तम के समकालीन व्याख्याता ज्ञानी बदन सिंह हुए। इनकी गुरुवाणी व्याख्या फरीद कोटी टीका में देखी जा सकती है। इन्होंने भी आदि ग्रंथ की व्याख्या बड़े विस्तार के साथ की है जिसमें गुरुवाणी का प्रत्येक भाव स्पष्ट हो जाता है।

तारा सिंह नरोत्तम के समान ही इनकी जपुजी साहिब के प्रथम श्लोक की व्याख्या है।[१] ज्ञानी बदन सिंह ने भी पौराणिक परम्परा को अपनाया हुआ है अर्थात् व्याख्या करते समय पौराणिक सन्दर्भ लेकर शास्त्रार्थ ढंग से व्याख्या की है। ऐसा लगता है कि तारा सिंह नरोत्तम और ज्ञानी बदन सिंह इन दोनों की व्याख्या परम्परा प्राप्त थी। इन पर पूर्ववर्ती लेखकों का प्रभाव भी काफी गहरा था और यही कारण है कि इन दोनों के विचारों में काफी हद तक समता दिखाई देती है।

इसी प्रकार आधुनिक व्याख्याताओं में भाई साहब सिंह, भाई वीर सिंह तथा तेजा सिंह ने जपुजी की व्याख्या आधुनिक ढंग से की है।

तारा सिंह नरोत्तम की व्याख्या शैली को आधुनिक ढंग से देखने के लिए हम साहिब सिंह की गुरुवाणी व्याख्या को देखते हैं।[२] साहिब सिह के अनुसार जपु जी

१- विस्तृत विवेचन के लिए फरीदकोटी टीका पृ० १-४ जिल्द एक पर देखें।

२- एक ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि।।

पद अरथ-

एक ओंकार- उचारन वेले इस दे तिन हिस्से कीते जांदे हन- एक, ਓ, अते ⌒ ; इस दा पाठ है इक उअंकार । तिन हिस्से वखो वखरे उचारिआ इउं बणदे हन:-

बाणी की विचारधारा, 'किव सचिआरा होइऐ, किव कूड़ै तुटै पालि' के इर्द गिर्द घूमती है।

साहिब सिंह ने गुरु वाणी की व्याख्या बड़ी सरल की है। सर्वप्रथम इन्होंने शब्दों के अर्थ देकर फिर अर्थ व्याख्या की है। साहिब सिंह की व्याख्या, व्याख्या न

(पिछले पृष्ठ से)

ੴ- इक। ਓ - ओं उअं। ੰ- कार।

ਓ संसकृत दा सबद है। अमर कोश अनुसार इस दे तिन अरथ हन:-

१- वेद आदि धरम पुसतकां दे आरंभ अते अखीर विच, अरदास जां किसे पवित्र धरम-कारज दे आरंभ विच अखर 'ਓ' पवित्र अखर जाण के वरतिआ जांदा है।

२- किसे हुकम जां प्रशन आदिक दे उतर विच आदर अते सतकार नाल जी हां' आखणा। सो ਓ दा अरथ है जी हां।

३- ਓ- ब्रह्म।
इहनां विचों केहड़ा अरथ इस सबद दा इथे लिआ जाणा है- इस नूं, सिद्ध करन लई सबद 'ਓ' दे पहिलां (१) लिख दिता है। इस दा भाव इह है कि इथे 'ਓ' दा अरथ है उह हसती जो इक है। जिस वरगा होर कोई नहीं है अते जिस विच इह सारा जगत समा जांदा है।' तीजा हिसा ੰ है, जिस दा उचारन है 'कार' ('कार' संसकृत दा इक पिछेतर है। आम तौर ते इह पिछेतर 'नांव' दे अखीर विच वरतिआ जांदा है। इसदा अरथ है इक रस, जिस विच तबदीली नाह आवे।'

'इस पिछेतर' दे लाण नाल 'नांव' दे लिंग विच कोई फरक नहीं पैंदा, भाव जो 'नांव' पहिलां पुलिंग है, तां इस पिछेतर दे लगाइआं भी पुलिंग ही रहिंदा है, जे F पहिलां इसत्री लिंग होवे तो इस पिछेतर दे समेत भी इसत्री लिंग ही रहिंदा है। - - - -

होकर केवल शब्दार्थ ही बन गया है। और शब्दार्थ इतने स्पष्ट नहीं बन पड़े। इन्होंने अन्त में नोट देकर इसके महत्व को बताया है। यद्यपि साहिब सिंह की व्याख्या भाषा

(पिछले पृष्ठ से)

एकंकारु- एक उअंकार, उह इक उअं जो इक रस हैं, जो हर थां विआपक है।

सी- एक उंकार दा उचारन है 'इक (एक) उअंकार' अते इसदा अरथ है 'इक अकाल पुरष, जो इक रस विआपक है।'

सतिनामु:- जिस दा नाम सति है। लफज 'सति' दा संसक्रित सरुप 'सत्य' है इसदा अरथ है 'होंद वाला'। इसदा धातू 'अस' है जिस दा अरथ है 'होणा'। सो 'सतिनामु' दा अरथ है, 'उह इक उंकार जिस दा नाम है होंद वाला।'

पुरखु:- संसक्रित विच विउतपती अनुसार इस लफज दा अरथ इउं कीता गिआ है, 'पुरि शेते इति पुरुशह', भाव जो सरीर विच लेटिआ होइआ है।' संसक्रित विच आम प्रचलत अरथ है 'मनुख्ख' 'मनुखा' भगवत गीता विच 'पुरखु' 'आतमा' अरथ विच वरतिआ गिआ है। 'रघुवंश' विच इह शब्द ब्रह्मांड दा आतमा दे अरथां विच आइआ है, इसे तरहां पुसतक 'शिशुपाल वध' विच भी।

स्री गुरु ग्रंथ साहिब विच पुरखु दा अरथ है उह उअंकार जो सारे जगत विच विआपक है, उह आतमा जो सारी स्रिसटी विच रम रिहा है। 'मनुखा' अते आतमा' अरथ विच भी इह सबद कई थाईं आइआ है।

अकाल मूरति- शब्द 'मूरति' इसत्री लिंग है 'अकाल' इस दा विशेशण है, इह भी इसत्री लिंग रुप विच लिखिआ गिआ है। जो शबद अकाल इकला ही 'पुरखु' निरभउ, निरवैर, वांग एक ओंकार दा गुण वाचक हुंदा।----।

अजूनी- जूनां तों रहित, जो जनम विच नहीं आउंदा सैभं-- स्वयंभू अपने आप तो होणा वाला जिस दा प्रकाश आपणे आप तों होइआ है। गुर प्रसादि- गुरु दे प्रसाद नाल, गुरु दी किरपा नाल, भाव उपरोक्त 'एक ओंकार' गुरु दी किरपा नाल मिलदा है।

का वह सौन्दर्य लिए हुए नहीं है जो नरोत्तम की व्याख्या में देखने को मिलता है परन्तु फिर भी इनकी व्याख्या को साधारण पाठक बड़ी सरलता के साथ समझ सकता है। इस दृष्टि से साहिब सिंह की टीका अपना विशेष स्थान रखती है।

इसी प्रकार आधुनिक व्याख्याताओं में भाई तेजा सिंह भी प्रसिद्ध हुए हैं।

(पिछले पृष्ठ से)

अरथ-

अकाल पुरष इक है जिस दा नाम होंदवाला है, जो स्रिसटी दा रचनहार जो सभ विच विआपक है, भै तो रहित है, वैर रहित है, जिस दा सरुप काल तों परे है (भाव जिसदा सरीर नास रहित है) जो जूनां विच नहीं आउंदा, जिस दा प्रकाश आपणे आप तों होइआ है अते जो सतिगुरु दी किरपा नाल मिलदा है।

नोट- इह उपरोक्त गुर सिखी दा मूल मंत्र है। इस तों अगांह लिखी गई बाणी दा नाम है'जपु'। इह गल चेते रखण वाली है कि इह मूल मंत्र वखरी चीज है ते बाणी-'जपु' वखरी है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब दे शुरु विच इह मूल मंत्र लिखिआ है, जिवें कि हरेक राग दे शुरु विच भी लिखिआ मिलदा है। बाणी'जपु' लफज' आदि सचु' तो शुरु हुंदी है। आसा दी वार दे शुरु विच भी इही मूल मंत्र है पर'वार' नाल इस दा कोई संबंध नहीं है, तिवें ही इथे है।

'जपु' दे आरंभ विच मंगला-चरन दे और ते इक सलोक उचारिआ गिआ है। फिर'जपु' साहिब दीआं ३८ पउड़ीआं हन।

-जपु साहिब सटीक- साहिब सिंह पृ० ३८-४३

इन्होंने जपु जी व व्याख्या आरम्भ करने से पूर्व 'जपुजीमहत्व' तथा इसके मूलमंत्र को बताया है। जो जपुजीका केन्द्रीय भाव है। इन्होंने जपुजी के प्रथम श्लोक की व्याख्या के अन्तराल में हिन्दू-दृष्टिकोण को सामने रखा है।[१] अर्थात् हिन्दू धर्म में परमात्मा के स्वरुप को कैसे माना है और गुरुमत में कैसे। इसके साथ अन्य टीकाकारों को के विचारों को भी लिए है कि वे किस प्रकार की टीका करते हैं। हम इतना कह सकते हैं कि भाई तेजा सिंह की टीका व्याख्या सरल, सहज बोधगम्य है जिसे सामान्य पाठक बड़ी सरलता के साथ समझ सकता है। इन्होंने अधिक बल शब्दार्थ पर दिया है तथा साधारण जीवन से उपमान लेकर उसकी व्याख्या कर दी है। इनका दृष्टिकोण नरोत्तम के समान अद्वैत परक नहीं है।

निष्कर्ष यह है कि पंडित तारा सिंह नरोत्तम की व्याख्या यद्यपि बड़ी विस्तृत बन गई है परन्तु उसमें एक भाव की व्याख्या के साथ अन्य कई प्रकार की सामग्री भी उसमें देखने को मिल जाती है। यह सत्य है कि उनके पास ज्ञान का अद्भुत भंडार था और उनका ज्ञान कृतियों के माध्यम से प्रकट होता है। उस अद्भुत ज्ञान को प्रकट करने के लिए उन इनकी भाषा शैली भी पंडिताऊपन तथा चमत्कारिकता को लिए हुए थे। जिसके कारण व्याख्या का जो मुख्य गुण होना चाहिए था उसका अभाव हम इनकी व्याख्यात्मक कृतियों में देखते हैं। क्योंकि टीका का मुख्य गुण सरल, सहज, बोधगम्य, स्पष्ट होना है परन्तु नरोत्तम अपने ज्ञान की अधिकता तथा भाषा के पंडिताऊपन के कारण वे व्याख्या को ऐसा बनाने में असफल रहे क्योंकि गुरुवाणी की व्याख्या करते हुए स्थान स्थान पर वे शास्त्र-वेद-पुराण, आदि पौराणिक सन्दर्भों को ले आते हैं। जिसे साधारण पाठक के समझने के बस का रोग नहीं और वह व्याख्या सामान्य पाठक के लिए न होकर प्रबुद्ध पाठकों के लिए बन जाती है।

इन सब के उपरान्त यद्यपि उनकी टीका व्याख्या फरीद कोटी टीका से बहुत समता रखती है तो हम केवल इतना ही कह सकेंगे कि यह व्याख्या कार समकालीन

१- विवरण के लिए देखें- जपुजी विआखिआ- तेजा सिंह- पृ० ४६-५७

होने के कारण परम्परा को प्राप्त किए हुए थे जिससे वे इस प्रकार की टीका कर सके।

गुरुवाणी की जितनी बार भी व्याख्या की जाये उतनी बार उसमें नए भावों का जन्म प्रतीत होता है। और यही कारण है कि गुरुवाणी में माधुर्य भाव इतना अधिक होने पर भी उसकी प्राचीन काल से लेकर आज तक व्याख्या की जा रही है। यही कारण है कि गुरुवाणी की व्याख्या विद्वानोंने अपनी अपनी दृष्टि से विशेष युग में विशेष प्रकार से की है। जैसे नरोत्तम ने प्रश्नोत्तर शैली के द्वारा शास्त्रार्थ अनुसार व्याख्या की है जबकि साहिब सिंह ने केवल शब्दों का शब्दार्थ ही किया और लगता है उनके पास ज्ञान का भंडार कम था तभी वे इतनी सरल और साधारण शब्दों में टीका की है जिससे सामान्य पाठक तो अभिभूत हो सकता है परन्तु प्रबुद्ध पाठक नहीं। इसी प्रकार फरीद कोटी टीकाके विद्वान ज्ञानी बदन सिंह जी ने जब गुरुवाणी के अर्थों का ~~अनर्थ~~ अनर्थ होते देखा तो उन्होंने विस्तार के साथ सही अर्थों में गुरुवाणी की व्याख्या करनीचाही। इनकी टीका व्याख्या भी नरोत्तम के समान शास्त्रीय आधार को लिए हुए है। तेजा सिंह की टीका व्याख्या सुन्दर बन पड़ी है परन्तु केवल शब्दों के अर्थों को खोल कर रखा है। उसमें भावार्थका अभाव है।

अन्तत: नरोत्तम की टीका व्याख्या साधारण पाठकों के लिए ~~नस्न~~ न होकर एक बहुज्ञ पाठक के लिए तथा जिज्ञासुओं की तृप्ति के लिए लिखी गई है। तारा सिंह नरोत्तम ने अपने व्यापक ज्ञान, प्रखर प्रतिभा तथा अभिव्यंजना के विभिन्न तत्वों द्वारा बड़ी विस्तृत व्याख्या की है तथा पौराणिक सन्दर्भों को लेकर अपनी व्याख्या को प्रभावोत्पादक बनाया है।

ੴ ਸਤਿਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

ਅਥ ਟੀਕਾ ਸ੍ਰੀ ਰਾਗੁ ਕ੍ਰਿਤ ਪੰਡਿਤ ਤਾਰਾਸਿੰਘ ਜੀ ਨਰੋਤਮ

ਦੋਹਰਾ

ਗੁਰੂ ਵਰ ਦਸ ਕੇ ਦੁੰਦ ਪਦ ਦਾਇ ਅਦ੍ਵੈਦਾਨੰਦ ॥
ਬੰਦ ਬਾਰ ਬਹੁ ਨਿਜ ਗੁਰੈ ਪਦ ਪੰਕਜ ਪੁਨ ਬੰਦ ॥੧॥
ਕਰਹੋਂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਮੈ ਸਿਰੀ ਰਾਗ ਬ੍ਯਾਖ੍ਯਾਨ ॥
ਨਿਜ ਬੁਧੀ ਸੁਧ ਕਰਨ ਕੋ ਭੇਟਾ ਹੇਤ ਮਹਾਨ ॥੨॥
ਵਕਤਾ ਗੁਰੂ ਗਿਰਾਰਥ ਕੇ ਸਭਾ ਕੇਰ ਸ਼ਿੰਗਾਰ ॥
ਬਹੁ ਜਗ ਮੈ ਬਿਖ੍ਯਾਤ ਹੈਂ ਗ੍ਯਾਨੀ ਸੰਗ੍ਯਾਵਾਰ ॥੩॥
ਤਿਨੋਂ ਲਿਖੇ ਬਹੁ ਬਿਖਮ ਥਲ ਬਿਨਾ ਲਿਖੇ ਨਿਜ ਨਾਮ ॥
ਸੋ ਸੰਗ੍ਰਹ ਲੇ ਸਭ ਹਿਤੈ ਰਚੌਂ ਟੀਕ ਅਭਿਰਾਮ ॥੪॥

ਬੰਧਨ ਮੇ ਪੜਨੇ ਕੋ ਅਰ ਦੂਸਰੇ ਕੇ ਅਧੀਨ ਰਹਿਨੇ ਕੋ ਨਿਖਲ ਜਨ ਬੁਰਾ ਜਾਨਤੇ ਹੈਂ ॥ ਬੰਧਨ ਸੇ ਛੂਟਨੇ ਕੋ ਅਰ ਸ੍ਵਤੰਤ੍ਰ ਹੋਨੇ ਕੋ ਸਭ ਲੋਕ ਭਲਾ ਮਾਨਤੇ ਹੈਂ, ਸੋ ਬੰਧਨ ਸੇ ਛੂਟਨਾ ਔ ਸੁਤੰਤ੍ਰ ਹੋਨਾ ਬਿਨਾ ਪ੍ਰਮੇਸ੍ਵਰ ਭਾਵਕੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਸੇ ਕਾਹੂ ਕੋ ਨਹੀਂ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੋਵੈ ॥ ਯਾਤੇ ਜਿਸ ਪੁਰਖ ਕੋ ਬੈਕੁੰਠ ਮੇਂ ਪਹੁਚ ਕਰ ਚਤੁਰਭੁਜ ਹੋਨੇ ਰੂਪ ਪ੍ਰਮੇਸ੍ਵਰ ਭਾਵਕੀ ਪ੍ਰਾਪਤੀ ਕੀ ਇੱਛਾ ਹੋਵੇ ਸੋ ਉਸਕੀ ਭਕਤੀ ਕਰੇ ਅਰ ਯਹ ਨਿਖਲ [illegible]ਰਖੋਂ ਕੋ ਉਚਿਤ ਹੈ ਪਰਮ ਅਮੋਲਕ ਮੁਕਤੀ ਕਾ ਦਰਵਾਜਾ ਰੂਪ ਮਨੁੱਖ ਜਨਮ ਪਾਇਕੇ [illegible] ਸਕੋ ਤੁੱਛ ਪਦਾਰਥੋਂ ਕੇ ਲਾਭ ਹੇਤ ਨ ਖੋਵੇ ॥ ਫੇਰ ਐਸਾ ਸਮਾ ਨਹੀ ਮਿਲੇਗਾ ॥ [illegible]ਤੀ ਕੇ ਉਪਾਯਨ ਸੇ ਭਗਤੀ ਕਰੇ ਉਪਾਯ ਪ੍ਰਮੇਸ੍ਵਰ ਕੀ ਭਕਤੀ ਕੇ ਭਕਤੀ ਗ੍ਰੰਥੋਂ [illegible]ਨੇਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਕਰ ਕਹੇ ਹੈਂ ॥ ਈਹਾਂ ਮੁੱਖ ਗ੍ਯਾਰਾਂ ਲਿਖੇਂਗੇ ॥ ਜਿਨਮੇਂ ਸਭ ਸੇ ਪਹਿਲਾ

१ उअंकार सतिगुरु प्रसादि।

अथ टीका सिरी रागु किरत पंडित तारा सिंह जी नरोत्तम

दोहरा

गुर वर दस के दुंद पद दाइ अदुंदा नंद।।
बंद बार बहु निज गुरं पद पकंज पुन बंद।।१।।
करहो सिरी गुरु ग्रंथ मै सिरी राग व्याष्यान।
~~वकता~~ निज बुधी सुध करन को मैटा हैत महान।।२।।
वकता गुरु गिरारथ के समा कैर सिंगार।।
~~तिनी लिषि बहु बिषम थल~~
बहु जग मै विष्यात है ग्यानी संग्यावार।।३।।
तिनों लिषा बहु विषम थल बिना लिषे निज नाम।।
सो संग्रह ले सभ हित रचो टीक अभिराम।।४।।

बंधन मैं पड़नै का अर दूसरे के अधीन रहिनै को निषाल जन बुरा जानते हैं।। बंधन से छूटने को और सुतंत्र होने को सभ लोक भला मानते है, सो बंधन से छूटना औं सुतंत्र होना बिना परमेस्वर भाव की प्रापती से काहू को नहीं प्रापत होवे। याते जिस पुरष को बैकुंठ में पहुच कर चतुरभुज होनै रूप परमेस्वर भाव की प्रापती की इच्छा होवे सो उसकी भक्ती करे अर यह निषाल पुरुषों को उचित है परम अमोलक मुकती का दरवाजा रूप ~~मनुष्य~~ मनुषा जनम पाइके सको तुछ पदारथों के लाभ हेत न षोवै। फेर ऐसा समा नहीं मिलेगा। मुक्ती के उपायन से भगती करे उपाय परमेस्वर की भगती के भक्ती ग्रंथों मे अनेक प्रकार कहे हैं। इहां मुष गयारां लिषेगे।। जिनमें सभ से पहिला

ਕੇ ॥ ਪੁਨਾ ਹੇ ਪਰਮੇਸ੍ਵਰ ਹਮ ਪ੍ਰਾਣੀਯੋਂ ਸੇ ਰਮਈਆ ਜਪਾਵੇ ॥ ੨ ॥ ਜਾ ਤਿਸ, ਜਬ ਹੇ ਈਸ ਆਪਕੋ ਰੁਚੇ ॥ ਤਬ ਇਨ ਜੀਵੋਂ ਕਾ ਲਗੇ ਆਪ ਮੇਂ ਪ੍ਰੇਮ ॥ ਪੁਨਾ ਤਬ ਭ੍ਰਮ ਸੇ ਹੂਆ ਪ੍ਰਮਾਦ ਇਨਕੇ ਮਨਸੇ ਦੂਰ ਹੋਵੇ ॥ ੩ ॥ ਖਸਮੈਂ ਮਿਲਣਾ, ਆਪਕਾ ਮੇਲ ਹੋਵੇ ॥ ੨ ॥ ਕੋਈ ਜਿਹ ਉਪਦੇਸ਼ ਮੇਂ ਲਗਾਵੇ ਹੈਂ ਜੋ ਕਾਹੂ ਨੇ ਕਬੀਰ ਜੀ ਸੇ [illegible] ਨਿਜ ਰੂਪ ਕੋ ਮੈਂ ਕੈਸੇ ਬੂਝੂੰ ॥ ਕੌਨ ਕੇ ਸੰਗ ਸੇ ਮਰਨਾ ਹੋਵੇ ॥ ਕੌਨਕੇ ਸੰਗ ਸੇ [illegible] ਨਾ ਹੋਵੇ ॥ ਕੈਸੇ ਪਰਮੇਸ੍ਵਰ ਮੇਂ ਪ੍ਰੇਮ ਲਗੇ ॥ ਕੈਸੇ ਹਰਿਕਾ ਮੇਲ ਹੋਵੇ ॥ ਕ੍ਰਿਪਾਕਰ ਇਨਕੇ ਉੱਤਰ ਕਹੀਏ ॥ ਸੁਨਕਰ ਕਬੀਰ ਕਹੇਂ ਹੇ ਪੂਛਨੇ ਵਾਲੇ ਤੈਨੇ ਜਗਤ ਮੇਂ ਐਸਾ ਭ੍ਰਮ ਲਾਇ ਰਖਾ ਹੈ ॥ ਜੈਸੇ ਮਾਤਾ ਨੇ ਪੁੱਤ੍ਰ ਕੇ ਮੋਹ ਸੇ ਭ੍ਰਮ ਲਾਇ ਰਖਾ ਹੈ ॥ ਯਾਂਤੇ ਤੂ ਅਪਨੇ ਸ੍ਵਰੂਪਕੋ ਕੈਸੇ ਬੂਝੈ, ਜਾਨੇ ॥ ਭਾਵ ਜਾਨਨਾ ਕਠਨ ਹੈ ॥ ਜਬ ਤੂੰ ਮੋਹਤ ਕਰ ਰਖਾ ਹੈ ਮਾਯਾ ਨੇ ॥ ੧ ॥ ਜੈਸੇ ਬਾਲਕ ਕੀ ਮਾਤਾ ਮੋਹਤ ਕਰ ਰੱਖੀ ਹੇ ਯਿਹ ਦ੍ਰਿਸ਼੍ਟਾਂਤ [illegible] ਕਰੀ ਜਾਨਨੀ ਇਤਿ, ਵਜਾਖਜਾ ਕਰੀ ਗਈ ਦੇਖੋ ॥ ੧ ॥ ਕਹੀ ਰੀਤਿ ਸੇ [illegible] ਆਬ ਜਾਨਨ ਕੀ ਇੱਛਾ ਵਾਲੇ ਕੋ ਪਹਿਲੇ ਮੇਂ ਸਾਧਨ ਕਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਮੇਂ ਦੂਸਰੇ ਪ੍ਰਸ਼ਨ ਕਾ ਉੱਤਰ ਕਹੇਂ ਕਹਿਤ ਇਤਿ, ਕਬੀਰ ਕਹੇਂ ਹੇ ਸ੍ਵਰੂਪ ਜਾਨਨੇ ਕੀ ਇੱਛਾ ਵਾਲੇ ਗਜਾਨ ਕਾ ਸਾਧਨ ਜਾਨਕੇ ਛੋਡ ਬਿਖਿਆ ਰਸ, ਤਜਾਗ ਕਰੋ ਬਿਖਿਯੋਂ ਕੇ ਆਨੰਦੋਂ ਕਾ ॥ ਇਨਕੇ ਸੰਗ ਸੇ ਮ੍ਰਿਤ ਮੀਨਾਦਿਕੋਂ ਵਤ ਇਸਕੋ ਕਰ ਮਰਨਾ ਹੋਵੇ ਹੈ ॥ ਦੋ ਕਾ ਉੱਤਰ ਦੇਕਰ ਤੀਸਰੇ ਕਾ ਉੱਤਰ ਦੇਵੇਂ ਰਾਮਈਆ ਇਤਿ, ਪਾਠਕੀ ਵਜਾਖਜਾ ਕਰੀ ਗਈ ॥ ਇਹ ਬਿਧ, ਇਸ ਰਾਮ ਜਪਨ ਪ੍ਰਕਾਰ ਸੇ ਸੰਸਾਰ ਸੇ ਤਰਨਾ ਹੋਗਾ ॥ ੨ ॥ ਚੌਥੇ ਕਾ ਉੱਤਰ ਕਹੇਂ ਜਾ ਤਿਸ ਇਤਿ, ਜਬ ਤਿਸ ਪਰਮੇਸ੍ਵਰ ਕੋ ਤਾਰਨਾ ਰੁਚੇ ਤਬ ਅਪਨੇ ਮੇਂ ਜੀਵ ਕਾ ਪ੍ਰੇਮ ਲਗਾਵੇ ॥ ਉਸ ਪ੍ਰੇਮ ਤੇ ਅੰਤਰ ਕਰਣ ਸੇ ਗਜਾਨ ਦ੍ਵਾਰਾ ਭ੍ਰਾਂਤੀ ਦੂਰ ਹੋਵੇ ਹੈ ਸੋਈ ਕਹੇ ਹੈਂ ਉਪਜੇ ਇਤਿ, ॥ ੩ ॥ ਇਤਿ, ਲਗੀ ਲਿਵਕੇ ਸੰਗ ਸੇ ਮੁਕਤ ਭਏ ਜਨੋਂ ਕਾ ਮਰਣ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇ ਚਾਰ ਕਾ ਉੱਤਰ ਦੇ ਪੰਚਮ ਕਾ ਦੇਵੇਂ ਹੁਕਮ ਇਤਿ, ਜਬ ਹੁਕਮ, ਆਗਜਾ ਦ੍ਵਾਰਾ ਹੋਵੇ ਹੈ ਪੂਰਾ ਪਰਮੇਸ੍ਵਰ ਕੇ ਸ੍ਵਰੂਪ ਕਾ ਗਜਾਨ ਤਬ ਹੋਤਾ ਹੈ ਖਸਮੈਂ, ਪਤਿ ਪਰਮੇਸ੍ਵਰ ਕਾ ਮੇਲ ॥ ਸ੍ਵਰੂਪ ਜਾਨੇ ਬਿਨਾਂ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇ ॥ ੧ ॥

ਇਤਿ ਸ੍ਰੀ ਮਤ ਗੁਲਾਬ ਸਿੰਘ ਚਰਣ ਸਿਖਜਤ ਤਾਰਾ ਹਰਿ ਨਰੋਤਮ ਕ੍ਰਿਤਾਯਾਂ ਗੁਰੂ ਭਾਵ ਦੀਪਕਾਯਾਂ ॥ ਸ੍ਰੀ ਰਾਗੇ ਭਗਤ ਬਾਣੀ ਟੀਕਾ ਸਮਾਪਤਾ ॥

टीका सिरी रागु रविदास।

को। पुना हे परमेश्वर हम प्राणीयों से रमईआ जपावे।१। जातिस जब
हे हंस आपको रुचे। तब इन जीवोंका लो आप मों प्रेम। पुना तब।
भ्रम से हुआ प्रमाद इन के मन से दूर होवे। ३। षसमैं मिलणा, आपका
मेल होवे।१। कोई यिह उपदेश मों लगावे हैं जो काहू ने कबीर जी से
निज रुप को मैं कैसे बूझूं। कौन के संग से मरना होवे। कौन के संग से तर
ना होवे। कैसे परमेस्वर मो प्रेम लगे। कैसे हरि का मेल होवे। क्रिपाकर
इन के उतर कहीए। सुनकर कबीर कहैं हे पूछने वाले तैंने जगत
मों ऐसा भ्रम लाइ रषा है। जैसे माता ने पु त्र को मोह से भ्रम लाइ रषा है। यांते
तूं अपने स्वरुप को कैसे बूझै, जानो भाव जानना कठन हे। जब तूं मोहत कर
रषा है माया ने। १। जैसे बालक की माता मोहत कर रषी हैयिह द्रिश्टांत
सपसट करे जननी इति, व्याष्या करी गई देषो। कही रीति से
जानने को कठिन कह कर अब जानन की इछा वाले को पहिले मों
साधन का उपदेस औ दूसरे प्रशन का उतर कहैं कहित इति, कबीर कहैं हे
स्वरुप जानने की इछा वाले ग्यान का साधन जानके छोड़ विषिआ, रस,
त्याग करो विषियों के आनंदों का। इन के संग से म्रिग मीनादिकों
वत निसचे कर मरना होवे है। दो का उतर देकर तीसरे का उतर देवें
रामईआ इति, पाठ की व्याष्या करी गई। इह बिध इस राम
जपन प्रकार से संसार से तरना होगा।२। चौथे का उतर कहैं जा तिस इति
जब तिस परमेश्वर को तारना रचे तब अपने में जीव का प्रेम लगावे। उस
प्रेम ते अंतह करण से ग्यान द्वारा भ्रांती दूर होवे है सोई कहे हैं उपजे
इति।३। इति, लगी लिवके संग से मुक्त भए जनों का मरणा नहीं
होवे चार का उतर दे पंचम का देवें हुकम इति, जब हुकम आग्या
द्वारा होवे हे पूरा परमेश्वर के स्वरुप का ग्यान तब होता हे षसमैं,
पति परमेश्वर का मेल। स्वरुप जाने बिना नहीं होव।१।

इतिस्री मत गुलाब सिंघ चरण सिष्यत तारा हरि नरोतम क्रितायां
गन्र ~ भाव दीपकायां। स्री ढोग भगत बाणी टीका समापता।

(घ)- टीका सिरी राग

कृति परिचय

नरोत्तम की टीका कारिता का सर्वोत्कृष्ट रुप टीका सिरी राग में मिलता है। इसका रचनाकाल समत १६४२ है। टीका सिरी राग में नरोत्तम ने एक महत्वपूर्ण भूमिका लिखी है। जिसमें टीका साहित्य सम्बन्धी प्रश्न और टीका विशेषताओं का विवरण दिया है।[१] टीका सिरी राग का आरम्भ भी अन्य कृतियों की तरह मंगलाचरण से किया है।

तारा सिंह नरोत्तम ने टीका सिरी राग की भूमिका में कई महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान किया है। व्याख्या के अन्तराल में पौराणिक सन्दर्भ, पूजा सम्बन्धी विश्वास, गुरु महिमा, विष्णु स्वरुप का प्रतिपादन, मूर्ति पूजा खण्डन, सिद्धियों की चर्चा, नाम की महिमा, परम परमात्मा का ज्ञान आदि प्रश्नों पर प्रश्नोत्तर शैली में विचार किया है।

नरोत्तम की व्याख्या शैली को देखने से नरोत्तम की बहुज्ञता, विचार निष्ठता, सप्राणता, वाणी मर्मज्ञता का रुप स्पष्ट हो जाएगा। व्याख्या से पूर्व नरोत्तम एक विस्तृत भूमिका भी दे जाते हैं।[२]

१- गुरु वर दस के दुंद पद दाइ अदुंदानंद
बंद बार बहु निज गुरं पद पकंज पुन बंद।।
करहीं स्री गुरु ग्रंथ मै सिरी राग व्याख्यान
निज बुधी सुध करन को भैटा हैत महान। २-
- टीका सिरी राग- पृ० १

२- अब मूल सबद का अरथ कहनै हैत तिसकी भूमका लिषै हैं:-
परम क्रिपालु स्री गुरु नानक महाराज नैं संसार पंक मै धसे जनों के उधार की इछा कर। पहिलै संषेप सै सपूरण वेदों का सार भक्ती सहित ग्यान जप बाणी में निरणै कीआ। अब उसी को पुना बिसतार सै निरणै करणं हैत आगै और बाणी रचना करी। जिस बाणी के आदि में गुरु ग्रंथ जी की बीड़ (प्रति) समैं गुरु अरजन देव जी नै सिरी राग की बाणी

तारा सिंह नरोत्तम ने टीका सिरी राग की बड़ी विस्तृत व्याख्या की है। इतने सुन्दर ढंग से एक एक शब्द के अर्थको खोल कर समझाने का प्रयत्न किया है कि गुरुवाणी का अर्थ समझने में कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। टीका

(पिछले पृष्ठ से)

लिषी है अर उस बाणीमें भी पहिले बहु सबद लिष्या है। जिसमें गुरु नानक जी की परीष्या करने हेत जगंनाथ जी के मंदर के समीप कलियुग ने परमेश्वर के नाम से बेमुष करने वालीआं नाना बिभूतियां का देना कहिआ है। अर गुरु नानक जी ने उन सम को तुछता दिषावने हेत परमेश्वर आगे प्रारथना करनी लिषी है। यह साषी में कथा है। अब इसका सार यह है जिस प्रकार षेती, बनज मंत्र, जंत्र, जादू टूना जोतस, चिकितसा, चोरी ठगी, बटवारी, चित्रकारी आदिक पुरषारथों से प्रापत हुए इस लोक के भोग नसर हो जावे हैं। तैसे तप यग्य दानादि यतनों से मिले परलोक के स्वरगादि भी नश्ट हो जावें हैं। याते उचित है। मुकती रुप परम पदारथ के लाभ हेत पुरषा चित में लोक परलोक के सम पदारथों को नासी जान तिन से वैराग्य धार के ईश्वर का नाम जापे। औ ईश्वर आगे प्रारथना करे जो है है परमेश्वर संसार में डोबने वाले पदारथों का हम को कबी मेल मत होवे जिनके मेल से जीव आप के नाम को भूल जावे है। यही बोधन करने हेत गुरु अरजन देव परम गुरु नानक साहिब जी से हूये कलियुग के संवाद का सबद पहले लिषा है।

शैली का एक उदाहरण देखें:-

टीका व्याख्या

एक ओंकार सतिगुर प्रसादि।
राग सिरी राग महला पहिला १ घर १।
मोतीत मंदर उसरहि रतनीत होहि जडाउ कसतूर कुंू
-- -------- चिति न आवै नाउ ४।

साषी मैं इस सबद की अैसी उथानका लिषी है। जब गुरु नानक देव जी दिगविजय करते हूये जगनाथ से आगे चले। उस समय इनके अवतार भाव कीपरीक्षा हेत कलियुग ने बड़ा भयंकर रुप धारिआ। उस को देष कर मरदाना बहुत डरिआ। गुरु जीने तिस को धीरज दीआ। जब गुरु जी के चित मैं भय ना देषा। तब कलियुग ने समीप आइकर गुरु जी को लोभ दिषाने हेत कहिआ। जेकर आप कहो तब तुमारे नेत्रों को अत्यंत प्रसंन करने वाले जडाऊ मंदर रच देवों। अर तुमारी नासिका को और तुचा को सुगंधि से और सीतलता से प्रसंन करने वाले अनेक सुगंध वाली वस्तुओं के लेप रच देवों। असे ही आगे जो सबद में लिषी है सो सभ सामग्री रचने हेत कही। उस समे तिसका बचन सुनकर गुरु नानक देव जी ने अंतरयामी निज रुप पास प्रारथना करने हेत यह सबद उचरिआ। इस सबद की पहिली दूजी तुकों की तरजमा टरंप साहिब ने असा कीआ है जो ईंट की जगह मोतीयों से मंदर बने अर हीरे आदि रतनों से उसमें जडाउ कीआ जावे। और कसतूरी केसर अगर चंदन के लेप से वहु लीपे जावें तो भी उनको देषकर मैं मत भूल जांवा। जो भूले हूये को तेरा नाम ना चित आवे। सो यह उसका तरजमा सहीनहीं। काहे ते यह केवल संभावना ही नहीं करी गई। जैसे गोल मोल सालग्राम मैं बिसनु की चार बाहों की भावना कर लीवे है। किंतु यह उन वसतुओ का अनुवाद है जो हमारे देस मैं प्रसिध बनाई जावे हैं। सो देस मे मोतीआं से मंदर कोई नहीं उसारे। अर कसतूरी आदिको के लेप से कोई लीपे नहीं। याते इसका अरथु वहु नहीं जो तरजमे मैं लिषा है। किंतु इसका मंदर उसके मोतीत रतनीत होहि जडाउ असा अंवय है। अर वैसा अंवय कर अरथ यह है। हे परमेश्वर जेकर मेरे निवास हेत नेत्रों

को

कौ अत्यंत प्रसंन करने वाले। ईंटों से औ संगमरमर आदि पथरों से। मंदर उसरे, महल बने अर तिन महलो मे। मोतीत रतनी होइ जडाउ, मोतीयों से अर मोतीयों से भिन। और हीरे पने गोमेद वैडूर्य आदि रतनों से सुवरणा के पाणी साथ जडाउ काम होवे। भाव निवास हेत ऐसे नेत्रों को प्रसंन करने वाले मंदर होवें और तिन मंदरों में सुगंधि से मेरी नासिका कों औ सीतल सपरस से मेरी तुचा कों प्रसन करने वाला। कसतूरि, कुंगू केसर अगर, सुगंध वाली अद नाम से प्रसिध लकड़ी। औ चंदनि, सुपेद एवं और मीअबरादि सुगंध वाली वसतुयों का। लीप नाम लेप जेकर आवे चाउ मेरी इछानुसार मिले। जिससे मेरी नासिका अर तुचा प्रसन होवे।

तब भी हे परमेश्वर जेता काल जीवे सुष से जीवे। `रिण कर बांधित षावे पीवे देह मरे किन लेना देना। ऐसा चार वाकन का मत चित मों थिर कर। मत मै पूरब कलियुग के कहे प्रमादी करने वाले जडाउ मंदरादिकों को देष भूला, प्रमादी होवों जिस प्रमाद कर युकत हूये को मुफ को तेरा नाम ना चित आवे। भाव पूरब कहे का यह है। हे परमेश्वर मेरी कों इन प्रमादी करने वाले पदारथों का संबंध हीना होवे। जिनके संबंध कर मं पूरब कहे महा अनरथ को प्रापति होवों। प्रमाद जनक पदारथों के संबंध कों महा अनरथ की कारणता गीता मै विसतार से लिषी है सोई दिषावे। पदारथों का संबंध होने से पुरषा के चित मै तिनके भोगने की कामना होवे है। चित मै कामना हुये पीछे तिस कामना के भंग करने वाले पै क्रोध होवे है। क्रोध से करतव्य अकरतव्य का विचार दूर होना रुप मोह होवे है। मोह से गुरु के अरु सासत्र के कहे अरथ की चित से सिम्रिती दूर होवे है। भाव तिनका कहिआ अरथ याद नहीं रहे। सिम्रिती दूर होने से ब्रिछादिकों वत पुरष की बुधी छिप जावे है। औ बुधी के छिपने से म्रितक के तुल्य हो जावे है। ऐसे गीता में विषयों के सम्बन्ध को अनरथ की कारणता कही है। सोई मत देष भूला वीसरे तेरा चित न आवे नाउ से गुरु जी ने सूचन करी है।

अंका पदारथों के संबंध से प्रमेश्वर का नाम बिसम्रित भयां तुमारी किआ हानी हावेगी। उतर। सिमरण बिना बांछित हरि की प्रापती ना होने से समीप ही गीता मो कह्या म्रितक तुल्य होना रुप दाह होवेगा। यह कहे। हरि इति। हरि बिन कहीये हरि इस नाम की सिम्रिती रुप साधन से बिना। इस नाम वाले नामी हरि की प्रापती हूये बिना यह जीउ, जीव-चेतना जलि बलिजाउ, अत्यंत दाह को प्रापत होवेगा। भाव यह पूरब कही रीति से म्रितक तुल्यता को प्रापत होवेगा। भिंन भिन रहे जल बल सबद दाह मात्र के बाचक है दोनों मिले अत्यंत दाह के वाचक है। याही ते अत्यंत दाह के भाव से पंजाब में जल बलिआ कथन देषीये हैं। प्रसन काहू अन थान को अपनी रष्या हेत षोज लेवेंगे यह सुन जैसे एक राजा के थान से भागे का दूसरा राजा रष्यक बन जावे हैं तैसे आन प्रमेश्वर होवे तब बहु भी एक से भागे जीव का रषक बन जावे। सो प्रेमेश्वर काहू के मत में दो नही सभी एक माने है यांते आनथान कोई रष्या करने वाला नहीं यह सुन के कहै। मैं इति, गुरु नानक जी कहे जब मैं अपने गुरु बिसनु से जीवों की रक्षा हेत कोई आनथान पूछा। तब गुरु ने उतर दीआं मेरे बिना दूसरा परमेश्वर नहीं याते जीवों की रषिआ हेत आन ठिकाना कोई नहीं। जहां जाय कर जीव अत्यंत दाह से बचे। जो बचेगा सो मेरे ही आस्रित होकर बचेगा। ईहां यह गाथा है। जहां गुरु नानक जीकी भगनी बिवाही थी। सुलतान पुर नगर में उहां जब गुरु जी अठाईस बरस की अवसथा में एक दिन नदी में सनान करने हेत गए। उसी समै परमेश्वर का भेजा हूआ वरण जलों का देवता गुरु नानक जी को अपने साथ षीर सागर में ले गया। जैसे सरजू के मारग से रामचंद्र जी को ब्रह्मादि देवता बैकुंठ मे ले गये थे। उस समय गुरु नानक जी ने सेष साई अपने अवतारी बिसनु के समीप जाय कर पहले प्रारथना करी। हे भगवान किस निमित मेरे को याद कीआ है। सुन कर बिसनु प्रमेश्वर ने कह्या। तुमारा स्वरुप मैंने लोगन के भक्ती सहित ग्यान का उपदेस देने हेत कीआ हैं। सोई कारय तुम जाय के जहां तहां बिचर के करो। इसमें देर ना करो उस समै गुरु जी ने पुना प्रारथना करी है भगवन उपदेस देने की मरयादा सदा परंपरा सप्रंदाय से है। याते जैसे पूरबकाल में आपने प्रथम ब्रह्मा को

वेद विद्या का उपदेस कीआ। ब्रह्मा ने नारद को कीआ। नारद ने व्यास को कीआ। व्यास ने अनेक पुराण और इतिहास रच के जगत को कीआ। तैसे मै भी जिस उपदेस को आगे बाणी रच के अर संप्रदाय चलाय के लोगोंमें प्रब्रित करो सो उपदेस आप करीये। एसी प्रारथना स्रवण कर सरबग बिसनु परमातमा ने सुगम रीति से लोगों को उपदेस करावन हेत भाषा में एक ओंकार सतिनाम से ले गुरु प्रसादि प्रयंत उपदेस कीआ। अर कलिजुग में कीरतन भगती की प्रधानता समस्ट करने हेत आग्या दई इस मंत्र को जप। स्रवण कर गुरु जी ने उसके जप का आरंभ कीआ। अर संपूरण लोको के समें षीने हेत अर परमेश्वर बिना आन देवन की पूजा हटावन हेत पुना प्रस्न कीआ। हे भगवान जिन लोगन के चित में संसय है आन देवन को पूजो वा प्रमेश्वर को पूजो। पुना जिन लोगन को उलटी भावना हो रही हैं। प्रमेश्वर हमारी भगती से कब प्रसंन हो सके हें। इसते आन देवन को ही पूजना चाहीये। तिन के हेत किआ आग्या है उन पुरषों को भी कबी उन आन थानों के पूजने से मुकती रुप रक्षा हो जोवेगी वा नहीं होवेगी। सुनकर प्रमेश्वर ने कहिआ किसे पुरष की काहू से नही रोषआ होवेगी। रक्षा हेत मेरे बिना आन थान कोई नहीं। जो आन को रक्षा करने वाला समझते हे वह भूले हूये हे कबी तिन को उतम गति को प्रापती नहीं होवेगी। इसी से गीतादिकों में मेरा कथन है जो पुरष आन भूतादिकोंको सेवे सो उसी गति को पावेंगे। मेरे स्वरुप की प्रापती उनको कबी ना होवेगी। अर में भी साष्यात आप ही रक्षा करने वाला हों। कोई पुरष मेरी कास्ट पाषाणादिको की मूरती से रष्या चाहे। सो भी चित्रकारी के सिपाही चोरों से घर की रक्षा नहीं कर सके। तैसी मेरी काश्ट पाषाणादिकों की मूरतीभी काहूको सु भगती नहीं दे सके। मेरी व्यकती की सिमित्री तो काहू रीति से जिसके चित में प्रेम है करवा सके हैं। और किसी रीति का लाभ नहींदे सके। याते निसचे करो साष्यात मेरे बिना कोई थान नही जहां जीव अपणी रक्षा पावे। जब एता उपदेस हरी ने कीआ तिस को सुन के पीछे से गुरु जी कहें। मैंने भी गुर का कह्या वाक्य मन में विचार के उस समे देषा जो सरब

सक्तीआं वाले व्यापक हरि बिना निसचै कर जीवों की रक्षा हरै हैत आन थान कोई नहीं जहां से जीव अपनी रक्षा पावे। जो और शिव ब्रह्मादि थान रक्षा हेत मान होवे हैं। वहु आपही अपणी रक्षा हेत हरि की शरणा जावैहै। याते आन की रक्षा किआ कर सकैंगे भाव कुछ नहीं करेंगे। शिवादिकों का अपणी रक्षा हेत विशनु के समीप जाणा पुराणों में प्रसिध है। अहां से सुनलेना। असा चित में विचार कर देषा के हरि गुरु के कहे सति नामादि मंत्र का जप करते हुए गुरु जी तीसरे रोज सुलतानपुर की नदी से बाहर आए। आइ कर उस दिन से समग्र लोगन कउ उपदेश देते भए। कोई ईश्वर को अर समैं समैं तिसके अवतारों को ना माननै वाले नास्तिक पुरषा गुरु जी के हरि के समीप जाणै में अर उपदेस लेने में अर लेकर देने में आसंका। समझैगे सो समझै तिन से प्रयोजन नहीं। आसतकों से प्रयोजन है सो सभी प्रेम से इस बारता को चित से मानैंगे। काहे ते निज मत के आसतिक अरजन क्रिशन जीका जाना भागवत दसम दुआरा सभी जानते हैं अर तिन प्रति बिशनु भगवान का उपदेश होना भी सभी जानते हैं। तैसे गुरु जी के जाने में ओ उपदेश लैने में भी निसचै है वहु परष कबी आसकों नहीं करेंगे। करेंगे तब उनका जाना भी अपने मुष से ही वैसा जानैंगे। सेषा रही महमदी अर ईसाई वोह भी इस वारता में आसंका नहीं कर सकैं। काहे ते उन दोनो के मतो में ईसा का अर मुहंमद का सिवाइ परमेश्वर से और उपदेस दाता नहीं मनि मानिआ। अर उपदेस भी उनो में महंमद ने परमेश्वर के धाम में जाइ कर लीआ है। अर ईसा को गरभ में हूया लिषा है। अर उपदेस लेकर ईसा तो कई दिन ईहां उपदेस दे सूली पर चढ़ भगवान के धाम में पैदल गया लिषा है। परंतु कोटे घोड़े पे सवार हो कर गया लिखा है। जब गुरु नानक जी ने जाने में उनको आसंका होगी तब वहु भी सवारों के अर पैदलो के जाने का ठिकाना करें। जब समकी यह दशा है तब गुरु ग्रंथ साहिब का तरजमा करने वाला बन कर। मिले गुरु साचे जिन रच राचे। इत्यादि गुरु के बचनों मे कहे परमेश्वर गुरु को भूलकर। कबीर को गुरु लिषने वाले अंगरेज़ टरंप की बुधी पै भी मुझ को अत्यंत अफसोस है। जो उसने किआ अपणी पोथी में लिषा है। अर गुरु लिषने मै हैतु यह दीआ है जो गुरु समझ के ही गुरु मुंभ ग्रंथ साहिब जी में उसकी बाणी

चडाई गई है। अर मदरा मद मत ने यह चित में चितंन तनक नहीं कीआ जो और भगतों की कौन नाते से चडाई गई। औरो का नाता कोई नहीं लिषा। याते कबीर का लिषने में भी धोषा पाया। अर यही वारता बाबू सिव प्रसाद ने भी अपनी इतिहास तिमिर नासक पोथी के पहिले षंड के तिहत्र्वें पासे पै लिषी है। सो उसने वी वासतव से पोथी के पहिले षंड के ति का नाम तिमिर प्रकासक धरावने की सामग्री बनाई। किउंकि असे सबद बेधीतीर मारने वाले जो परबत में निसाना बेधन से भी भूल गए। जिनकी संप्रदाय में आज लाषों बड़े-बड़े पढ़े गुनी बिबेकी पुरष हे उनमें काहू से ऐती बात पूछ के ना लिषी जो उनके गुरु कौन हें। परंतु सच कहावत उही है 'कवि जन किआ। नहि कहत है किआ नहि पावत काक।' अर सुनने यह भी आया है जो एक मीआं यकाउला ने भी अपने इतिहास मे असा ही लिषा है सो उसके लिषने का भाव तो हम को यहीजान पड़े है। जो उसने मुसलमान जान के कबीर की बडाई लिषी। परंतु असा लिषना उसको भी (झूठा लिषने वाला था) एती ही इजत दिवावेगा। और जो कोई कबीर बंसी वा कबीर पंथी इस बात को कहे। तब उनका कहना केवल मिहरवान की साषी में लिषी। 'कबीर गुरु नानक जी का सेवक हुआ।' इस बात के उतर वासते है। तथा और साषी में लिषे यहे सिषा सिषाणी लोई कबीर के अवतार हे। इस वारता के उतर देने हेत हे। काहे ते लोक में प्रसिध कहावत हे। 'ईट उठाते को पथर मारो।' इस कहावत को सचा करन वासते कहते हैं। नहीं ते गुरु ग्रंथ साहिब के बचनों उर देषे उनका कहना सरबथा मिथ्या है। जैसे पीछे कहे कबीर लोकों का। वासतव से देषों तो इन सभु लोगों के दोस उसी के दोश उसी के दोष के संगी हैं। जिसने साषी बिगाड़ी। रहो यह विचार प्रकरण में इसी बारता का और विचार सुनो। प्रशन। गुरु नानक जी ने हरी के समीप जाय कर प्रश्न कीआ, हरी ने उतर दीआ, अर हरि ही गुरु जी के गुरु हे यह कैसे जाणिआ उतर। जाणा पीछे कही रीति से साषी से निसचे कीआ? अर कोई गुरु नानक जी का गुरु है और गुरु के गुरु का होणा उनके 'बलिहारी गुरु आपणे दिउहाड़ी सदवार।' इत्यादि और वाक्यन से निसचे कीआ। अर प्रश्नोतर करना मे आपणा गुर पूछि देषिआ' इस

इस बचन से जाणिआ अर बहु कौण गुरु है जिससे प्रसनोतर हुआ।
ऐसी इछा भयां इनको और बचनों से गुरु बिसनु है यह निसचै कीआ सोई
दिषावै है। मारु महला १। हरिगुरु मूरति एका वरतै नानक हरिगुरु
माइआ। बसंत महला। १। पारस भेंट भए से पारस नानक हरि गुरु संगथीए।
बसंत महला १। बिना हरि गुरु प्रीतम जनम बाट इति आदि वाक्यन
में गुरु नानक जीनें बिसनु ही अपना गुरु दिषाइआ है। कोई और
नहीं दिषाइआ यातै अन्य गुरु का नाम ना लैनै से और बिसनु का नाम
लैनै से और साषी में कहीं रीति से बिसनु का उपदेस लैनै से वही गुरु है।
यह हमनै गुरु ग्रंथ साहिब के बचनों में यथारथ निस्चै कीआ। यद्यपि साषी
में वरण भी गुरु लिषिआ है। याही तै गुरु दरीआउ नाम से उस गुरु की
प्रसिधी है अर गुरु की प्रगट देह रुप ग्रंथ गुरु जी को भोग लगावनै समै
उसको भोग लावै हैं। यातै साषी में बरण गुरु लिषनै से अर भोग
लावनै समै गुरु दरीआउ को भोग लावी कहनै से वरण ही गुरु नानक
जी का गुरु सिध होवै है। यातै जो गुरु नानक जी नै गुरु को बिसन
रुप जान के सिष सेवैं। ऐसे गुरु मैं बिसनु भावना करावनै हेत अपनी
बाणी में गुरु को हरि स्वरुपता के बोधक बचन कहे हैं। तिन बचनो
में तुमनै बिसनू ही गुरु नानक जी के गुरु है। यह कैसे निसचै कर लीआ।
यह असंका होवै है। तथापि गुरु ग्रंथ साहिब में बिसनु भावना करावनै हेत
अपनी बाणी में गुरु को हरि स्वरुपता के बोधक बचनों को गुरु के हरि
स्वरुप जान के सिष सेवै। ऐसे गुरु की परमेश्वर रुप से उसतति करनै वाले
तो तब मानै जब बरण को गुरु कहनै वाला बचन कोई गुरु ग्रंथ साहिब जी
मै लिख्या होवै सो गुरु ग्रथ साहिब में कोई बचन नहीं। साषी में जो
लिषा है तिनका अरथ और है। काहे तै बिसनु सहस्र नाम में बरणै वरणै
क्रिष्णा ऐसे बरण बिसनु का नाम लिख्या है। यातै साषी में भी
बरण नाम से बिसनु लैना। यह भी इस रीति से निरबाह उस साषी
के बचन को प्रमाण मानके है। वासतव से बहु साषी का बचन हंदालियों की
बनावट है यातै प्रमाण नहीं। इसतै उस बचन को सही मानके गुरु ग्रंथ
साहिब के बचनों का अरथ और नहीं करना किंतु वह बचन बिसनु को ही
मुख्य गुरु कहै है यही सार है। गुरु दरीआउ नाम से गुरु ग्रंथ साहिब में

बरणा गुरु की प्रसिधी कही सो बनै नहीं। काहे तै गुरु दरीआउ नाम की प्रसिधी दुरमति रुप मैल को हरन वाला उपदैस रुप जल दैनै वाले गुरु मैं है बरणा मैं नहीं। यही अरथ गुरु बचनो मैं स्पष्ट है गुरु दरीआउ सदा जल निरमल मिलिआ दुरमति मैल हरै। सतिगुर पाइऐ पूरा नावणा पसू परे तहु देव करै। इस बचन सै गुरु दरीआउ पद का अरथ बरणा नहीं। उपदैस करणै वाले गुरमात्र है। याते गुरु नानक जी के बचनों मैं उस नाम से अपने से पहिले पहिले गुरु हैं। बरणा बचन मैं नहीं। बरणा का नाम गुर दरीआउ प्रेमी लोगों नै आपणी समभ से जान रखिआ है। वासतव तै कही रीति से बहु बरणा का नाम नहीं। अर गुर दरीआउ नाम से जो बरणा को भोग लगावे है। तिसमैं यिह निमित है। जब प्रथम गुरु बिसनु के समीप गए उस समैं बरणा गुरु जी के साथ गया। अर दौलतखान लोदी पठान के। बरणा का दरशन कराया। उस समैं भी बरुणा नै आयकर गुरु जीके चरणों मैं भैटा रखी। अर अत्यंत प्रेम से मिलिआ। यह ब्रितांत ग्यान ~~रल~~ रत्नावली बार की तेरवीं पौड़ी की छठी तुक मैं गुरदास जी नै अर तिस की टीका मैं मनी सिघं जी नै स्पष्ट लिख्या है। अैसे दो थानों मैं गुरु नानक जी को बरणा मिलिआ है। अर एक समैं गुरु अंगद गुरु अमर दास दोनों गुरों को ब्यासा के तीर गोइंदवाल मैं बरणा बड़े उतम मोती भैटा लैकर ~~लिखिआ~~ मिलिआ। उस दिन से उनहुने आग्या दई। जो यह गुरु नानक जी का परम प्रेमी है अर उनके यानी गुरों का भी पूजन करने वाला है। याते गुरो को भोग लाय और सभ सैवकों से पहले गुरु जी के प्रसादि का इसको भी भोग लगाया करो उस समय से ले कड़ाह प्रसाद तिआर कर तेरे सिखों नै कड़ाह प्रसाद कराया है गुरों को भोग लो। अैसे अरदास कर गुरु जी को भोग लगाय कर पीछे से बरन को भोग लगावे है। जैसे जब से गुरु दसम जी नै पंज पिआरिउं को अपना रुप कहिआ उस दिन से उनके भोग लगावे हैं। याते कही रीति से पीछे ते भोग लगावने से बरणा गुरु नानक जी का गुरु नहीं। अर गुरु दरीआउ बरणा का नाम नहीं। निरमल जल दाते नदी समुद्र बत निरमल उपदैस दैनै वाले गुरु का नाम है सो गुरु नानक जी को उपदैस दैनै वाला बिसनु है।

मन्न याते गुरु बिसनु है। तिस बिसनु गुरु के सरुप को प्रतिपादन करने वाला गुरु ग्रंथ साहिब है। याते गुरु ग्रंथ साहिब जी को गुरु अरजन साहिब जी ने गुरु की देह कहया। और काहू स्थान को वा मूरती को देह नहीं कहया। अर देह मानकर ही अम्रित सर जी के दरबार में गुरु ग्रंथ साहिब जी को पूजन हेत असथापन कीआ। अर बिसनु गुरु की देह मान के ही गुरु ग्रंथ साहिब जी का सरब असथानों में षोड़स प्रकारों से पूजन होवे है। मत अर गुरु अरजन साहिब जी के उपदेस का ही आगे बहु विसतार है जो सरबत्र दसम गुरु जी के सिष सदा आरती समे पड़ते हैं 'आग्या भई अकाल की तबी चिलायो पंथ। सभ सिषन को हुकम है गुरु मानीयो ग्रंथ। गुरु ग्रंथ को मानीयो प्रगट गुरु कीदेह। जो मो को मिलियो चहे षोज सबद मो लेहु।' ऐसे ऐसे गुरु अरजन जी की आगिआ के बिसतारों से ही इस मत में गुरों कन के जनमादि असथानों में भी मुष कर पूजा गुरु ग्रंथ साहिब की करे है। और काहू कीनहीं करे। अर भोग गुरु ग्रंथ साहिब जी को ही लगावे है। दुत पूजन के बड़े द्वेषी यवन लोक भी कुरान अंजीलकिलन किताबों की मुकदस किताब नाम रष पूजा करते हैं। बीड़ि आई का नाम रषना भी एक प्रकार की पूजा है। मूरती की पूजा से पुसतक पूजन में ऐता विसेष है। मूरती पुरषों की सुभासुभ मारगों का प्रब्रित निब्रित होने हेत साषिआत उपदेस नहीं करे पुसतक उपदेस करे है। इससे इसका पूजना सार है। किंच अपने अपने मत की चाल है। जिस मत के बड़े पुरष ने जैसे मारग का उपदेस कीआ। उसकी उसी में चलना उचित है ऐती परीषिआ अवश्य कर लेनी चाहीए बीच में काहू और पुरष ने बड़े के नाम से आप कोई नई बारता न लिष दई होवे। मत प्रविरतक के उपदेस से ही मुष से महमंदी लोक बुत पूजन को निंदा करते हुये भी। मका बुत की उर मुष कर निमाज पड़ने से सदा उसकी पूजा करते हैं एवं ईसाई गिरजा मंदरों में मसतक झुकावे हैं। तैसे मूरती के उपदेस वाले मूरती पूजे हैं। गुरु ग्रंथ के उपदेस वाले गुरु ग्रंथ पूजे हैं। रहो यह विचार। कही रीति से गुरु जी के गुरु का विचार सुन के। आगे किंचत अरथ की रीति का भी विचार सुनो प्रकरण मे चलिआ बिचार इस बिचार से पीछे लिषेंगे। गुरु ग्रंथ में साहिब में गुरु जी ने अपने सबदो में 'रहाउ लिषे है। और बाणी करता लोग

अपनी बाणी में इन रहाउन के थान में टेकें लिषते हैं। गायन में इसका प्रयोजन पड़ता है। साधारण पाठ पढ़ने में इनका बिसेष प्रयोजन कुछ नहीं पड़े। अरथ में कोई माने है सो दिषावे हैं। सब सबदो मे बहुधा दो तुकी से परे पहला एक का अंक होवे है उनसे परे दो तुक और लिषा के उनके परे दूजा एक का अंक होवे है। तासे परे रहाउ लिषिआ होवे है। दूजा एकड़ा रहाउ के पहले होवे हैं। इसी निमित्त से पढ़ने वाले लोक सुनने वाले पुरषो की रहाउ सबद में एक है वा बहुते है। ऐसी षबर देने वासते एक राहउ ऐसे पाठ पड़ते हैं। जैसे षबर देने हेत सुषमनि में अठ दो सलोक वा अठ तिन सलोक इत्यादि पाठ पड़ते हैं। एक ग्यानी लोक कहते हैं। गुरु जी ने जो अरथ बिसतार से सारे सबद में कहणा होवे। संषेप कर सारे अरथ का मूल इन रहाउ से पहिली तुको में लिष देवे हैं। याते पहिले एक अंक वाली दो तुकों का अरथ कहिणा छोड़के। आगे एक अंक वाली तुको का अरथ कहिकर पीछे से सबद के आदि की तुकों का अर रहाउ के परे की तुकों का अरथ करो। तब अरथ सुंदर होवेगा। अर मूल को तुकों से सारे सबद के अरथ का विरोध नहीं होवेगा। ऐसी ही गुरु ग्रंथ साहिब जी की बाणी में रहाउ बाले सबदों के अरथों में संकेत की कुंजी है। याते इस कुंजी से अरथों का ताला षोलना चाहीये। इस बिना अरथ भला नहीं होवेगा अर इस पीछे कही वारता को सबके चित में थिर करने हेत बहु लोक कई सबदों में स्पष्ट बहु रीति दिषावे हैं। जैसे गउड़ी महल पंज की पाचवी अस्टपदी में पाठ है। जो इस मारे सोई सूरा। जो इस मारे सोई पूरा। जो इस मारे तिसहि बड़िआई जो इस मारे तिसका दुष जाई। ऐसा कोई जि दुबिधा मार गवावे। इसहि मार राज जोग कमावै। रहाउ। जो इस मारे तिस कउ भउ नाहि। जो इसमारे सो नाम समाहि इत्यादि लिषते अंत को। गुरु द्रबिका जाकी है मारी। कहु नानक सो ब्रह्म बिचारी। ऐसे लिषा है। इसमें रहाउ से पूरबली दो तुकां में जो दुविधा का मारन रूप अरथ कहिआ है। उसी के मारन का महातम पहिले पीछे सारे सबद में कहने से सारे सबद में वही अरथ हैं। याते मूल पड़ के अरथ करना बहुत सुभ है। ऐव सोरठ मे कबीर का सबद है। बुत पूज हिंदू मूए तुरक मूए सिर नाई। उहले जारे उहले गाड़े तेरी गति दुहू न पाई। मन रे संसार अंध गहेरा। चहु दिस पसरिउ है जम जबेरा।१।

रहाउ। कबित पड़े पड़ कबिता मुए कपड़ केदारै जाई। जटा धार धार जोगी मुए तेरी गत न इनहु न पाई। इस सबद में भी गति दुहु न पाई सुन के ससा रहाउ वालीतुकों से दूर होवे है। जो तेरी पाठ से मन की गति कही है। याते पहले मूल पड़ने से ही अरथ सम्यक होवे है। ऐसे ही सरब सबदों में है। अर गुरु की निषाल बाणी का अरथ दसा, (२)- मनन, (३)- उपदेस, (३)- सुघबैनती, (४)- थिती बैनती, (५)- प्रश्नोतर, (६)- आसीरबाद। इन सात अंगों मै है बहु कहते हैं। दसा अपने हाल का नाम है जैसे मीता ऐसे हरिजीउ पाए। अपने मन कउ उपदेस करने का नाम मनन है जैसे मन रे गहिन गुरु उपदेस।२। दूसरे के उपदेस देन का नाम उपदेस है। जैसे काहे के रे बन षोजन जाई।३। प्रमेश्वर से मांगना इसका नाम सुघ बैनती है जैसे देहु दरस मन रंग लगा। अपणे को हरिस्वरूप जान जो इस भाव की चित मै थिती हेत प्रारथना करनी तिसका नाम थिती बैनती है। जैसे आतमचीन ब्रह्मसुष पाइआ।५। पूछने दसने का नाम प्रस्नोत्तर है। जैसे सिघ गोसट मै कह बैसहु कह रहीए बाले का उतर घट घट बैस निरतर रहीये हैं। ना कुछ अपना हाल कहना ना देना ना मांगना केवल प्रमेश्वर के गुण कहि के ताको ज मनावनी इसका नाम आसीर बाद है। जैसे जै जैकार जपुहु जगदीस। इन सातों अंगों में निषाल सबदों के अरथों को बहु ग्यानी लोक कहते हैं परंतु यह कहना उनका सम्यक नहीं। काहे ते दादू आदि कों के ग्रंथों में गुरदेव को अंगु बैराग को अंग, जोग को अंग ऐसे अनेक अंग देषाने में आवे हैं। अर जो अरथ उन अंगों में लिषा है सो सम अरथ गुरु की बाणी मै निरणे कीये हैं। याते इन सात अंगों में लिषा है सो सम अरथ गुरु की बाणी में निरणे किये हैं। याते इन सात अंगों मै सम का निरबाहण होने से सात अंगों में। सम बाणी का अरथ है यह कहिणा उनका बिना विचारे है। रहाउ के समी पकी तुकां पाइके अरथ करनां यह कहना। कुछ सार है। वासतव ते सबद जन्य गिआन में चार सहाई होवे है। एक अकांषा दूसरी योग्यता, तीसरी संनिधी चौथा तातपरय। इन चारों के मध्य में रहा उसे पहिली पहली तुकां केवल अकाष्या पूरन हेत होवे है। याते पहिली पहिली[2] तुकां पढते जहां आकाष्या रहे रहाउ से पहिली पड़ने से बहु पूरी हो जावे है। ऐसा ही उन तुकों से मूलपना है और यही वारता पीछे कही गउड़ी की असटपदी में

सपसट है। काहे जो इस मारे सोई सूरा पड़ते इछा रहे है। जो गुरु किस वसतु के मारन वाले को सूरबीर कहे है। जब ~~उहमर~~ रहाउ के समीप की तुक में असा कोइ जु दुबिधा मार गवावें। पाठ से दुबिधा जान लई तब वह इछा पूरी हो जावे है। सुनने वाला जान लेवे है। गुरु जी दुबिधा के मारने वाले को कहे हैं। याने सीधी रीति से अरथ करने में भी वही लाभ है। जो पहिले रहाउ वाली तुकां पड़के पीछे से उनके आदि की अर रहाउ के अंत की पड़ने मे सल लाभ है। ऐता बिसेषा है थोड़ी समझ वाले को वैसे पड़ने मे अरथ बोध सीघ्र होवे है। सो रसता लिषा गया है। याते थोड़ी समझ वाले वैसे अरथ कर लेवें। अर सात अंगों में कर लेवें। हमारा यह सिधांत है जहां जैसा सम्यक होवे तहां तैसे व्याष्यान कीआ जावेगा। अब प्रकरण में चले है।

पुना गुरु जी को कलिजुग ने कहिआ जेकर आप कहो मै आप वासते मंदरों के समीप की भूमी भी जडाउ कर देवें। अर उन मदरों में बिछाने योग्य पलंघादिक भी वैसे ही कर देवें। अर उन मदरों में बैठ के आपके कानों को सुष देने वाले गीतों को गायन करने वालीआं मोहनीआं का नाच कर देवों। तिस को सुन कर कलयुग की कही वारता हम को मत प्रापत होवे असी प्रारथना हेत गुर जी कहे धरती इति, धरतीत, जडाउ मदरों के बाहर अंदर की भूमी जेकर हीरे, स्वेत बरण के हीरे नाम से प्रसिध रतनों से अर लाल कहीये पदम राग नाम बल वाले रतनों से। तथा मोती, माणक, नील मणी, मरकत, गुलमैद, पुषराज, वैडूरयादि रतनों से जडाउ करी हूई होवे। तथा ऐसी जड़ाउ भूमी में सैन बैठन हेत बिछाये पलंघ, प्रयंक भी लाल जडाउ, पूरब कहे लालादि रतनों से जडाउ कीये हुये होवे और जडाउ सदन भूमी पलंघादिक भी न्रित्य गीतादिक सामग्री बिना नहीं सोभा पावे। याते न्रित्यादि सामग्री हेत जेकर वैसे मंदरों मे मोहणी स्वरग की अपसरा मे मुष प्रधान जो मणी, रतन रुप मैनका, मंजु, घोषादि अपसरा तहां सोभा पाइ रहे। होवे। पुना वहु भी वैसे थान में चुपचाप ना बैठीआं होवे। किंतु करे रंग पसाउ, अदभुत नित गीतों से गंग आनंद का पसाउ, पसारा करतीआ होवे। भाव असचरय रुप नित गीतों से स्रोता जनों को आनंद का बिसतार करती होवे असी प्रमाद करने वाली सामग्री को देष कर भी हे प्रमेश्वर में मन भूलों

यह पुना प्रारथना करे मत इति, अरथ इस तुक पूरब लिषा आए हैं सोई जान लैना। पीछे कहे रतनों में हीरा स्वेत बरण का होवै है। मोती स्वेत रंग का होता है। माणक लाल रंग का होता है। नीलमणि नीले रंग की होवै है। जिसको नीलक कहे है। मरकत हरे रंग का होवै है जिसका नाम पनां प्रसिध है। गुलमेद सुपेद पीले रंग वाला होवै है। पुषराज कपूरी रंग का होवै है जिसका नाम नग है। बेडूरय हरे पीले दोनों रंग वाला नग है। पदम राग निरमल चीकना चमतकारी दीवे सब जीत वाला बड़ा बोफल मध्य देस में चमक वाला अती लाल रंग वाला होवै है। रतन यह सम का एक नाम है। वासतव से अपनी अपनी जाति में जो उतम वसतु होवै उसका नाम रतन है। इसी लीये समुद्र से निकसे हसती ~~कोड~~ घोड़े रतन कहे जावे हैं। रतन का ही दूजा नाम मणि है। यति यह भी सांफा नाम है। जब बड़े बड़े तपों यगों से प्रापत होने वाले दो पोंडीयों में कहे ऐस्वश्य की गुरु जी ने चाह ना करी तब कलियुग ने योग के ऐश्वरय को बड़ा जानके कह्या। जेकर आप कहो तब मैं आपको सिधीआ देवो। जिनको देषा बड़ा सिघ जानके सम लोग आपका भाउ रषो। तिस को सुन के गुरु कहे है प्रमेश्वर तपों यगों के ऐश्वरय बत यह भी नाम से भुलावने वाला रिधीआं सिधीआं रुप ऐश्वरय हम को मत प्रापत होवै यह कई सिध इति, जेकर मैं सिध होवां, अणिमा, महिमा, गरमा, लघिमा, प्रापति, प्रकाम, बसिता, ईसत। इन आठ सिधीआं वाला होवां। और सिधीआं वाला होकर जगत में अपनी प्रसिधी वासते सिधि लाई, लोकों में, सिधीआं दिखावों। जो रिधि भाषा आउ, मन बांधित अंन धन को भी अपनी आग्या से जगत मे मंगाइ लवो। भाव प्रकाम सिधी के प्रताप से निधीआं और रिधीआं भी मेरी आगिआ में होवै। और अणिमा सिधी के प्रताप से मै कही गुपत होइ बैठों। और महिमा सिधी के प्रताप से कही वामन अवतार वत अती सरीर बढाकर प्रगट होइ बैठो। तथा ईसता सिधी के प्रताप से भी लोको मे क्रीड़िउ वत दौड़ावों और प्रापती सिधि के प्रताप से मन बांछित भोगों को प्रापत होवों और बसिता सिधी के प्रताप से जिस ~~कम~~ वसतू की इछा होवै ततकाल से उसको पूरण कर लेवों। और गरमा सिधी के प्रताप से मै लंका मे अंगद बत अति बोफल सरीर कर बैठो। और लघिमा सिधी के प्रभाव से मैं लका के मारग

मै सु सरिमा के मुषा मों जाने काल मै हनूमान का अति देह को लघु कर लेवों। जिन मेरी ऐसी सिधीओं को देषकर जगत के लोक मेरे सरीर मै। राषा भाउ, बड़ा प्रेम रषा जो बड़ा सिध है। सो यद्यपि है भगवान यह योग जन्म ऐश्वरय बड़ा आसचरय है तो भीआपके नाम चिंतन से बेमुषा करने वाला है। याते मैं इसको भी देषा के मत भूलो। सोई कहे। मत इति, तुक का अरथ पूरब पहिली पौड़ी मैं लिषा आए हैं। पूरब आदि की दो पौड़ीयों मैं बड़े धनाढ्य कर अर मंड लेश्वर राजा लोकन का सांझा ऐश्वरय कहिआ। काहे ते जडाऊ मंदरादि सामग्री उन लोगन के भी होवे है। परंतु मनुष्य लोक का अवधि रूप सुषा उनको नहीं होवे। मनुष्य लोक का अवधि रूप सुषा उन लोगों पै आगिआ करने वाले चक्र वरती राजा को होवे है। यह समझ के कलियुग ने गुर जी को कहिआ। जेकर तुम को सैना रच देवों। जिस के बल से तुम सभ को जैकर सिघांसन पै बैठ के अपनी आग्या से सभ पदारथों का लाभ पावो। इस कलि
કે કથનકો સુન કે ગુરુ જી ઈશ્વર પ્રાર્થના હેત કહેં । સુલતાન હીવાં, મેલ—
लसकर सुलतान होवों, ऐसा अन्वय कर। जेकर मै मैल लसकर, चार प्रकार की सैना इकत्र कर सभ को जीत के सुलतान होवा, चक्रवरती महाराज होवो। और वैसा होकर तषति सिंघासन पै अपना पाउ टिकावों। भाव सिघांसन पै बैठो। अर तहां बैठ कर काहू मंत्री को आगिआ करूं तू अमुक देस की रषिआ कर। अर काहू को आगिआ कर तू अमुक दुरग की रषिआ कर। और ऐसी आगिआ से ही हमारे वासते अमुक देस के घोड़े भेजने अमुक देस के हसती भेजने। ऐसे मन बांधित पदारथों को हासल करूं तब भी किआ है। भाव कुछ नहीं। जिस कारण से गुरु कहे सभ वायु नाम पवन वत सभी पदारथ चंचल है। कोई सदा थिर नहीं रहने वाला याते इस लोक से ले ब्रह्म लोक प्रयंत के सभ पदारथों को अतिसयता षिणता नासिता इन तीन दोषों वाले जाण के मुकती हेत प्रमेश्वर नाम के चिंतन कीचाह वाला उतम पुरषा इन सभ का चित से प्रेम तिआगे भाव इन सभ से परम वैराग धारे यह गुरु महाराज ने पहले सबद मै वैराग्य साधन का निरने कीआ। अर इस वैराग के लाभ

हेत ईश्वर आगे प्रारथना करनी कही।[१]

इस प्रकार प्रथम पद की व्याख्या देखने से नरोत्तम की बहुज्ञता पाठक को अभिभूत कर लेती है। नरोत्तम एक ओर तो शताब्दियों से चली आ रही परम्परा से जुड़े हुए थे। दूसरी ओर वे गुरुवाणी के डा० ट्रंप जैसे यूरोपियन व्याख्याता का भी उन्हें ज्ञान था। ट्रम्प कीआलोचना भी व्याख्या के उपरान्त की है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इनका अध्ययन बड़ा गम्भीर था।

'मोती त मंदर ऊसरहि' की व्याख्या करने से पूर्व भूमिका दी है। नरोत्तम की व्याख्या में कथात्मक उत्थानिकाएं जन्म साखियों से ली गई हैं। निश्चय ही ये उत्थानिकाएं नरोत्तम की अपनी नहीं है। क्योंकि इस प्रकार की उत्थानिकाएं गुरुवाणीआदि व्याख्याता मिहरिवानु'सचुखंड पोथी' मेंमिलती हैं। वाणी को समुचित सन्दर्भ इन उत्थानिकाओं में दिया गया है।

कई बार नरोत्तम व्याख्या करते समय विषय का अतिक्रमण कर जाते हैं। व्याख्या के उपरान्त नरोत्तम ने कई महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं।

(१)- टीका सिरी राग के प्रथम पद की व्याख्या के अन्तराल में'गुरु नानक का गुरु कौन है। इस महत्वपूर्ण प्रश्न को जानने की जिज्ञासा प्रकट की है। नरोत्तम के अनुसार विष्णु ही गुरु नानक देव के गुरु रहे हैं और इसे प्रामाणित करने के लिए गुरु ग्रंथ साहिब से उद्धरण लेकर इसकी पुष्टि की है। अत: विष्णु के स्वरुप को प्रतिपादित करने के लिए गुरु ग्रंथ साहिब का आधार माना है।

(२)- व्याख्या में नरोत्तम ने पुरुष को पामर, विषयी, जिज्ञासु, तथा ज्ञानी चार प्रकार का बताया है। तथा ८ प्रकार की सिद्धियों -- अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्रकामु बसिता तथा ईसता की चर्चा की है।

१- टीका सिरी राग- पृ० १३ से २८ तक।

(३)- नरोत्तम की व्याख्या पौराणिकता को लिए हुए है। जिस प्रकार धर्म और पुराण का प्राचीन काल में अटूट सम्बन्ध रहा है उसी प्रकार नरोत्तम की विचारधारा पर पौराणिक प्रसंगों पर प्रभाव पड़ा है और वह व्याख्या के अन्तराल में नरोत्तम से अछूता नहीं रहा अर्थात् गुरुवाणी की व्याख्या करते समय पौराणिक आधार लिए हुए है। ऐसा प्रतीत होता है कि नरोत्तम पर एक ओर हिन्दू परम्परा का तथा दूसरी ओर सिक्ख परम्परा का व्यापक प्रभाव था।

वास्तव में नरोत्तम की व्याख्या शैली बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। व्याख्या में स्थान स्थान पर प्रश्नोत्तर शैली को अपना कर व्याख्या को प्रभावोत्पादक बनाया है। जिससे साहित्य में सौन्दर्य बढ़ गया है। नरोत्तम के अनुसार शब्द जन्य ज्ञान के लिए आकांक्षा योग्यता, सनिधी तथा तात्पर्य का होना आवश्यक है।

नरोत्तम की व्याख्या शैली को परखने के लिए आधुनिकता के परिवेश में ट्रम्प की व्याख्या को देखते हैं।[१] जर्मन विद्वान ट्रम्प ने टीका सिरी राग की व्याख्या अंग्रेजी में इस प्रकार की है।

---

1. The Rag Siri Rag.

Mahala 1 Ghar (1)

(Coupadas)(2)

1. A mansion of pearls may then be raised, with gems indeed it may be studded.

With much kungu(3) alone- wood and Sandal-wood having plastered it (i.e. the builder) may be delighted.(4)
Having seen (it) likely(5) it (i.e. the name) is forgotten, thy name does not come into (his) mind.

1. Pause.

Without Hari life is consumed.

I have asked my own Guru and son, that there is no other place (but Hari).

ट्रम्प की व्याख्या, व्याख्या न होकर एक अनुवाद बन गया है। `चउपदा` शब्द के बारे में लिखा है कि वास्तव में `त्रिपदा` शब्द है जिन्हें सिक्ख द्विपदा, त्रिपदा और चउपदा शब्द के लिए प्रयुक्त करते हैं।

नरोत्तम ने इस आधुनिक व्याख्याता की आलोचना टीका सिरी राग में की है। नरोत्तम का कहना है कि ट्रम्प ने जो अनुवाद किया है वह ठीक नहीं। ट्रम्प ने सालिग्राम में विष्णु की चार बाहों की कल्पना की है। नरोत्तम के अनुसार देश में न तो मोतियों का मन्दिर बनता है और न ही कस्तूरी से लीपे जाते हैं।

(From pre-page)

The ground may indeed by studded with diamonds and rubies, on the bed stead rubies may be set. An enchanting woman, with Jewels on her face, may glitter and make shows in merriment.

Having seen (her) likely it is forgotten, thy name does not come into (his) mind.

3. I may become a sidh, I may employ miraculous power, I may say to prosperity. Come!

I may sit down concealed (or) manifest, thy people may pry revernce (to me).

Having seen (this) likely thy name, does not come into (my) mind, it is forgotten.

4. I may become a Sultan, and having assembled an army I may put my foot on the throne.

I may obtain command and sit down, O, Nanak! all is wind.

Having seen (this likley thy name, does not come into(my) mind, it is forgotten.

1. रागु -signifies, according to unanimous testimoney of the sikhs, a musical note or key; according to which these verses are to be played and sung. But the exact knowledge of it seems to be lost; for inspite of many inquiries, I have never been able to get an accurate description of it.

2. This word चउपदा is missing in some MSS, the verses are in reality Trapadas. The sikhs call the Dupadas. Tripadas and caupadas generally sabd.

(contd.)-

3. ਕੁੰਗੂ s.m. is a very fine composition, of a red colour, made of amta (Sanak ਆਮਲਕ) which woman apply to ~~that~~ ~~p~~ their foreheads.

4. No person is mentioned; it may therefore, be applied to the first or third person singular.

5. ਮਤੁ is not to be confounded with ਮਤਿ (lest); ਮਤੁ is the sonak मे मतम् according to my opinion; we have, therefore, translated it with likely.

The Adi Granth- by Earnest Trumpp. page. 21.

इसी प्रकार एक और आधुनिक गुरुवाणी व्याख्याता प्रो० साहिब सिंह की टीका व्याख्या देखें।[१]

१- मोती त मंदर उसरहि रतनी न होहि ---- तेरा चिति न आवै नाउ। ४।१।

एक ओंकार सतिगुर प्रसादि। ~~म~~ रागु सिरी रागु महला १ घरु १।

नोट:- महला १ दे अक तो पहिलां लफज पहिलां तों साफ पुतष है कि अक १ नूं पढ़ना है। पहिला। इसे तरां घरु १ दे अक १ नू मी पढ़ना पहिला। ~~पद अरथ~~

पद अरथ:- त- जे। असरहि- उसर पैण, बण जाण। कुंगू केसर। अगरि- अगरनाल, उसदी सुगंध भरी लकड़ी नाल। चंदनि-चंदन नाल। लोप-लिपाई करके। देषि- वेष के, चिति-चित विच।१।

पलघि- पलंघ उते। मोहणि सुंदर इसत्री। मुषि-मुंह उते। रंगि पिआरनाल पसाउ- पसारा खाहे। रंगि पसाउ- पिआर भरी चेड़, हाव-भाव।२।

सिधु- जोग साधना विच पुणा होइआ जोगी। सिधि- जोग समाधी विच कामयाबी। लाई- लाई, मैं लावां। रिधि-जोग तों प्रापत होइआं बरकतां। बैसा- बैसा, मैं बैठा। भाउ- आदर, सतकार।३।

मेलि- इकट्ठा करके। लसकर- फोजां। तषाति-तषात उते। हासलु करी- मैं हासल करां, मैं चलावां। वाउ, हवा, समान, विअरथ करी।

अरथ:- जे (मेरे वासते) मोतीआं दे महल- माड़ीआं उसर पैण, जे (उह महल- माड़िआ) रतनां नाल जड़ाउ हो जाण, जे (उहनां महल-माडीआं नूं) कसतूरी केसर अद दे चंदन नाल लिपाई कर के मेरे अंदर चाउ चड़े। तां भी इह सभ कुफ विअरथ है, मैंनू षतरा है कि इहनां महल-माडीआं नूं वेष के मैं किते हे प्रभू।) तैंनू भुला नाह बैठा; किते तू मैंनू विसर नाह जाए, किते तेरा नाम मेरे चित विच टिके ही नाह।१।

साहिब सिंह व्याख्या विस्तृत न होकर संक्षिप्त है। केवल शब्दार्थ देने से या संक्षिप्त व्याख्या से पाठक उसे सरलता से नहीं समझ सकता। इसकी जितनी

(पिछले पृष्ठ से)

मैं अपणे गुरु नूं पुछ के वेख लिआ है (मैं आपणे गुरु नूं पुछिआ है ते मैंनू यकीन भी आ गिआ है) कि प्रभू तों विछुड़ के जिंद सड़ बल जांदी है। (ते प्रभू दी याद तों बिना) होर कोईथां (भी) नहीं है। (जिथे उह साड मुक सके रहाउ।१। (जे मेरे रहणा वासते) धरती हीरे नाल जड़ी जाए, जे (मेरे सोणा वाले पलंघ) उते लाल जड़े जाण, जे मेरे साहमणे ऊह सुंदर इसत्री हाव भाव करे जिसे दे मथे उते मणी सोभ रही होवे, (तां भी इह सभ कुछ ~~कुझ~~ विअरथ है, मैंनू खतरा है कि अजिहे सुंदर या ते अजिही सुंदरीनूं) वेख के मैं किते (हे प्रभु) तैंनू भुला नाह बैठा, किते तूं मैंनू विसर नाह जाए किते तेरा नाम चित विच टिके ही नाह।२।

जे मैं पुंनां होइआ जोगी बण जावां, जे मैं जोग समाधी दीआ कामयाबीआं हासल कर लवां, जे मैं जोग तों प्रापत हो सकण वालीआं बरकतां नू वाज मारां ते उह (मेरे पास) आ जाण, जे (जोग दी ताकत नाल) मैं कदे लुक सकां ते कदे परतख होकर बैठ जावां जे सारा जगत मेरा आदर करे (तां भी इह सभ कुझ विअरथ है, मैंनू खतरा है कि इहनां (रिधीआं सिधीआं नूं) वेख के मैं किते (हे ~~प्रभ~~ प्रभू!) तैंनू भुला नाह बैठा, कितेतूं मैंनू विसर नाह जाए, किते तेरा नाम मेरे चित विच टिके ही नाह।३।

जे मैं फौजां इकठीआं करके बादशाह बण जावां, जे मैं (तखत उते) बैठा (बादशाही दा हुकम चला सका, तां भी हे नानक इह सभ कुझ विअरथ है) मैंनू खतरा है कि इह राज भाग वेख के मैं किते (हे प्रभू!) तैंनू भुला नाह बैठां, किते तूं मैंनू विसर नाह जाए। किते तेरा नाम मेरे चित विच टिके हीनाह।४।

भी विस्तृत व्याख्या की जाए उतनी ही कम है। साहिब सिंह ने शब्दार्थ देकर अन्त में भावार्थ लिख दिया है जो स्पष्ट नहीं है।

इसी प्रकार फरीदकोटी टीका में केवल व्याख्या की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन की टीका शैली परम्परा प्राप्त है। क्योंकि फरीदकोटी टीका में भी व्याख्या से पूर्व भूमिका है।[१] दूसरी ओर नरोत्तम से मिलती जुलती है। इससे यही प्रतीत होता है कि नरोत्तम की और फरीद कोटी टीका की व्याख्या परम्परा को ~~प्र~~ प्राप्त किए हुए हैं।

आधुनिक गुरुवाणी व्याख्याताओं में भाई वीर सिंह भी उत्कृष्ट कोटि के व्याख्याता हैं। इन्होंने[२] गुरुवाणी की बड़ी समर्थ-सशक्त व्याख्या की है। इनकी व्याख्या शैली देखें।

(पिछले पृष्ठ से)

नोट:- इस सबद दे ४ बंद हन। अष्टीरले दा भाव ~~इह~~ है कि इथे पहिला ~~सबल~~ सबद समापत होइआ है।

भाव:- प्रभू दी याद भुला के जिंद सड़ बल जांदी है। जोग दीआं रिधीआं सिधीआं ते बादशाही प्रभू दे विछोड़े तों पैदा हाड़े उस साड़ नूं शांत नहीं कर सकदे। इहतां सगों परमातमा नालों विथ वधा के साड़ पैदा करदे हन।

गुरु ग्रंथ साहिब दरपण- पहली पोथी- साहिब सिंह- पृ० १६७

१- विस्तार के लिए फरीदकोटी टीका- जिल्द एक- पृ० ४०-४१ पर देखें।

२- एक ओंकार सतिगुरु प्रसादि। रागु सिरी रागु महला पहिला १ घुरु।१। सिरी राग तों श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी दे राग आरम हुंदे हन।एकाग्रता दी तासीर वाला होन करके इस राग दी वडिआई बी लिखी है।

रागा विचि स्री रागु है जे सचि धरे पिआरु।

भावहै कि इह राग इकाग्र चित दी तासीर वाला है, इसनूं सचे वाहिगुरु नूं चित वसाउण लई गाइन करे। या सुणे। संगीत विच सिरी राग बढ़े ६ रागों विचों है। इसदे गाउण या समन लौढा पहिर है ते रुतां दे

(पिछले पृष्ठ से)

हिसाब इसनूं हेमंत रुत दा राग मंद मंनदे हन। वाणी विछुरे विच तपस्वी लोक बनां विच गाउंदे हन।

इस प्र संपूरन राग है। सुरां दे हिसाब विच मति भेद हन ।

सिरी राग १ चउपदा १

प्राक्कथन- इस सबद विच संसार दीआं चारों प्रिय वसूतूआं दे लालच नू परमारथ दा प्रतिबंधक दसिआ है।
मूल एक ओंकार सतिगुरु प्रसादि। रागु सिरी रागु महला पहिला १ घर १।

मोती त मंदर उसरहि रतनीत होहि जडाउ। कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ। मतु देषि भूला व वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ।१। हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ। मैं आपणा गुरु पूछि देषिआ अवरु नाही थाउ।१।
रहाउ।

अरथ- (अरथ रहाउ तों शुरुआत) हरी (अरथात अकाल पुरष नूं मैं अपणी प्रापती दा मनोरथ बनाइआ है किउंकि इस) बिना जीउ सड़ बल जांदा है। मैं आपणे गुरु नूं बी पुछ वेषिआ है (उसने दसिआ है कि सदैवी सुषदा) टिकाणा (हरी बिना) होर कोई नही है। १। रहाउ।

(इस लई मैं होर दी लोचा नहीं रषी कि मते उह आपणे विच बने ना बहाले, जिवें भला) मोतीआं दे तां उसर पेण मंदिर, ते रतनां दे होण (उनां विच) कीते होए जडाउ (अते उना विच) कसतूरी कुंगू अगरिते चंदन आदि सुगंधीआं दे होण कीते होए लेप जिनां दी षुसबो तों मन नूं उपजे चाउ(इनां नूं) वेष के मतां मैं मोहित हो जावां (ते मोहित होए नू हे हरी) तेरा नाम (ही) भुल जावे (ते फेर उह नाम) चित हीना आवे।१।

धरती त हीरे लाल जड़ती पलघि लाल जडाउ। मोहणी मुषि मणी सोहै धरे रंगि पसाउ। मतु देषि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ।२।

(पिछले पृष्ठ से)

(फेर ऐसे सुंदर ते सुगंधित मंदरा दी ज़िमी (भाव फरस) हीरिआं नाल जड़ी होई होवे (ते उसदे अंदर विछे) पलंघ नाल लालां दी जड़त कीती होई होवे (फिर उथे) मोह लैणा वाली (इसत्री होवे जिसदे मुख ते मणीआं (दी जड़ता दा सिंगार) सोभ रिहा होवे (ते उह इसत्री) प्रेम नाल (सरि) हाव भाव करे (एह) वेखा के मैं मता मोहित हो जावां (ते मोहित होए नू हे हरी) तेरा नाम ही भुल जावे, ते फेर उहनाम चित ही ना आवे।२।

सिध होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ।गुपतु परगटु होइ बैसा लोकु राखै भाउ। मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ।३।

(भलां जे मैं जोगीं विच ना पवां पर मैनूं योग सकतीआं रिधीआं सिधीआं प्रापत हो जाण, ऐसीआं कि विचों जेहड़ी चाहवां) सिधी ला लवां ते रिधी नूं कहां आउ (उह आ जावे ते ओह) सिध बण के (अपणी इच्छा अनुसार) गुपत हो जावां, चाहांतां। प्रगट हो बैठा (इह देखा के लोक मेरे विच) सरधा धार लैणा (कि बड़ा सिध है, पर इह आपणा ऐश्वर्य देखा के मै मता मोहित हो जावां (ते मोहित होए नू हे हरी।) तेरा नाम (ही) विसर जावे ते फेर उह) नाम चित विच ही ना आवे।३।

सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाउ। हुकमु हासलु करी बैठा नानक सभवाउ। मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ।४।१।

(भला जे मैं इन सारी प्रबल ताकत वाला अरथात बड़ा पातसाह) सुलतान (बी) हो जावां, फौजां जमां कर लवां, तखत उते चढ़ बैठां (ते तखत) बैठा होइआ हुक्म करां (ते देसदां) मामला वसूल करां, पर हे नानक (इह) सभ (कुछ बीतां पिछले दसे पदारथा वांगू) बाउ (आउणे जाणे या ना पाएदार) ही है। (इस ना-पाएदार नूं) देख के मतां मैं मोहित हो जावां, तेरा नाउं विसर जावे ते फेर चित विचना आवे इस लई मैं इह बी नहीं चाहुंदा मैं ता केवल आप नूं लोचदा हां।४।

(पिछले पृष्ठ से)

व्याख्या:- जपुजी, सोदरु, रहरासि, सोहिला ते, नितनेम दीआं बाणीआं लिखके स्री गुरु अरजन देव जी हुण रागां दा आरंभ करदे हन। पहिलां स्री राग चुणिआ ते उसदा आरंभ गुरु नानक जीदे इस सबद तों कीता है। इस सबद का भाव जो है उह मानो गुरमति अनुसार ममोखू लई इक ध्रुवा बधा है कि अपणा आदरस मोख दी इछा वाला सिख वाहिगुरु प्रापती नूं बनावे। (वाहिगुरु आतिरिक्त हरि किसे शै दी त्रिसना नूं जीवन दा आदरस ना बनावे।

आम हालतां विच एक त्रिसना चार रुप लैंदी है:-

१- पदारथां दी त्रिसना
२- भोगां दी त्रिसना
३- विभूतीआं दी त्रिसना
४- अैश्वरीय त्रसना

चौहां अंकां विच चौहां नूं वरणन करके दसदे हन कि सभे थिर नहीं हन, हवा दी तरहां आउणे जाणे हन ते सदा दे सुखलई विअरथ हन।

फेर रहाउ विच दसिआ है कि हरी तों बिना जीवन नूं 'जलना बलना' नसीब हुंदा है। किउंकि इनां दी प्रापती लई प्रयतन हुंदा है। प्रयतन विच दुख हुंदा है, प्रापती होके संभाल विच यतन ते विघनां दा भै हुंदा है, बिनसन विछुड़न पर वियोग दा कसट हुंदा है, मरन वेले नाल कोई नहीं जांदा, मन नू हसरत हुंदी है। मरन दे बाअद मन दे इनां विच फसे रहिणा करके भटकणा हुंदी है ते कीते कुकरमां दे पसचाताप हुदे हन। इस सारे कुछ नूं 'जलना बलना' ओंड़ आखिआ है। उंझ बी गुरबाणी विच त्रिसना नूं अग ही बरणन कीता है। यथा-

दुबिधा लागे पचि मुए अंतरि तिसना अगि- सिरी म०१-१४

(पिछले पृष्ठ से)

गुरमति विच वाहिगुरु दी प्रापती नाम दुआरा हुंदी है, इस लई इस लई सबद विच इनां पदारथां तो मतां विघन पैदा हो जाएते हरी सिमरण विसिमरण हो जाएदी सूचनादिती है कि इनां दी त्रिसना विच ना पउ एह हरी प्रापती दे मनोरथ विच, जो वसीला, है, उसनूं रोक देण वालीआं हन।

नाम बिसारे दीआं त्रै अवसथां दसीआं हन-

१- इनां लुभाइमान करन वालीआं वसतां दा पहिला असर 'भुलां' किहा है इन कि इनां दी लुभाइमानता मतां मैनूं अपणे विच मोहित कर लवे।

२- 'वीसरे' किहा है। इनां विच या इनां विचों किसे एक विच लुभाइमान होइआं, उह जो अंदर नाम दी रो चल रही सी, उह बंद ना पै जावे, मैनू नाम विसिमरण हो जावे- विसर जावे।

३- फिर जद होस आवे कि मैनू तां नाम भुलगिआ है तद फेर जलन करां नाम सिमरण दा तां सुरत उटाटरी होइ होवे ते नाम विच लोना। इह है--

'तेरा चिति न आवै नाउ।'

भोगों दा मानसिक असर सुरत नूं खिडाउणा ते मैलिआं करना हुंदा है। नाम दा असर सुरत नूं इकठिआं करना ते रसमई करना हुंदा है। नाम दा असर तब जो या धिआन नूं साईं बल लाईं रखना हुंदा है। मन विच साईं दी हजूरी दा भाव बनिआ रहिंदा है। भोगों दा असर मन नूं बाहर मुखी सामान विच खिच लैणा हुंदा है ते मन गैर हजूरी विच चला जांदा है। जिनां भोगा दे सामानां नूं विसेस करके, मनुखा भोगदा है उही इसदे ध्यान विच बह बैठदे हन। इस तरां मन दी तवजो साईं रुखीआ नहीं रहिंदी।

(पिछले पृष्ठ से)

इनां चौहां दे लालच नूं नाम अभ्यास ते ईश्वर प्रापती दे प्रतिबंधक दसिआ है। इस दसणा विच इक होर कटाष्य बी है कि जद कोई अभ्यासी नाम विच लगता है ते लिव वाली रंगत बझवी है तां कुदरतमा-कु कुछ प्रसिधी हो जादीं है, तद पदारथ आउंदे हन, मरद श्रीमतां सरधावान हो जादे हन। फिर मानसक बल पैदा हो आउंदा है। इस बल दे बरणान नाल ऐश्वरज बनदा है, जिस विच जग्यासू किते न किते फस के आतमक उन्नती तो अटक षलोंदा है ते ईश्वर प्रापती दा 'प्रयोजन सिधी' विच विघन पै जांदे हन। गोया नाम अभ्यासी दे अगे इह चार अजमाइसां आउंदीआ हन, पर अभ्यासी नूं सबर षबरदार होणा चाहीए कि इनां अजमाइसां (पर (परताविआं) ने आउणा है ते मैं इनां तो बचणा है।

पहिले दो पदिआं विच सरीरक तौर ते भोग पदारथां दे प्रापत करन दे स्रम ते मारणान दा जिकर है। तीसरे विच मानसिक स्रम ते मन प्रापती दा जिकर है, चौथे विच बी तीसरे त्रीके अरथात मानसक प्रयत्न दे बधेरे फलीभूत होणा तत ते प्रापती दा जिकर है, किउंकि 'तपोराज' प्रापत हुंदा आम कहावत है। ते जोगी जय जोग अभ्यास करदे जो विभूतिआं अरथात रिधीआं सिधीआं दी प्रापती विच लादे हन, हठ तप साधन करदे अंत राज भाग नूं प्रापत हुंदे हन। सो दोहों प्रकारां दे प्रयतन ते प्रापतीआं नूं दो दो पदिआं विच वरणान करके दोहां नूं नासमान, चलाइमान, दिलनूं दाह देणा वाले दस के वाहिगुरु प्रापती दे प्रतिबंधक दसिआ है ते नाम सिमरणा नूं साईं प्रापती दा वसीला दसिआ है जो जीव दे विस्राम दी सदैवी ठाहर है।

इस सबद विच दसे उपदेस दा इह भाव नहीं कि नाम दा प्रेमी ग्रिहसत आस्रम छोड़के जरूर अतीत बैरागी हो जाए। पर इह कि परवाणा ग्रिहसति उदाअ जीवन बसर करदा किसे परतावे विच आके विसयासकत हो के नाम सिमरणा तो उक ना जावै। जिहा कुआप जी ने फुरमाइआ है।

(पिछले पृष्ठ से)

जैसै जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नामु बखाणे। सिध गोसट ५

साधन पक्ष

वाहिगुरु जीदी प्रापती जीवन दा मनोरथ होवे। जो वाहिगुरु जी नाल हिरदे विच राग (प्रेम) होवे तां हुंदी है। जगत पदारथां ते भोगां नाल हिरदे विच वैराग होवे। वाहिगुरु जीनाल राग नाम तो प्रापत हुंदा है।

अंत नूं नाम दमदमदी संभाल वाला लगातारी हो जावे।

इसदे सदा जारी रहिणा ते सिथलता तों रखिआ लई वाहिगुरु दे चरनां विच अरदास होवे।

हरि बिनु---- अवरु नाहीं थाउ।` ते हरिदी प्रापती दा मारग` अपणे गुरु तों निशचित होइआ है।

निरुक्त:- मोती (संस० मुक्ता) पंजाबीमोती) इक रतन जो इक प्रकार दे सिपा विचों निकलदा है ते राहिणिआं विच सुभाइमान हुंदा है।`मोती न मंदर- कहिणा विच अलंकार वरतिआ है कि ऐसी सुंदर ते कीमती था बी मिले। पर जे ख्याल कीता जावे कि मोती दा मंदर किवें उसर सकदा है? ता बी काव्य दी सहायता गल नूं हल कर देंदी है। मोती पद ला देंदे हन। जिवें आगरे विच मोती मसजिद है, हैदराबाद विच मोती महल है। पटिआले विच इक महल ते बाग दा नाम मोती बाग है। अखरी अरथ `मोतीत मंदर असरहि` दे लेखे-दे होणतां स्री दरबार साहिब संग मरमर दा मंदर है, ते संगमर बाहर लगा है इह गोल्डन टैम्पल सोने दा मंदर कहीया है, पर सोने दा वरक मडिआ होइआ है, इसदे बाहर ~~सोहणे~~ सोहणे पथर हर, पर उह संगमरमर विच खचित हन। इसी तरां जे दीवारां मोतीआं नाल वेड़ित कर दितीआं जाण। तां मोती मंदर हो गिआ। अक्सर महलां नू चूने नाल, जिंसनू कली कहिंदे हन, वेडित करदे हन। सो

(पिछले पृष्ठ से)

चूने दी थां मोती वेडित कर देणा मंदर नूं, वी मोतीआं दा मंदर कहाएगा।

रतनीत होहि जडाउ' किवें सफल होवे? भाव मोती तां वेडित होण, विच विच होर रतन जड़े होण, मोती आप बीरतन है।

कसतूरि:- (संस कस्तूरिका, कस्तूरी) इक प्रकार दे म्रिग दी नाभीतों प्रापत होण वाली सुगंधी। इह म्रिग कसमीर, नीपाल, भोटान आदि देसां विच हुंदा है, जिस नूं कसतूरा म्रिग आखदे हन।

कुमूं:- (संस० कुंकमन। पंजाबी कुमूं) कुंकम नाम केसर दा है। पंजाब विच कुमूं रगडे ते घोले होए केसर नूं कहिंदे ~~हन~~ सन। जिवें कुमूं कचेरी भर सीसते डारी केसर महिंगा हो जाणा करके हलदी ते आमले आदि तों इक बहुत वधीआ रंग बनाइआ गिआ जिसदा नाम कुमूं होगिया। इह रंग तीमता मथे ते लाउदीआं सन । पर एथे मुराद केसर तो हैं या बड़े वधीआ खुस खासबूदार लेप तो है।

अगरि- (संस० अगुरु-हलका) अगर इक प्रकार दी हलकी लकड़ दी ब्रिछ है जद इह बहुत उमर दा हो जाएता इस दीआं गंडा विच इक सुगंधी पैदा हो जांदीहै इस लकड़ी नूं ते इस खुसबूदार पदारथ नूं जो इस विच कढदे हन, बी अगर आखदे हन। 'चोआ' इस विचों चुआई सुगंधी नूं कहिंदे हन। इस पैड विचों निकली घटीआ खुसबो ~~दार~~ नूं धूप विच ही रलाउंदे हन। एह ब्रिछ अकसर आसाम विच हुंदा है। फारसी विच इस नूं 'ऊद' आखदे हन। ~~अगर 'चोआ' इस विचों चुआई सुगंधी नू कहिंदे हन। इस~~ दी सुगंधी नूं एथे अगरि लिख के इसत्री लिंग जनाया है।

(पिछले पृष्ठ से)

चदनि- (संस- चनदन। चंनण (सदल। इक प्रकार दा ब्रिछ जो दखण वल हुंदा है जिस दी लकड़ी खुसबोदार हुंदी है, तै जिस विचों सुगंधता तेल क तेल कढदे हन।

चंदन दी लकड़ी (चरणाठी) घसा के उसदा लेप करदे हन। चंदन सुगंधीआं विच वरतदे हन तै दवाबा विच बी।

लीपि- (संस० लिपु- लिंबणा, लिंबणख पोचणा। घसे चंदन दा लेप करना।

गुरु-- जिसनूं गुरु नानक देव जी ने पुछ देखिआ सी, ग्यानी सजण 'अकाल पुरख' नूं मंनदे हन। जिस अकाल पुरख नूं गुरु थापे जाण दी वडिआई मिलणी पुरातन जनम साखी विच वेई दी साखी विच लिखी है। माझ राग विच गुरु जी ने आप वी अपणे 'हजूर' जाण दा पता दिता तै वर प्रापती दसी है यथा--

पउड़ी-

दउ ठाढी बेकारु कारै लाइआ। राति दिहै कै वार धुरहु फुरमाइआ।
ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ। सची सिफति सालाहि कपड़ा पाइआ।
सचा अंम्रित नामु भोजनु आइआ। गुरमती खाधा रजितिनि सुखु पाइआ।
ढाढी करे पसाउ सबदु वजाइआ। नानक सचु सालाहि पूरा पाइआ।२१।

गुरु बाणी विच होर थे बी इस गल दे प्रमाण गुरु जीदे अपणे उचारे मिलदे हन।

यथा-

अपरंपर पारं ब्रहमु परमेसरु नानक गुर मिलिआ सोइ जीउ। सोरठि।

पुना-

बीजउ सूझै को नही बहै दुलीचा पाइ
नरक निवारणु नरह नरु साचउ साचै नाइ।

जलिबलि- पंजाबी जेल जलना तों बल बलना तों(दोहां दा अर्थ है सडना।
मुहावरे विच जलना बलना, सडना बलना दुहरा के बोल बोलदे हन- भाव
हुंदा है बहुत ही तपस नूं प्रापत होणा।
जीउ जलि बलि जाउ- मेरा मन अति दुषनूं, जो सडि वत होवे, प्रापत होवेजीउ
या मन नूं सडना, जलना, तपणा आदि पंदा नाल याद करना मन दे अती
दुषी होणा तों मुराद रषदा है।

असीं संका करना कि'जीव' अमर वसतू है- उसदा सड बल जाणा हो नहीं
सकदा, ठीक नहीं। किउंकि एथे अंदरली सुंध आतम वसतू नूं सड बल के
तबाह हो जाणा गुरु जीआषा ही नहीं रहे। उह तां मुहावरा वरत रहे
हन जिवें कहीदा है उस मेरे नाल उह उह ध्रोह कमाए कि हुण मेरा जी
उस बलों सड गिआ है।

रहाउ--
लाल- नौ रतना विचों इक रतन जो लाल रंग दा हुंदा है।नारणाक (फारसी
लाअल)
इह रतन माध एसीआ बदषसां तों या बरमा आदि थावां तों निकलदा है।
मोह्णी- (संस- मोहनी) मोह लैण वाली। भाव सुंदर ते हाव भाव वाली
इसत्री
मणी- (संस मणि) कीमती रतन। जवाहर।
(अ)- कदे जडाउ गहिणे तों बी मुराद हुंदी है।
रंगि पसाउ- प्यार दा पसारा, भाव विच प्यार दे हाव भावा नाचु गाइन
आदि क्रिया।
सिधु- (संस सिधु) उह आधू जो सिधी नूं प्रापत हो गिआ होवे। जोगी
आपणे वडकिआं नूं तेजैनी अपणे पुज्ञे साधूआं नूं'सिध' करके बोलदे हन।
हठ योगी अकसर रिधीआं सिधीआं नूं प्रापत होए योगीआं नूं आषादे हन
जो करामात करके दिषा सके। सबद विच इह भाव है।

सिधि- (संस सिदिघ। उ किसे कारज दी कमालीअत। पूरन प्रबीनता।
कामयाबी मुकती हठ योग विच मनीआ 8त्या।18 प्रकार दीआं

(पिछले पृष्ठ से)

करामाती सकतीआं।

रिधि- (संस रिद्धि) वाधा, उनती संपदा।
(अ)- करामाती ताकातां, जिनां नाल धन दौलत बधे।

गुपतु परगुट- लोकां दी नजरों उहले होणा या प्रगट हो जाणा योग दी सिधी दुआरा।

सुलतानु- (अ० सुलतान) पातसाह। बड़ा पातसाह।

लसकर- (फा० लसकर) फौज, सैना।

तषति- (फा० तषत- राज सिंघासन) तषत उते, पादसाही गदी उते।

हुकमु- (अ० हुकम) हुकमु आगिआ, तौरा। हासलु (अ० हासल) मामला।

(अ)- हुकमु हासलु- इक मुहावरा है जिसदे अरथ हन फौजी, दीवानी ते माल मामला उगराहुणा दी ताकत।

वाउ- (फा० हवा) पंजाबी वाउ वा) पौणा।

(अ)- पौणा वागूं चलत आवा जाई वाला, अनिसथिर निरारथक, वजूल विअरथ।

संध्या स्री गुरु ग्रंथ साहिब- भाई वीर सिंह- पोथी पहली पृ० २१६-२२५,

इनकी व्याख्या बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। इन्होंने सर्व प्रथम सिरी राग क्या है इसका विवेचन किया है। संगीत के बड़े रागों में से एक राग बताया है। इसका गायन सन्ध्या के समय किया जाता है। अत: ऋतुओं के अनुसार हेमन्त ऋतु का राग बताया है। इसके उपरान्त भाई वीर सिंह ने प्राक्कथन दिया है जिसमें प्रथम पद का मूल भाव प्रकट किया है। इसके साथ साथ अर्थ किया है फिर व्याख्या की है फिर साधना पक्ष बताया है तथा अन्त में निरुक्ती की है। एक एक शब्द को लेकर बड़ी सुन्दर निरुक्ती की है। आधुनिकता के क्षेत्र में भाई वीर सिंह को शब्दार्थ व्याख्या बड़ी सुन्दर है तथा पूर्ण रूप से कसौटी पर उतरती है। आधुनिकता के परिवेश में नरोत्तम को तो नहीं कसा जा सकता परन्तु फिर भी इनका व्याख्या ढंग बहुत से आधुनिक व्याख्याकारों की अपेक्षा बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

निष्कर्ष यह है कि नरोत्तम अपने युग में सबसे उत्तम कोटि के व्याख्याता रहे होंगे और इनकी व्याख्या शैली को उत्तरवर्ती व्याख्याकारों ने अपनाया होगा। नरोत्तम ऐसे समय में पैदा ~~हुए जबकि~~ हुए जब कि एक तरफ मध्यकाल का अन्त हो रहा था और आधुनिक काल पनपने लगा था। ऐसे सक्रान्तिकाल में इन पर एक ओर तो पौराणिक विचारधारा का प्रभाव पड़ा और दूसरी ओर आधुनिकता का। नरोत्तम की व्याख्या शैली को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि एक ओर तो इनका अध्ययन बहुत गम्भीर था दूसरी ओर इनके पास ज्ञान का इतना भंडार था कि इन्होंने स्थान-स्थान पर अपनी बहुज्ञता के दर्शन करवाए हैं।

ਸਟੀਕ ਬਾਣੀ ਭਗਤਾਂ ਕ੍ਰਿਤ ਪੰਡਿਤ ਤਾਰਾ ਸਿੰਘ ਜੀ ਲਿਖ੍ਯਤੇ ॥

ਰਾਗੁ ਸੋਰਠਿ ਬਾਣੀ ਭਗਤ ਕਬੀਰ ਜੀ ਕੀ ਘਰੁ ੧

੧ ੳ ਸਤਿਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

ਬੁਤੁ ਪੂਜਿ ਪੂਜਿ ਹਿੰਦੂ ਮੂਏ ਤੁਰਕ ਮੂਏ ਸਿਰੁ ਨਾਈ ॥ ਓਇ
ਲੇ ਜਾਰੇ ਓਇ ਲੇ ਗਾਡੇ ਤੇਰੀ ਗਤਿ ਦੁਹੂ ਨ ਪਾਈ ॥ ੧ ॥ ਮਨ ਰੇ
ਸੰਸਾਰੁ ਅੰਧ ਗਹੇਰਾ ॥ ਚਹੁ ਦਿਸ ਪਸਰਿਓ ਹੈ ਜਮ ਜੇਵਰਾ ॥ ੧ ॥
ਰਹਾਉ ॥ ਕਬਿਤ ਪੜੇ ਪੜਿ ਕਬਿਤਾ ਮੂਏ ਕਪੜ ਕੇਦਾਰੈ ਜਾਈ
ਜਟਾ ਧਾਰਿ ਧਾਰਿ ਜੋਗੀ ਮੂਏ ਤੇਰੀ ਗਤਿ ਇਨਹਿ ਨ ਪਾਈ ॥
੨ ॥ ਦਰਬੁ ਸੰਚਿ ਸੰਚਿ ਰਾਜੇ ਮੂਏ ਗਡਿ ਲੇ ਕੰਚਨ ਭਾਰੀ ॥ ਬੇਦ
ਪੜੇ ਪੜਿ ਪੰਡਿਤ ਮੂਏ ਰੂਪੁ ਦੇਖਿ ਦੇਖਿ ਨਾਰੀ ॥ ੩ ॥ ਰਾਮ
ਨਾਮ ਬਿਨੁ ਸਭੈ ਬਿਗੂਤੇ ਦੇਖਹੁ ਨਿਰਖ ਸਰੀਰਾ ॥ ਹਰਿ ਕੇ
ਨਾਮ ਬਿਨੁ ਕਿਨਿ ਗਤਿ ਪਾਈ ਕਹਿ ਉਪਦੇਸੁ ਕਬੀਰਾ ॥ ੪ ॥ ੧ ॥

ਹੇ ਮਨ ਤੇਰੀ ਸੁੱਧੀ ਬਿਨਾ ਅਗਯਾਨ ਕੇ ਰੂਸੇ ਹੂਏ ਨਿਖਲ ਹਿੰਦੂ ਮੁਸਲਮਾਨ
ਸੁਭ੍ਹਕਾਮੋਂ ਮੇਂ ਲਗ ਕਰ ਬਾਰੰਬਾਰ ਜਨਮ ਕੇ ਮ੍ਰਿਤੁ ਪਾਵੇ ਹੈਂ ॥ ਯਹ ਕਹੇਂ
ਫਿਰਿ, ਬੁਤ ਪੂਜਿ ਪੂਜਿ, ਬਿਸ਼ਨੁ ਸ਼ਿਵਾਦਿਕੋਂ ਕੀ ਨਿਰਜੀਵ ਮੂਰਤੀਓਂ ਕੋ ਬਾਰੰ
ਪੂਜਤੇ ਹੂਏ ਹਿੰਦੂ ਲੋਕ ਮਰੇ ॥ ਔਰ ਮੋਰੇ ਕੀ ਓਰ ਮੁਖ ਕਰ ਬਾਰੰਬਾਰ ਸੇਵੇ
ਤੁਰਕ ਮਰੇ ॥ ਜੋ ਰਹੇ ਵਹ ਉਨ ਮੁਰਦੋਂ ਕੋ ਗਾਡ ਜਲਾ ਕਰ ਪੂਜਤੇ ਹੈਂ...,
॥

अब टीका बाणी भगतां क्रित पंडित तारा सिंघ
जी लिष्यते।

राग सोरठि बाणी भगत कबीर जी की घरु १

एक उअंकार सतिगुर प्रसादि।

बुत पूजि पूजि हिंदू मुए तुरक मूए सिर नाई।। उइ ले जारे उइ ले गाडे तेरी गति दुहू न पाई।१। मन रे संसारु अंध गहेरा। जह दिस पसरिउ है जम जेवरा।१। रहाउ। कबित पड़े पड़ि कबिता मूए कपड़ केदारै जाई। जटा जटा धारि धारि जोगी मूए तेरी गति इनहि न पाई। दरब संचि संचि राजे मूए गडि ले कंचन भारी। बेद पड़ि पंडित मूए रुप देषि देषि नारी। ३। राम बिन समै बिगूते देषहु निरष सरीरा। हरि के बिनु किनि गति पाई कहि उपदेसु कबीरा।४।

हे मन तेरी सुधी बिनां अग्यान के ग्रसे हूए निषाल हिंदू मुसलमान तुक्र कामों मैं लग कर बारंबार जनम के म्रित्र पावै हैं। यह कहै इति, बुत पूजि पूजि, बिसणु शिवादिकों की निरजीव मूरतीउं को बार पूजते हूए हिंदू लोक मरे। और मके की उर मुष कर बारंबार मथे तुरक मरे। जो रहे वहु उन मरियों को गाड जला कर पूजते हूए।

ਕੀ ਦੂਸਰੇ ਕੀ ਸੇਵਾ ਕਰਨ ਰੂਪ ਜੇਕਰ ਅਪਨਾ ਵਿਛਨਾ ਕਰੇ ॥ ਤਬ ਕੋਈ ਇਨ ਚੀਜੋਂ ਵਾਲਾ ਅਪਨੇ ਕੋ ਭਗਤ ਸਦਾਵੇ ॥੧੨੮॥ **ਇਕ ਫਿਕਾ ਨਾ ਗਾਲਾਇ ਸਭਨਾ ਮੈ ਸਚਾ ਧਣੀ ॥ ਹਿਆਉ ਨ ਕੈਹੀ ਠਾਹਿ ਮਾਣਕ ਸਭ ਅਮੋਲਵੇ ॥ ੧੨੯ ॥** ਪੀਛੇ ਕਹੇ ਤੀਨ ਵੇਸੋਂ ਕਰ ਪਤਿਕੋ ਵਸ ਕਰਨੇ ਵਾਲਾ ਕੈਸਾ ਔਰ ਵੇਸ ਕਹੈਂ ਇਕ ਇਤਿ ਏਕ ਆਪਣੇ ਮੁਖਸੇ ਦੁਰਬਚਨ ਕਿਸੇਕੋ ਮਤ ਕਹੋ ਕਿਉਂ ਐਸੇ ਜਾਣਕੇ ਦੁਰ ਵਚਨ ਕਹਣਾ ਬੰਦ ਕਰੋ ॥ ਜੈਸਾ ਅਪਨੇ ਕੋ ਕੋਈ ਕਹੇ ਸੋ ਬੁਰਾ ਜਾਨ ਪੜਤੇ ਹੈ ਤੈਸੇ ਤੁਮਕੀ ਔਰੋਂ ਕੋ ਬੁਰੇ ਜਾਨ ਪੜਤੇ ਹੋਵੇਂਗੇ ਅਰ ਯਹ ਭੀ ਜਾਣੋ ਸਭ ਮੈਂ ਏਕ ਪਰਮੇਸੁਰ ਹੈ ॥ ਯਾਤੇ ਹਿਆਉ, ਹਿਰਦਾ ਨ ਕੈਹੀ ਠਾਹਿ, ਕਿਸੇਕਾ ਮਤ ਢੈਗਾ ਕਰੋ ॥ ਕਾਹੇ ਤੇ ਮਾਣਕ ਰੂਪ ਪ੍ਰਮੇਸੁਰ ਸਭਮੇਂ ਅਮੋਲਵੇ, ਅਮੋਲਕ ਹੈ ॥ ੧੨੯ ॥ **ਸਭਨਾ ਮਨ ਮਾਣਕ ਠਾਹਣੁ ਮੂਲਿ ਮਚਾਂਗਵਾ ॥ ਜੇ ਤਉ ਪਿਰੀਆ ਦੀ ਸਿਕ ਤਾਂ ਹਿਆਉ ਨ ਠਾਹੇ ਕਹੀਦਾ ॥ ੧੩੦ ॥** ਪੁਨਾਵਹੀ ਦ੍ਰਿੜ ਕਰਤੇ ਸਮਾਪਤਿ ਕਰੋਂ ਫਰੀਦ ਕਹੈ ਹੇ ਭਾਈ ਸਭਕੇ ਮਨਮੇਂ ਮਾਣਕ, ਪ੍ਰਮੇਸੁਰ ਹੈ ॥ ਯਾਤੇ ਕਾਹੂੰਕੇ ਚਿਤਕਾ ਠਾਹਣ, ਢਾਹ ਦੇਨਾ ਮੂਲ, ਆਦਿਸੇ ਹੀ ਮਚਾਂਗਵਾ, ਬੁਰਾ ਹੈ ॥ ਚੰਗਾ ਨਹੀਂ ॥ ਇਸ ਲੀਏ ਮੈਂ ਕਹਤਾ ਹੌਂ ਜੇਕਰ ਤੁਮਕੋ ਪਿਰੀਆਦੀ ਸਿਕ, ਪਯਾਰੇ ਗੁਰੂ ਕੀ ਸਿਖਯਾ ਹੈ ॥ ਵਾ ਜੇਕਰ ਤੁਮਕੋ ਪਿਆਰੇ ਕੇ ਪਾਵਨਕੀ ਸਿਕ, ਚਾਹਨਾ ਹੈ ॥ ਤਬ ਪੂਰਾ ਸੋਹਾ ਕਰਨਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਯਾਦ ਰਖ ਕੇ ਹਿਆਉ, ਹਿਰਦਾ ॥ ਭਾਵ ਚਿਤ ਨਾ ਢੈਗਾ ਕਰਨਾ ਕਾਹੂੰ ਪੁਰਖਕਾ ॥ ਯਹ ਧਾਰਨਾ ਰਖੋਗੇ ਤਬ ਤੁਮਕੋ ਅਵਸ਼ਯ ਪਤਿ ਮਿਲ ਜਾਵੇਗਾ ॥ ਮਿਲਨੇ ਮੈਂ ਕਿੰਚਿਤ ਬਿਲੰਬ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗਾ ॥ ੧੩੦ ॥

ਇਤਿ ਸ੍ਰੀਮਤ ਗੁਲਾਬਸਿੰਘ ਰਚਿਤ ਸਿਖਮਤ ਭਾਵਾਰਥ ਨਰੋਤਮ ਬ੍ਰਿਤਾਂਤ ਗੁਰ ਭਾਵ ਦੀਪਕਾਯਾਂ ਸਲੋਕ ਫਰੀਦ ਭਗਤ ਬਾਣੀ ਟੀਕਾ ਸਮਾਪਤਾ ॥ ੧ ॥

ਦੋ: ॥ ਉਦ੍ਰਾਰਥ ਯਹ ਭਗਤ ਸ਼ੁਭ ਸੁੰਦਰ ਟੀਕਾ ਲੇਖ ॥ ਲਿਖਯੋ ਸੁੰਦਰ ਸਿੰਘ ਕਵਿ ਕਰ ਬਲਲਾਇ ਬਿਸੇਖ ॥ ੧
੯ ੪ ੬ ੧
॥ ਸਾਲ ਨਾਥ ਸ੍ਰੀਲੋਕ ਸੇ ਖੰਡ ਬਿਸਨ ਕੇ ਆਹਿ ॥ ਫਾਗਨ ਬਦੀ ਸੁ ਚਤੁਰਦਸ ਲਿਖ ਕੀਨੋ ਸੁਭ ਤਾਹਿ ॥ ੨ ॥

भी दूसरे की सेवा करन रुप जेकर अपणा बंडणा करे। तब कोई इन चीजों वाला अपने को भगत सदावे। २८। इक फिका ना गालाइ समना मै सचा धणी। हिआउ न कैही ठाइ माणक सभ अमोलवे।२६। पीछे कहे तीन वैसों वत पति के वस करने वाला चौथा और वेस कहै इक इति एक आपणे मुष से दुरवचन किसे को मत कहो किंतु ऐसे ~~जाणके~~ जाणके दुरवचन कहणा बंद करो। जैसा अपने की कोई कहे सो बुरा जान पड़े है। तैसे तुम भी औरों को बुरे जान पडत होवेंगे अर यह भी जाणो सभ में एक परमेस्वर है। याते हिआउ, हिरदा न कही ठाइ, किसे का मत भंग करो। काहे ते माणक रुप प्रमेस्वर सभ में अमोलवे, अमोलक है।२६। सभना मन माणक ठाहरण मूल मचांगवा। जे तउ पिरीआ दीसिक तां हिआ उन ठाहे कहीदा।३०। पुना वही द्रिढ़ करते सभापति को फरीद कहे है भाई सभ के मन में माणक, प्रमेश्वर है। याते काहू के चित का ठाहणा, ठाह देना मूल, आदि से ही मचांगवां, बुरा है। चंगा ह नहीं। इस लीए मैं कहता हों जेकर तुम को पिरीआदी सिक, प्यारे गुरु कीसिष्या है। वा जेकर तुम को पिआरे के पावन की सिक, षेंच है। तब पूरा मेरा कह्या उपदेश याद रष के हिआउ, हिरदा। भाव चित ना भंग करना काहूं पुरष का। यह धारना रषोगे तब तुम को अवश्य पति मिल जावेगा। मिलने में किंचित बिलबंनहीं होवेगा।३०।

इति श्रीमत गुलाब सिंघ चरण सिष्यत ताराहरि नरोत्तम कितायां गुर भाव दीपकायां सलोक फरीद भगत बाणी टीका समापता।।१।।

दो- उत्तारध बच भगत शुभ सुंदर टीका लेष। लिष्यो सुंदर सिंघ कवि कर बललाइ विसेष।१।

६ २ ६ १

साल नाथ त्रैलोक मै षंड बिसन के आहि।फागन बदी सु चतुरदस लिषा कीनो शुभ व ताहि।२।

(ङ)- बाणी भगतां सटीक

गुरुवाणी व्याख्या में नरोत्तम की यह कृति भक्तों की वाणी की व्याख्या करती है। इस कृति के दो भाग हैं। एक भाग गूजरी राग पृष्ठ ३६६ तक है, दूसरा भाग ५२० तक है। इसका रचना काल संमत १६३६ है।

भक्त वाणी की व्याख्या करते समय पंडित तारा सिंह ने एक ऐसी भ्रान्त विचारधारा दी है जिससे हम सब को भ्रम में डाल दिया है। नरोत्तम का कहना है कि गुरु अर्जुन देव ने आदि ग्रंथ का सम्पादन करते समय भक्तों के भावानुकूल वाणी स्वयं तैयार कर उनके नाम से आदि ग्रंथ में डाल दी है। इसे देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि भक्त वाणी सम्बन्धी इस प्रकार के प्रश्न, कि आदि ग्रंथ में इस प्रकार की वाणी क्यों संकलित की गई, यह वाणी कैसे आई, इसका सम्पादन कैसे हुआ? हमारे सामने उठ खड़े हुए हैं जिनके बारे में तीव्र मत भेद देखने को मिलता है।

इस समस्या को देखने से पूर्व हम थोड़ा सा ध्यान आदि ग्रंथ के संकलन की ओर आपका ले जाना चाहते हैं ताकि इसके साथ साथ हमें इस प्रकार की समस्या का समाधान कर सकने में अधिक कठिनाई न उठानी पड़े।

राजनीति के प्रभाव से पंजाब के एक प्रभावशाली वर्ग ने गुरुवाणी को बदलने तथा प्रक्षिप्त अंश मिलाने का प्रयास किया। गुरु अर्जुन देव के समय इस प्रकार का एक जबरदस्त संघर्ष चल रहा है। जिसे अपने सामने रखते हुए एकदुसाध्य कार्य किया। उन्होंने मानव जाति के कल्याण के लिए प्रामाणिक बाणी को हमारे सम्मुख लाना चाहा। जिसका उदाहरण अपने में अद्वितीय है।

धार्मिक, संकीर्णता का प्रश्न अपने सामने न रखते हुए पंचम गुरु अर्जुन देव ने 'आदि ग्रंथ' का सम्पादन किया। इस महान् कार्य को सम्पन्न करते हुए सभी धर्मों के उच्च विचारों को वही स्थान दिया जो उनके अपने धर्म में है। इसके साथ ऊंची और नीची जाति के भक्तों की वाणी के सभ भी 'आदि ग्रंथ' में वही स्थान मिला जो अन्य गुरुओं की बाणी को उपलब्ध है। यही कारण है आज प्राय: सभी धर्मों के लोग गुरु ग्रंथ साहब को श्रद्धा से देखते, सुनने व पढ़कर उस पर आचरण करने का प्रयत्न कर अपना जीवन सफल बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

यह सब होते हुए भी हमारे सम्मुख यह प्रश्न उठता है कि गुरु अर्जुन देव ने इस बाणी का संग्रह कैसे किया होगा। उनके मन में क्या पूर्व विचार थे या किसी ने गुरुवाणी को संग्रहित करने को प्रेरित किया।

हम देखते हैं कि गुरु अर्जुन देव के समय में ही गुरु साहिब की बाणी तथा कच्ची बाणी दोनों ही विकास को प्राप्त हो चुकी थी। गुरु अर्जुन देव ने गुरु नानक देव के नाम पर बाणी रची जातीदेख कर सही बाणी को सम्मुख लाना चाहा जिससे जनसमूह के सामने प्रामाणिक बाणी आ सके। दूसरा कुछ सिक्खों ने गुरु अर्जुन देव से जाकर प्रार्थना भी की कि हमें सही बाणी का ज्ञान दो। अन्तत: गुरु अर्जुन देव ने भविष्य में इस प्रकार के खतरे से गुरुवाणी को सुरक्षित रखने के लिए 'आदि' ग्रंथ का सम्पादन किया।

प्राय: कई विद्वानों की यह विचारधारा है कि गुरु अर्जुन देव ने अपने पूर्ववर्ती सतिगुरुओं की वाणी को लेने के लिए भाई गुरुदास को बाबा मोहन के पास भेजा। बाबा मोहन गुरु घर से सम्बन्धित थे। कहा जाता है कि उनके पास आदि ग्रंथ की पूर्व पोथियाँ पड़ी हुई थीं। जिन्हें वे किसी को नहीं देते थे। कई विद्वान यह मत रखते हैं कि गुरु अर्जुन देव ने बाबा मोहन की स्तुति करके गुरुवाणी को प्राप्त किया। परन्तु यहाँ जिस शब्द का उच्चारण गुरु अर्जुन देव ने किया[1] वह केवल उस प्रभु 'अकाल पुरुष' की ही स्तुति की है, क्योंकि गुरु ग्रंथ साहिब में ऐसी कोई पंक्ति देखने को नहीं मिलती जिसमें किसी व्यक्ति विशेष को लेकर उसकी स्तुति की हो। सम्पूर्ण बाणी ही उस प्रभु का गुण-गान करती है यहां भी 'मोहन' शब्द प्रभु के नाम के लिए ही प्रयुक्त किया गया है।

गुरु बख्श सिंह के अनुसार गुरु[2] नानक देव के समय से ही साधु फकीरों आदि ने बाणी की रचना आरम्भ कर दी थी। जी० बी० सिंह इस बात को अधिक पुष्टि

1- मोहन तेरे ऊँचे मंदर महल अपारा
 मोहनि तेरे सोहन दुआर जी संत धरमसाला।

2- गुरु नानक साहिब देनाम पर बाणी रचणी तां साधा फकीरां ने, उहनां दे वेले ही शुरु कर दितीसी। अते गुरु अरजन देव देवेले तक पोणी सदी चोर

से कहते हैं कि कच्ची वाणी गुरु नानक देव के समय से ही आरम्भ हो गई क्योंकि गुरु गद्दी के झगड़े होने पर गुरुघर के ~~बेटे~~ बेटों ने अपने नाम से बाणी की रचना करनी आरम्भ कर दी थी।

हम देखते हैं कि गुरु नानक जब भी तीर्थ यात्रा पर गए वहां पर उन्होंने सिद्धों-नाथ-योगियों आदि से गोश्टी की और वाणी का उच्चारण किया। वह किसी न किसी रुप में सुरक्षित रह गई अत: उस समय की हुई सिद्ध गोसटी में आई बाणी आज आदि ग्रंथ में उपलब्ध है ऐसा प्रतीत होता है कि वाणी उन्हीं के समय से ही किसी न किसी रुप में संग्रहित होती गई।

गुरु नानक देव के साथ हर समय भाई मरदाना हुआ करता था। जो हर समय उनकी वाणी को रबाब पर गाया करता था जिससे बहुत सी वाणी तो उस समय लोगों को याद भी हो चुकी थी और कीर्तन की अवस्था भी प्रचलित थी।

ऐसा भी प्रतीत होता है कि शायद कुछ लोगों ने खुले पत्रों पर लिख भी लिया होगा। अत: सर्वप्रथम गुरुवाणी लिखित रुप में हमें मिहिरवानु कृत जन्मसाखी में ही देखने को मिलतीहै। मिहरिवानु ही ने सर्वप्रथम गुरुवाणी का परमारथ लिखा और आरम्भ में उन्होंने स्थान स्थान पर अर्थात् डेरों पर जाकर वाणी को एकत्रित किया होगा।

(पिछले पृ ष्ठ से)

> एसे ठगी विच संघ चुकी सी। जेकर गोशटां, साखीआं आदितों जांच करीए तद इह नकली बाणी लगभग उतनी कु ही बण चुकी सी जिनी कू खुद गुरु साहिब दी आपणी रची असली बाणी। अते दोवें तरहां दीआं बसतीआं नकली वी ते असली वी, सिखां विच इको जेहीआं फैलीआं होईआं सन। कोई ग्रंथ जा पोथी, जिस विच असली गुरुवाणी इकठी कीती होवे, सिखां पास मौजूद नहीं सी।'
> -- श्री गुरु ग्रंथ साहिब दीआं प्राचीन बीडां- जी० बी० सिंह, पृ० ६

गुरुबख्श सिंह भी इसी बात[1] का समर्थन करते हैं कि गुरु नानक की वाणी पुस्तक रुप में उनके समय उपलब्ध थी। इसी बात का समर्थन प्रो० साहिब सिंह ने[2] भी किया है कि गुरु नानक देव जी ने अपनी सारी बाणी संभाल कर रखी हुई थी। इन्होंने 'गुरमति प्रकाश' तथा कुछ और धार्मिक लेख में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि गुरुवाणी का संग्रह पहले से हीचला आ रहा था। साहिब सिंह ने अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक तर्क दिए हैं।

१- यह बात सम्भव प्रतीत नहीं होती कि गुरु नानक देव के मत में अपनी बाणियों के संग्रह की प्रेरणा न उत्पन्न हुई हो। उन्होंने लोग कल्याण के लिये दूर-दूर देशों की यात्राएं की। ऐसी परिस्थितियों में उनके मन में अपनी वाणियों के संग्रह के प्रति अवश्य भावना उद्दीप्त हुई होगी।

२- गुरु नानक के भक्तों के लिए यह संभव नहीं था कि वे कलम दवात लेकर बैठे और वाणी लिखते जाएं। अनजान प्रदेश के भक्तों के लिए तो यह बात और भी अधिक कठिन थी।

१- 'इह हो नहीं सकदा कि इस तरहां रची बाणी किते लिखी ना गई होवे, अते खुद गुरु नानक साहिब ने इस नूं पहिले अड अड प्रतिआं पर तेपिछों सोध के किसे कोरी पोथी जा किताब विच इक थां लिखिआ ना होवे। बाणी दी अंदरली गवाही अते बहुत सारीआं साखीआं दा विचार सहित पाठ वी सानूं एसे नतीजे ते पहुंचादे हन कि गुरु साहिब दी वाणी किताबी शक्ल विच उहनां दे साहमणे मौजूद सी। बोली वलों वाणी ढाढी मंझी होई, कविता बजों सुध अते खिआलात करके बंझवी है।
- (ग्रंथ साहिब दीआं प्राचीन बीड़ां - जी० बी० सिंह पृ० ११)

२- 'सतिगुरु नानक देव जीने आपणी सारी बाणी हीलिख के साभी सी। इह खजाना उहनां गुरु अंगद साहिब नूं दिता, ते हरेक गुरु विअकती ने आपणी आपणी बाणी रला के अखीर ते गुरु रामदास जी ने इहा सारा भंडार गुरु अरजन साहिब दे हवाले कीता।-
गुरु ग्रंथ साहिब दरपण-साहिब सिंह-पोथी तीजी-पृ० २८७

३- गुरु नानक देव के सहवासी सिक्ख मरदाना आदि पढ़े लिखे नहीं थे कि वे गुरुवाणी लिख सके हो।

४- गुरु ग्रंथ साहिब में कुछ वाणियां असमान रूप से लम्बी है। उदाहरणार्थ 'रागु आसा' में पट्टी' रामकली राग में ओंकार और सिद्ध गोसटिफ राग तुखारी में बारामाह और प्रारम्भ में ही जपुजी आदि पर्याप्त लम्बी बाणियां हैं। क्या वे प्रारम्भ से अन्त तक गाई गई होगी तो कितना समय लगा होगा।[1]

साहिब सिंह की विचारधारा का निष्कर्ष यह निकलता है कि गुरु नानक देव जी सिक्खों के लिए वाणी सुरक्षित कर गए और सम्पूर्ण बाणी पहले से ही उपस्थित थी। इसका साथ यह भी सिद्ध करना चाहते हैं कि गुरु नानक और गुरु अंगद देव की बाणियों में साम्य के साथ साथ शब्दावली में भी समानता है।

ट्रम्प और मैकालिफ की विचारधारा में 'आदि ग्रंथ' संकलन सम्बन्धी थोड़ा बहुत अन्तर मिलता है। ट्रम्प के अनुसार गुरु अर्जुन देव ने संगत की प्रेरणा से 'आदि ग्रंथ' के बारे में सोचा। मैकालिफ इस संकलन को स्वाभाविक मानता है। मैकालिफ और साहिब सिंह की विचारधारा आपस में मिलती है कि गुरु बाणी का संग्रह पहले से ही चला आ रहा था। जबकि ट्रम्प गुरुवाणी को एक स्थान पर न मानकर यत्र-तत्र बिखरा हुआ मानते हैं।

अन्तत: आदि ग्रंथ के सम्पादन के बारे में निष्कर्ष यह निकलता है कि कुछ विद्वानों के अनुसार गुरुवाणी गुर वंश परम्परा में सुरक्षित थी तथा कुछ के अनुसार बाणी गुरु अमरदास के पुत्र बाबा मोहन के पास गोइंदवाल में पोथी के रूप में थी। फिर भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि सम्पादक कर्ता ने किस प्रकार बाणी का संग्रह किया। यही मत डा० कोहली अपनी पुस्तक में लिखते हैं, कहा जाता है कि

१- गुरु ग्रंथदर्शन- जयराम मिश्र, पृ० ८५

बाबा मोहन गुरु अमरदास का बेटा, के पास हस्तलिपि मौजूद थी उसने बड़ी हिचकिचाहट[१] से उस पोथी को दिया और ३१ रागों में से १४ रागों की बाणी ही सम्मिलित है।

हम कह सकते हैं कि गुरु बाणी की पूर्व लिखित पोथियां हमारे सम्मुख नहीं हैं और नहीं हमें यह मालूम है कि वे सब कहां गईं। जो कुछ भी हो आज जो हमें गुरु ग्रंथ साहिब में गुरुबाणी मिलती है वह शत-प्रतिशत प्रामाणिक है।

अब हमें यह देखना है कि गुरु अर्जुन देव ने गुरुओं की बाणी के अतिरिक्त कुछ भक्तों की बाणी भी इसमें संकलित की है। इसके बारे में बड़ा मतभेद है। इनकी बाणी को आदि ग्रंथ में क्यों स्थान दिया गया? कुछ भक्तों को क्यों लिया गया? इन भक्तों में विशेष क्या था? क्या इन्हीं द्वारा रचित बाणी को लिया गया या स्वयं लिख कर गुरु ग्रंथ में डाली गई? भक्तबाणी जो गुरु ग्रंथ साहिब में है वह बहुत थोड़ी सी है।

परन्तु इसके साथ एक मुख्य प्रश्न जो हमारे सामने आता है कि 'बीड़' में संकलित करने के लिए सम्पूर्ण भक्तबाणी को गुरु साहब ने कहां से प्राप्त किया होगा?

आदिग्रंथ में १५ भक्त कवियों की बाणी का संग्रह है। गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित भक्तों की बाणी गुरुमत के अनुकूल है। सिक्ख ग्रंथ की यही विशेषता है कि भक्त वाणी का संचय ~~लक्ष्म~~ तैयार करते समय किसी वर्ण, जाति, धर्म आदि का भेद भाव नहीं रखा। इसमें छोटी से छोटी जात के और बड़ी जाति के ब्राह्मण आदि भी थे। इन भक्तों की वाणी का संक्षिप्त सा विवरण इस प्रकार है।

फरीद:- गुरु नानक समकालीन हुए। गुरु ग्रंथ साहिब में आई हुई बाणी के बारे में सन्देह है कि यह फरीद शकरगंज की है या फरीद सानी शेख ब्रह्म की है। गुरु ग्रंथ साहिब में राग आसा में ३ पद; राग सूही में ४२ पद तथा ११८ श्लोक है।

१- It cannot be exactly said how the compiler gathered his material. As regards his predecessors, he had an access to the manuscripts handed down in the family. In this connection, it is said that Baba Mohan, the son of Guru Amar Das was approached and he gave the manuscripts though hesitantly. These manuscripts contain the Bani of only fourteen Ragas as against thirty in the first recension- A Critical Study of Adi Granth- S.S.Kohli- p.11.

नामदेव:- महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त और भक्त हुए। आपका जन्म संमत १३२८ में हुआ। नामदेव की पहली अवस्था शिव और प विष्णु की पूजा में व्यतीत हुई। मराठी भाषा में आपके बहुत से पद हैं। गुरु ग्रंथ साहिब में ६० के करीब शब्द गउड़ी राग, आसा, गूजरी, सोरठि, धनासरी, टोढ़ी, तिलंग, बिलावल, गोंड, रामकली, माली मारु, भैरउ, बसंत, सारंग, मलार, कानड़ा, प्रभाती में राग में मिलते हैं।

रविदास:- रामानन्द के यह शिष्य हुए तथा कबीर के समकालीन थे। इनके ४० शब्द गुरु ग्रंथ साहिब में हैं।

कबीर:- रामानन्द से राम-नाम का उपदेश ले वैष्णव धर्म अपनाया हुआ था। गुरु ग्रंथ साहिब में आपकी बाणी इस प्रकार है-- बावन अखरी, थिती, वार, सिरीराग, गउड़ी, आसा, गूजरी, बिहागड़ा, सोरठि, धनासरी, तिलंग, सूही, बिलावन, गोड़, रामकली मारु, केदारा, भैरउ, बसंत, सारंग, प्रभाती तथा श्लोक हैं।

जयदेव- १२वीं सदी ई० में दक्षिणी बंगाल में इनका जन्म हुआ, कृष्ण भक्त थे। गुरु ग्रंथ साहिब में इनके २ शब्द राग गूजरी और मारु राग में मिलते हैं।

त्रिलोचन:- यह नाम देव के समकालीन हुए तथा वैश्य जाति के थे। गुरु ग्रंथ साहिब में आपके चार पद सिरी राग, गूजरी तथा धनासरी राग मेंमिलते हैं।

बैणी- गुरु ग्रंथ साहिब में आपके सिरी राग, रामकली और प्रभाती राग में एक-एक शब्द है।

सधना- नाम देव के समकालीन हुए। गुरु ग्रंथ साहिब में आपका केवल एक ही शब्द है।

सैन- रामानन्द के शिष्य हुए। इनका भी एक शब्द राग धनासरी में गुरु ग्रंथ साहिब में है।

पीपा- आपका जन्म संमत १४८३ में हुआ। रामानन्द के शिष्य हुए। इनका गुरु ग्रंथ साहिब में एक शब्द राग धनासरी में है।

रामानन्द- वैष्णव भक्ति के प्रचारक हुए। आपका जन्म १४२३ में हुआ। गुरु ग्रंथ साहिब में आपका एक शब्द राग बसंत में उपलब्ध है।

परमानंद:- आपका गुरु ग्रंथ साहिब में एक पद मिलता है। 'परमानन्द साध संगति मिलि।'

भीषणा- सूफी फकीर हुए। गुरु ग्रंथ साहिब में दो पद राग सोरठ में मिलते हैं। 'कहु भीषणा दुइ नैन संतों षे जह देषा तह्सोइ।'

धना- इनका जन्म १४१५ ई० में राजपूताने के गांव में हुआ। आपके गुरु ग्रंथ साहिब में दो पद राग आसा और एक राग धनासरी में है।

सूरदास- कहा जाता है कि सूरदास का भी एक ~~४४~~ पद गुरु ग्रंथ साहिब में मिलता है।

इन सभी भक्तों की वाणी के बारे में भाई कान्ह सिंह ने लिखा है कि गुरु अर्जुन देव ने यह सिद्ध करने के लिए, कि शूद्र अथवा उच्च जाति के ब्राह्मणों की रचना एक समान है, पवित्र है, गुरु ग्रंथ साहिब में डाली।[१]

गुरु ग्रंथ साहिब में भक्तों की बाणीका चढ़ाया जाना कोई साधारण बात नहीं थी। ऐसे भक्त जो अवतारवाद, पूजा आदि की विचारधारा से ओत-प्रोत थे परन्तु ~~म~~ इन का एक ही उद्देश्य आत्मक आनन्द की प्राप्ति करना था और उसे प्रकट करने के अलग अलग ढंग अपनाए, धार्मिक संकीर्णता को सामने न रखते हुए इन भक्तों की बाणी को मिलाना ही आदि ग्रंथ की महानता को बढ़ाना है। और यह वस्तु दुनिया के इतिहास में एक बेमिसाल विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती है।

१- भगतां दीउह बाणी जो स्री गुरु ग्रंथ साहिब विच है, स्री गुरु अरजन देव जी ने इह सिध करन लई कि शूद्र अथवा मुसलमान आदि गिआनी पुरषां दी बाणी, उच जाति विच पैदा होए भगतां दी बाणी समान ही पवित्र है।

-- महान कोश- भाई कान्ह सिंह, पृ० ६७५

अब हमें यह देखना है कि सम्पूर्ण भक्त बाणीको गुरु अर्जुन देव ने कहां से प्राप्त किया। भक्त रचना आकार में कैसे आई और आदि ग्रंथ में कैसे चढाई गई। कुछ विद्वानोंने भक्तों की बाणी के सम्बन्ध में अपनी विचारधारा को इस प्रकार प्रकट किया है कि गुरु जीने स्वयं भक्तों के भावों को लेकर बाणी की रचना करके गुरुबाणी में उनके नाम से शामिल की।

इस प्रकार की विचारधारा तारा सिंह नरोत्तम रखते हैं। इनका कहना है कि 'भगतों का भाव हिरदे में रषकर स्री गुरु अरजन साहिब जीने आप ही भगतों के नाम से बाणी रची है। भगतों ने नहीं रची। अर मीरां बाई सूरदास बिना और भगतों के रचे जुदे ग्रंथ भी नहीं। केवल कबीर का बनाइआ कबीर सागर ग्रंथ है तिसमें भी एक सुआन के घर गाबना यह पाठ नहीं है। पुन: कबीर सागर के सबदों साथ ग्रंथ साहिब जीके सबदों का पाठ नहीं मिले। अरथ मिले हैं।'[1]

यही विचारधारा हमें गुरु बिलास पातशाही छठी में भी देखने को मिलती है। कहा जाता है कि जब पंचम गुरु बाणी का सम्पादन कर रहे थे तब भक्तों की आत्मा उनके पास आई और तम्बू में बोलती थी जिसे भाई गुरुदास जो लिखते जाते जब भक्त आत्माएं जाने लगी तब भाई गुरुदास ने उन आत्माओंके दर्शन के लिए इस प्रकार कहा है:-

तब भाई चिंता करी मन में अैस विचार
चतर गुरु बाणि रची पंचम आप उचार

बहु बहु सबद स्री मुष कहे भगत नाम धरदेहिं
आप रहे हमहूं लिषे भगतन को द्रिसटेहि।

- - * -

कनात बाहर बैठी तहां भाई मौन सुधार
निकस कनात ते जब चले भगत सरुप अपार।
पृथक पृथक समहीन कीउ भाई को सु प्रनाम।
निज नामह के कहति गए सभै निज ह धाम।
तब भाई मन बिसमै पाई। भगति नाम कवि कहत सुनाई।
कबीर त्रिलोचन बैणी जानो नामदेव रविदास पछानी
फरीद धंना भीषन जैदेवा पीपा सधना सैन समेवा

१- भक्तों की बाणी - पंडित तारा सिंह नरोत्तम- पृ० एक तथा पृष्ठ ४३६ पर देखें

परमानंद रामानंद गए। सूरदास पंद्रहि भए
पदंरा नाम भगति कहे। आगे सुनो और सुक्ल है
संमन मूसन और जमाल। मसकन चारों भए निहाल।
इह कारन गुरु रूप दिषाए दास चित भ्रम रहिन न पाए
समै भगति देत गुरदास। तब माया मन भई उदास।

- - -

महाराज क्रिपा अस कीजै। भगतनि को दरशन मुहि दीजै
जस तुम चरचा करो बनाई। सो सभ सुनों गुरु सुषदाई।
आवत जात द्रिसटि मोहि परै। तथासत बचन स्री गुरु रूरै। १
क्रिपा सिंध पुन सबदि उचारै। भाई लिषि पैर नहि धारै।

इसी मत का समर्थन गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ के कर्ता सन्तोख सिंह ने भी किया है।

राति दिवस बीतहि बिच डेरै। शब्द बनाइ लिषाइ घनेरै
भगति बिराग ग्यान गुन सानी। नानक बिधिनि बना वहि बानी।५।
इस प्रकार नित प्रति विवहारै। कितिक दिवस सतिगुरु गुजारै।
इस प्र
लिषि शब्द भगत निके जबै। कहि गुरदास बिसम उर तबै।६।
पंचो पातिशाहि की गिरा। अंत नाम स्री नानक धरा।
अबहि आप भगतिनि के नामू। अंत शब्द के धरहु मिरामु।७।
दीषति इहां भगति नहिं कोई। स्री गुरजी संसै दिकु षाई।
स्री अरजन तबि बाक बषानै। जे चित चाहति इस कहु जान।८। २

इसी विचारधारा को पुनश्च मैं व्याख्यात्मक ढंग से भाई सोहन सिंह स्पष्ट करते हैं। 'उहनां दी अंतर मुषी द्रिशटी सारिआं ही निरणिआं नू कर लैणा लई समरथ सी। इसी तरहां भगतां दी बाणी विच तां आषेप बेहद हो चुके सन, उहनां दी काट करके सोधी होई नूं आतम बल नाल भगतां तो सही कर के उहनां दी शुध निरसंसे बाणी

(पिछले पृष्ठ)

इसके अतिरिक्त टीका सिरी राग के पृष्ठ १० पर भी देखें।

१- गुरु बिलास पातशाही छेवी- सोहन सिंह - पृ० ६१-६२

२- स्री गुर प्रताप सूरज ग्रंथ- वोल्यूम, ६, पृ० २०८८

बीड़ विच चाढ़ी। इह गल जरूरी नहीं कि उह्ना दी सारी बाणी चाढ़ी होवे। हो सक्दा है कि सारी होवे, हो सक्दा है कि होर बी बाणी होवे जो भगतां दी होवे ते चाहो उह आषपां वाली होवे। पर जिनी बाणी बीड़ विच चाढ़ी गई है उह्ना भगतां दी आपणी है।[१]

इनके कहने का तात्पर्य यह है कि जो बाणी गुरु ग्रंथ साहिब में भक्तों की है वह भक्तों की अपनी ही है, परन्तु गुरु अर्जुन देव ने उनकी बाणी उनसे न लेकर अन्तर्मुख होकर वही बाणी प्राप्त की। अर्थात् अपनी आत्मिक शक्ति के द्वारा भक्तों की आत्माओं से बाणी को प्राप्त किया।

इन सभी लेखकों की विचारधारा बड़ी असंगत प्रतीत होती है क्या कभी ऐसा हुआ है? हम देखते हैं कि तारा सिंह नरोत्तम के साथ इन लेखकों ने भी भ्रान्त पूर्वक धारणा को अपनाया हुआ है। यह भी तारा सिंह नरोत्तम की विचार धारा का समर्थन करते हैं कि गुरु अर्जुन देव ने स्वयं लिख कर ग्रंथ साहिब में भक्ति बाणी को डाला। यह कोई छोटी सी बात नहीं है। देखा जाए तो बहुत से भक्त गुरु नानक देव से पहले हो चुके थे और कबीर आदि उनके समकालीन हुए।

भाई गुरदास के काशी आने से पहले ही भक्त रचना पंजाब में आ चुकी थी। यद्यपि यह बात सही है कि भक्तबाणी जो गुरु ग्रंथ साहिब में है वह वैसी उनकी रचनाओं में देखने को नहीं मिलती। ऐसा हो सकता है कि थोड़े बहुत अन्तर के साथ उनके शिष्यों ने बाद में लिखी होगी। क्योंकि बाणी का संग्रह आरम्भ में कहीं भी उपलब्ध नहीं था उनके शिष्यों ने ही उनके नाम पर बाणी का संग्रह किया। तथा यह स्वाभाविक था आज जो हमारे पास उनकी शब्द उपलब्ध है उनमें उस समय तथा इस समय तक काफी परिवर्तन आ चुका है।

१- श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ- पृ० २०६२

एक अन्य स्थान पर तारा सिंह नरोत्तम युक्तिपूर्वक यह कहते हुए दिखाई पड़ते हैं कि गुरु अर्जुन देव ने आत्मिक शक्ति से जीवात्मा को न बुलाकर स्वयं रच कर बाणी लिखी अर्थात् जहां कहीं भी उनकी विचारधारा भक्तवाणी से मेल खाती थी, वहां पर उन्होंने 'रलाई' शबद का प्रयोग किया है।[1] तथा यह शबद गुरु ग्रंथ साहिब में इस प्रकार मिलता है, 'गउड़ी कबीर जी की नालि रलाई लिखिआ महला ५- ऐसो अचरजु देखिओ कबीर। दधि कै भोलै बिरोलै नीरु रहाउ।'[1]

यदि हम यह कहें कि गुरु अर्जुन देव ने भक्तों की वाणी को अपने साथ मिलाकर लिखा है तो भी यह उचित नहीं लगता क्योंकि 'रलाई' शबद हमें यह प्रतीत करवाता है कि जहां भी गुरु अर्जुन देव की बाणी इन भक्तों की विचारधारा से या बाणी से मेल खाती थी, वहीं पर ऐसे शबदों का प्रयोग हुआ है या जहां कहीं भी भक्तों की बाणी में मतभेद दिखाई पड़ता था वहां हो सकता है कि अपने विचार लिख दिए हों।

यह सही है कि कुछ अन्य भक्त जैसे छज्जू, काह्ना, पीलू और शाह हुसैन आदि गुरु अर्जुन देव जी के पास अपनी बाणी को संग्रहित करने के लिए लाए परन्तु गुरु जी विचार प्रणाली के आधार पर उनकी रचना को स्वीकार नहीं किया। अत: इतिहासकारों ने जो तथ्य हमारे सामने रखा है इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय इन सभी भक्तों की वाणी को गुरु अर्जुन देव के पास उनके शिष्य या श्रद्धालु या स्वयं भक्तगण लेकर आए होंगे और गुरु अर्जुन देव को उस समय जो बाणी उचित लगी या इनकी विचारधारा से मिलती थी उसे गुरु ग्रंथ साहिब में डाल दिया, और निरर्थक बाणी को छोड़ दिया।

इसके साथ हम यह भी कह सकते हैं कि गुरु अर्जुन देव का काव्य जहां गुरु साहिब में इतना अधिक देखने को मिलता है। गुरु अर्जुन देव को क्या आवश्यकता थी

१- याही भाव से गउड़ी राग में कबीर की वाणी में चौथे सबद के आदि में 'रलाई' लिखिआ कहिआ है। - भक्तवाणी, पृ० २

२- गुरु ग्रंथ साहिब- हिन्दी अनुवादित- पृ० ३२६

कि वे भक्तों के नाम पर नई रचना रचते और जहां कि उन्होंने इतनी सुन्दर उत्कृष्ट कोटि की रचना रची है वहां अगर वे चाहते तो और भी रचना अपने नाम पर रच सकते थे।' भक्त वाणी को शामिल करने का मुख्यत: यही प्रयोजन था कि वे मानव जाति को एक दृष्टि से देखते थे तथा नीचीजाति के लोगों को भी उच्च जाति के समान सम्मान देना चाहते थे तथा भेद-भाव की संकीर्ण दृष्टि न रखते हुए उनकी बाणी को गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित किया।

साहिब सिंह ने कहा है, 'कि लोगों में यह धारणा भी प्रचलित है कि भक्त वाणी को गुरु अर्जुन देव के बाद डाला गया है। इसे देख कर एक बात सामने यह आतीहै यदि यह बात सही है तो गुरु अर्जुन साहिब के पीछे भक्त वाणी को किसने शामिल किया। साहिब सिंह के अनुसार पृथीचन्द ने भक्तवाणी को बाद में मिला दिया।[१] परन्तु इतिहास कार प्रिथीचन्द की मृत्यु गुरु अर्जुन देव से पहले बताते हैं तो यह कैसे हो सकता है कि प्रिथीचन्द ने भक्त वाणी को शामिल किया हो।

निष्कर्ष यह निकलता है कि सम्पूर्ण भक्त वाणी को गुरु अर्जुन देव ने आदि ग्रंथ के अन्त में संकलित किया है। अत: जितने भी भक्तों की वाणी गुरु ग्रंथ साहिब में सम्पादित है वह भक्तों की अपनी लिखी हुई है।

गुरु नानक जहां भीजाते हैं, वहां वहां सन्तों भक्तों और ज्ञानियों से ज्ञान चर्चा करते हैं। इसी चर्चा के दौरान गुरु नानक को विभिन्न भक्तों की वाणियां उपलब्ध हुईं।

संभव है कि गुरु नानक ने यथा समय ये वाणियां संकलित कर ली हों। गुरु नानक द्वारा संकलित इस वाणी को, हो सकता है गुरु अर्जुन ने आदि ग्रंथ में स्थान दिया हो।

१- विशेष विवरण के लिए भक्त वाणी सटीक भाग दूसरा पृ० १२-१३ देखें। साहिब सिंह।

पं० तारा सिंह नरोत्तम की भक्तों सम्बन्धी इस भ्रान्तपूर्वक धारणा को देखने के उपरान्त उनकी व्याख्या पद्धति को देखते हैं क्योंकि व्याख्या के क्षेत्र में इनकी यह कृति भी महत्वपूर्ण है। किस प्रकार नरोत्तम ने भक्तों की सगुण तथा निर्गुण विचारधारा दोनों को सामने रखते हुए कितनी सुन्दर व्याख्या की है। यद्यपि उन भक्तों पर भी योग वेदान्त, आदि का प्रभाव पड़ा हुआ था, परन्तु उन सब से परिचित होते हुए भी नरोत्तम ने भावार्थ युक्त व्याख्या कर डाली है। नरोत्तम ने भक्तों की वाणी की बड़ी विस्तृत व्याख्या की है।[१] अत: जहां कहीं इनसे बन पड़ा है वहां पर एक एक व्याख्या के उपरान्त दो दो कहीं कहीं पर तीन तीन प्रकार से प्रयत्नकि- भी व्याख्या कर[२] उस भक्त के भाव की पुष्टि करने का प्रयत्न किया है। यह सच है कि पं० तारा सिंह नरोत्तम जी की टीका शैली बड़ी सुन्दर थी और टीका व्याख्या करते समय पूर्ण विचारों को स्थान दिया है। तारा सिंह नरोत्तम ने टीका व्याख्या करते समय भक्तों के जीवन सम्बन्धी विचारों को उद्धृत नहीं किया केवल उनकी भावार्थ युक्त व्याख्या की है। इसे देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि नरोत्तम की आकांक्षा गुरु ग्रंथ साहिब में आई सम्पूर्ण वाणी की टीका करने की प्रतीत होती है परन्तु दुर्भाग्यवश वे ऐसा कर पाने में सफल न हो सके और उनकी इस क्षेत्र में यह अन्तिम कृति है जिसकी व्याख्या उन्होंने भावों से युक्त की है।

नरोत्तम की व्याख्या शैली का उल्लेख पीछे अन्य कृतियों में किया जा चुका है। परन्तु यहां पर भक्तों के पदों की व्याख्या किस प्रकार की है इसको देखने के लिए सबसे प्राचीन भक्त नामदेव को हमने लिया है और नाम देव की वाणी की किस प्रकार व्याख्या की है। इसे देखें:-

<u>राग मलार बाणी भगत नामदेव जीउ की</u>

एक ओंकार सतिगुर प्रसादि। सेवी ले गोपाल राइ अकुल निरंजन। भगति

१- विशेष विवरण के लिए बैणी भक्त की पृष्ठ १७ से २६ तक भक्तवाणी के प्रथम भाग में देखें।

२- पृ० १६७- भक्त वाणी दूसरे भाग पर देखें।

दानु दीजै जाचहि संत जन।१। रहाउ। जांचै घरि दिग दिसै सराइचा बैकुंठ
भवन चित्रसाला सपत लोकसमान पूरी अले। जांचै घरि लछिमी कुआरी
चंद सूरजु दीवड़े कउतकु कालु बपुड़ा कोटवालु सुकरासिरी। सु ऐसा राजा
स्री नरहरी।१। जांचै घरि कुलालु ब्रह्मा चतुर मुखु डांवड़ा जिनि विश्व संसारु
राचीले। जांचै घरि इसरु बावला जगतु गुरु ततसारिखा गिआनु भाखीले।
पाप पुंनु जांचै डांगिआ दआरै चित्र गुपत लेखीआ। धरमराइ पुरली प्रतिहारु।
सु ऐसा राजा स्री गोपाल। जांचै घरि गणा गंधरब रिखी बपुड़े ढाढीआ
गावैत आछै। सरब सासत्र बहु रुपीआं अत गरुआ आखाड़ा मंडलीक बोल
बोलहि काछै। चउर ढूल जांचै है पवणु। चेरी सकति जीति लै भवणा।
अंड टूक जाचै भसमती। सु ऐसा राजा त्रिभवण पती। जाचै घरि कुरमा
पालु सहस फनी वासकु सैज वालूआ। अठारह भार बनासपती मालणी
छिनवै करोड़ी मेघ माला पाणी हारीआ। नख प्रसेव जाचै सुरसरी। सपत
सुमुंद जांचै घड़थली। एते जीअ जांचै। वरतणी। सु ऐसा राजा त्रिभवण
धणी।४। जांचै घरि निकटि वरती अरजनि ध्रूप्रहलादु अंबरीकु नारदु नेजै
सिध बुध गणा गंधरब बानवै हेला। जेते जीअ जांचै इहिकरी। सरब बिआपक अंतर
हरी। प्रणवै नामदेउ वाची आणि। सगल भगत जाचै नीसाणा।५।१।

तुझ परम ऐश्वर्य्यवाले की भगति के लाभ हेत आप को सिमरते हैं। यांते
हम को भगती देवो यह नामदेव प्रारथना करे, सेवी ले इति, हेगोपाल राजा।
जो तूं निरगुण रुप अकुल, देह के धरम गोतादिकों से हीन है। तथा निरंजन
निरदुख है। तिस तुझ को हम सेवीले, नौ प्रकार की भगती करे है। जो हम
को क्रिपा कर भगति दान दीजै, अपनी प्रेम भगती का दान करो। जिस
आपकी भगती को तुम से आगे भी जाचहि, मांगते रहे हैं संत जन, आपके
स्रेष्ट भगत प्रह्लादादिक। १। अर हे परमेश्वर आप बड़े राजा हो इस लीये
आप यह दान अवश्य देवो यहि सूचन हेत पहिले परमेश्वर की राज विभूती
वरणन करे जांचै इति हे परमेश्वर तूं कैसा राजा है जिस तुझ परमेश्वर के घर
में यिगु पूरबादि दसोंदिसा हम को दिसै मान होवै है। सराइचा, बड़ी
कनातां ताणी हूई। अर आप का बैकुंठ थान हम को भान होवै है चित्रसाला

स सीस महल। पुना सातों अपर के तथा सातों तले के यह जिस तुम्फ की
समान पूरी अले, साधारण जैसी आं पूरी आं है। जै राजा के नगर सों
और नगर होवे है। अर इसत्री सरब सोभा की शान जिस तुम्फ परमेश्वर
के करमों कुमार अवसथा वाली लक्ष्मी है, अर दीपक, जिससे घर में बिना
तेल बती से उजाला करने वाले चंद औ सूरय है। पुना कउतक, सभ जीवों के
संधार करन का आसचरय तमाशा दिखावने वाला जिसके घर में कालु बपुड़ा,
महारुद्र बिचारा भयदाता कोतवाल है। जो सु, सुरेट रीति सो करा,
करो की। भाव दंडी को लेता है सिरी, निकल जीवों के सिरों से। काहूं को
दंड लीये बिना नहीं छोड़ता ऐसा बलवान है। सु बहु कहे सुरेट समाज वाला
ऐसा राजा स्री सोभावान है नरहरी, नरसिंघ रूप धारने वाले परमेश्वर तूं
हैं। पुना भी तूं कैसा राजा है जिसके घर में चार मुषों वाला ब्रह्मा कुलाल
है मांवड़ा समस्रिश्टी के अकारों की डौल के। भाव कलपना करके बनावने वाला
कैसा ब्रह्मा कुलाल है। जिस ब्रह्मा ने बिश्व, निफल संसार राचीले, रच्या है।
पुना तूं कैसा राजा है। जिसके घर में बावले पन की बातां सुनने हेत रषा
राजा लोगन के बब बावलिउ वत ईसरु महांदेव बावंलासा है। वासतव से
बावलां नहीं। काहे ते गीत त्रित मंत्र यंत्रादि निषल विद्या का जगत में उपदेश
करणे से जगत का गुरु है। पुना केवल व्यवहार की विद्या का उपदेस ही
नहीं। परमारथ विद्या का उपदेस भी बहुत कर रामायणादिकों में उसी
का कीआ लिख्या है। यांते तत, वासतव स्वरुप का सारिषा, सचा ग्यान
माषीले, कथन करने वाला है। वा कैसा महांदेव है जगत गुरु जो तुम
विश्नतत, तुमारे सारिषा, तुल्य गिआन माषीले, ग्यान का उपदेश करने
वाला है। पुना तूं कैसा है। पाप पुंन जीवों के रन शुभ अशुभ करम जिस
मेरे दरवजे से जीवों के रोकने वाले डांगीआ, चोबदार है। औ चित्रगुपत आप
के दवारे में लेखीआ, मुनशी है। धरमराइ जिसके पतिहार, द्वार में परुली,
प्रलय करने वाला। भाव अशुभ करमों का फल देने वाला अदालती के थान में है।
सो, वहु ऐसा राजा है शोभावान गुपाल तूं हैं।२। पुना तूं कैसा हैं राजा
लोगन के ढाढीयों के थान में जिसके घर गण, समूह देवन के गवईआ गंध्रब देवता
औ वेद मंत्रों की टीका करने वाले रिषि लोक विचारे ढाढी गांवत आषे,

षड्जादि स्वरों से रागों को औ बेदों को गावते हैं भली तरां। पुना राजा लोगन के बहुरुपीयों के थान में नई नई प्रक्रिया से प्रधानु प्रमाण आदि नाना प्रकार के जगत कारणों को दिखावते सासत्र बहु रुपीआ, नकलीए भांड है। अतु पुना तिस तुझ राजा का गुरुआ, भारी अपाड़ा देवता दैतन को जुध की जगा है जिस अखाड़े में मंडलीक, अपने अपने मंडलों के स्वामी देव दैतों के राजा बोल, बचन बोलते हैं, काहे, सुंदर। पुनां चउर ढूल, चोर करने वाला जिस परमेश्वर के नाना बनसपती रुप रोमों को हलावता पवन है। औ चेरी सकति, अपनी लछमी रुप शकती से निखल भवन जीत लीये है। जैसे राजा अपनी शकती से जीत लेवे हैं। पुना अंडटूक, ब्रह्मंड का भारथ रुप टुकड़ा भसमती, चुला है। काहें ते जैसे चुल्हे पै तिआर कीआ। भोजन सरबत्र पावे है। तैसे इस खण्ड का कीआ करम सरबत्र भोगे हैं। सु बहु ऐसे पूरब कहे समाजवाला राजा है तीनों भवनों के स्वामी तूं हैं। ३। पुना तूं कैसा राजा है जाचे, जिस तुझ राजा के घर में कूरमा, पृथवी का बोझ उठाने वाले कच्छप तेश पालू, पलंघ है। और सहस्र फनी ~~पृथवी का बोझ उठाने वाले कच्छप तेरा पलू~~ बासक, हजार फणोवाला शेश नाग तेरा दूसरा सेज, पलंघ है। वालूआ, सेज बंदों वाला। शेर के फणों में सेज बंदों की भावना करी जान लेनी। पुना अठारां भार बनासपती जिस तेरे घर में अपने फूले फूल देने से मालणा है। षाट अ ऊपर नवे करोड़ मेघमाला, बक बदलों की पंक्तीआं तेरे पानी देने वाली भीवरीआं है। और राजा लोगन के पसीने वत जिस तुझ ईस के चरणा नखों का पसीना यही मानो सुरसरी, गंगा जी है। अर सातों समुंद्र आपके घड़थली, घटों के थान। अरथात सात घड़े हैं। एते पूरब कहे सभी जीव जिस तुझ ईस के घर में वरतणी, वरतने में आवते नोकर है। सो, बहु ऐसा राजा तूं तीनों भवनों का स्वामी है। पुना तूं कैसा राजा है जिस तुझ ईश्वर के घर में राजा लोकन के समीप वरती सेवकों के थान में अरजन ध्रुप्रहलाद अंबरीक नारद जैजे, इस नामवाला कोई प्रेमी भगत सिध, एक जातीवाले देवता बुध बुधादि नव ग्रहगण, बहुते बहुते एक किसम के देवता। जैसे बारां सूरय सूरय गिआरां रुद्र आठ बसु(आदि पुना गंध्रव एती बनवे बनी हुई है हैला, लीला। एते पूरब कहे अरजनादि निषल जीव जिस के समीप वरती घर के है।

वासतव से तूं सरब व्यापक है। याही ते सभ के भीतर हैं। अर मैं तुम औ महाराज से भगतों सभ नीसाण बनना चाहता हूं यह कहता समापति करें प्रणवै इति, कहे हैं नामदेव भगत है महाराज मुझ को ताबी आणि, तेरी सुगंद है। जाचै, जिसके तेरे सभी ध्रूप्रहलादादिक भगत नीसाण, भगती में[1] नीसान है। तिन के तुल्य मुझ को भी भगती देकर नीसान बनावों।

पं० तारा सिंह नरोत्तम की टीका व्याख्या के बारे में ज्ञानी नरैण सिंह का कहना है कि इनकी टीका इतनी गूढ़ भाषा में है जिसे साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकता।[2] न केवल पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने भक्तों की वाणी की व्याख्या इतने विस्तार से की है अपितु बहुत से विद्वानों ने भी भक्त वाणी की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इनमें मुख्य भगवान सिंह, बिशन सिंह ज्ञानी, जोध सिंह, नरैण सिंह ज्ञानी, सम्पूर्ण सिंह, फरीद कोटी टीका, साहिब सिंह आदि पंजाबी के विद्वानों ने भक्तों की वाणी पर बड़ी सुन्दर, सरल, बोधगम्य व्याख्या करने की कोशिश की है और इस क्षेत्र में कई विद्वानों को सफलता भी प्राप्त हुई है।

तारा सिंह नरोत्तम की व्याख्या में बहुज्ञता तो बहुत देखने को मिलती है। परन्तु केवल बहुज्ञता से ही तो काम नहीं चल सकता। इसको प्रकट करने के लिए साधारण शब्दावली का होना, सरल रीति पद्धति को अपनाना अधिक अच्छा रहेगा जिससे व्याख्या की परिभाषा तो यही है कि वह सरल, सहज बोधगम्य हो जिसे साधारण से साधारण पाठक भी समझ सके और इसके साथ वह प्रबुद्ध पाठक के लिए न होकर साधारण पाठक को अभिभूत करा सकने की क्षमता का होना आवश्यक है। तारा सिंह नरोत्तम के अतिरिक्त हम कुछ अन्य व्याख्याकारों की व्याख्या को देखेंगे जिससे हम नरोत्तम को उचित स्थान तथा उनकी व्याख्या शैली को कसौटी पर कस सकें।

१- भक्तवाणी- पृ० ३६२-३६६

२- 'पंडित तारा सिंघ जी नरोत्तम वांगू पूरन बीचार भरिआ टीका पंजाबी बोली विच कोई वी नहीं है, अते पंडित जी दा कीता होइआ टीका एनी गूड़ बोली विच है जो जणे खणे दी समझ विच नहीं आ सकदा।'

-भगत वाणी सटीक- नरैण सिंघ जी ग्यानी - भूमिका

सर्वप्रथम हम श्री मान सन्त भगवान सिंह की भक्तवाणी व्याख्या को लेते हैं। इन्होंने भक्त वाणी सटीक के आरम्भ में दसों गुरुओं की स्तुति कीहै। भगवान सिंह ने भूमिका में टीका क्या है इसकी परिभाषा दी है तथा नरोत्तम के अनुसार टीका को ६ प्रकार की बताया है।[1]

भगवान सिंह की व्याख्या शैली देखने के लिए हम इक उदाहरण नामदेव की वाणीका लेते हैं।[2] इन्होंने भी व्याख्या बड़ी सरल, सहज बोधगम्य बनाने का

१- टीका संप्रदाइ का लषण करते हैं। सलोक। पदछेद पदारथोंक्ती विग्रहों वाक्योजना। अषेपों अथ समाधान विआष्यानं षट विध मंत। इती। टीका। प्रथमे पदों का छेद करना पदों का अरथ करना विग्रहो नाम पदों की व्युतपति अनवेवाक का जोड़ना संका का उतर देणा छे प्रकारों कर टीका का लषण लषण प्रमाण भ्यं वसतू सिधी नतू प्रतग्या मात्रेण इती।

- भगत बाणी सटीक- भगवान सिंह पृ० ६

२- राम मलार बाणी भगत नामदेव जीउ की।

एक ओंकार सतिगुरु प्रसादि। सेवीले गोपाल राइ --- जाचे नीसाणि सारंग का भोग पाके गुरु जी मलार राग में भगत बानी को उचारते हैं श्री नामदेव जी परमेशर की बिभूती निरूपन करते हैं जैसे पारवे किआ गीता मे कही है ऐसा राजा है भबूती वाला श्री नर हरी नरसिंघ जी तिस गोपाल राजा को सेवेदे हां जो अकुल है इक कुलवाला नहीं माइआ रहित निरंजन है हे महांबाहो भगति दान दीजे जाचे मंगते है संत जन जाचे जाके घर भी दिगपाल जो है इंदर वरन जमादी इह फराज है तो दिसा जो है दसों तो कनात तानी है राजा के बैठन लीए (सराइचा) कनात बेकुंठ जो घर है इह चित्रशाला चोबारा है पूरा ते संता ही लोकां विच है इको जिहा जिसके घर में लक्ष्मी कुआरी है इह नहीं कहिना बिबाही विवाही है-ते है परंतु कोमल ही रहती है ब्रिध नहीं भार्ई कदी बी चंद्रमा ते सूरज दीवे है। दिन रात के काल जो बपड़ा विचारा है से कोटवाल है कर लैंदा है सिर बसिर वा काल कौतकी तमाशकार है कुटवाल श्री शुक्राचारज है दैत गुरु ।१। जिस

(पिछले पृष्ठ से)

जिस महाराज के घर मै ब्रह्मा ~~कुिअनर~~ कुमिआर है चार मुषा कर (डावडा) डोलने वाला जिसने बिस समूह संसार रचिआ है। फेर जिस भगवंत के घर मै ईशर शिव जी बावला मसत है परंतु जगत गुरु जो है विशनू तिस सरीषा गिआन कथन करीता है किबां ईशर शिर बावला है बाहरों है कैसे के जगत गुरु तत को सार स्रेशट सा अकाशवत बिआपक जिसके गिआन भाषणि कहीदा है पाप पुनं जिसके डागीआ चोपदार है दुआरे पर चित्र गुपत लिषारी है लिषने वाले धरम राजा जी है परले करने वाला प्रतहार दास है वा पत्रका के पहुचाने वाला दास है सो गुपाल स्री सोमनीक ऐसा राजा है।२।

जिस भगवान के घर गण नदी भ्रिंगी ~~कर~~ धोना टोना गंधरब देव राजी रिषी इंद्रीआ को जीतने वाले ~~बा~~ड़े विचारे ढाडी है जसगाने वाले हैं ~~अ~~ सुंदर गावते हैं सारे शासत्र षाट सांषा पितंजल निआ मी मांसा वसेसक वेदांत बहुरूपीआं है नकली कोई कुछ कहै कोई कुछ कहै अनगरु बड़ा अषाड़ा है संसार है मंडलीक जो राजे हैं वेसों के बोला बचनां को बोलदे हैं काहे बनाइ के सुंदर धरमपुत्र जुधिशटर जैसा बोलता था क्रिशन जी पास चौर फुलावंदी है जिसको पवन जिस को चेरी दासी शक्ती समृथा से चौदा ही लोक जिते है कवन लोक।४। अंडबूक, ब्रहमंड कटाह प्रिथी अकास दो ईस्र के मसमती चुला है सो त्रिभवना का पती ऐसा राजा है भिमूती वाला।३। समभूती हैजिस के घर मै कूरमा कछु पलंघ है पाल सहस्र फनी सैसनाग जो है एह सेज है नासक नाग जो है सेज वालू सेज बंध है ठारां भार जो है बिनासपती इह मालन है फुल चढ़ाने वाली भार का निरंना सतजुग मै बतीमन का था त्रेते का सोलांमन का था दुआपुर मै अठ मन का था कलजुग मै पंच मन कचे का दो मन पके का भार है जाति का ब्रिछ इक पता लैना जैसे पिपल का इक पता अंब का इक पता ऐसे ठारा भार है छिनवे क्रोड़ी मेघों की माला पानी हारीआं फनीवरीआं है नषा प्रवेश पाठत्र होता है नोहां पैरों के मै प्रवेश है महाराज के गंगा का ~~बानब~~ बानबों का प्रवेश मुड़का है पैरोंका प्रमातमा का सत समुद्र जो की घड़ैथलीहै इतने जीव

भावार्थ ही दिया गया है।

भक्त वाणी के तीसरे व्याख्याता बिशन सिंह ज्ञानी है जिन्होंने शब्दार्थ करते समय एक एक पद को लेकर उनकी व्याख्या की है और व्याख्या से पूर्व उन शब्दों का अक्षरार्थ भी किया है। कई शब्दों को और अधिक स्पष्ट करने के लिए नीचे पुनश्च लिख कर उनका शब्दार्थ कर दिया है। उनकी व्याख्या शैली देखें।[१]

(पिछले पृष्ठ से)

जिसकी वरतन है सो त्रिभवन धनी ऐसा राजा है वह सभिग्री है जिसकी।४।

जिसके घर मै निकट वरती है अरजन सषा ध्रूह भगत प्रहलाद भगत अंबरीक राजा जिसका सुद्रशन चक्र पहरा रहता था नारद नैजे वी भगत हूआ है ६१ नैजे प्रट प्रगट है सिध चौरासी बुधीवान वानो ग्रहान समूह गंधरब बनते बन रहे हैं। है लाहला करने वाले का बंवजा बीर सिकारी है इतने जीव ~~सिम~~ जिसके घर मै है सरब के अंत्र हरी विआपक है उचारते हैं नामदेव जी तांची तिसकी आन सरन हां सारे ही भगत जिसके निशान निगारे है वा प्रगट है भगत सारे ही।५।

-भक्तवाणी सटीक- पोथी दूसरी भगवानसिंह-
पृ० १००८-१०१४

१- रागु मलार बाणी भगत नामदेव जी की।
एक ओंकार सतिगुरु प्रसादि।   सेवीले गोपाल राइ अकुलनिरंजन
भगति दानु दीजै जाचहि संत जन।१।रहाउ

(हे वाहिगुरु, ठकुर संबोधन विच अते है भाई किसे आदमी प्रति उपदेश की अरथ करदे हन।)

माइआ तों रहित अकुल गोपाल राइ सेवीए भगती दान दिउसंत जन मंगदे हन।

जाचे घरि दिग दिसे सराइचा बैकुंठ भवन
चितु साला सपत लोक सामानि पूरीअले।

दिग- दिगपालु हाथी। सराइचा- घनातां, भवन: घर। सपत- सह

(पिछले पृष्ठ से)

(जाचै- दा अखरी अरथ मंगणा हुंदा है पर एथे (जिस दे घर) इस पद का बोधक है।)

जिस दे घर दस दिसां ही कनातां हन अते बैकुंठ भवन चितु भारी कीती होई शाला है, सत लोक समान नगरीआं हन।

जाचै घरि लछिमी कुआरी। चंदु सूरजु दीवड़े।

कउतकु कालु बपुड़ा कोटवालु सु करा सिरी सु ऐसा राजश्री नरहरी।
जिसदे घर लखमी कुआरी है अते चंद्रमा सूरज दीवे हन अते तमाशे करन वाला काल विचारा कोतवाल है सो जिसदा (हुकम) सारिआं दे सिर उते है सो इकुर दा प्रकाशक सुमाइ मान तरां नूं हरिआ करन वाला वाहिगुरु है।

जाचै घरि कुलालु ब्रहमा चतुरमुख डांवडा जिनि विस्व संसार राचीले
जाकै घरि ईसरु बावला जगत गुरु तत सारखा गिआन भाखीले।

कुलालु- घुनिआरा। डांवडा- डैल, ढालणा, बालक, विचारा।
विस्व- संसार, सारखा- वरगा।

जिसदे घर चौह मूहां वाला ब्रहमा घुनिआर सचे ढालणा वाला है ~~जिस सब~~ जिसने सारा संसार रचिआ है, जिसदे घर शिव जी बौरा जगत गर सचा स्रेसट गिआन कथन करन वाला है।

पापु पुंन जाचै डागीआ दुआरै चित्र गुपत लेखीआ
धरम राइ परुली प्रतिहारा- सो ऐसा राजा स्री गोपालु।२।

डांगिआ- चोबदार

पाप पुंन जिसदे बूहे उते चोबदार हन चित दी किसी होई बात लिखणा मुनशी है अते धरम राजा अदालती है सो इकरु दा राजा स्री गोपाल है।

(पिछले पृष्ठ से)

जाचै घरि गण गंधरब रिषी बुपड़े ढाढी आ गांवत आधै।
सरब सास्र बहु ~~रूपभ~~ रुपीआ अन गरुआ अषाड़ा मंडलीक बोल बोलहि काहे।

बुपड़े- विचारे। ढाढीआ- यस करण वाले। बहुरुपीआ- मंड
अनागरुआ- भारा। काहे- कछ, तुले होए।

जिसदे घर (शिव जी दे) गण अते देवतिआं दे रागी रिषी विचारे
हो गवये ढाढी हन, सारे शासत्र सांगी अते बड़ा भारा अषाड़ा देवतिआं देवां
मंडला वालिआ दा है जेहड़े बेढे सोहणे सुंदर बोल बोलदे हन।

चउर ढुल जाचै है पवणु। चेरी सकति जीति लै भवणु।
अंड टूक जाचै भसमती। स्री अैसा राजा त्रिभवण पती।५।

भवणु- घर। अंड- अंडा। टुक- टुकड़ा। भसमती- चुल्हा (जिसदे घर)
पौण चौरी वाला है अते शकती दासी है ~~ज~~ जिसने सारे लोक जित लए हन,
सारा भारथ षंड चुल्हा है। सो इकुरदा राजा तिन लोकां दा पती है।

जाचै घरि कूरमा पालु सहस्र फनी बासक सेज वालूआ।

कूरमा- कछू। सहस्र- हजार। बासकु- ~~सेस्नन~~ शेशनाग।

जिसदे घर कछू (पालु) पलंघ है अते हजार फणा वाला बाशक नाग सेजा
अते सेज बंध है।

अठारह भार बनासपती मालणी।
छिनवे करोड़ी मेघ माला पाणी हारीआ।

अठारह भार बनासपती मालणी है अते छिनवे करोड़ मेघां दीआं मालां
पाणी भरन वालीआं (फनीउरीआं) हन।

बिशन सिंह ज्ञानी की व्याख्या बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। इन्होंने व्याख्या आरम्भ करने से पूर्व विषय सूचि में प्रत्येक शब्द के साथ एक एक पंक्ति में उस शब्द का भावार्थ दे दिया है। इस प्रकार का क्रम हमें कहीं भी भक्त बाणी व्याख्याताओं में देखने को नहीं मिला। इसके साथ आरम्भ में भक्तों के जीवन सम्बन्धी थोड़ी बहुत जानकारी भी दी है। जिसे तारा सिंह नरोत्तम ने नहीं अपनाया। बिशन सिंह ज्ञानीने प्रत्येक पंक्ति का अला-अलग से शब्दार्थ कर व्याख्या की है। इन से पूर्व ऐसा नहीं था। इनका टीका स्वरुप,. सरल, और सहज बोधगम्य बन पड़ा है।

(पिछले पृष्ठ से)

नष प्रसेव जाचे सुरसरी
सपत सुमंद जाचै घड़थली।

नष- नहुं। प्रसेव- मुड़का। सुरसरी- गंगा, सपत- सत, थली- जग
जिसदे घर नहुंआ दा मुड़का गंगा है अते सतसुमुद्र घड़े दी जगा है।

एते जीऊ जाचै बरतणी सी अैसा राजा त्रिभवण धनी।४।
जिसदे घर इतने जीव वरतणा भाव नौक हन सो इकुरदा राजा तिना भवणा दा धणी है।

जाचै घरि निकटि वरती अरजुन ध्रू प्रहलादु

अंबरीकु नारदु नेजे सिध बुध गण गंधरब बानवै हेला।
एते जीअ जाचै हहि घरी।
नेजे- किस भगत दा नाम है। हेला- शिकारी लीला।
जिसदे घरपास रहिणा वाले, अरजन ध्रू, प्रहिलाद, अंबरीक, नारद, नेजे सिध बुध गण गंधरब बानवे करोड़ दी लीलहा है इतने ब जीअ जिसदे घर हन।

सरब बिआपिक अंतरहरी। प्रणवै नामदेउ तांचीआणि
सगल भगत जाचै नीसाणि। ५।

इनके पश्चात हम ज्ञानी नैरेण सिंह की टीका-देखते हैं।[१] कि इनकी टीका शैली किस प्रकार की थी। इनकी टीका व्याख्या देखें तो ज्ञात होता है कि इनके पास पुरातन रचनाओंके बारे में जानकारीतो बहुत है परन्तु भाषा की उतनी पकड़ नहीं।

(पिछले पृष्ठ से)

पुरावे- कहिंदे।

सारिआं विच हरी विआपक है। नामदेव जी कहिंदे हन मैंनू तिसदी सुगंद है जिसदे श्री सारे भगत प्रवानहन।

भगत वाणी- गिआनी बिशन सिंह। पृ० ४३६- ४४२

१- बाणी भगत नामदेव जीउ की
एक ओंकार सतिगुरु प्रसादि
सेवी ले गोपाल राइ अकुल निरजन।भगति दानु दीजै जाचहि संतजन।१।
रहाउ।

(हे भाई। उस) कुलतों रहित निरंजन गोपालु राजे नूं सिमरना चाहीदा है।
(जो) भगती दान देंदा है, अते (जिसतों) संत जन मगदे हन।
जाचे घरि दिग दिसै सराइचा बैकुंठ भवन चित्रसाला संपत लोक सामानि पूरीचलै
जिसदे घर विच (दिग) दसदिसा(सराइचा) कनातां हन बैकुंठ लोक (चित्रसाला) ससि महल है, अते सत लोक (जिस दीआं मामूली पूरीआं हन)।

जाचे घरि लछिमी कुआरी।चंदु सूरजु दीवड़े कउतकु काल
कपुड़ा कोटवालु सु करा सिरी। सु असा राजा स्री नरहरी।१।

जिसदे घर विच कुमारी बारां तों सोलां बरसा (दी इसत्री) लछमी ही चंद ते सूरज दीवे हन, काल विचार (जिसदे घर विच) कौतकी (तमाशा करन वाला) है, उह(काल सिर सिरपती) पर लैंदा है। उह (नरहरी) वाहिगुरु राजा इस तरहां दी (स्री) सोभा वाला है।१।

(पिछले पृष्ठ से)

'जाचै घरि कुलालु ब्रह्मा चतुर मुखु' डांवडा जिनि बिश्व संसारु राचीले।'

जिसदे घर विच शिव जी बाउला है, अते (तत सारषा) उसदे वरगा ही जगत गुरु विशनू (जिसदे घर विच) गिआन कथन वाला है।

पाप पुंनु जाचै डांगीआ दुआरै चित्र गुपतु लेषीआ।

जिसदे बूहे ते पाप पुंन चोबदार हन अते चित्र गुपत लेषा का मुनशी है।

'धरम राइ पुरली प्रतिहार ग्रु अेसा राजा स्री गोपालु।२।

(जिसदे दरबार विच) (परली) परलो करन वाला धरम राजा प्रतिहार (पहिले समे विच इक राज करमचारी, जो सदा राजे दे कोलर हिंदा अते सम तरहां दे समाचार राजे नूं सुणादां, अकसर इस पद उते कोई लिषिआ पड़िआ ब्राह्मण जो राजवंश दा कोई पुरश इसथित हुंदा सी। उह गोपाल राजा इस तरहां दी सोभा वाला है। 'जर्न

'जाचै घरि गण गंधरव ते विचार रिषी ठाडीआं (वागूं षड़े होए जस) गाउंद (आधे) हन।

'सरब सासत्र बहु रुणीआ अन गरुआ आषाड़ा मंडलीक बोल बोलहि काछे'

(सारे सासत्र (जिसदे दरबार विच) बहु रुपीआं। नकलीए हन (अन) अते (जिसदे गरुआं) वड़े भारे अषाड़े विच(मंडलीक) मंडलेश्वर (काछे) सोहणे बचन बोल के (जस करदे हन)।

चउर ढूल जाचै है पवणा। चेरी सकति जीति ले भवणु।'

जिसदे उत्तर उत्तर उते पवण चौर ढुला रही है (जिसदी) दासी माया ने (सारे) लोकां नूं जित लिआ है।

अंड दूक जाचे मसमती सो असा राजा त्रिभवण पती। ३।

इह (अंड दूक) ब्रहमंड जिसदा (मसमती) चुल्हा है, उह तिनां लोकां दा स्वामी इस तरहां दा राजा है।

जाचे घरि कूरमा पालु सहस्र फनी बासकु सेज वालूआ।'

जिसदे घर विच (कूरमा) कछूप (पाल) पलंघ है, हजार मूंह वाला शेशनाग सजा है, अते) बाराक (नाग जिसदा) सेज बंद है।

'अठारह भार बनासपती मालणि छिनवे करोड़ी मेघ माला पाणी हारीआ।'

अठारां भार बनासपती (जिसदी मालण है, छिनवे क्रोड़ बदलां, दी फौज पाणी भरन वालीआं (भरीऊनीआं) हन।

'नष प्रसेव जाचे सुरसरी। सपत समुद जाचे घड़थली।'

जिसदे नौहां दा (प्रसेव) पसीना गंगा है, अते सते समुदंर जिसदी घड़वंजी हन)
'एते जीअ जाचे वरतणी। सो असा राजा त्रिभवण धणी।'४

जिसदे (घर विच) एने जीव वरतणां हन। उह तिनां लोकां दा मालक इस तरहां दा राजा है।

'जाचै घरि निकट वरती अरजनु ध्रू प्रहलादू अंबरीक नारदु नेजे सिध बुध गण गंधरब बानवे हेला।'

'जिसदे घर दे निकट वरती अरजनु ध्रूह, प्रहलाद, अंब्रीक ते नारद (नेजे) प्रगट हन अते सिधु बुध गण, गंधरब ते बवंजा (बीर जिसदे) (हेला) शिकारी हन।

एते जीऊ जाचे हहि घरी। सरब बिआपिक अंतरहरी।'
जिस दे घर दे इने जीव हन। (उह) हरी समनां दे अंदर विआपक है।
'प्रणवे नामदेउ तांची आणि। सगल भगत जाचे नीसाणि।५।
नामदेव जी कहिंदे हन (मैं) उसदी (अणि) सरणी हैं। सारे भगत जिसदा नीसाणि भंडा हन। -भगतां की बाणी-नरैण सिंह ज्ञानी-पृ० ३११-३१३

इनको भी प्राचीन टीकाकारों के समान एक शब्द के कई अर्थ करने की आदत है। परन्तु फिर भी इनकी टीका वैज्ञानिक और रोचक अन्य टीकाओं के समान नहीं बन पड़ी।

इसी प्रकार सम्पूर्ण सिंह ने टीका करते समय भक्तों की वाणी का नाम भगत वाणी मर्म बोधनी टीका रखा है। इनके मतानुसार टीका करने वाला मनुष्य बड़ा ऊंचा व्यक्तित्व का हो सकता है। टीका आरम्भ करने से पूर्व सम्पूर्ण सिंह ने भक्तों की वाणी की प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता का उल्लेख किया है। टीके के अन्दर भक्तों की समस्या का समाधान करने का प्रयत्न किया है कि वे निर्गुण सन्त थे या सगुण? उनका योग, वेदान्त उपासना किस प्रकार की थी? और गुरु मत के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध किस प्रकार का था? सम्पूर्ण सिंह ने बताया है कि गुरु वाणी की तरह ही इन भक्तों की वाणी भी सही है। टीका का उचित रुप इनकी टीका शैली में देखा जा सकता है।[१]

टि १- राग मलार बाणी भगत नामदेव जीउ की-
एक ओंकार सतिगुरु प्रसादि।

सेवी ले गोपाल राइ अकुल निरंजन। भगति दानु दीजै जाचहि संत जन।१।रहाउ। सेवणा (अराधना) कर लवो (सति संगिउ जिग्यासीउ) प्रिशटी दे पालन हारे गोपाल राइ (जिगतनाथ) तूं जिसदा नाता कोई कुल गोत है (अजनमा होणा करके) अते जो अजन (माया कलक) तो रहत (निरंजना है संत लोक(सहो ही) मंगदे रहिंदे हन (उस पासों)- दिउदान (आपनी भगती दा।

'जाकै घरि दिग दिसे सराइचा बैकुंठ भवन चित्र साला सपत लोक सामानि पूरी अले। जाकै घरि लछिमी कुआरी।चंदु सूरजु दीवड़े कउतकु काल बपुड़ा कोटवालु सुकरा सिरी। सु ऐसा राजा स्री नरहरी। १।

जिसदे घर दिग (दिगजां राहीं थमीआं होईआं) दिशें (दसो दिशोंही) सराइचा (कोटी जेही सरावां- निका जिहा मकान) है (समूह जीवां दे वसन लई। बिकुंठ भवन जिंदी चित्रकारी (हरि सजिआ) मंदिर है, सतां लोकां (अंदर ली विभूती) सामान (समग्री सम्यान) भरिआ पिआ है (जिस मंदर

दे अंदर)। जिसदे घर (सदा) कुआरि (इसत्री धरमों कदाचित भी दूषित ना होणा हारि) लक्ष्मी है। सूरज ते चंद्रमा (जिस दे घर दोनों) दीवेहन, (सभें अंदर हेर फेर रुप कौतुक करन वरतान वाला) कउतकू काल विचारा कोटवाल है, सुकरा (बड़ा करड़ा) सिरी जीवां दे सिर ऊपर) ऐसा है उह राजा (प्रतापवान) श्री भगवान।१।

'जा कै घरि कुलालु ब्रह्मा चतुर मुखु डांवडा जिनि विश्व संसारु राचीले। जा कै करि इसरु बावला जगत गुरु तत सारखा गिआनु भाखीले। पापु पुंनु जा कै डांगीआ दुआरै चित्र गुपतु लेखीआ धरम राइ परुली प्रतिहार श्री ऐसा राजा श्री गोपालु।

जिसदे ही स्रिश्टी संसार सरुपणि रची होई है। जिसदे घर (अक धबूरा खा) बैरा रहण वाला ईश्वर (महादेव) है जिसने खा+ तत + सार+ ग्यार-अकाश आदि तंता दे सार तत (परमतत) दे, ग्यान नूं जगत गुरु (संका चारय सरुप) ही उचारण कीता है (समूह विदांत शासत्र नूं) जां चे (जिसदे) दुआरे ते पाप पुंन डांगीए (चौ बदार पहरेदार) हन अते चित्रगुपत लिखारी मुनशी है-ते परुलीं पारले परलोक पासे दा (इनां सम डिउढी दे सेवादारां पुर) प्रतिहार (डयोढी दा सिरदार है, धरम राजा। उह ऐसा (उक्त विभूतीआं वाला) महाराज श्री गोपाल है।

'जा कै करि गण गंधरब रिखी बपुडे ढाठीआ गांवत आखै।
सरब सासत्र बहुरुपीआ अनगरुआं आखाड़ा मंडलीक बोल बोलहि काछै।

चउर + ढुल जां चै है पवणु। चेरी सकति जीति लै भवणु। अंड टूक जा चै भसमती। सो ऐसा राजा त्रिभवण पती। ३।

जिसदे कर (जै बिजै आदि। गुण, दिव्य रागां दे गायक गंधरब, स्रुतीआं रिचां आदि दे उचारण करते रिखि लोक विचारे ढाडी (आपो आपणि वरतों अनुसार) गाइन करदे आखै (रहिंदे हन) संपूरण शासत्र (युक्तीआं उक्तीआं

(कथा आदि द्वारे अनेक रूप बदलन हारे) बहु रूपीए (सांग धारी)हन- जिनां दी उटलै- दारशनिक लोकां तथा) मंडलीक (लोक पालां) दा अन गरुआ (अ+ न+ ग रुआ- नहीं + नहीं+ गरुआ - नहीं है नहीं है भारी) - (अैसा) बड़ा भारी अषाडा (पिड़ बफा रहिंदा) है जिस विच इह सभै) काछे (सुंदर सुंदर) बोल बोलदे रहिंदे हन। चौर ढुलान वाला है जिसदा पौणा (अते जिसदी दासी लक्ष्मी- माया। तै सारे भौणां नूं ही जित रषिआ है। अंडे दा टुकड़ा ब्रहमांड षंड) जिसदा चुला है। उह है अैसा जेहा (प्रतापी) महाराज त्रिलोकीनाथ। ५।

जाचै घरि कूरमा पालु सहस्र फनी बासकु सैज वालू आ।
अठारह भार बनासपती मालणि छिनवै करोड़ी मैघ माला पाणी हारीआ।

नष प्रसैव जाचै सुरसरी। सपत समुंद जाचै घड़थली। एतेजीअ जाचै वरतनी।
स्री अैसा राजा त्रिभवण धणी। ४।

जिसदे घर कूरम (कछू भगवान) पालु (पलंघ है, हजार फनां वाला शेशनाग संजा (विछी होई है। अते बासक नाग सैज बंद है। अठांरा भार बनासपती मालण है। (हार सिहरे गुंदन हारी) छयानवें क्रोड़ मैघमाला पाणी छिड़कणा हारे (वा-पानी हारे- कहार) हन। इतने (जितने भी) जीव स प्रिश्टी भरदे। हैन (इहसभा) जिसदे बरतन हन (इनां वे अंदरी भोगता पुरष ही बिराजमान होणा करके) उह अैसा (विभूती वान) महाराज त्रिलोकी दा मालिक है।४।

जाचै घरि निकटि वरती अरजनु घ्रू प्रहिलादु अंबरीकु नारदु
नै जै सिध बुधगण गंधरब बानवै हेला। एते जीअ जाचै हहि घरी।
सरब बिआपिक अंतर हरी। प्रणवै नामदेउ तांची आणि। सभ लगभग
जाचै नीसाणि।५।

जिसदे घर अरजन (सारथी) निकटवरती (मित्रसंषा) हन, धरु प्रहिलाद अंबरीक जोहै भगत हन, नारद (जैसे मुनी) नैजे जैसे रिषी, सिध देवते, बुध देवते, जय विजय आदि गण (पारषाद) (हाहा हूहू आदि) गंधरब (तथा) बविजां

सम्पूर्ण सिंह ने तारा सिंह नरोत्तम के समान नामदेव के पूरे शब्द की एक साथ व्याख्या न करके शब्द के एक-एक भाग या पद की व्याख्या की है। व्याख्या करते हुए साथ ही साथ शब्दार्थ भी देते गए हैं। इनका प्रयास व्याख्या को सरल बनाने की ओर रहा है।

इन सब के उपरान्त हम फरीदकोटी टीका से इसकी व्याख्या देखते हैं।[१] जिसे सबसे अधिक महत्व दिया गया है। इन्होंने नामदेव के इस शब्द की व्याख्या भी अन्य व्याख्याकारों के समान की है।

(पिछले पृष्ठ से)

वीर होला (खेल खेलन हारे) हन। इतने जीव (ऐसे ऐसे) जिसदे घर हन उह हरी सभनां दे अंदर अंत सभनां विखे विआपक (परीपूरण) है। मैं आखदा जे तिसदी आण (आखा रखादा होया वा उसदी सुंगद खाके) (कि) सारे भगत ही जिस उसदे नीसाणि (निशानची- झण्डे ब्रदार जा नगारची। हन (उसदी कीरती दा चंदु कुटी डंका बजान. हारे वा फरेश फुलाणा हारे।५।१।

भक्तवाणी- सम्पूर्ण सिंह- पृ० ४०३-४०५

१- राग मलार बाणी भगत नाम देव जीउ की।

एक ओंकार सतिगुरु प्रसादि। सेवीले गोपाल राइ अकुल निरंजन

भगति दानु दीजे जाचहि संत जन।१। रहाउ।`

हे भाई अकल निरंजन गोपाल राइ का सेवना करीए जब संत जन मांगते हैं सो भगती दान मेरे को दीजीए। प्रसन बहु कैसा है? उत्र जाचे करि दिग दिसे सराइचा बैकुंठ भवन चित्र साला संपत लोक सामानि पूरी अले।`

(जाचे) जिसके घर विखे (दिग) दिगपाल हसती (सराइचा) किनातां के तानणे वाले हैं दिशा और बदिशा कनातां है पुनह चित्रत कीती हुई (साला)

जगा बैकुंठ घर है भावसभ से उतम लोक है सपत लोकों मै समान्यता करपूरन हो रहा है। वा सात लोक समान पुरीआं है।

'जांचै घरि लछिमी कुआरी। चंद्र सूरज दीवड़े कउतकु कालु
बपुड़ा कोटवालु सुकरासिरी। सु ऐसा राजा स्री नरहरी। १।'

पुनह जिसके घर मै लछमी कुआरी है भाव असंग पुरुषा है वा पूजा भाव संतान ना होने ते कन्यां रुप है इस वासते कुआरी करी है। चंद्रमा अर सूरज दीवे है और (बपुडा) बेचारा कोतकी जो काल है सो कुतवाल है जिसका सभ के सभ सिरों पर कर है सो ऐसा स्री नर सिंघ रुप राजा है।१।

जांचै घरि कुलालु ब्रहमा चतुरमुषा डांवडा जिनि बिस्व संसारु राचीले।'

जिसके घरि मै ब्रहमा चतुरमुषी (कुलालु) कुमार (डांवडा) इणलवा घड़के जिसने संपूरन स्रिश्टी को रचा है।

'जा के घरि ईसरु बावला जगत् गुरु तत सार षा गिआनु भाषिले।'

जिसके घरि मै सिवजी बावला जगत का (गुरु) पूज्य और (तत) विसनूं सारषा तिसको ग्यान कहीता है वा (तत) सार रुप (षा) आकास बत व्यापक ब्रहम तिसका ग्यान ईश्वर को कहीता है।

'पाप पुंनु जांचै डांगीआं दुआरै चित्र गुपत लेषीआ।धरम राइ परुली प्रतिहार।

पाप और पुंन एह दोनों जिसके द्वारे पुर (डांगीआ) चोबदार है और चित्र गुपत जिसका (लेषीआ) लिष्णे वाला मुनसी है धरम राइ प्रली करने वाला अरथात मारने वाला (प्रतिहारु) षास पत्र लिआने लिजाने वाला चिठी रसान है।
स्री ऐसा राजा स्री गोपालु। १। सो ऐसा राजा स्री गोपाल है।२।
जांचै घरि गण गंधरब अर रिषी बेचारे ढाडी जिसको गावते हुए (आखे) सोभते हैं। वा हछे हछे गीत गावते हैं।

सरब सासत्र (बहु रुपीआ अनगरुआ आषाड़ा मंडलीक बोल बोलहि काके।

सरब सासत्र (बहुरुपीआ) स्वांगी है। भाव सासत्र बहुत मतों को कथन करते हैं। बहुत प्रकार (अनगरुआ) बड़ा अषाड़ा संसार है (मंडलीक) राजे अरथात लोकपाल (काके) कहे हूए अरथात तुले हूए वा सुंदर बोल कर उसतती करते हैं।

चउर ढूल जांचै है पवणु। चेरी सकति जीति लै भवणु।

जिसका पवन चवर (ढूल) ढुलावणे वाला है और (सकति) माइआ जिसने चौदां भवन जीत लीए हैं सो दासी है।

'अंड टूक जाचै भसमती। ग्री ऐसा राजा त्रिभवण पती।'

अंड कोस का टुकड़ा अरथात भारथ षंड रहु जिसका (भसमती) चुला है। भाव इस षंड मै यग्य आदिकों कर परमेस्वर की पूजीता है वा अंड के जो टुकड़े हैं भाव प्रिथीआकास इह दो चुले दे वटे हैं इहु ऐसा (भसमती) चुला है सो ऐसा राजा त्रिलोकी का पती है।

'जाचै करि कूरमा पालु सहस्र फनी बासकु सेज वालूआ।'

जिसके घर मैं (कूरमा) कछु(पालु। पलंघ है सहस फनी शेश नाग सेज बिछ रही है और बासक (वालूआ) सेज बंद है।

'अठारह भार बनासपती मालणी छिनवै करोड़ी मेघ माला पाणी हारीआ।
जिसके अठारां भार बनासपती मालणी है और छिनवै क्रोड़ मेघमाला पाणी भरनै वाले फीवरीआं हैं।

नषा प्रसेव- जाचै सुरसरी। सपत सुमंद जाचै घड़थली।
(सुरसरी) गंगा जी जिसके नषों का (प्रसेव) पसीनां अरथात् मुंढका है नारद जी ने राग करके प्रमेश्वर को प्रसन कीआ था बिसन जी द्रवकर जल रुप हो गए थे तिसके नषों का जल ब्रह्मा जी ने कर मंडल मै पाइ लीआ जब

त्रिलोकी मात ते ब्रह्मांड षपर को फोड़ के गए थे तब उससे बावन भगवान के चरन धोए थे सो गंगा भई सरीर का द्रव जलु लेकर नारद जी ने रागनीउं के ऊपर सिंच कर तिन के अंग सिर जीत कीए जो भसमे गावने कर दूरे हूए थे इस वासते नषों का पसीना गंगा जी कही है और सात समुंद्र जिस परमेश्वर दे घडिउ के असथान है।

एते जीआ जाचै वरतणि। सो ऐसा राजा त्रिभवण धणि।

जिस वाहिगुरु के (एते) इतने जितने जीव मैंने कहे हैं(वरतणि) बरतणा है भाव जिसकी जितनी विभूती है सो ऐसा राजा त्रिलोकी का मालकु है।

जाचै घरि निकटवरती अरजन ध्रू प्रहलादु
अंबरीकु नारद, नैजै सिध बुध गणा गंधरब बानवै हेला।

जिसके अरजन ध्रू प्रहिलाद अंबरीक अरु नारदु नैजे नामु रिषि आदिक भगत निकटवरती अरथात सामीपी अहिलकार वा (नैजै) प्रगट ही है सिध अरु बुद्ध बुध्यादि नव ग्रह गणा नदी आदिक वा गंधरवों का (गणा) समूह जिसका हेला) खेल (बानवै) बना हूआ है वा (बानवै) बंवजा बीर जिसके (हेला) हैड़ा सिकार संबंधकर सिकारी है।

एते जीअ जाचै हहिघरी। सरब बिआपिक अंतर हरी।

इतने जीव जिसके घर में है सो हरी सरब के अंतर व्यापकु है। प्रणवै नामदेउ तांची आणि। सगल भगत जाचै नीसाणि। ५।

नामदेव जी कहिते हैं मैं(तांची) जिसकी सुगंध करता हूं वा तिसकी सरणा लई है और सभी भगत जिसके (नीसाणि) नगारा बजा रहे है वा भन्डे है भाव तिसके जस को प्रगटावते हैं।५।

-- फरीद कोटी टीका- पृ० २६२७-२६२६

फरीदकोटी टीका के व्याख्याकार तारा सिंह नरोत्तम के समकालीन हैं। इन पर भी नरोत्तम के समान पौराणिक परम्परा का प्रभाव पड़ा होने के कारण इनकी व्याख्या शैली बहुत कुछ नरोत्तम से मिलती जुलती है। मुख्य अन्तर केवल यही दृष्टिगत होता है कि फरीदकोटी टीका वाले एक एक पद की या एक एक पंक्ति की व्याख्या करते हैं और नरोत्तम सम्पूर्ण शब्द की एक साथ व्याख्या कर डालता है इसके अतिरिक्त नरोत्तम की भाषा की अपेक्षा फरीदकोटी टीका की भाषा सरल, स्पष्ट, सहज बोधगम्य है जो टीका शैलीकी विशेषता को लिए हुए है।

आधुनिकता की दृष्टि से भाई जोध सिंह कीभक्तवाणी व्याख्या को देखते हैं। इससे पूर्व भाई जोध सिंह ने स्वयं टीका सम्बन्धी अपने विचारों को प्रस्तुत किया है कि इन्होंने केवल अक्षरार्थ कर पाठक के[1] ~~ल~~ ऊपर डाल दिया है कि वह स्वयं अपनी बुद्धि का प्रयोग कर व्याख्या करे।

भाई जोध सिंह व्याख्या आरम्भ करने से पूर्व ततकारा, भूमिका, और फिर व्याख्या करते हैं। भूमिका में ही कई भक्तों के जीवन, जात-पात ~~कब~~ का उल्लेख कर दिया है ताकि पाठक किसी प्रकार की शंका न उठा सके। इनके अनुसार टीका लिखने से पूर्व तीन टीकाएं पहले की उपलब्ध थीं परन्तु उनकी भाषा इतनी कठिन है कि साधारण लोग गुरुवाणीको बिना व्याख्या के कई स्थानों पर समझ लेते हैं

१- टीका करन वेले इह षास षिआल रषिआ गइआ है कि पद सौषे ते सौषे ते थोड़े ते थोड़े वरते जाण ते उह ~~असरथ~~ अरथ कीता जावे जो अषरी है। ते बाणी दे सारे भाव नाल मिलदा है। टीके विच सारी थां पूरा यतन इह रहिआ है कि शब्द दा अरथ पढ़न वाले नूं पूरीतरां पले पै जावे, पर लमें चौड़े भाव अरथ लिषणे मैं जरूरी नहीं समझे। कारन इह है इक तां पुसतक दा आकार वधण दा डर सी दूजा इह कि मैं नहीं सा चाहुंदा जो होरनां दी बुधी नूं कम करनों रोकिआ जावे। अषरी अरथ साफ कर दित्ते हन, पर किउं ना हर इक सजण भाव समझण विच आपो आपणी बुधी दुडावे?

-भगत बाणी- भाई जोध सिंह- भूमिका

परन्तु वे टीका को देखकर चक्कर में पड़ जाते हैं। अत: इनकी टीका व्याख्या देखें।[१]

१- राग मलार बाणी भगत नामदेव जी की।
एक ओंकार सतिगुरु प्रसादि।

सेवी ले गोपाल राइ अकुल निरंजन - - - - सगल भगत जाचे नीसाणि।५।

अकुल- कुलरहित। जाचे- जिसदे। दिग- दिशा (सराइचा- धोटातंबू चित्र साल- जिथे चित्रकार बैठ के मूरतां बणांदा है। सुकरासिरी- उहदा सिर सिर प्रतीकर है। अगनी वरणी जिस दी प्रभा है। कुलाल- कुम्हिआर। डांवडा- बणाण वाला, डौलण वाला। विश्व-सारा। डांगीआ- चोबदार, परुली- परलो करणा वाला। प्रतिहार- दरबानु, डेउढी वाला। अगरुआ- छोटा जेहा। जो (गुरु) वड़ा ना होवे। मंडलीक- उह राजे जो वडे महाराजे ओ घर मरदे होणा। काथे-सुंदर अंडटूक- ब्रह्मंड रुप अंडे दा टोटा, भाव भारत खंडा पाल- पलंघ। सेज वाल। सेजबंद। प्रसेव- पसीना, मुडका। घडुथली-थली रुप प्रिथवी पुर घड़े। वरतणी- मांडे। नेजे- इक रिषी दा नाम है। बानवे-बनावे, बणांदे हन। हेला- खेल। नीसाणि- झण्डा।

अरथ (१)- कुल रहित ते माइआ रहित गुपालराइ दी सेवा करो। हे गोपाल राइ। भगतीदान दिउ। तेरे संत लोक इही हीमंगदे हन। जिहदे घर दिशा जो नजर आउंदीआं हन(भाव सानूं जो दसों ही दिशा दिसदीआं हन, इह इक छोटा जेहा तूं तंबू है उहदा महलतां इन्हां तो किते वड़ा है) छोटाजेहा तंबू हन। ते जो संता ही लोकों विच इको जेहा पूरन है। उह वी चित्रसाल बेकुंठ लोक है। जिहदे घर लक्ष्मी कुमारी सदा रहिंदी है। चंद ते सूरज दीवे हन। विचारा काल जो उहदी इक खंड है ते जो सिर सिर प्रती कर लेंदा है, उहदा कुटवाल है, उह निरंकार औरों जेहा राजा है। १।

२- जिहदे घर चार मूहा वाला ब्रह्मा इक कुम्हिआर है, जिहने डौल डौल के सारा संसार रचिआ है। जिहदे घर शिव जी इक बावला (वड़े राजिआं पास जिकुर मषौली हुंदे हन) है जो शिव जी जगत का गुरु है ते जिहने तत गिआन वरणा गिआन संसार नूं दिता है जिहदे दवारे पाप ते पुंन दो चोबदार हन ते चित्र गुपत मुनशी है। परलो करन वाला धरम राज डेउढी वाला है उह स्री गोपाल अैहो जेहा राजा है।२।

३- जिहदे घर गंधरबा दे ढोल ते विचारे रिषी डाढ़ीआं बांग गउदे हन, सारे सासत्र बहु रुपीए हन (सासत्र इको असलीअत दा कई रुपा विच विचार करदे हन। इस लई बहुरुपीए हन) इह संसार) इक छोटा जेहा अषाड़ा है जिथे कर मरन वाले राजे सुंदर बोल बोल रहे हन। जिहनूं चौरी करन बाली पवन है . जिहदी दासी माइआ ने सारे लोक जित लए हन, इह भारत षाड जिहदा चूल्हा है, उह तिनां लोकां दा पती अैहो जेहा राजा है।३।

४- जिहदे घर ककूकुमा(पुराणा अनुसार ककू कुंमे ने जमीन दा भार चुक चुकिआ होइआ है) तां पलंघ है, हजार फणां वाला शेश नाग जिहदा सैज बंद है। अठारां भार बनासपती जिहदीआं मालणां हन ते छिआनवें करोड़ (बदलां) दी कतार जिहदे पाणी भरन वाली है। जिहदे नहुं दे मुढे के विचों गंगा वगदी है। सत समुंदर जिहदी थल्ली रुप प्रिथवी पर घड़े हन। इने जो जीअ जंत हन इह सभ ~~जिस~~ जिहदे बरतन हन। उह तिनां लोकां दा पती अैहो जेहा राजा है।४।

५- जिहदे घर अरजन ध्रू, प्रहिलाद, अंबरीक, नारद ने जै ते होरसिध ते गिआनी उहदे आसपास रहिणा वाले हन। गंधरवां दे टोले षेड पाउदें हन। इने जीव जिहदे घर हन, सारिआं दे अंदर जो हरी विआपक है। नमदे नामदेव बेनती करदा है, मैंनूं तां उसे दा आसरा है, जिहदा कहा सारे भगत बड़ी फिरदे हन।

-भगत बाणी- भाई जोध सिंह- पृ० ३८०-३८३

भाई जोध सिंह ने टीका करने से पूर्व सम्पूर्ण पद लिखकर फिर उसका शब्दार्थ किया है तथा उसके पश्चात् उसका अर्थ अथवा टीका की है। टीका बड़ी सरल और स्पष्ट तथा जनसाधारण की भाषा में है जिससे साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ कर उलझन से बच सकता है। यद्यपि इनकी टीका बड़ी संक्षिप्त है परन्तु वे टीका विशेषता का लिए हुए है।

इसी प्रकार साहिब सिंह ने भी टीका पद्धति को अपनाया हुआ है। इनकी टीका व्याख्या शैली देखने से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम पद अरथ करके अर्थ दिए हैं।[1]

१- एक ओंकार सतिगुरु प्रसादि
राग मलार बाणी भगत नामदेव जीउ की
सेवी ले गोपाल----- सगल भगत जाचै नीसाणि।।

पद अरथ- सेवीले- मैं तेनू सिमिरिआ है। गोपाल-गो धरती। पाल-पालणहारा। स्रिशटी दी रखिआ करन वाला परमातमा। अकुल-अ+ कुल जिसदी कोई खास कुल नहीं। निरंजन- निर+ अंजन, जो माइ आदी कालखा तो रहित है, जिस उते माइआ दा प्रभाव नहीं पै सकदा। दीजे- किरपा करके देह। जाचहि- मंगदे हन। १।

जाचै करि जिसदे घर विच (नोट-लफज'घरि' विआकरण अनुसार अधिकरण कारक है। इसदे नाल लफज'चे' भी'चै' बण गिआ है।'चै' अते'कै' अते'दे' दा इको ही भाव है, इसे तरहा'चै' दे'अते'कै' दा भी इको ही अरथ है। इसे ही शबद दे बंद नं २ विच'चै' दे थां लफज'कै' है। कुआरी-सदा जुआन, कदे बुढ़ी ना होणा वाली, सदा सुंदर टिकी रहिणा वाली। दीवडे-सुहणे दीवै। दिग दिसै (लफज'दिश' विआकरण अनुसार खास खास हालतां विच'दिक' जा'दिस' बण जांदा है। दिश अते'दिग' दे अरथ विच कोई फरक नहीं पैंदा। सारी आं दिशां, चहुआं दिशादी। सराइचा- कनात। चित्र-तसवीर। साला-शाला, घर चित्रसाल- तसवीर घर। सपत लोक (भाव) सारी स्रिशटी। सामानि- इको जिहा। पूरीअले भरपूर है, विआपक है, मोजूद है। कउतकु- खिडौणा- बुपड़ा- विचारा कोटवालु- कोतवाल, शहिर दा राखा। सु उह काल। करा-कर हाला। सिरी-सम दे सिंश उते। नरहरी-परमातमा।१।

कुलालु- कुमिंआर, भांडे घड़नवाला। चतुरमुख- चार मूहां वाला। डांवडा- सचे विच ढालण वाला। जिनि- जिस (ब्रह्मा) ने। विश्व संसारु- सारा जगत। राचीले- रचिआ, है, सिरजिआ है। जाकैघरि- जिसदे घर विच, ईशर-शिव। बावला कमला। सारषा। सारिष्ट वरगा- बराबरदा। भाषीले- (जिसने) उचारिआ है। ततसारषा- गिआनु भाषिले जिसने असलीअत दसी है, जो मौत दा चेता करांदा है। जाचै दुआरे- जिसदे दरवाजे उते। डांगीआ-चौबदार (लेषीआ- मुनीम-लेषा लिषण वाला। प्रतिहार दरबान। चित्रगुपत (One of the beings in Yama's world recording the vices and virtues of mankind) जमराज दा उह दूत जो मनुषा दे कीते चंगे मंदे करमा दा हिसाब लिषदा है। परुली- परलो लिआउण वाला। स्री (असल लफज 'सो' है, इथे इसनूं सु पड़ना है।

गणा- शिव जी दे षास सेवकां दा जथा, जो गणेश दी निगरानी विच रहिंदा है। गंधरब-देवतिआं दे रागी। गांवत आहे- गा रहे हन। गरुआ-बड़ा। अनगरुआ- छोटजिहा। मन-इषतु सुंदर।

मंडलीक- उह राजे जो किसे बड़े महाराजे अगे हाला भरदे होण। जाचै- जाचै (धीश, जिसदे दरबार विच। चेरी दासी। सकति- माइआ। जीति ले (जिसने) जित लिआ है। अंड ब्रह्मंड स्रिशटी। अंड टूक-ब्रह्मंड दा टुकड़ा, धरती। मसमती-चुल्हा।

कूरमा- विशनू दा दूजा अवतार, कछू-कुमा, जिसने धरती नूं क थम्ह रषिआ है। जदों देवते अते दैत षीर समुंदर रिड़कण लगे, उहनां मंदरा चल नूं मधाणी दे थां वरतिआ। पर मधाणी इतनी भारी सी कि थले धसदी जांदी सी। विशनू ने कछू दा रुप धार के मंदरा चल दे हेठां पिठ दिती। पालु-पलंघ। सहस्र- हजार। फनी-फणां वाला। बासुक-शेशनाग। बालूआ-तणीआं। पारणीहारीआ- पाणी भरन वाले। नषा-नुंहु। प्रसेव-पसीना। नष प्रसेव- नहूआं दा पसीना। जाचै ~~हम~~ जाचै (धीरा सुरसरी-देव नदी, गंगा, सपत-सत। घड़थली,- घड़वंजी। वरतणी- बरतन, भांडे।

निकटवर्ती- नेड़े रहिणा वाला, निजदा सेवक। नेजे- इक रिशी दा नाम है। हेला-खेडा। बावनै- बावन, बवंजा वीर। हहि-हन। धरी-धरविच ताची - उसदी। आणि-उट। जाचे नीसाणि- जिसदे नीसाणा हेठ, जिसदे झण्डे हेठ हन।

नोट- नामदेव जी परमातमा दे अनिन भगत सन, देवी देवते अवतार आदि ~~कन~~ दी पूजा दी उह सदा निषेधी करदे रहे। गौड़ राग विच उह लिखदे हन।

हउ तउ एकु रमईआ लै हउ। आन देव बदलावनि दै हउ।

पर हिंदू कौम विच बेअंत देवी देवतिआं दी पूजा चिरतों तुरीआ रही है। इस शबद विच भगत जी लोकां नूं इस अन-पूजा ते अनेक पूजा तों वरजदे हन, ते आखदे हन कि उस परमातमा दा आसरा लवो जो सारी स्रिशटी दा मालक है अते इह सारे देवीआं देवते जिसदे दर ते सधारन जिहे सेवक हन।

अरथ- मैं तां उस प्रभू दा सिमरन कीता है, जो सारी स्रिशटी दा रखिअक है, जिसदी कोई खास कुल नहीं है, जिस उते माइआ आपणा प्रभाव नहीं पा सकती अते जिसदे दरते सारे भगत मंगदे हन (अते आखदे हन कि हे दाता (असानूं) आपणी भगती दी दात बखश। रहाउ।

उह परमातमा (मानो) इक बड़ा बड़ा राजा है । (जिसदा इतना बड़ा शामीआना है कि इह चारे दिशां (उस शामीआने दी मानो) कनात है, (शाजिआं दे राजमहलां विच तसवीर घर हुंदे हन, परमातमा इक असा राजा है कि) सारा बैकुंठ उसदा (मानो) तसवीर घर है, अते सारे ही जगत विच उसदा ~~हुम~~ हुकम इक सार चल रिहा है।

(राजिआं दीआं राणिआं दा जीवन तां चार दिन दा हुंदा है, परमातमा इक असा राजा है। जिसदे महल विच लक्ष्मी है, जो सदा जुआन रहिंदी है। (जिस दा जीवन ~~कदे~~ नास होणा वाला नहीं) इह चंद ते सूरज (उसदे महल दे, मानो) निके जिहे दीवेहन, जिस काल दा हाला

हरेक जीव दे सिर उते है (जिस काल दा हाला हरेक जीव नूं परना पैंदा है, जिस काल तों जगत दा हरेक जीव थर थर कंबदा है) ते जो काल (इस जगत-रुप शहिर दे सिर उते) कोतवाल है, उह काल विचारा। (उस परमातमा दे घर विच, मानो इक) खिडौणा है।

स्रिशटी दा मालक उह परमातमा इक ऐसा राजा है कि (लोकां दे खिआल अनुसार। जिस ब्रह्मा ने सारा संसार पैदा कीता है चार मूहां वाला उह ब्रह्मा भी उसदे घर विच भांडे घड़न वाला इक कुमिआर ही है(भाव उस परमातमा दे साहमणे लोकां दा मनिआ होइआ ब्रह्मा भी इतनी ही हसती रखदा है जितनी कि किसे पिंड दे चौधरी दे साहमणे पिंड दा गरीब कुमिआर। (इहनां लोकां दीआं नजरां विच तां) शिव जी जगत दा गुरु (है), जिसने (जगत दे जीवां वासते) असल समझणा जो उपदेश सुणाइआ है(भाव, जो सारे जीवां नूं मौत दा सुनिहा अपड़ादां है जो सभ जीवां दा नास करदा मनिआ जा रिहा है। इह जो शिव जी (स्रिशटी दे मालक) उस परमातमा दे घर विच (मानो) इक कमला मस्त मसखरा है (राजे लोकां दे राज महलां दे दरवाजे उते चौबदार खड़े हुंदे हन जो राजिआं दी हजूरी विच जाण वालियां नूं बरजदे जां आगिआ देंदे हन, घट-घट विच वसण वाले राजन-प्रभू ने ऐसा नियम बनाइआ है कि हरेक जीव दा कीता) चंगा जो मंदा कम उस प्रभू दे महल दे दरते चोबदार है (भाव) हरेक जीव दे अंदर हिरदे-घर विच प्रभू वस रिहा है, पर जीव दे आपणे कीते चंगे मंदे कम ही उस प्रभू तों विच करा देंदे हन। जिस चित्र गुपत दा सहिम हरेक जीव नूं लगा होइआ है उह) चित्रगुपत उसदे घर इक मुनीम (दी हसती रखदा) है। लोकां दे माणे। परलो लिआउण वाला धरम राज उस प्रभू दे महल दा इक (ममूली दरबान है।२।

तिन भवनां दा मालक परमातमा इक ऐसा राजा है, जिसदे दर ते (शिव जी दे गण देवतिआं दे रागी अते सारे रिशी इह विचारे ढाढी (बण के उस दिआं सिफतां दीआं वारां) गाउंदे हन। सारे शासत्र (मानो, बहुरूपीए हन, उह जगत मानो, उसदा) निका जिहा अखाड़ा है, (इस जगत दे) राजे

उसदा हालां भरन वाले हन, (उसदी सिफत दे) सुंदर बोल बोलदे हन।
उह प्रभू इक अैसा राजा है कि उसदे दरते पवणा चउर बरदार है, माइआ
उसदी दासी है जिसने सारा जगत जित लिआ है, इह धरती उसदे लंगर
विच मानो चुल्हा है (भाव, सारी धरती दे जीआं नूं उह अप आप ही
रिजक देण वाला है।३।

तिनां भवनां दा मालक उह प्रभू इक अैसा राजा है कि विशनू दा कछ-अवतार
जिसदे घर विच, मानों इक पलंघ है, हजार फणां वाला शेश नाग जिसदी
सेजदीआं तणीआं (दा कम देंदा है) जगत दी सारी बनासती (उसनूं
कुल भेट करन वाली) मालण है, छिआनवे करोड़ बदल उसदा पाणी भरन
वाले (नौकर) हन गंगा उसदे दर बे उसदे नहुआं दा पसीना है, अते सते
समुंदर उसदी घड़वंजी हन, जगत दे इहु सारे जीआं-जन उसदे भांडे हन।

उह प्रभू इक अैसा राजा है जिसदे घर विच उसदे नेड़े रहिण वाले
अरजनु धू, प्रहिलाद, अंब्रीक, नारद, नेजै (जोग साधना विच) पुगे होए
जोगी, गिआनवान मनुष, शिव जी दे गण देवतिआं दे रागी, बंबजा वीर
आदि उसकी)इक सधारण चिन्ह जिही थोड हन। जगत दे इह सारे जीआ-
जंत उस प्रभू दे घर विच हनु उह हरी प्रभू सभ विच विआपक है, सभदे अंदर
वसदा है।

नाम देव बेनती करदा है- मैनूं उस परमातमा दीआ आसरा है सारे भगत
जिसदे फण्डे हेठ (अनंद माण रहे) हन।

गुरुमत दरपण- तीसरा भाग- साहिब सिंह, पृ० २२४-२३०

ऐसा प्रतीत होता है कि विस्तृत ज्ञान का भंडार न होने के कारण भाषा बड़ी साधारण बन पड़ी है।

इस प्रकार गुरु वाणी की व्याख्या के साथ साथ भक्तों की वाणी इस की व्याख्या को भी उतना ही महत्व दिया गया है।

निष्कर्ष यह है कि पंजाब के अनेक व्याख्याताओं ने गुरुवाणी की व्याख्याएं समय समय पर की हैं। व्याख्या ग्रंथों की एक विशाल परम्परा हमारे सामने आती है। उनमें नरोत्तम का विशेष स्थान है- इस विशाल परम्परा में नरोत्तम की व्याख्याकारिता अपनी मार्मिकता तथा अपनी विशेष दृष्टि के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। नरोत्तम की व्याख्या उनके अध्ययन उनकी साधना तथा उनके निरंतर लेखन की साक्षी देती है।

अध्याय- षष्ठ

भाषा विवेचन

१- पंजाब में खड़ी बोली

२- पंजाब में खड़ी बोली के लेखक

३- पंजाब के साहित्य में उपलब्ध खड़ी बोली की प्रमुख विशेषताएं

४- तारा सिंघ नरोत्तम और उनकी भाषा

भाषा विवेचन

(१)- पंजाब में खड़ी बोली

खड़ी बोली का इतिहास पर्याप्त प्राचीन है। खड़ी बोली की प्रकृति और उसकी भाषाई प्रवृत्तियों के बारे में डा० कपिलदेव सिंह का कहना है`वस्तुत: खड़ी बोली उतनी ही प्राचीन है जितनी कि शौरसैनी अपभ्रंश से निकली हुई ब्रज भाषा आदि अन्य भाषाएं। अपभ्रंश काल के जैन आचार्यों बौद्ध, सिद्धों, नाथ पंथियों, चारण कवियों आदि की रचनाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें खड़ी बोलीका अस्तित्व बीज रुप में उसी प्रकार पाया जाता है जिस प्रकार ब्रज, अवधी, पंजाबी आदि अन्य भाषाओं में।`[1]

खड़ी बोली आन्दोलन के बारे में डा० शिति कंठ मिश्र ने लिखा है`बोल चाल की लोकभाषा तथा काव्य भाषा में ऐक्य स्थापित कर काव्य का सामान्य जनता और उसकी भावनाओं से सम्बन्ध जोड़ना ही खड़ी बोलीका मुख्य प्रतिपाद्य रहा है।`[2]

पंजाब की भारती एक विशिष्ट साहित्य कोसंजोए हुए है जिसमें खड़ी बोली गद्य की अटूट परम्परा उपलब्ध है। लगता है पंजाब में सर्वप्रथम नाथ योगियों ने खड़ी बोली को अपने साहित्य में प्रयुक्त किया। जैसे-

`अरध उरध बिचि धरी उठाई, मधि सुंनि मै बैठा जाई
मतवाला की संगति आई, कथत गोरखनाथ परम गति पाई।`

अथवा-

नाथ कहता सब जग नाथ्या गोरख कहता गोई
कलमा का गुरु मह्मंद होता, पहले मूवा सोई।`[3]

१- ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली- डा० कपिलदेव- पृ० ४५

२- खड़ी बोली आन्दोलन- डा० शिति कंठ मिश्र, पृ० ३००

३- गोरख बाणी- पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल- पृ० २८

शुक्ल जी के अनुसार 'नाथ पंथ के योगियों ने परम्परागत साहित्य की भाषा का सहारा लिया तथा जिसका ढांचा खड़ी बोली राजस्थानी था।[१]

डा० शिति कंठ के अनुसार; उत्तरी भारत में नाथ पंथी साहित्य बहुत पुराना है। इन्हीं नाथ पंथी योगियों ने खड़ी बोली हिन्दी को राजस्थान, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र और बंगाल तक फैलाया। इनकी सधुक्कड़ी भाषा में कुछ न कुछ सभी प्रान्तों के प्रयोग मिलते है फिर भी इस भाषा में कुछ का ढांचा खड़ी बोली का है।[२]

पंजाब में गुरुमुखी लिपि में खड़ीबोली गद्य की एक अटूट परम्परा १६वीं शती से ही मिलने लगती है। पंजाब में खड़ीबोलीके कुछ सशक्त लेखक थे हैं:-

(१)- **गुरु नानक**:- पंजाब में खड़ी बोली के साहित्य की परम्परा गुरु नानक से भी पूर्व कालीन होनी चाहिए। आदि ग्रंथ में संकलित अनेक पदों में खड़ी बोली का शुद्ध रूप देखने को मिलता है। जैसे:-

'सोच विचार करे मत मन में जिसने ढूंढा उसने पाया
ना नर भक्तन दे पद पर से, निस दिन राम चरन चितलाया'। नानक

अथवा-

काहे रे बन षोजनि जाई। - - - -
पहुप मधि जिउ वासु वसत हे मुकर माहि जैसे छाई
तैसे ही हरि वसै निरंतरि घट ही षोजहु भाई।

आदि ग्रंथ पृ० ६८४

इस प्रकार की स्वच्छ खड़ी बोली में पद रचना करने वाले गुरु नानक निश्चय ही अपने से पूर्ववर्ती खड़ीबोली की किसी विशिष्ट परम्परा से प्रभावित हैं। दुर्भाग्य से यह परम्परा ~~किसी विशिष्ट परम्परा से~~ आज लुप्त हो चुकी है। गुरु नानक के पश्चात् गुरु नानक छाप के साथ वाणी के रचयिता उत्तरवर्ती गुरुओं ने भी खड़ी बोली का

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य शुक्ल- पृ० १६

२- खड़ीबोली का आन्दोलन- डा० शिति कंठ मिश्र, पृ० ३०

बहुत साफ सुथरा रुप प्रयुक्त किया है:-

'आगिआ भई अकाल की तभी चलायो पंथ
सब सिक्खन को हुकुम है गुरु मानियो ग्रंथ।- गोविन्द सिंह

(२)- **मिहिरवानु** (१५८१-१६४० ई०) :- गुरु घर से संबंधित व्यक्तियों में मिहिरवानु की रचनाओं में खड़ीबोली गद्य का स्वच्छ रुप मिलता है। मिहिरवानु ने 'पोथी सचुखंड' में गुरुवाणी की व्याख्या खड़ी बोली के प्रशस्त गद्य में की है।

(३)- **योगवासिष्ठ** -(१६७४ ई०) :- पंजाब में खड़ी बोली (गद्य) की एक और सशक्त कृति 'योगवासिष्ट' भाषा' लिखी गई। योग वासिष्ठ भाषा का साहित्यिक महत्व आज हिन्दी साहित्य के सभी इतिहास लेखकोंने मुक्त कंठ से स्वीकार कर लिया है।

(४)- **दयाल अनेमी** (१६७५ - १७२१ ई०):- खड़ी बोली के एक सशक्त गद्य लेखक तथा एकाधिक कृतियों के यशस्वी लेखक दयाल अनेमी का नाम इस क्षेत्र में अविस्मरणीय है। इस क्षेत्र में इनकी प्रसिद्ध कृतियां 'अवगत उल्लास,' 'असटावक्रभाषा,' 'हसतामल' तथा 'गीताभाष्य' है। इन कृतियों में इन्होंने खड़ी बोली का तत्सम प्रधान रुप प्रयुक्त किया है।

(५)- **आनन्द घन** (रचना काल १७५० ई०):- १८वीं शती में खड़ी बोली गद्य के एक उद्भट लेखक थे आनंदघन। इस क्षेत्र में इनकी प्रमुख कृतियां 'आरती टीका', 'जपु टीका' 'आनंद टीका,' सिधगोसट' है। अत: आनन्दघन का गद्य भी अपने पूर्ववर्ती लेखकों के समान खड़ी बोलीका साफ सुथरा रुप प्रस्तुत करता है।

(६)- **अड्डण शाह**:- आपने पारसभाग नाम से एक प्रसिद्ध फारसी रचना 'कीमिया-ए-सआदत' का अनुवाद किया। खड़ी बोली का स्वच्छ रुप आपकी रचना में मिलता है

(७)- **निर्मल कवि:-** इसी प्रकार निर्मल लेखकों ने खड़ीबोली का सुन्दर रुप प्रस्तुत किया। निर्मला लेखकों गुलाब सिंह आदि की रचनाओं में खड़ी बोली का उत्कृष्ट रुप देखा जा सकता है।

डा० गोविन्द नाथ राजगुरु के अनुसार "गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध इन[1] हिन्दी रचनाओं की भाषा का कलेवर खड़ीबोली का है परन्तु आत्मा उसमें पंजाबी है।

इस प्रकार नरोत्तम तक आते आते खड़ी बोली का रुप पर्याप्त सुंदर बन चुका था। नरोत्तम से पूर्व ही खड़ीबोली पंजाब में साहित्यिक भाषा बन चुकी थी। अत: नरोत्तम को जो ~~पंज~~ भाषा दाय रुप में मिली थी उसका रुप शताब्दियों तक व्यवहार में आते आते बहुत परिष्कृत हो चुका था। नरोत्तम की भाषा में दो रुप मिलते हैं। एक उसकी अपनी, दूसरी मुद्रकों की। मुद्रकों के कारण नरोत्तम की भाषा में वर्तनी भेद देखने को मिल सकता है।

पंजाब: खड़ी बोली का साहित्य

इस साहित्य में उपलब्ध खड़ी बोली का रुप ध्वनि से लेकर व्याकरणिक गठन तक खड़ी बोली के सामान्य रुप की अपेक्षा कुछ निजी विशेषताएं लिए हुए है। इन विशेषताओं को (१)- ध्वनि, (२)- व्याकरण ; इन दो शीर्षकों के अंतर्गत रख कर देखा जा सकता है।

(१)- ध्वनि अंकन (स्वर ध्वनियां)

अ: ह — (ह श्रुति- पंजाब में प्राय: 'अ' को 'ह' के साथ बोला जाता है। नरोत्तम की भाषा में इस प्रवृत्ति के कुछ उदाहरण ये हैं। हच्छी (अच्छी), हौर (और) हाड (आषाढ़)

१- विशेष विवरण के लिए- डा० गोविन्द नाथ राजगुरु कृत गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य-देखिए।

	ई-	मिरजादा, निम्रता, प्रिथम।
आ-	आ - अ-	असचरजु (आश्चर्य), अकास, (आकास), कतक, (कार्तिक), पखंड (पाखण्ड), समग्री (सामग्री),
	इ-	गिरास (ग्रास)
	इआ-	आगिआ, (आज्ञा), सिखिआ (शिक्षा) विदिआ (विद्या)।
औ	उ-	अउर, कउन, ठउर (ठौर), भउरा (भौरा), जउहरी, कसउटी, चउरासीह।
इ:	अ-	हर (हरि) भगत (भक्ति), जात (जाति), पंडत (पंडित) निखल (निखिल), बलहार, रवदास
इ-	ई-	पुनरुक्ती, जती (यति), भगती (भक्ति), बीचार(विचार) मुकती (मुक्ति), पातंजली (पतंजलि)
ई-	'ए'-	नैमु (नियम), हैत (हित)
उ:[२]	'आ'-	साध (साधु), गुर (गुरु), वरण (वरुण), कुटंब, पुरख (पुरुष) सतिगुर।
ऐ:	'इ'	बिराग (वैराग्य), बैराग: प्राय: प्रचलित
'ऋ'	-	आज 'ऋ' का उचित उच्चारण लुप्त हो गया है। मानसहेरा के अशोक अभिलेख में 'ऋ' के स्थान पर 'रि' मिलता है। नरोत्तम की भाषा में 'ऋ' केवल 'रि' 'री' देखने को मिलती है।

१- ह्रस्व 'इ' उच्चरित नहीं होता। यदि इसका उच्चारण अभीष्ट हो तो इसे दीर्घ रुप में देखा जाता है।

२- ह्रस्व 'उ' का उच्चारण प्राय: प्रचलित नहीं।

'ऋ'- 'अ': ग्रसतु, ग्रहसत, कण्ह

'इ'- किस्न (कृष्ण) तिस (तृषा), ग्रिस्त।

'इ'- किरपा, (कृपा) किरसाण, निरविरति (निवृत्ति)

'रि'- क्रिश (कृश) क्रितघ्न (कृतघ्न) निब्रिति (निवृत्ति), न्रिपनारी (नृपनारी) ग्रिहसती, (गृहस्थी), रिषि (ऋषि) रिषीसुर, क्रिश्ठ, क्रिश्न, ग्रिह (गृह) न्रिघ्न।

'रु' रुत (ऋतु)

अ: ह- अंतहकरण

अ: आ- अतांकरण, प्राताकाल

(ख)- व्यंजन: ध्वनि परिवर्तन

क: ग अंग (अंक), मगर (मकर) प्रगट (प्रकट)

क्ष: ष्य- तितिष्या (तितिक्षा); साष्यात (साक्षात), उपेष्या (उपेक्षा), दीष्या (दीक्षा), अष्यरों (अक्षरों) तीष्यण (तीक्षण), विष्येप (विक्षेप); ष्येम (क्षेम), कुरुष्येत्र (कुरुक्षेत्र), परीष्या (परीक्षा), ष्यणभंगुरता (क्षण भंगुरता), वष्यस्थल (वक्षस्थल), पष्यपात (पक्षपात), संष्येप (संक्षेप)।

'ष'- अषय (अक्षय), षिण (क्षण), मुमष (मुमुक्षु) रषिआ (रक्षा), साषात (साक्षात्), लषमी (लक्ष्मी), अप्रीष (अपरीक्ष)

'छ'- कुरछेत्र (कुरुक्षेत्र), सुछम सुछम (सूक्ष्म), रछा (रक्षा), लछमी (लक्ष्मी)

ज्ञ:	ग-	गिआन, गिआन (ज्ञान), जगिआसी, (जिज्ञासु), आगिआ (आज्ञा), जगिउपवीत (यज्ञोपवीत), सरबग (सर्वज्ञ)
	ग्य-	प्राग्य (प्राज्ञ), सरबग्य (सर्वज्ञ), अलपग्य, (अल्पग्य अल्पज्ञ), ग्यान(ज्ञान), ग्याता (ज्ञाता), प्रतिग्या (प्रतिज्ञा), अवग्या (अवज्ञा), ग्यापक (ज्ञापक)
ज:	च-	पंज (पंच)
ड:	ल-	सोलां (षोडश), उच्चारण: सोल्हां (पंजाबी)
द:	त	पातशाह (बादशाह)
न:	ण	पाणी (पानी) कुरबाण। विदेशी शब्द: कुरबान।
ण-	न	प्रमान (प्रमाण), स्वरन (स्वर्ण) निवारनु; निरना।
म:	उ	नाउ (नाम), नांउ
म:	व	नांव (नाम), परवांणु (प्रमाण)
थ:	अ	बिअरथ (व्यर्थ, बिआथी।
	इअ	माइआ (माया), माइआ (माया। सहाइता- (सहायता), मिथिआ (मिथ्या), दइआल (दयाल), घड़िआल (घड़याल), निआइ (न्याय), तिआग (त्याग), संधिआ (संध्या), कलिआण (कल्याण), सनिआसी (सन्यासी), किआ (क्या), दइआ (दया)।
	ई (इ)	स्थाई (स्थायी), अध्याई (अध्याय) अध्याइ। सहाइता, संप्रदाई (सम्प्रदाय)।
	ऐ-	प्रलै (प्रलय) समै (समय), मै(मय), विसमै (विस्मय)
	उ-	मउ (मय), वाउ (वायु)

	ज	कारज (कार्य), जजमान
र		'र' ध्वनि का अंकन कई प्रकार से हुआ है। संयुक्त 'र' के लिए समान व्यवस्था नरोत्तम के लेखन में नहीं है। यह मुद्रकों की भ्रांति भी हो सकती है।
	मू	प्र्यंत (पर्यंत), स्वरग, (स्वर्ग), प्रक्रण, (प्रकरण), हरष करोध।
व	उ	तुचा (त्वचा), परमेसुर (परमेश्वर), गाउ(गांव), सोमाउ (स्वभाव), सुपिनै (स्वप्न), सुरग (स्वर्ग), अउतार (अवतार) सुआमी (स्वामी)।
व	म	भेस (वेश)
श	स	सोभा (शोभा), सुधि (शुद्ध) बिसेष
स	ह	नहान (स्नान), असनान, अस्नान, अस्नान)।[१]
	घ	सिंघ (सिंह), संघार (संहार)

(ग)- **संयुक्त द्वित्व व्यंजन**

क्त	क्त	भकति (भक्ति), संयुक्त (संयुक्त) विरकत (विरक्त)
	गत	संजुगति, भोगता (भोक्ता), भगती
क्य	इअ	किआ (क्या)
ख्य	षिअ	संषिआ, सोषि (सांख्य)
ग्न	गन	अगन, अगनी (अग्नि)

१- स्वरभक्ति, स्वरागम। इस्त्री, सकंध (स्कंध) आदि सब इसी प्रकार के शब्द हैं।

ग्र	गिर	सालिग्राम (शालिग्राम), गिरास (ग्रास)
ग्य	ग	वैराग (वैराग्य)
च्य	उ	अचुत (अच्युत)
त्व	त	तत्त (तत्त्व)
त्म	तम	अधिआतम (अध्यातम) महातमय, महातम (महात्म्य) आतमा (आत्मा), परमातमा (परमात्मा)
त्य	त्त	सत्त (सत्य)
त्र	तर	पवितर (पवित्र), नैतर (नैत्र)
द्व	दुअ	दुआदिसी, दुआदस, दुतीआ, दुआपर
द्ध	धु, ध्ध	प्रसिध (प्रसिद्ध), सुध्ध (शुद्ध), सिध (सिद्ध)
'प्त'	'त'	तपत (तप्त), उतपति (उत्पत्ति), परापति (प्राप्ति)
'स्त'	सत	उसतत, असतुति (स्तुति)

(२)- सर्वनाम

भाषा में संज्ञा की पुनरुक्ति दूर करने के लिए सर्वनाम का उपयोग किया जाता है। पाणिनि ने सर्वनामों की संख्या २५ दी है। परन्तु उत्तरवर्ती काल में इनकी संख्या कम होती गई। नरोत्तम के साहित्य में प्राय: पुरुष वाचक सर्वनामों का प्रयोग अधिक हुआ है। इन सर्वनामों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है।

अन्य पुरुष-

एक वचन	बहु वचन
ता	वै
तिस	उन
इस	उन्ह
उस	तिन
बहु	उनाँ (पंजाबी)
जी	उनहु
यह	सभनंहु
जिस	जिनाँ
सा	(सभन्ह(न: ब्रज: बहुवचन
सि	
जि-	हुं - अपभ्रंश बहुवचन)

मध्यम पुरुष

'त्व' प्रकृति से मध्यम पुरुष वाची सर्वनामों के एक वचन का विकास हुआ है। तू, तूं का विकास 'त्वम', से हुआ है। नरोत्तम की भाषा में 'तूं' का प्रयोग सबसे अधिक है। बहुवचन में 'तुम' का प्रयोग हुआ है। कभी कभी इस 'तुम' के साथ सामान्य बहुवचन सूचक 'हु' भी पाया जाता है। इसमें कभी कभी 'तुध' का प्रयोग भी मिलता है।

एक वचन	बहु वचन
तू, तूं	तुम
तुम्ह	तिनहु
तेरी	तुमहु
तेरे	तुमारा
तेरा	तुमारे
	तिनौं

उत्तम पुरुष-

संस्कृत में उत्तम पुरुष वाचक सर्वनाम (अस्मद्) के एक वचन में 'म' तथा बहुवचन में 'अस्म' (म्ह) प्रकृति मिलती है। नरोत्तम के साहित्य में 'मैं' का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है हौं, हुं जैसे प्राचीन रूपों का प्रयोग बहुत कम हुआ है।

एक वचन	बहु वचन
मैं, हौं, हुं	हम
मैंने	हम को
मुझे	
मुझ से	हमारा
मेरा, मेरी, मेरे	हमारी
मुझ में	हम में

निजवाचक अप्प (आत्मन्)

'पालि में 'आत्मन्' शब्द 'अन्त' तथा अपभ्रंश में 'अप्प' रूप धारण करता है। नरोत्तम के साहित्य में 'अप्प' का यह प्रयोग मिलता है।

आप , अपना एक वचन
आपणे- बहुवचन

नरोत्तम के काव्य में संस्कृत सर्वनाम रूप में 'सकार' की बहुलता लक्षणीय है। (सः सा, असौ) जैसे

एकस, समस, चौंदस, तेरस

नरोत्तम की भाषा में प्रश्नवाचक सर्वनाम भी उपलब्ध हैं-

किआ, कवण, कउण

इसी प्रकार कुछ अनिश्चय वाचक सर्वनाम ये हैं--

कोई, कितने, किछु, एहु, ऐसे

विविध सर्वनाम ये हैं:-

सरब, सभ, अउर, अवर, इतना, जितना, संभना

(३)- कारक

संज्ञा के जिस रुप के द्वारा उसका सम्बन्ध वाक्य के दूसरे शब्दों के साथ बताया जाता है। उसे कारक कहते हैं। कारक आठ प्रकार के हैं। नरोत्तम की भाषा में विभिन्न कारक इस प्रकार प्रयुक्त हुए हैं।

कर्ता- ने --[१]

कर्म- को कउं (परमैसुरु, कउं, मन कउं, बचनी कउ)

करण से अष्ठी, स्ती

सम्प्रदाय- हेतु ह निमित्त (कभी कभी निमित्त के स्थान पर विषे भी आया है।

अपादान- से, सेती, सिउं, अहु, ते थीं।

सम्बन्ध- का, के , की, रा, रे, री, (जीआंका सुभाउ, साधां के)

अधिकरण- में , में, मो, पर, पहि, विषे,(साधना विषे करि, जलि, थलि, महीअलि, मनुषा विषे)

सम्बोधन हे प्रमेश्वरु, हे माधो, हे राजाराम, हेहरे, हे रामराइ, हे हरी, हे प्राणी

बहुवचन- हे पुरुषो, पिआरिहो।

१- विरलप्रयोग 'ने' पंजाबी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है। उस कहिआ', उस देखिआ आदि आज प्रचलित है।

अव्यय

वह शब्द जिसके रुप में वचन लिंग आदि के कारण कोई विकार नहीं होता। तथा वाक्य में सदा अपने मूल रुप में प्रयुक्त होते हैं तथा धातु के साथ प्रत्यय लगा कर बनाए जाते हैं। उन्हें अव्यय कहते हैं। अव्यय अविकारी को भी कहते हैं। नरोत्तम की भाषा इस दृष्टि से भी समृद्ध है।

क्रिया विशेषण अव्यय

धीरे-धीरे, ईहां, उहां, यहां, वहां, कहां, जहां, तहां, दूर, दाएं, बाएं, पहले, ऐसे, वैसे, जिउ, नहीं, ना, किंचित, किंव

सम्बन्ध सूचक अव्यय- पर

समुच्चय बोधक अव्यय- और, अर, अवर, उर, एवं।

(५)- धातु रुप

नरोत्तम की रचनाओं में प्रयुक्त धातु रुपों को इस प्रकार ~~वर्गीकरण~~ वर्गीकृत किया जा सकता है--

१- **तत्सम धातु -रुप:-** नरोत्तम की भाषा में संस्कृत तथा पालि प्राकृत अपभ्रंश युगों से प्राप्त धातु रुप उपलब्ध है जैसे चर, चल, हस, वैह(विश:बैइता: बैठना)

२- **प्राचीन धातु रुपों के ध्वनि परिवर्तित रुप:-** कह (कथ) दि (दा: दित्ता, दित्ती) रंव (√रम)

३- **देशज:-** पंजाब राजस्थान हरियाणा के अंचलों में प्रयुक्त धातु रुप। ठहर, जीम(व), टिक (रुकना)

४- नन

(४)- नामधातु:[१]- नरोत्तम की कृतियों में संस्कृत से लेकर अपभ्रंश युगों के अनेक संज्ञा शब्दों को धातु रुप दिया गया है। नामधातु का निर्माण प्राय: 'ना', 'णा' के योग से हुआ है।

सहारनी (सहना), वरजना (वर्जित), उसारणा, निषेधता, लोभीता (लुभाया जाना), उपदेसिआ, उधारिआ, समरपिआ, परसना, संतोषा, द्रविआ, अरथा।

कृदन्त रुप

क्रिया के जिन रुपों का प्रयोग संज्ञा शब्दों के समान होता है उन्हें कृदन्त कहते हैं। अपभ्रंशों के बाद हमारी लोक भाषाओं में 'तिङन्त' पदों की संख्या विरल होती गई। इनके स्थान पर कृदन्त (क्त, शत, शानच्) प्रत्ययों से निष्पन्न क्रिया पदों का प्रयोग अधिकाधिक होने लगा:-

जाता है (जांदा है: पं०), गया, गइआ, जाते-जाते जैसे क्रियापद नरोत्तम की भाषा में पाए जाते हैं। कृदन्त प्रत्ययों के कारण 'अस', (है, था) का प्रयोग अधिकाधिक होता है। भविष्यत् में गा, गी तथा गे प्रयुक्त होते हैं।

कृदन्त भूत काल- (क्त > अ > आ):-

आइआ- आराधिआ, धारिआ, दिवाइआ, रहिआ, उधारिआ, बुझाइआ, बसाइआ, कीआ, जानिआ, मिलिआ, बिचारिआ, तरिआ, दीआ, आइआ, लीआ है, भइआ, कहिआ।

कृदन्त रुप 'य' श्रुति:- पाया, गया, होया, लगाया, हटवाया, देख्या, कीया, भया सुनाया।

१- नामधातु के लिए 'क्त' से विकसित 'ता' का प्रयोग एक विलक्षण प्रवृत्ति है। 'करता', 'खाता' आदि से 'ता' लिया गया है। 'ना' के साथ हिन्दी में कुछ नामधातु बनाए जाते हैं-- नकारना।

कर्मवाची वर्तमान:- वर्तमान कर्म कालिक कृदन्त रुप इस प्रकार मिलते हैं:-

ईता-[१]	(एक वचन)- देषीता, कहीता, चाहीता, बनीता, है, करीता है, जन जानता है, बतावता है।
ईते (बहुवचन)	पढ़ीते, मौलीते है (मौल नमधातु) लिषीते हैं। कहीते।
ईती (स्त्री॰)	जाणिती है, भरीती, पाईती।
ईदी (पंजाबी)	करीदी (की जाती है) करीदे (बहुवचन)
औ:	सुनीऔ, करीऔ, चाहीऔ, लीऔ
अहि	कहीअहि, पढ़ीअहि, सुनीअहि, बुलाई अहि, असनेहि, गुफामहि, पूजावहि।
अहु	लीजीअहु, पाइअहु, करीअहु, कहीअहु,
आइ	जपाइ, कुढाइ, पढ़ाइ, सिमराइ
कर्तृ भविष्य-	आवैगा, चलावैगा, देवैगा, होवैगा, मिलैगा। समावैगे, जावैंगे, देवैंगे, सकैंगे, सहारैगे,
मध्यम पुरुष-	पावैगे, सकौगे, उतरौगे।
आज्ञावाची	करौ, जपौ, सिमरौ

१- ईता (यक्) का सम्प्रसारणीकृत रुप जान पड़ता है। पैशाची में 'ये: ,य्य' में परिवर्तित हुआ। जैसे गीयते: गिय्यते। रम्यते: रमिय्यते। पठयते: पठिय्यते। यही 'य्यते' कालांतर में ईत, ईता, और ईती इन विभिन्न रुपों में परिवर्तित हुआ जान पड़ता है।

संयुक्त क्रियाएं

दो या तीन धातु रूपों का एकत्र प्रयोग इसमें होता है जैसे--

लगाई है, टिके है, संग्या हुई है, वाले हुए हैं, होइ करि सिधाइआ, जाइकरि, करिलीनी है। लाइ दीआ है, ले उठीता है, वघती जाती है, बिसरि (न) जाइ, देखिआ चाहीऐ। सिमरिआ होइगा।

(६)- संख्या वाचक शब्द

नरोत्तम ने इन संख्या वाची शब्दों का भी प्रयोग किया है।

(क)- पूर्णांक बोधक संख्याएं (तद्भव):-

एक, दो, तीन (३), सात (७), आठ (८), ग्यारां (११), बारां(१२), तेरां(१३), चौदां (१४), पद्रां(१५), अठारां (१८), इकीस (२१),चौबी (२४), पचीस (२५), तीस (३०), इक्ती (३१), बती (३२), तैतीसै (३३), चौतीस (३४), इकतालीस (४१), चुताली[१] (४४), अठताली[२] (४८), उणंजा (४६) ,बावन (५२), साठ (६०), चौहट (६४), अठाहठ (६८) - अठासी (८८)।

तत्सम- नव (६)।

अपूर्णांक बोधक संख्याए:- अध्धी (घड़ी) अढ़ाई, साढे।

(ख)- **क्रम बोधक संख्या-**

(तद्भव)- दूसरे, तिसरे, चउथे(चौथ: तिथि), पंजवें, नावें, दसवें, ग्यारवें, बारवें, तेरवें, चौदवें, पंद्रवें, सोलवें, सतारवें, अठारवें, उनीसवें, बीसवें, इकीसवें, बाईसवें, तेईसवें, चौबीसवें, पचीसवें, छबीसवें, सताईसवें, अठाईसवें, उनतीसवें, तीसवें, इक्तीसवें।

१- चौसठ- स- ह चौहट (पं०)

२- अड़सठ

तिथि: तद्भव:-   तेरस, चौदस

(ग)- संख्या शब्दों के साथ- समास इस प्रकार बनाए गए हैं:-

दो बरस, त्रैलोकु, तीन लोक, चतुरभुज, चहुजुगों, दुआदस, नवखंड, चउदह भवन।

(घ)- नरोत्तम ने तत्सम शब्दों में भी संख्या वाची शब्द दिए हैं:-

प्रथम, पंचम, नउमी, द्वादसी, एकादसी, चतुरथी, नवमी, अश्टमी।

(ड)- संख्या वाची शब्दों में अनेक रूपता:-

(१)- पची: पंजी (पंजाबी)

(२)- पंज: पांच

(३)- ग्यारां: गिआरां

(४)- इक्कीस: एकईस

(च)- **ज्योतिष शास्त्रीय शब्दावली**

१- मासादि विवरण सूचक शब्द-

(शुक्ल दिवस) सुदी- माघसुदी, विसाख सुदी, चैत सुदी, कातक सुदी, मघर सुदी (मार्ग शीर्ष), पोह सुदी, भच भादों सुदी।

(बहुल दिवस) वदी- सावण वदी, असु वदी (आश्विन)

प्रविष्टे- सावण प्रविष्टे, मघ्घर, प्रविष्टे (मार्ग शीर्ष) फागण प्रविष्टे, हाड़ प्रविष्टे (आषाढ़), कातक (कार्तिक) प्रविष्टे, पोह (पौष), प्रविष्टे।

(२)- घड़ी, पल, पहर, कला, अयन, बरस, काश्ट,

शब्द भंडार

तारा सिंह नरोत्तम ने विशेषत: वाणी व्याख्या दर्शन अध्यात्म आदि की विस्तृत चर्चा के कारण-तत्सम शब्द प्रचुर मात्रा में प्रयोग किए हैं। इन तत्सम शब्दों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। (

१- संस्कृत
२- फारसी
३- अंग्रेजी

(क)- तत्सम (संस्कृत)

अक्रूर, अकथ्य, अगम्य, अध्याय, अध्याहार, अप्रमेय, अध्यस्त, अध्यारोप, अच्युत, अनुलोम, अणु, अनुग्रह, अन्वय, अपरिग्रह, अप्रमादी, अप्रतिहत, अवसान, अलेप, अलौकिक, अश्वमेध, असक्त, असत्वापादक, अस्तेय, अष्टपदी, आरुढ़, आराधन, अचिंत्य, अतिसयता, (अतिशय) अविहित, अविवेकी। इतिश्री। उर्ध्व, उग्र, उनमाद, उपदेष्टा, उपक्रम, उपराम, उपालंभ, उपास्य, उभय, एकाग्रता, एकादशी एवं। किंच, किंकर, कृत कृत्य, किंचित, कुंभक, कोप, कैवल्य। गम्य, गहर (गह्वर) चक्रव्यूह, चित। जन्य जननी, जड़ता, जरा, जाग्रत, जिह्वा, जीवत्व। तत्वमसि, तथाच, तथापि, तथ्य, तद्गुणशालिता, तटस्थ, त्वं, तामसी, तारतम्य, तिलक, तेजस। द्वैत, दिव्य, द्वादस, द्विजत्व, देहाध्यास, दीपकाया, द्विजत्वादि, ध्येय, नव, नवधा, निवास, निदिध्यासन, निरदीनता, पंक, पाठ्य, पात्रता, पाषाण, पुंज, पुनरुक्ति, प्रेमांकुरोपत्ति, परिछेद, परिपाक, पिस्ट पेषण, प्रक्रिया, प्रपंच, प्राप्य, प्रौढ़ प्रतिबिंब, प्रत्याहार, प्रमेय। बोध्य भूप। मनुज, मुदिता भृग चरमादि यवनासुर। स रत्यंकुरोत्पत्ति, रजत, रुपक, रेचक, रजु (रज्जु) रुढ़, रति रोमांच। लघु। वपु व्यतिरेक, वसीकार संशक, वाच्च, बाहेंद्रियाँ, विधेय, विग्रह विरक्त शीघ्र, साध्य साधन, सेवक, समग्र, सम्यक, सत्वापत्ति,

सिंघावलोकन, - स्वप्रयोजनी, स्वते(स्वत:) स्वस्वरुप, स्वर, स्वरुपाधिगति, स्वाध्याय, हवन, हेतु आदि।

संस्कृत के ये तत्सम शब्द कई गुरुमुखी लिपि के अनुरोध पर तद्भव रुप में लिखे जान पड़ते हैं। जैसे रजु (रज्जु(गुरुमुखी लिपि में प्राय: लिपिक संयुक्त या द्वित्त सूचक चिन्ह ‿ प्रयुक्त नहीं करते। फलत: विशुद्ध तत्सम शब्द कभी तद्भव प्रतीत होने लगता है।

(ख)- अर्द्धतत्सम (संस्कृत मूलक)

संभवत: ये शब्द तत्सम रुप में ही प्रयुक्त किए न गए थे। परन्तु गुरुमुखी लिपि की सीमाओं के कारण तत्सम शब्दों का रुप तद्भव बन गया है।

अतयंत, ऐश्वर्य, अषरार्थ, अलपाहार, उपलषन, क्रितारथ, कलप, कीरति, क्रितघन, जुवावसथा, तातपरय, तितिछा, तीरथ, तुष्टी, तत (तत्व), दासय, निसठा, न्रिपत, न्रिघन, न्रिबाह, नासतक, परारबध, पुरषारथ, प्रमादी, पूरणमा, प्रयत, प्रतषादि, परयोजन, ब्रिंदावन, ब्रिछ, बिकलप, विवसथा, भक्तजन, श्रधा शासत्र षय, साष्यात, सूरय, समयक, संपूरण, स्रेश्ठ, सूषमदरशी, समदरशी, सरप।

तद्भव (संस्कृत)-

तत्सम और अर्द्ध तत्सम शब्दों के अतिरिक्त तारा सिंह नरोत्तम की भाषा में तद्भव शब्द भी प्रचुर मात्रा मेंमिलते हैं।

अठसठ, अलपग, अकाषां, अप्रोष, अछेद, अदाह्य, अंतरिष, अभिआस, अचुर, अवस्र, अपेष्या। अउसरि, उपेषिआ, उकती, कलपरिषी, कसउटी, कासट, कुलाहल, ग्रिहसथास्रम, ग्रिहसथ ग्याता चुछु (चक्षु) चौदस, जीतीजीत, थल, थिर, दुंद (द्वन्द) दूज, देंत, दइआल, दुतीया, दीषिआ, निरसंदेह, नष्यत्रों, निषछय, प्रिथी, परीषिआ, पष्यपात, पहरण, पिआरे, प्रजुलित, बैरागी, बिललाप, बिवहार, ब्रिहसपती, बहुग्याता, बैसंतर (वैश्वानर:अग्नि) भगती,

मिषिआ, मकजल, मरीचक, मिथिआ, मोष, मैत्र्य, महातम रैणि, रिण, राषसों रक्क लषायक विलषण, विष्येय, विसमरण, षुधा, षिण मात्र, ष्यण भंगरता, सिष्या, संषेप, सलोक (श्लोक) सुक्ती, सिम्रितीयों, सुभावक, संधिआ, सरुप, सतोत्र, संसियो, सुषक, संसा, सतयुग, हिरदय।

फारसी शब्द

नरोत्तम के साहित्य में फारसी अरबी के तत्सम और तद्भव दोनों प्रकार के शब्द रुप मिलते हैं:-

तत्सम:-

अरसा, अक्ल, ईलाज, इनसाफ, उस्तस उसताद , कूच, करामात, कैफीयत, कूच, किताब, कुदरती, खातिर, षुआर (ख)- खुदा, गुसल, गुजरे, गिरद, जोरावरी, जंग, जुबान, जमात, जताब, जुदाइगी, जुबान तरफ, तकसीर, तदबीर, तखत, तसवीर, ताबेदार, तरजमह, तुरक, तराजू, दामाद, दस्तषत, दरगाहों, दरगाह, दवात, दखल, दीवानखाना, निकाह, नरक, नबाब, नीयत, पातशाह, फरक, फरिआद फरेबी, फकीर, फनाह, बेउलाद, बेईमानी, बिअदबी, बषष्रिआ, बषसिदं।

मिहरवान,मदद, मुष्तयार, मकबरे, मुलक, मुरादी, मायने, मसाइक, मारफत, मौलवी, रोज, रंज, रिश्वत, रबाब, लायक, वासते, शरहं, सौदागर, साहिब, सरीअति, हलाल, हराम, हाजी, हिकमत, हुक्म, हिकायतों, हकूमत, हज, हुकमनामा।

तद्भव (फारसी)-

अषतिआरों, अरज, अला (अल्लाह), इजत, इलम, इफतरा, इषबारों, कताल (कत्ल) काजी, काबुल, काफर, खबर, षिताब, गायब, गदीनसीन, जषम (जख्म), तिलस (तिलस्म), दरवजे (दरवाजह), दरजा, दरिआउ, दोजक, निजमत, (नियामत), निवाज (नमाज, निमाज, पीसाक, पुसतों (पुश्त), पनह (पनाह), प्रिवदगार (परवरदिगार), प्रुसतैनी , फिरक्यों, बकबाद, बषश्या, बंदबस्त, मसकरी, मसजद, मुकदस (मुकद्दस), मसाल्यों, मुहलति, मुहाताज,

मउजूद, मके, मसीत, मरासीयाँ, मुनसफ (मुन्सिफ), लतीफ, बेपरवाहु,
वसतु, शरकस, सयद, (सैय्यद), हाफज।

पंजाबी शब्द

पंजाबी नरोत्तम की मातृभाषा थी। फलत: उनके लेखन में पंजाबी शब्दों का आ जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। पंजाबी के साथ साथ गुरुवाणी में आए पंजाबी शब्दों का भी नरोत्तम ने प्रयोग किया है।

आपणवणाशाह (आपणा वणाणा), आलणा(आलय। घौंसला),
ऐथे(यहां), अपड़े (पहुंचे), औंफड़ (उजाड़), इआणी(अज्ञान),
उड़कू, (अन्तमें), उसरे (बनाना), उलामा (उपालंभ), कूड़ (झूठ- फूठ-
कपट), केवड़ (कितना), कितनिआ, कुरला, गौन (गायन), गुरआई, गुआर(गंवार)
गिच्ची (गला), गुफी (गुह्य), चौला, चुंमी, चाणनी (चंद्रिका:प्रकाश), चिटे
(सफेद), जंगा(जगह) जमणा (जन्म), जुआई (दामाद), जेकर (यदि), जेहड़ा,
फड़ी, टोए, (गढ़े), टिबे, ठाना, ढूठी (प्याली), डुंघी (गहरी) तौर
(त्वर: भेजना), तती (तप्त), ताउ (ताप), तत (तत्त), तली (हथेली),
थंम, थड़े, थुनी, दूजी, दंद (दांत) निथावे (नि+ स्थान), नावणा(स्नान) पंज
(पांच), पराहुणे, पाइआ(पावभर), पग्ग (पाग, पगा, पगड़ी), पंड (गठ्ठर),
फड़ी, बखेड़ा, बेड़ी (नौका), बहुतेरी भेटां(उपहार), भौंदे (घूमना), भाउ
(भाव), मथा मअला, मुकलावणा (गौना), मुक्के, माड़ा, (कमजोर), मंधाणी
मढ़ी(मठ), रौलां (शोर), लक (लक: कमर), लीतड़ा (चिथड़ा), लांवा
(विवाह के फेरे), वेला (समय), वंफणा (जाना-मुलतानी), वाउ (वायु)
सुकावणा (सुखाना), सलूणा (सलवणा-साग-भाजी), सिरहाने, सुनिआरा
(सुनार), सिआल (सर्दी), सांफा, सहूये, सचिआर(सच बोलने वाला),
सौकन, हउमै (अहंकार)

ब्रज भाषा

पंजाब में ब्रज भाषा का साहित्य बहुत लिखा गया। पद्य तो प्राय: ब्रज में ही लिखे गए। नरोत्तम ने ब्रज के इन शब्दों का प्रयोग किया है:-

आन, आइकर, अउसरि, अजहु, अनुपमेय, अकह, उपायन, अवरिआ, अदुया, उन्बरने, उपाइन, उपज्या, करहौ, काहू, करावे, कढ़िने, कहीये, कटावो, कढ़ुलौ। कुटलताई, खोवे, गलाइ, गिआरस, घ्यावे, घ्यावते, चाहे, चढाए, चरावो, चहुदिसि, चुआई, चरायो, जावे, जाय, जाउ, जिनकउ, जाचहि, जउहरी, फडावों, तिहु, तमाष्यो, तिसाह, थापहुरी, दरसावए, पहस्य, निकलहि, निपटयो, नहावनु, निकाल्या, निआउ, पाइकर, परसिअे, पचाइ, पहरन, पतीजै, पावहो, बिसारना, बूफिआ, बिसराबहु, बुलवाइ, बिचारयो, भउरा, मुरफाइ, मोतीअन, याहीते, रिसावनु, लहसि, लाइ, लिआवे, लषाथक, वाक्यन, विषेइउ, सतावहु, सकहु, सिउ, हटाय, होवे, हटाउ।

देशी शब्द

गादी, पातशाह, धवड़ी, किवाड़, उजड़ा, गड़रीये, समधी, टेढ़ा, फीनी, भेंटा, बाहरले, वट्ट, बकल, क्लिाका आदि।

नरोत्तम की प्रिय शब्दावली

नरोत्तम ने स्थान स्थान पर अपने कुछ प्रिय शब्द बार बार प्रयुक्त किए हैं उनमें से कुछ ये हैं:-

रहो अधिक विचार[१], तथाही, तथापि, ननु, तथाच, उक्तचं, इति[२]

१- संस्कृत के 'अलम् अति विस्तैरण' इस मुहावरे का यह हिन्दी रूप जान पड़ता है।
२- गुरुवाणी को उद्धृत करते समय प्रथम पद को 'इति' के साथ रखा गया है।

भाषा शैली

नरोत्तम की भाषा में ये प्रमुख शैलियां मिलती हैं:-

(१)- व्याख्या शैली ।

(२)- कोश शैली।

व्याख्या शैली

कुछ शब्दों की व्याख्या करते समय नरोत्तम ने अपने ज्ञान और अपनी प्रतिभा का अपूर्ण परिचय स्थान स्थान पर दिया है। इसका एक उदाहरण देखें:-

आगलड़ा। अगले का नाम है। अगला देस भाषा में पहिले का नाम है। जैसे अगला काम कर लेवो (तब दूसरा बतावेंगे। इह अगला सब्द पहले का वाचक प्रसिद्ध है। इस सबद में अगला सब्द सनमुष का वाचक है भी है। जैसे तिन आगलड़े किआ तिस जमदूत के सनमुषा।' वासतव में आगलड़ा अग्र सब्द से है। अग्र प्रथम का, अधिक का, आलबन का, समूह का सनमुख का, उतम का नाम है। इसका चिंतन इहां इस वासते कीआ है। ग्यानी लोक आगलड़ा का अरथ। आग कीतरह लड़ गया भी करते हैं। औं लोक में लड़ा विष वाले जीव के काटने को कहते हैं। आग के दाह मेंलड़ा कहणा प्रसिध नहीं। इसते असी कलपणा नहीं करणी जो प्रसिध ना होवे।'[1]

एक अन्य स्थान पर वे 'कुरान' शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं:-

कुरान व्याकरण की रीति से कु।र। आन। तीन पद मिल के बने है। अर उन पदों के अरथ ये है कु का कुतसित र का देना आन का चेश्टा याते कुनाम कुतसित नरक रुप फल को र नाम देवे सो कहावे कुर सासत्र निंदित हिंसादि करम तिस कुर विषे अन नाम चेश्टा करे पुरष जिस ग्रंथ से तिस का नाम कुरान है।'[2]

१- टीका सिरीराग- पं० तारा सिंह नरोत्तम- पृ० ४४१

२- वही, पृ० वही

तारा सिंघ नरोत्तम ने अरबीआदि विदेशी भाषाओं के शब्दोंका अर्थ संस्कृत व्याकरण-कोश के सहारे करना एक प्राचीन प्रवृत्ति है। प्रस्तुत अवतरण इसी प्रवृत्ति का उदाहरण है--'अन्न' की महिमा का वर्णन नरोत्तम ने इस प्रकार किया है। 'अन के महातम का बोधक अंन की उतपती का प्रकार कहै आदि इति, गीता मैं औ वेद मैं लिख्या है अंन से प्राणी होवे है। मेघों से अंन होवे है यग्यों से मेघ होवे है यग करम से होवे है। करम वेद से होवे है। वेद ब्रह्म से भये है। याते ब्रह्म सरब का मूल पुरष है। तो आदि पुरष ते सरब के मूल पुरष ब्रह्म ते होइआ हूआ है।'[1]

अध्यात्म चर्चाको एक घरेलु उपमा से नरोत्तम ने इस प्रकार स्पष्ट किया है:-

'याते जैसे रेत मैं मिली हुई षांड (खांड) हसती से नही चुनी जावे चीटी चुन लेवे है तैसे अनातम प्रपंच मैं तदातम रुप कर मिले हुए सचिदानंद हरी को कुल गोत, जाती, और पंक्ती के अभिमान वाले तुम जीव प्रथम कर अनुभव नहीं कर सकते।'[2]

व्याख्या के सन्दर्भ मे विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों की विस्तृत योजना नरोत्तम ने इस प्रकार की है:-

'विसुए चसिया घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु होआ।'- विसुए इति। जोतस ग्रंथोंमें काल के दो रुप कहे हैं। एक मूरत, दूसरा अमूरत। ~~नरो~~ नीरोग पुरुष के स्वास के आवने जावने के भीतर काल का नाम पल है। तिन साठ पलों का नाम घड़ी है तिन साठ घड़ीयोंका दिन रात है पहर का स्वरुप नहीं कह्या आगे तिथी वारादि सम तुल्य है यह मूरत का स्वरुप कह्या है। नीरोग पुरष के नेत्रों की पलक लगने का नाम निमेष (निमिष) है। अठारा निमेषो का नाम काश्ट है तीस काश्ट का नाम कला है। तीस कला का नामघड़ी है दो घड़ी का नाम महूरत है साठ घड़ीयों का वातीस महूरतोंका रात दिन है। - - - - यही रीति गुरु जी ने कही है विसुए

१- गुरु भाव दीपिका- पं० तारा सिंघ नरोत्तम- पृ० १३७

२- भातों कीबाणी- पं० तारा सिंघ नरोत्तम, पृ० २०७

चसिआ घड़ीआ पहरा के अश्थ पीछे लिषा भी सीघ्र मान होने वासते पुना लिषते है। पंच दस बार नेत्र नेत्र की पलक लगने कौ विसुया कहे है। तिन पंच पसों का एक चसा होवै। तिन साठ पलों की एक घड़ी होवे है तिन आठ घड़ीयों का एक पहर होवे है। आठ पहरों की राति दिन रुप तिथि होवे है। पुना जिस का दिन अतिसी की राति सुणने से आठ पहर का ही आदित्यादि बार होवे है। पुना अधिक न्यून का वा तिन तीस तिथोंका मास होवे। जैसे अधिक न्यून वा तीस वारों का सूरय का मास होवे। तिन माघादि दो दो मासों की सिसरादि षट रितु होवे है। जैसे माघ फागुण सिसर (शिशिर) चेत्र वैसाष वसंत। जैश्ट आषाड़ ग्रीषाम (ग्रीष्म)। स्रावण भाद्रों बरषा। असु कतक (कार्तिक) सरद (शरद)। पोह हिम, माघ तीन रितुयों का अयन होवे है। दो अयनों का बरष होवे है। याते जैसे विसुए चसे घड़ी पहर तिथि वार महीने रुप हुआ भी सूरय वासतवते एक रुप है औ मासादि रुप होकर सूरय का कीआ रितु रुप काल अनेक रुप है तैसे गुरु कहे है स्रिस्टि करता ईश्वर के भी सिवादि रुप अनेक वेस है। ईहां क्रिया क्रियावान का तदातम मानकर सूरय को जैसे मासादि रुपता है स्रिस्टि करता को उतम बिभूति रुप है। - - - - याते संपूरण सिवादि एक रुप है मूरती भेद रहे भी वासतवते तिनका भेद नहीं यह गुरु जी का भाव है क्रिया क्रियावान का भेद सहित अभेद रुप तदातम मीमांसा सासत्र वाले कहे हैं। अनिरवचनीय अभेद बेदांती माने हैं।[१]

नरोतम की इस विवरण प्रियता का बहुत सुन्दर रुप तीरथ संग्रह में देखा जा सकता है। इस पुस्तक में सिक्खोंके प्राय: सभी तीर्थ स्थानों का प्रामाणिक विवरण मिल जाता है। एक उदाहरण देखिए:-

> 'डेहरा गुरु नानक करतार पुर से तीन कोस रावी के उरले पार[२] डेहरा साहिब समाध गुरु नानक जी की। उदासी। संमत १५९६ असू वदी ।० भाव स्राधों की दसमी को जोती जोत समाए। पेहले डेहरा करतार पुर बना था। पीछे से जब रावी के प्रवाह से बोह थान वेहने लगा। तब अहां से चिता भसम की गागर नकास रावी के उरले पार थापन कर डेहरा बनाया। ईहां लषमी चंद जी की संतान वास हुआ ईहां से हीजहां कहां बेदी साहबजादे फैले। इस देहरे के समीप सरजी नाम वाला कूआ है। इस का जल गरम करे किरम चल पड़ते सुने ।४।'[२]

१- गुरु भाव दीपिका- पृ० ३५८ (२)- गुरुतीर्थ संग्रह- पृ०२२

(२)- अंतिम पंक्ति में एक चमत्कार की सूचना दी गई है। नरोत्तम ने इसे केवल 'सुना है' लिख कर समाप्त किया है।

(२)- कोश शैली

भाषा में कोश शैली का एक उदाहरण देखें:-

गुरुहाई- दे हा० पद फारसी मो बहुत का वाचक है। जैसे सैकड़े के ठिकाने सदहा हजार के ठिकाने हजार हा। तैसे गुरुउ के ठिकाने गुरुहा बनतासे गुरुहाई बन गया है। जिसका अरथ गुरु गुरु हाई बड़े बहुते गुरों सेवा संसकृित मोहापद हनन करने वाले का। गुरु सबद बड़े रिषि मुनीउ का वाचक है। याते तिन रिषि मुनीउ के हनन करने वाले राषसों का नाम गुरुहा है। गुरुहा से गुरुहाई बना है। प्रकरण मो बिभीषण बलि प्रहलाद ग्रहण कर प्रहलाद आदिक राषस भक्तों से भी आप की बडिआई नहीं कही जाती। वा भमे को हाहा ही गुरु ह भाई से गुरुहाई बन गया है। याते ग्यानीउ से ध्यानीयों से गुरों से गुरों के उपदेसे भाईउं से भाव गुरु के चेलिउं से। कही नहीं जाती रंचक मात्र हे प्रमेश्वर तेरी बडिआई।'[1]

वर्तनी भेद

नरोत्तम की कृतियों में एक शब्द विभिन्न वर्तनियों में मिलता है। इस वर्तनी भेद का कारण मुद्रक और प्रकाशकोंका अज्ञान हो सकता है।

१- गुरु गिरारथ कोश- प्रथम भाग- पृ० ५५२

१-	अषार :	अष्यर
२-	आइकर :	आयकर
३-	और :	औ: अर।
४-	और :	उर
५-	अला :	अलह
६-	अक्षेद :	अक्षेद्य
७-	अतंहकरण:	अंताकरण
८-	अभ्यास :	अभिआस
९-	अध्याइ :	अध्याय: ध्याय: अध्याव।
१०-	ईहां :	यहां: उहां: ऊहां: उहा।
११-	इस्नान :	असनान, अस्नान
१२-	असतति :	उसतती; असतत
१३-	कुरबाण:	कुरबान
१४-	क्रिसान:	किरसान
१५-	कुदरति :	कुदरत
१६-	गिरसति :	गिरसती, ग्रिहसती
१७-	घौले :	घउले
१८-	~~धोई~~ धोई:	धोयी
१९-	चउरासीह:	चउरासी, चौरासी
२०-	चानणा :	चानणु (चंद्रिका, प्रकाश)
२१-	जुआनी :	जुवानी
२२-	जुआन :	जवान
२३-	जिह्वा :	जिहवा, जिहबा (जिहवे (विकारी)
२३-	तरजमह :	तरजमा, तरजमै।
२४-	त्रिषा :	तिषा
२५-	तीव्रतर :	तीवरतर
२६-	द्वार :	दवार
२७-	घड़िआल :	घड़्याल, घड़ीआल
२८-	निर्णय :	निरणा, निरना, निरनै। (विकारी रूप)

२६-	निरधन	निृघन
३० -	निआउ	न्याइ
३१-	निश्चय	निसचा, निहचा
३२-	प्राप्ति	प्रापती
३३-	पर	पै
३४-	प्रतष्य	प्रतषा
३५-	पुन:	पुना, पुणा
३६-	प्रमान	प्रमाण
३७-	परमाणुर्यां	प्रमाणूर्यां
३८-	प्रलै	प्रलय
३९-	प्रसिध	प्रसिद्ध, प्रसिद्ध
४० -	बरक्षा	ब्रक्षा
४१-	बिअरथ	बिथरथ, व्यरथ
४२-	व्याधि	बिआधी
४३-	भक्ति	भगती, भक्ती
४४-	भगौती	भगउती (भगवती)
४५-	मै	मौ, मै, मै
४६-	मायिक	मायक, (माया से संबंधित, पंजाबी)
४७-	मअला	मअलिआ, मौलिआ। (मुकुल मउल मौल)
४८-	मैलाइअनु	मैलिअन, मिलाइअनु
४९-	मुलक	मुलख (ख)
५०-	मिथ्या	मिथिआ
५१-	रुधिर	रुधर
५२-	~~[illegible]~~ ल्याया	लिआया
५३-	बैराग्य	बैराग
५४-	विद्या	विदिआ
५५-	विजोगी	वियोग
५६-	वैस	भेषा
५७-	शुद्ध	सुद्ध, सुध।

५८-	सहाइता	सहायता
५९-	समय	समैं, समा
६०-	सूक्ष्म	सूष्यम, सूषम
६१-	समझाइवै	समझाइए
६२-	संधिआ	संध्या
६३-	सचिदानंद	सचदानंद
६४-	संप्रदाय	संप्रदाई
६५-	स्थाई	स्थायी
६६-	संयुक्त	संयुक्त, संजुगत, संयुगत
६७-	सवरण	स्वरन, स्वरण
६८-	सलाह्रा	सलाह्न
६९-	हिरणाकसप	हिरणाकष्यप (हरिणाय कशिपु)
७०-	हिरदय	हृदय, हिदै

निष्कर्ष यह है कि नरोत्तम ने जिस भाषा में रचना की वह उस काल की विशेष प्रचलित साहित्य भाषा है। किसी ~~प्रान्त~~ प्रान्त विशेष की न होने पर भी समूचे उत्तर भारत में प्रयुक्त होती रही है। नरोत्तम ने परम्परा से प्राप्त इस भाषा को नूतन तथा शास्त्रीय रुप दिया है।

मूल्यांकन

कुल मिलाकर नरोत्तम की भाषा विभिन्न दार्शनिक विचारों तथा अनेक जटिल मान्यताओं के कारण बोझिल हो गई है। इसी कारण उसमें वह प्रवाह नहीं है जो किसीभी स्वस्थ लेखन की पहली शर्त है।

नरोत्तम से पूर्व आनंद घन नरोत्तम जितने ज्ञान संभार, ने उतनी ही प्रतिभा लेकर वाणी व्याख्या के क्षेत्र में अवतरित हुए परन्तु उनकी भाषा में जो एक प्रवाह है और जो एक सप्राणता है वह नरोत्तम के इतने विशाल साहित्य में प्राय: नहीं है।

नरोत्तम के लेखन की सबसे उल्लेखनीय त्रुटि उनकी भाषा और शैली की एक रसता है। प्राय: सर्वत्र निरपवाद रूप से नरोत्तम एक गुरु गंभीर मुद्रा में अपना शास्त्रीय प्रवचन प्रारंभ करते हैं। शायद ही कहीं उनकी वाणी में व्यंग्य या हास्य की कोई हल्की सी रेखा दिखाई दे। शास्त्रीय ज्ञान-गरिमा को मानों वे ओढ़ लेते हैं और उनका लेखन इस भारी शिला के नीचे दमतोड़ रहा होता है। खड़ी बोली का पंजाबी, ब्रज मिश्रित रूप नरोत्तम की भाषा की एक रूपता को स्थान स्थान पर खंडित करता दिखाई देता है। भाषा के शुद्ध और 'मानक' रूप के प्रति वे शायद अधिक जागरूक नहीं हैं।

परन्तु १६वीं शती के उत्तरार्ध में पंजाब के लेखकों ने खड़ीबोली को जो अपूर्व साहित्यिक उपहार दिया, खड़ी बोली को दर्शन की जो गंभीरता प्रदान की और सबसे बढ़कर अपनी मातृ भाषा के मोह को छोड़कर खड़ी बोली में साहित्य रचना करने का जो महान व्रत लिया। उसका मूल्य और महत्व हिन्दी के इतिहास लेखक को स्वीकार करना ही होगा। इस दृष्टि से नरोत्तम और उनका साहित्य हिन्दी साहित्य के इतिहास में समुचित सम्मान का अधिकारी है।

उपसंहार

खड़ी बोली लेखकों की परम्परा में तारा सिंह नरोत्तम का नाम एक गंभीर अध्येता तथा एक प्रामाणिक व्याख्याता के रुप में महत्वपूर्ण है। नरोत्तम के सम्पूर्ण वाड्मय का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि एक और तो तारा सिंह नरोत्तम बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, दूसरी और उनकी सजीव भाषा उनके युग की एक अद्भुत घटना कही जा सकती है।

नरोत्तम और उनका साहित्य

नरोत्तम के साहित्य को इन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:-

(१)- कोशकारिता
(२)- व्याख्याकारिता
(३)- कर्मकाण्ड सम्बन्धी रचनाएं

तारा सिंह नरोत्तम के जीवन का एक मात्र उद्देश्य गुरुवाणी की मर्मोद्घाटिनी व्याख्या करना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नरोत्तम ने कभी कोश लिखे, तो कभी गुरुवाणी की अत्यन्त मार्मिक व्याख्या की, तो कभी गुरुधामों के जीवन यात्रा विवरण प्रस्तुत किए। उनके इस विपुल साहित्य को देखते हुए कहा जा सकता है कि उनका जीवन गुरुवाणी के प्रति अनन्य रुप से समर्पित जीवन था।

(१)- कोशकारिता

तारा सिंह नरोत्तम ने कोश विशेषत: आधुनिक दृष्टि से तैयार किए हैं। कोश हिन्दी में १६वीं शती के अन्तिम दशकों में ही संभवता लिखे गए।

नरोत्तम ने कोशकारिता के क्षेत्र में अपनी पहली कृति 'सुरतरु कोश' संमत

१६२३ में प्रस्तुत की तथा संमत १६५३ में दूसरी कोश कृति इन्हों ने 'गुरु - गिरारथ' कोश को दो भागों में प्रस्तुत किया।

नरोत्तम का व्यक्तित्व कोशकार के रूप में बड़ा प्रभावित करता है। नरोत्तम संक्रान्तिकाल में पैदा हुए। जहां एक ओर उन पर पौराणिक विचारधारा का प्रभाव पड़ा। और दूसरी ओर आधुनिकता का। नरोत्तम गुरुवाणी के प्रथम कोशकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। इस प्रकार केवल पंजाब में ही नहीं, पंजाब से दूर हिन्दी के क्षेत्र में भी नरोत्तम से पुराना कोशकार शायद ही मिले। नरोत्तम का विशाल ज्ञान, विविध भाषाओं का उनका अद्भुत ज्ञान संभार देखने की वस्तु है, तथा विभिन्न विषयों का अद्भुत संकलन नरोत्तम ने अपने कोश में किया है। पंजाब के उत्तरवर्ती कोशकारों पर नरोत्तम का प्रभाव गम्भीर रूप से पड़ा।

(२)- व्याख्याकारिता

पंजाब के अनेक व्याख्याताओं ने गुरुवाणी की व्याख्याएं समय-समय पर की हैं। धीरे-धीरे इन व्याख्या ग्रंथों की एक विशाल परम्परा सामने आती गई। इन व्याख्या ग्रंथों में कुछ प्रमुख ये हैं- मीणाशाखा में मिहरिवानु तथा हरिजी, आनन्दघन आदि लेखकों की गुरुवाणी की व्याख्या बड़ी सरल, सहज, तथा बोधगम्य बन पड़ी है।

व्याख्या ग्रंथों की इस विशाल परम्परा में नरोत्तम की व्याख्याकारिता अपनी मार्मिकता तथा अपनी विशेष दृष्टि के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

नरोत्तम की व्याख्या उनके अध्ययन, उनकी साधना तथा उनके निरंतर लेखन की साक्षी देती है। इस प्रकार व्याख्याकारिता के क्षेत्र में उनका महत्व कई दृष्टियों से है।

(३)- **कर्मकाण्ड**

नरोत्तम: वेदान्त:- गुरुवाणी और वेदान्त के मूल भूत तत्वों से नरोत्तम की दृष्टि और उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। नरोत्तम का समस्त चिन्तन गुरुवाणी की परिक्रमा करता प्रतीत होता है। यहां तक कि अपनी दार्शनिक मान्यताओं के समर्थन में भी नरोत्तम ने गुरुवाणी का ही अधिक से अधिक आश्रय लिया है। यद्यपि समस्त वाणी को वेदान्त दृष्टि से व्याख्यायित करना संभव नहीं है। उनकी बौद्धिकता वेदांत (अद्वैत वेदान्त) के परिवेश में पल्लवित हुई है। फलत: गुरुवाणी की व्याख्या करते समय नरोत्तम ने स्थान-स्थान पर गुरुवाणी का सामंजस्य वेदान्त के साथ स्थापित करने का प्रयास किया है।

नरोत्तम: भक्ति:- भक्ति गुरुवाणी का चरम प्रतिपाद्य है। फलत: गुरुवाणी के प्रत्येक प्राचीन व्याख्याता ने भक्ति के सन्दर्भ में ही गुरुवाणी की व्याख्या की है। नरोत्तम ने इसी दृष्टि से गुरुवाणी की व्याख्या की है। इस व्याख्या में अनावश्यक रुप से वेदांत दृष्टि का आश्रय लिया गया है। फलत: भक्ति और वेदान्त का एक अविश्वसनीय सामंजस्य प्रस्तुत करने का प्रयास नरोत्तम ने किया है। अन्तत: 'ज्ञान से मुक्ति' के स्थान पर नरोत्तम ने भक्ति दर्शन की यह मान्यता दुहराई है कि भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है।

ज्ञान-भंडार:- पंडित तारा सिंह नरोत्तम एक बहुश्रुत लेखक के रुप में बहुत प्रभावित करते हैं। भारतीय संस्कृति, साधना पद्धति तथा दार्शनिक मान्यताओं का इन्होंने अधिकार के साथ स्थान-स्थान पर विस्तृत विवेचन किया है। अपने विचारों के समर्थन में नरोत्तम ने प्रमाण के रुप में जिस विपुल ग्रंथ राशि को उद्धृत किया है, उस ग्रंथ राशि की नामावलि पाठक को एक साथ ही आतंकित और चमत्कृत करती है। उन्होंने प्राय: इन प्राचीन ग्रंथों से यथावसर प्रमाण

प्रस्तुत किए हैं:-

१- चारों संहिताएं[1] (श्रुति- वेद)
२- उपनिषद्[2]
३- भगवद्गीता[3]
४- भागवत[4]

१- (क)- सामवेद की मैत्रायणी साषा में पाषाण मणी मिट्का मय विग्रह की पूजा पुनरजनम देने वाली है। -

गुरुमत निर्णय सागर- पृ० ११५

(ख)- जैसे बेद में बैकुंठ कैलासादि लोक नहीं लिषे। केवल ब्रह्म लोक ही लिखा है जिसका नाम सत्य लोक है यति मूरती पूजन बेद से सिध नहीं। यद्यपि वेद में बद्रीनाथादिक औ साल्ग्रामादि मूरती बिसेषों के नाम नहीं लिषे तो भी समान ते मूरती पूजन अनेक स्थानों में लिषा है जैसे यजुर बेद की हिरन्यकेसी साषा में रुद्र को जल का सिंचन लिषा है। सो मूरती बिना बने नहीं-

वही, पृ० ११५

२- केन उपनिषद-

वही ब्रह्म तुम जानीयो नाहन जौन उपास
केन माहि यहि वारता संकर करी प्रकास- ७१

वही पृ० ६८

३- भगवद्गीता-

यद्यद बिभूति मत्त सत्वं स्री मदूर जित मेववा।
तत देवाव गयत्वं मम ते जो संस मवं। - वही, पृ०६४

४- भागवत के सप्तम संकध के सप्तम अध्याय विषे भी प्रहलाद बचन नालं दिज त्वं देवत्व म्रिषत्वां असु रात्मजा:। प्रीणा नाथ मुकंद स्यन ब्रितंन बहुशता। नदानंन तपो नैज्या न सोचनं ब्रतानिच। प्रीयते अमल या भक्तया हरि रुप ब्रिंड बने।- वही पृ० ८६

५- अठारह पुराण[१]

६- रामायण[२]

७- महाभारत[३]

१- कुछ प्रमुख पुराणों के नाम इस प्रकार पाए जाते हैं:-

(क)- कूर्म पुराण:- जैसे कूरम पुराण के पूरब षड्स्थ तीसवे अध्याय में संकर की अवतारता लिखी है जो अनेक रूपों वाला महादेव। स्रुती सिम्रती में कहे धरमों की रष्या हेत अवतार धारेगा।- -- गुरुमत निर्णय सागर- पृ० ६१

(ख)- वायु पुराण:- तैसे वायू पुराण में चार सिषन के सहित संकर अवतार होगा लिषा है। - वही, पृ० ६१

(ग)- पदमपुराण- तथा पदम पुराण में केदार की स्थापना करेगा। ऐसा लिषा है तो भी पूरब कहे संकर महातम की तरफ से नेत्र मूंद कर चार संप्रदाय वाले वैस्नव लोग ऐसे कहे हैं- वही, पृ० ६१

(घ)- विष्णु पुराण:- विश्नु पुराण में भी सरब पाप प्रसक्तीपि ध्याय निमष मच्युतं। सद्य: तपस्वी भवति पंक्ति पावन पावन:। ऐसे कह्या है- वही, पृ० ८६

(ङ)- स्कन्द पुराण:- संकद पुराण में भी ब्राह्मणो षत्रियों वैष्य: सूद्रो वार्यादिवेतर: विश्नु भक्ति समा युक्तो गैय: सबीत मीतम:-वही,पृ०८६

(च)- भविष्यतपुराण:- और भविष्यत के पूरबारध में २१ अध्याय विषे परिच मैत्र सुमे दैसे वेदी बैसेच नानको ३४ नाम्नामु विराज रषि ब्रह्म ध्याने क मानस: (भविष्यति कलो संकद तत्व वित कल्याहेर: ३५ ऐसे अवतारता औ नाम स्पष्ट लिषे हैं।- वही, पृ० ६०

२- रामायण:- ज्यु संकर के मीत हरि पुनतस सैव्य सुदास

माह रामायण सकल ये कीने भाव प्रकास। ५८।

बिस्नु सिव मित्र है। सिवस्य ह्रिदयं विस्नु बिश्नोस्च ह्रिदयं सिव: उवयोरप्यंतर क्रित्वाशे श्वं नरंक ब्रजेत।। वही,पृ० १२६

८- षड्दर्शन[1] (योग दर्शन, वेदान्त दर्शन, मीमांसा)

९- ज्योतिष[2]

(पिछले पृष्ठ से)

१- महाभारत:-

भारत सांती परब मो श्रेय उतरारध बीच
ब्रित गीत सलोक के बाईसवें यह बीच। १५८- वही, पृ० ५०

(महाभारत का बारवां जो शांतिपब है तिसमें मोष धरम है तिसके उत्रारध में एक ब्रित गीता है ताके बाईसवें सलोक में)

१- योगवासिष्ट:- बासिस्ट के उपसम प्रकरण के नवम सरग के अठाइसवें सलोक मो भी महाकाल का प्रभाव लिखा है। पाद पीठे क्रिते साना: सारंगि क्रीडन कुंदक:। काल का। पालिका गुस्ता किमास्थे मचि बलगसि- १२७-- वही, पृ० १०५

मीमांसा:-

इह बिध उदति अनुदित दुइ मध प्रकरण निहार
इतर निंद मुष अपही अरथ सुलेहि सुधार- ५८- वही, पृ० ९६

न्याय दर्शन:-

कुलाल भुमावै चक्रको पात्र हित जिस उर
पात्र सिध हुय ताह को गमन न बामी तोर।४४- वही, पृ० १४६

२- ज्योतिष (बारही संहिता):-

पुलका हरि चंद्र पुरं रजस्च निघात भूकंप
ककुम प्रदाह इत्यादि। वही, पृ० १४३

१०- व्याकरण[1]

तंत्रशास्त्र[2]

इनके अतिरिक्त विभिन्न कोश तथा रस-प्रतिपादक कितने ही ग्रंथों की अनेक मान्यताएं बड़े प्रामाणिक ढंग से नरोत्तम ने प्रस्तुत की हैं।

प्राचीन ग्रंथों की इतनी विशाल उद्धरणी किसी भी प्राचीन लेखक के लिए एक चुनौती हो सकती है। पुस्तकालय संबंधी सुविधाओं के अभाव में ज्ञान का इतना विशाल भंडार नरोत्तम की मेधा और धारणा शक्ति का सूचक है।

अवतारवादी दृष्टि

तारा सिंह नरोत्तम की दृष्टि पौराणिक अवतारवाद के अधिक निकट है। नरोत्तम ने गुरु नानक को विष्णु का अवतार सिद्ध करने की चेष्टा की है। यहां तक कि गुरु नानक द्वारा परब्रह्म के लिए मूलमंत्र में प्रयुक्त एक विशेषण 'अकालमूरत' को भी विष्णु परक सिद्ध किया है। जहां कहीं अकाल शब्द आया है वहीं नरोत्तम ने इसे विष्णु परक सिद्ध करने की चेष्टा की है। संस्कृत व्याकरण तथा संस्कृत कोश ग्रंथों के आधार पर नरोत्तम अकाल शब्द को विष्णु परक बताना चाहते हैं। इसके साथ ही नरोत्तम ने 'अकाल पुरुष' को निर्गुण रुप में भी प्रतिष्ठित किया है।

१- व्याकरण- महाभाष्य:-

ननु सेष महाभाष्य भो लिषै हैत दस आठ
व्याकरण सिध पुंन कर नाह्न और पाठ- ५४- वही, पृ० १७

२- तंत्रशास्त्र-

रुद्रयामल ब्रह्म याम लो नाम तिनो के आहि
तिनमो बीच समोह ने दुरगा प्रति हस्वाहि।- वही, पृ० ११५

परन्तु गुरु नानक की समूची विचारधारा के सामने रखकर नरोत्तम की इस मान्यता पर विश्वास करना कठिन है। गुरु नानक का अवतारवाद में बिल्कुल विश्वास नहीं था। दशरथ के पुत्र राम के संबंध में उनका यह इतिहासिक वचन:-

कैतीआं कन्ह कहाणीआं
कैते राम रवाल।

अवतारवाद के खंडन के लिए पर्याप्त है। वस्तुत: अवतारवादी भावना गुरु नानक की दृष्टि से मेल नहीं खाती। यही कारण है कि गुरुघर की वाणी में अवतारवाद के लिए कोई अवकाश नहीं है।

तीर्थ

गुरु नानक का स्थूल तीर्थों पर विश्वास नहीं था। हरिद्वार तथा जगन्नाथ पुरी जैसे तीर्थ-स्थानों पर जाकर उन्होंने निर्गुण ब्रह्म को ही बार बार प्रतिष्ठित किया।

परन्तु गुरु नानक के पश्चात् गुरु नानक अथवा अन्य गुरुओं से सम्बन्धित कितने ही नगर अथवा कुछ विशेष नदी-नद तीर्थ मान लिए गए।

तीर्थ की इस कल्पना का सामंजस्य तो गुरु नानक की समग्र दृष्टि के साथ होना संभव नहीं है। परन्तु कालांतर में गुरु नानक के जीवन से संबंधित अनेक प्रदेश श्रद्धालुओं की दृष्टि में तीर्थ बन गए।

नरोत्तम ने इसी विचारधारा से प्रभावित से होकर उन सब तीर्थों को सिक्ख इतिहास में प्रसिद्ध अथवा अप्रसिद्ध गुरु-धामों की आवश्यक जानकारी दी है। इस पुस्तक में नरोत्तम ने पर्याप्त प्रामाणिक विवरण दिया है जिन तीर्थों को पंजाब की जनता बड़ी श्रद्धा के साथ देखती रही है। इस रचना में इतिहास भूगोल और श्रद्धा का अद्भुत समन्वय हुआ है।

भाषा

खड़ी बोली का एक अद्भुत दाय नरोत्तम को मिहरिवानु आदि प्राचीन लेखकों से प्राप्त हुआ था। इस दाय को नरोत्तम ने अपने अध्ययन, अपने मनन और अध्यवसाय से और भी चमत्कृत रुप दिया है।

उनकी भाषा में दार्शनिक परिभाषाओं तथा शास्त्रीय शब्दावली की भरमार है। इस लिए उनकी भाषा जनसाधारण के लिए सुबोध नहीं है।

इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में पूर्वी प्रयोगों की प्रचुरता है और यही कारण है कि कई बार उनकी भाषा खड़ी बोली के स्तर से भटक जाती है।

सामान्यत: उनकी इस प्रवाहहीन भाषा में खड़ी बोली गद्य की प्राय: सभी विशेषताएं मिल जाती हैं।

निष्कर्ष

तारा सिंह नरोत्तम का प्रभाव पंजाब के उत्तरवर्ती लेखकों पर गंभीर रुप से पड़ा और विशेषत: गुरुवाणी के व्याख्याताओं और गुरुवाणी के कोशकारों ने स्थान-स्थान पर नरोत्तम को श्रद्धा से याद किया है। महानकोश के महान लेखक ने गुरुशब्द रत्नाकर महान्कोश में लिखा है कि तारा सिंह नरोत्तम के कोशों को देखकर प्रेरणा प्राप्त हुई।[१]

१- संमत १९५५ विच पंडित तारा सिंह जी दा 'गुरु गिरारथ कोश' अते संमत १९५७ विच भाई हज़ारा सिंह जी दा 'स्री गुरु ग्रंथ कोश' पढ़ के मैनू संकल्प फुरिआ कि इन्हां कोशां विच जो सबद स्री गुरु ग्रंथ साहब जी दे नहीं आए, उह शामिल करके अर अखर तथा मात्रा क्रम अनुसार सबद जोड़ के इक उत्तम कोस लिखिआ जावे- भाई कान्ह सिंह-भूमिका-महान्कोश

अन्ततः यह बात पूरे विश्वास के साथ कही जा सकती है कि नरोत्तम जैसा गुरुवाणी का व्याख्याता, उन जैसा प्रतिभाशाली कोशकार तथा इन सब से बढ़कर उन जैसा श्रद्धालु गुरु भक्त पंजाब के समूचे साहित्य (हिन्दी-पंजाबी) में कम से कम उस युग में नहीं था।

खड़ी बोली के गद्य को जो गरिमा तथा विचारों को जो अपूर्व निधि नरोत्तम ने प्रदान की है उसका मूल्य और महत्व अकल्पनीय है।

संदर्भित पुस्तकें

(क)- हिन्दी

	पुस्तक	विवरण	प्रकाशन समय
१-	अशोक की धर्म लिपियां	गौरीशंकर हीराचन्द ओझा	संमत १९८०
२-	अशोक के अभिलेख	डा० राजबली पाण्डेय	संमत २०२२
३-	अशोक के धर्मलेख	स० जनार्दन भट्ट	संमत १९७०
४-	उदासी सम्प्रदाय और कवि सन्तरेण	डा० सच्चिदानंद शर्मा	१९६७ ई०
५-	उत्तरी भारत में सन्त परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी	२००८ वि०
६-	कोश कला	राम चन्द्र वर्मा	२००६ वि०
७-	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा	काशी
८-	खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास	ब्रजरत्न दास	संमत १९९८
९-	खड़ी बोली का आन्दोलन	डा० शितिकंठ मिश्र	संमत २०१३
१०-	खड़ी बोली का आन्दोलन	सम्पादित भुवनेश्वर मिश्र	
११-	खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना	आशागुप्ता	१९६१ ई०
१२-	गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य	डा० गोविन्दनाथ राजगुरु	१९६६ ई०
१३-	गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी काव्य का आलोचनात्मक	डा० हरिभजन सिंह	१९६३ ई०
१४-	गुरु ग्रंथ साहिब एक परिचय	डा० धर्मपाल मैनी	
१५-	गुरु नानक और उनका काव्य	सं० महीप सिंह	
१६-	गुरु ग्रंथ दर्शन	डा० जयराम मिश्र	१९६० ई०
१६-	गुरु अर्जुन देव की वाणी	-	१९६१ ई०
१७-	गुरुमत प्रकाश	भाग संसकार -चीफ खालसा दीवान अमृतसर	१९१५ ई०

१८-	गोरख नाथ और उनका युग	डा० रांगेय राघव	१९६० ई०
१९-	गोरख बानी	सं०पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल	२००३ वि०
२०-	धर्मशास्त्र का इतिहास	डा० पाण्डुरंग वामनकाणे (अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यप)	१९६५ ई०
२१-	धर्म और समाज	डा० राधाकृष्णन	१९६० ई०
२२-	नाथ सम्प्रदाय	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	१९५० ई०
२३-	पौराणिक धर्म और समाज	सिद्धेश्वरी नारायण राव	
२४-	प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन	वासुदेव उपाध्याय	१९६१ ई०
२५-	प्रामाणिक कोश	रामचन्द्र वर्मा	२००७ सं०
२६-	प्राकृत और उसका साहित्य	हरदेव बाहरी	१९५६ ई०
२७-	प्राचीन लिपि माला	गौरी शंकर हीराचंद ओझा	२०१६ वि०
२८-	ब्रज भाषा सूरकोश	-	-
२९-	ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली	डा० कपिल देव सिंह	१९५६ ई०
३०-	भारतीय काव्यांग	डा० सत्यदेव चौधरी	१९५९ ई०
३१-	भारतीय दर्शन	डा० राधाकृष्णन	१९६९ ई०
३२-	भक्ति का विकास	डा० मुंशी राम शर्मा	१९५८ ई०
३३-	भारतीय साहित्य शास्त्र	बलदेव उपाध्याय	१९६० ई०
३४-	भारतीय संस्कृति और उसका साहित्य	सत्यकेतु विद्यालंकार	१९५६ ई०
३५-	भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण	के० एम पणिक्कर	१९५७ ई०
३६-	भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास	जगदीश प्रसाद कौशिक	१९६९ ई०
३७-	भाषा विज्ञान	भोला नाथ तिवारी	१९५१ ई०
३८-	भारतीय भाषा विज्ञान की भूमिका	सं० भोला नाथ तिवारी	१९७२ ई०
३९-	मध्यकालीन निर्गुण भक्ति साधना	हरवंश लाल शर्मा	१९६० ई०
४०-	मध्यकालीन धर्म साधना	आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी	१९५६ ई०

४१-	मध्यकालीन सन्त साहित्य	डा० रामखेलावन पाण्डेय	१६६५ ई०
४२-	मध्यकालीन हिन्दी सन्त विचार और साधना	डा० केशनी प्रसाद चौरसिया	१६६५ ई०
४३-	मधुर रस स्वरुप और विकास	डा० रामस्वार्थ चौधरी अभिनव	१६६८ ई०
४४-	मानक अंग्रेजी हिन्दीकोश	सत्य प्रकाश बलभद्र प्रसादमिश्र	२०१६ वि०
४५-	रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैतिक भक्ति दर्शन	डा० सरनाम सिंह शर्मा	१६५७ ई०
४६-	रस मीमांसा	रामचन्द्र शुक्ल	२००६ वि०
४७-	रस सिद्धान्त	डा० नगेन्द्र	१६६४ ई०
४८-	रस सिद्धान्त स्वरुप विश्लेषण	आनन्द प्रकाश दीक्षित	१६६० ई०
४९-	रस सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र	निर्मला जैन	१६६७ ई०
५०-	रस सिद्धान्त का पुनर्विवेचन	डा० गणपतिचन्द्र गुप्त	१६७१ ई०
५१-	सन्तकाव्य का दार्शनिक विश्लेषण	डा० मनमोहन सहगल	१६६५ ई०
५२-	सन्त साहित्य	प्रेमनारायण शुक्ल	१६६५ ई०
५३-	सन्त काव्य	परशुराम चतुर्वेदी	१६५२ ई०
५४-	सन्त दर्शन	त्रिलोकी नारायण दीक्षित	१६५३ ई०
५५-	सूफी मत साधना और साहित्य	तिवारी रामपूजन	२०१३ वि०
५६-	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	२०१५ वि०
५७-	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	गणपति चन्द्र गुप्त	१६६५ ई०
५८-	हिन्दी साहित्य	स० डा० धीरेन्द्र वर्मा	
५९-	हिन्दी रस गंगाधर द्वितीय संस्करण	स० जगन्नाथ पंडितराज	
६०-	हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय-	पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल	
६१-	हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास-	स० परशुराम चतुर्वेदी (नागरी प्रचारिणी सभा)	
६२-	हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति	श्याम सुन्दर शुक्ल	१६६४ ई०

६३-	हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि	डा० गोविन्द त्रिगुणायत	१९६१ ई०
६४-	हिन्दी शब्द सागर		
६५-	हिन्दी विश्व कोश		
६६-	हिन्दी साहित्य कोश		
६७-	हिन्दी सूफी कवि और काव्य	डा० सरलाशुक्ल	२०१३ वि०

(ख)- पंजाबी

६८-	अध्यात्म रामायण	गुलाब सिंघ निर्मला	
६९-	आदि ग्रंथ		
७०-	इतिहास गुरु खालसा	गंडा सिंघ निर्मला	बम्बई
७१-	इतिहास बाबा श्री चंद साहित्य अते उदासीन सम्प्रदाय	गिआनी ईशर सिंघ नारी	-
७२-	उथान का श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की	महंत साधु सिंघ	सं० १९५५
७३-	उदासी सिखादी विथिआ	रणधीर सिंघ	सं० २०१६
७४-	कूकिआं दी विथिआ	गंडा सिंघ निर्मला	१९४६
७५-	गुरुमत लैक्चर	ज्ञानी लाल सिंघ	
७६-	गुरु बिलास छेवीपातसाही	भाई सोहन सिंघ	१९७२ ई०
७७-	गुरुवाणी ते इतिहास बारे	साहिब सिंघ	१९६०
७८-	गुरु तीर्थ संग्रह	पं० तारा सिंघ नरोत्तम	१९४० वि०
७९-	गुरु प्रताप सूरज ग्रंथावली	संतोष सिंघ	
८०-	गुरुमत निर्णय सागर	पं० तारा सिंघ नरोत्तम	१९३४ वि०
८१-	गुरुमत प्रभाकर	भाई कान्ह सिंघ	१८९८(१९२२)
८२-	गुरुमत निर्णय	भाई जोध सिंघ	१९४५

८३- गुरुमत निर्णय भंडार	गिआनी लाल सिंघ	१९४९
८४- गुरमुखी लिपि दा जनम ते विकास	गुरु बख्श सिंघ	पंजाब यूनिवर्सिटी प्रकाशन)
८५- गुरमत साहित्य	पंजाब भाषा विभाग	
८६- गुरु नानक दी विचारधारा	रतन सिंह जग्गी	१९६९
८७- गुरु गिरारथ कोष-दो भाग	पं० तारा सिंघ नरोत्तम	१९५३ वि०
८८- गुरु सिष्या प्रभाकर	साधु सिंघ	(१९वीं शती उत्तराद)
८९- गुरु अर्जुन देव ते संत दादू दिआल	करतार सिंघ सूरी	१९६७
९०- गुरु ग्रंथ साहिब दीआं प्राचीन बीड़ां	जी० बी० सिंघ	
९१- गुरु ग्रंथ साहिब दी साहित्यिक विशेषता	गोपाल सिंघ	१९५८
९२- गुरु नानक जीवन दरशन अते काव कला	सुरिंदर सिंघ कोहली	
९३- गुरु नानक चिंतन ते कला	तारन सिंह	१९६३
९४- गुरु ग्रंथ साहिब दा साहित्यिक इतिहास	तारन सिंह	१९६३
९५- गुरु नानक अते भगती अंदोलन	मनमोहन सिंह	१९७०
९६- गुरु ग्रंथ कोश	खालसा ट्रस्ट सोसाइटी	
९८- ग्रन्थ साहिब कवि समालोचना	गोपाल सिंघ	
९९- जनमसाखी गुरु नानक देव	मिहिरवानु- सं० डा० कृपाल सिंह	१९६२
१००- जपु टीका	आनन्दघन	१८५४ वि०
१०१- जपु रहिरास सोहिला	पं० तारा सिंघ नरोत्तम	१९३६ वि०
१०२- जपु विआखिआ	तेजा सिंघ	१९५५
१०३- चक्रधर चरित्र चारु चंद्रिका	निहाल सिंघ	१८७२

१०४-	टीका सिरी राग	पं० तारा सिंघ नरोत्तम	१६४२ वि०
१०५-	तवारीख गुरु खालसा	गिआनी गिआन सिंघ	१६२४
१०६-	निरमल पंथ दरशन	महत दयाल सिंघ	-
१०७-	निरमल पंथ दरशन	गिआनी गिआन सिंघ	
१०८-	निरमल पंथ प्रदीपिका	गिआनी गिआन सिंघ	
१०९-	निरमल भूषण अथवा इतिहास निरमल भेख	गणेशा सिंघ	
११०-	निरमल पंचायती अखाड़ा	स्वामी अर्जुन सिंघ मुनि	
१११-	पंथ प्रकाश	भाषा विभाग, पंजाब	
११२-	पंजाब	गंडा सिंघ	१६६२
	पंजाब विच उरदू	हाफिज महिमूद शरी शीरवानी-भाषा विभाग	
११३-	प्रबोध चन्द्रोदय	गुलाब सिंघ निरमला	१८४६ वि०
११४-	पंजाबी हथ लिखतां दी सूची	भाषा विभाग, पंजाब	
११५-	पंजाबी भाषा विगिआन अते गुरमति गिआन	डा० मोहन सिंघ	
११६-	पंजाबी साहित्य समीखा	गिआनी गिआन सिंघ	
११७-	पंजाबी हिन्दी कोश	भाषा विभाग ,पंजाब	
११८-	पंजाबी साहित्य दा इतिहास	जीत सिंघ	
११९-	पंजाबी साहित्य दा इतिहास	गुपाल सिंघ	१६५२
१२०-	पंजाबी साहित्य दा इतिहास-	सुरिन्द्र सिंघ कोहली	
१२१-	पंजाबीबोली दा विकास	गुरुचरण सिंघ	
१२२-	पंजाबी कोशकारी	पंजाब भाषा विभाग	
१२३-	पंजाबी साहित वस्तु ते विचार-	सुरिन्द्र सिंघ कोहली	
१२४-	पुरातन जनम साखी	भाषा विभाग, पंजाब	
१२५-	प्राचीन बीड़ा बारे	भाई जोध सिंघ	१६४७
१२६-	फरीद शेख	दीवान सिंघ	
	फरीद कोटी टीका	-	
१२७-	मंगता दी बाणी	पं० तारा सिंघ नरोत्तम	१६३६ वि०

१२८-	भाव रसामृत	गुलाब सिंघ निर्मला	
१२६-	भगत बाणी	गिआनी बिशन सिंघ	
१३०-	भगत बाणी सटीक	पंडत नरैण सिंघ	
१३१-	भगतां दी बाणी	भाई भगवान सिंघ	
१३२-	भगतां दी बाणी	भाई जोध सिंघ	
१३३-	भगतां दी बाणी	पंडत नरैण सिंघ गिआनी	
१३४-	भगतां दी बाणी	गुरुमुख सिंघ	
१३५-	भगती काव	भाषा विभाग, पंजाब	
१३६-	महान कोश	भाई कान्ह सिंघ	
१३७-	मीणा पंथ	गुलाब सिंघ निरमला	
१३८-	सोढ़ी मिहिरवानु दा जीवन ते साहित्य	शमशेर सिंघ अशोक	
१३६-	सह संध्या श्री गुरु ग्रंथ साहिब	वीर सिंघ	१६५८
१४०-	सिक्ख इतिहास बारे	गंडा सिंघ	१६४६
१४१-	सिक्ख इतिहास वल	गंडा सिंघ	१६४६
१४२-	श्री गुरु ग्रंथ साहिब दरपण	साहिब सिंघ	
१४३-	सतिगुरु बिना होर कची है बाणी अरथात् गुरु गिरा कसौटी सार	प्रकाश श्री मान भाई हरिभजन सिंघ	
१४४	श्री मुख वाक्य - सिद्धान्त ज्योति -	साधु सिंह	1950 वि.

ENGLISH

1.	An Introduction to Panjabi Literature	Dr. Mohan Singh.
2.	A History of Panjabi Literature.	Dr. Mohan Singh.
3.	A vocabulary in Panjabi of difficult words occuring in Sikh growth.	Bishan Das Udasi.
4.	A critical study of Adi Granth.	S.S.Kohli.
5.	Encyclopaedia of Religion & Ethics	
6.	Essays in Sikhism.	Teja Singh.
7.	Etymology of Yaska.	
8.	Glimpses of the Divine Masters.	Ranbir Singh.
9.	History of the Indian Philosophy.	Das Gupta, 1932.
10.	History of Dharamsastra.	Pandurang Voman Dr. Kane.
11.	History of Sikhs.	J.D.Cunningham,1918.
12.	Inscription of Ashoka.	Sarkar D.C. 1957.
13.	Indigenous system of education sinceannexation.	C.W.Leitner,1882.
14.	Indigenous system of education.	G.L.Ahuja
15.	Linguistic survey of India.	Grierson.
16.	Panjabi Language.	Dr.Mohan Singh.
17.	Sketch of the religion on the Sikhs.	Ernest Trumpp.
18.	Adi Granth.	Ernest Trumpp.
19.	The Sikh Religion.	M.A.Macawliff.
20.	The Gospel of the Guru Granth.	Grenlease.
21.	The Religion of the Sikhs.	D.Field.
22.	Transformation of Sikhism.	G.C.Narang.
23.	The Sikh Martyrs.	Bhagat Lakshman Singh
24.	The Sikh Ceremonies.	Sir Joginder Singh.
25.	The Sikh today.	Khushwant Singh.
26.	The Religion Sects of the Hindus.	H.H.Wilson.

954071

पत्र- पत्रिकाएँ

हिन्दी

१- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी
२- बिहार राष्ट्र पत्रिका, पटना
३- साहित्य सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग
४- विश्व भारती पत्रिका, शांति निकेतन
५- सप्त सिंधु- भाषा विभाग, हरियाणा, पंजाब
६- कल्याण
७- भाषा

पंजाबी

१- पंजाबी दुनिया
२- प्रीत लड़ी
३- पंज दरिया
४- आलोचना
५- परख

अंग्रेज़ी

1. Journals of Royal Asiatic Society of Bengal.
2. Journals of American Oriental Society.
3. Bulletin of School of Oriental studies- London.
4. Modern Review.
5. Indian Antiquity.
6. Sikh Review.